श्रीमद् कुलभद्राचार्य विरचित सार समुच्चय

सद् देशना

भाग -1



देशनाकार

श्रमणाचार्य विशुद्धसागर

श्री कुलभद्राचार्य विरचित ''सार-समुच्चय''

पर

सद्-देशना

(भाग-1)

[श्लोक 01 से 50 तक]

देशनाकार

श्रमणाचार्य श्री विशुद्धसागर जी मुनिराज

प्रकाशक

अखिलभारतीय श्रमणसंस्कृति सेवा समिति

❖ मूलकृति – सार-समुच्चय

❖ प्रस्तुत कृति – **''सद्-देशना''**
(वर्ष 2011 में टीकमगढ़ में किये गये प्रवचनों का संग्रह)

❖ देशनाकार – **प.पू. श्रमणाचार्य श्री विशुद्धसागर जी महाराज**

❖ संकलन – **श्रमण सुव्रतसागर मुनि**

❖ प्रस्तुति – इंजी. जिनेन्द्र जैन, पद्मनाभ नगर, भोपाल
ब्र. दीदी डॉ. शशिकिरण जैन, पन्ना
ब्र. किरण दीदी, टीकमगढ़

❖ संपादन – पंडित शिवचरण लाल जैन, मैनपुरी

❖ संस्करण – प्रथम, 2014

❖ पुण्यार्जक – श्रीमति विनोद-महेन्द्र जैन (हर्ष सेनीटेशन, भोपाल) 9893989935
श्रीमति संध्या-संदीप जैन (अम्बर इण्टरप्राइजेज, भोपाल) 9893989935

❖ सहयोग राशि – दो सौ रुपए (पुनः प्रकाशन हेतु)

❖ प्राप्ति स्थान –
- श्री मूलचंद जैन, पारमार्थिक ट्रस्ट, 31, काछी मोहल्ला, इंदौर
मो. 09425321151
- श्री मनीष जैन 'मोना' (सीहोरा वाले), 31/3, छीपा बाखल, इंदौर
मो. 09826210189
- श्री महावीर प्रसाद पाटनी, जी.ई. रोड, सुपेला, भिलाई (छ.ग.)
मो. 09893063710
- श्री पवन कुमार, राजेन्द्र कुमार जैन सहावजाज परिवार,
धौलपुर हाऊस, आगरा (उ.प्र.)
- श्रमण संस्कृति साहित्य केन्द्र, श्री नंदीश्वर द्वीप ट्रस्ट,
जैन नगर, लालघाटी, भोपाल (म.प्र.) मो. 09425374897
- श्री जीवराज ग्रंथमाला, सोलापुर (महाराष्ट्र)

❖ मुद्रक – विकास ऑफसेट प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स
45, सेक्टर-एफ, औद्योगिक क्षेत्र, गोविन्दपुरा, भोपाल
फोन : 0755-2601952, 9425005624

❖ अनुक्रमणिका ❖

गाथा क्रं.	विषय	पृष्ठ क्रमांक
	संपादकीय	V
	ध्यातव्य, निवेदन	X
	मंगलाचरण	XI
	संदर्भ ग्रन्थ सूची	XII
1.	ग्रंथ का मंगलाचरण	1-14
2.	दु:खमय संसार	1-14
3.	आर्त्तध्यान दु:ख का कारण है	15-28
4.	आत्महित के साधन	29-40
5.	करो आत्मभावना	41
6.	ज्ञान-भावनापूर्वक तप करणीय है	41
7.	नर जन्म का सार: आत्म ज्ञानपूर्वक संयक-धारण	62
8.	करो संयमपूर्वक आत्मभावना	74
9.	ज्ञानाभ्यास और तप करणीय है	84
10.	ज्ञानादित्य का प्रभाव	97
11.	ज्ञानाभ्यास का फल	113
12.	अन्तरात्मा ज्ञानामृत का पान करे	123
13-14.	प्रमाद मत करो	135
15.	आत्मा ही सतत् रक्षणीय है	148
16.	नरक-पतन के कारण	160
17.	स्वस्थ शरीर ही तप का साधन है	160
18.	पण्डित कौन?	173
19.	पुण्यात्मा कौन?	185
20.	शूरवीर का लक्षण	197
21.	मोह का महात्म्य	206

22-23.	धर्मरूपी धनको हरण करने वाले चोर	211
24.	संसार-परिभ्रमण का कारण	225
25.	मोक्षगामी कौन	225
26.	आत्मसुख के घातक	246
27.	ज्ञान के समान सुख नहीं	268
28.	विषय कषायों के अभाव में ही सुख	285
29.	आत्म-चिकित्सा की प्रेरणा	295
30.	आत्मा का रक्षक संयम	301
31.	कषाय- कलुषित जीव की दशा	301
32.	कर्मबन्ध का कारण	312
33.	संसार एवं मोक्ष का बीज	312
34.	कषाय के अभाव का फल	318
35.	ज्ञानी पुरुषों का कथन	324
36.	धर्म रत्न के चोर	332
37.	सम्यग्दर्शन ही पथ्य है	342
38.	सम्यग्दर्शन ही परम हितैषी है	348
39.	सम्यग्दर्शन के प्रति अनुराग	348
40.	संसार दु:ख का नाशक सम्यग्दर्शन	364
41.	सम्यग्दृष्टि ही निर्वाण के योग्य	364
42.	सदाचारी सम्यग्दृष्टि ही धर्मज्ञ है	382
43.	वास्तविक वैद्य कौन	382
44.	क्या करना योग्य है?	397
45.	मानव-भव की निरर्थकता	401
46, 47.	प्रयत्नपूर्वक चारित्र धारण करो	409
48.	दु:ख का कारण	425
49.	दु:ख नाश का कारण	431
50.	भवदु:ख का नाशक	439

सम्पादकीय

वन्दे वागीश्वरीं नित्यं जिनवक्त्राम्बुजनिर्गतां।
वाक्शुद्धयै नयसिद्ध्यै च जिनस्याद्वादामृतगर्भिणीं ॥

विश्ववन्द्य तीर्थंकरों की दिव्यध्वनि के अर्थ व्याख्यान की साकार शब्दरूपता रूप गणधरों के ग्रन्थ कर्त्तृव्य-जैन वाङ्मय में परम्पराचार्यों का महत्वपूर्ण स्थान है। निर्ग्रन्थ श्रमणों ने प्रथम-करण-चरण-द्रव्यानुयोग के विषयों को अपनी लेखनी द्वारा वर्तमान शासन नायक भगवान् श्री महति महावीर वर्द्धमान के सर्वलोकहित उपदेश को जन-जन तक पहुँचाने का महत्कार्य संपादित किया है। आचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामी से लेकर वर्तमान तक श्रमणों द्वारा अहिंसा, अनेकान्त, अपरिग्रह की त्रिवेणी में प्रवहमाण जैन अध्यात्म-दर्शन, आचार और विचार के ढाँचे में ढलकर विश्वमैत्री और सह-अस्तित्व का प्रभावक संवाहक बना हुआ है।

आचार्य कुलभद्र—ये निर्ग्रन्थ श्रमणाचार्य दशवीं शताब्दी (937 ई.) में इस पावन भारत भूमि को अपने विशिष्ट ज्ञान-ध्यान-तप द्वारा संस्कृत कर रहे थे। जैनेन्द्र सिद्धान्तकोश के अनुसार यह कालावधि प्रकट है। श्रद्धेय ब्र. शीतल प्रसादजी ने हजार वर्ष पूर्व का मानकर अपनी टीका में उल्लेख किया है।

यह ज्ञातव्य है कि लगभग इसी समयान्तराल में आचार्य गुणभद्र, आचार्य अमितगति आदि प्रतापी आचार्यों ने जिनवाणी की महती शोभा की है। कुलभद्राचार्य की संभवत: एक ही कृति 'सार-समुच्चय' उनको उसी समकक्षता में लाने में समर्थ है। उन्हें इस महनीय उपकार के कारण समादृत स्थान प्राप्त है। उनका जीवन परिचय, संघ-परम्परा, ग्रंथ रचना आदि गवेषणा का विषय है।

सारसमुच्चय—328 अनुष्टप् छन्दों में,

संस्कृत भाषा में रचित कुलभद्राचार्य की यह रचना 'आत्म स्वभावं परभाव भिन्नं' के मूलविषय द्रव्यानुपयोग के सारभूत अध्यात्म के केन्द्र पर शोभायमान है। सुख के शाश्वत रूप मोक्षप्राप्ति हेतु रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग का भी साधन रूप तप है, वह सार है तथा उसका भी सार ध्यान है जो मोक्षोपयोगी निर्जरा का कारण है। यह वर्णित है।

वर्तमान में मनीषियों के प्रयास से इसकी टीकाओं सहित छह-सात प्रकाशन हो चुके हैं। इसमें पं. दौलतराम कासलीवाल कृत भाषा वचनिका तथा 104 हिन्दी पद्यों में संक्षिप्त रचना (वि. सं. 1805), ब्रह्मचारी शीतल प्रसाद कृत हिन्दी अनुवाद व टीका (सन् 1935)

सूरत व नरियां वाराणसी से, इससे पूर्व 1922 में माणिक चन्द्र ग्रन्थमाला बम्बई से "सिद्धान्तसारादिसंग्रह (संभवतः मूल) के नाम से तथा पूज्य गणिनी आर्यिका सुपार्श्वमती जी का भाषा टीकानुवाद (प्रकाशित सन् 2007) भी सम्मिलित हैं। इससे प्रकट होता है कि यह ग्रन्थ अध्यात्म-रसिकों के लिए कण्ठहार बना हुआ है।

सारसमुच्चय की विशेषतायें—निम्न बिन्दुओं से संक्षिप्त अवगम्य हैं।

(1) यह रचना संसार, शरीर और भोगों के प्रति संवेग और निर्वेद-वैराग्य हेतु परम औषधि है। प्रशम, आस्तिक्य और ध्यान की प्रेरणा देने वाले इस ग्रंथ में झलकता है कि—अध्यात्म ही सार-समुच्चय है।

(2) इसकी रचना संसार-भ्रमण, जन्म-मरण का नाश करने हेतु की गई है, स्वयं ही मार्दव के अंगभूत लाघव-भाव के धारण करने वाले आचार्य ने यह व्यक्त किया है, दृष्टव्य है।

अयं तु कुलभद्रेण भवविच्छित्तिकारणम्।
दृब्धो बालस्वभावेन ग्रन्थः सारसमुच्चयः ॥ 325॥
ये भक्त्या भावयिष्यन्ति भवकारणनाशनम्।
तेऽचिरेणैव कालेन सुखं प्रात्स्यन्ति शाश्वत्॥ 326/सा.समु.॥

बालस्वभाव वाले कुलभद्र ने इस सारसमुच्चय ग्रंथ को संसार की स्थिति छेदने के लिए लिखा है। जो भक्ति के साथ इसकी भावना करेंगे, जो कि संसार कारणों का नाशक है, वे शीघ्र ही शाश्वत सुख प्राप्त करेंगे।

(3) रस की एकरूप निष्पत्ति के लिए मात्र अनुष्टप छन्द में लिखा है।

(4) भाषा सरल है, सामान्य संस्कृत-ज्ञानी भी भाव हृदयंगम कर सकता है।

(5) शैली सरस आध्यात्मिक रूप से प्रवाहपूर्ण है, उपदेशात्मक है, मधुर-प्रिय है।

(6) यह श्रावक और श्रमण दोनों के लिए समान रूप से पथ्य रूप में है।

(7) इसकी भाषा-शैली की तुलना गीता, आत्मानुशासन, सुभाषित रत्नसंदोह, क्षत्रचूड़ामणि से की जा सकती है, इसमें जटिल, क्लिष्ट व अति समस्तपद नहीं है।

(8) नीतियों, उदाहरणों, सिद्धान्त प्रस्तुति आदि से भावों में वैराग्योत्पादक है।

वस्तुतः यह जिनवाणी प्रसून पाठकों में भाव-विशुद्धि का मुख्य कारण है।

आचार्य श्री विशुद्धसागर महाराज—

वर्तमान श्रमण जगत् में परमपूज्य आचार्य श्री निर्दोष साधु-चर्या के धनी एवं ज्ञान-ध्यान-तपोलीन श्रमण के रूप में संघ नायक का कुशल निर्वहण कर रहे हैं। आध

यात्मिकता को लिए आपकी वाणी सर्वोदय हेतु अर्थात् जैन परम्परा के साधु व श्रावक सभी के लिए परम रसायण का कार्य कर रही है। वे सतत स्वाध्यायी, कुशाग्र चिन्तक, न्याय विद्याविशारद, सिद्धान्त शिरोमणि, समयसारादि शुद्ध-अध्यात्म के रसिक तथा लोकनीति व समाजनीति के दृष्टा हैं। प्रवचन कला की निपुणतामय उनकी लगभग पैंतीस कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं, जिन्हें समाज चाव से पढ़ता है। ये सभी देशना की संज्ञा से विभूषित हैं। समयसार पर समयदेशना के सोलह खण्ड प्रकाश्य हैं। ये प्रवचन समाज पर गहरा प्रभाव छोड़ते हैं।

रूर (भिण्ड) ग्राम में जन्मे राजेन्द्र ने अन्तःकरण से विरक्त होकर मात्र बीस वर्ष की आयु में श्रमणाचार्य श्री विराग सागर जी से बाल ब्रह्मव्रत सहित मुनिदीक्षा ग्रहण की एवं 31.03.2007 महावीर जयंती के पावन दिवस पर औरंगाबाद में आचार्यपद ग्रहण किया। अद्यावधि अपने रत्नत्रय के तेज से आत्मा को तथा ज्ञानदान, तप और जिनेन्द्र भक्ति से वीतराग जैन शासन रूप धर्म को, जिसे वे 'नमोऽस्तुशासन' (मूलाचार टीका के आधार पर) कहते हैं, प्रकाशित, प्रभावनायुक्त कर रहे हैं।

सद् देशना—आचार्य श्री विशुद्धसागर जी ने ऊपर वर्णित ग्रन्थ 'सार-समुच्चय' पर विस्तृत देशना प्रदान की है। सत् शब्द का अर्थ समीचीन, प्रशंसनीय, कल्याणकारी एवं श्रेष्ठ होता है। यह 'सद् देशना' 'संज्ञा सार्थक' है। इसमें सुष्ठु व्याख्यान है। इसमें विभिन्न विषयों पर बहुआयामी उपदेश दिया है। साथ ही ब्र.शीतल प्रसाद जी के कतिपय शीर्षकों से समन्वित, गणिनी आर्यिका सुपार्श्वमती माता जी द्वारा प्रयुक्त प्रत्येक श्लोक के शीर्षकों को लिखा गया है, यह आचार्य श्री की गुणग्राहकता तथा प्रवचन वात्सल्य का द्योतक है। इससे ज्ञानावरण कर्म का विशेष क्षयोपशम होता है।

यह ज्ञातव्य है कि यदि शीर्षक द्वारा संकेत प्राप्त होता है, तो पाठक को विषय को समझने में सुविधा होती है। मूल ग्रन्थ के आशय के अनुरूप कतिपय शीर्षक ही देशना के महत्व को प्रस्थापित करते दृष्टिगत होते हैं, यथा आत्म-भावना ही विधेय है, ज्ञान भावना पूर्वक तप करणीय है, आत्म चिकित्सा की प्रेरणा, संसार दुःख नाशक सम्यग्दर्शन आदि।

सद् देशना की भाषा शैली—

प्रस्तुत देशना देश-देश व घाट-घाट का पानी पीने वाले पदयात्री-करपात्री पहुँचे हुए आत्मनिष्ठ यायावर श्रमण के मुख-कमल से निःसृत सर्वहारा सूत्ररूपी सुरभित पुष्पों का हार है। आचार्य श्री की उभय लोक हित करूणा के दर्शन हम यहाँ आचार्य गुणभद्रस्वामी के निम्न श्लोक द्वारा करना चाहेंगे,

जनाः धनाश्च वाचाला सुलभा स्युर्वृथोत्थिताः।
दुर्लभाः हयान्तरार्द्रास्ते जगदभ्युज्जिहीर्षवः ॥

वृथाही अहंकार से भरे वाचाल वक्ता अधिक संख्या में सुलभ हैं, किन्तु करूणारस पूरित हृदय वाले जगत् के हिताकांक्षी उपदेशक दुर्लभ हैं। आचार्य श्री परोपकार की मूर्ति हैं। जिनमें स्वात्मकल्याण प्रमुखता से लक्ष्यभूत है।

उक्तगुणों से युक्त देशनाकार की सद्देशना की भाषा लोक भाषा है जिसमें अपेक्षित रूप में आचार्यों के उद्धरण मणिकाञ्चन योग को सार्थक बनाते हैं।

भाषा सरल, सुगम, अवगम्य है। आवश्यकतानुसार तत्वज्ञान के निरूपण में आगमिक शब्दावली के भी दर्शन होते हैं। श्रोताओं को आचार्य विशुद्धसागर जी प्रायः ज्ञानी, मुमुक्षु आदि सम्बोधनों से प्रतिबोधित के शब्दों की बहुलता है। देशना की शैली ओज, प्रसाद माधुर्य गुण से युक्त है। श्रोता ऊबला नहीं, भले ही अध्यात्म, वैराग्य-प्रधान देशना है।

यह कहा जा सकता है कि—देशना अमृतधारा से लबालब भरी हुई एक प्रवहमाण शीतल वृक्षावली के मध्य से गुजरने वाली नय-प्रमाण रूपी तटों से संयत पावन सरिता के समान प्रतीत होती है। शैली प्रभावकारक एक आगमोक्त व प्रामाणिक रूप में प्रकट है। यहाँ कतिपय पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं।

"आचार्यप्रवर कुलभद्रस्वामी जगत् के जीवों को श्रद्धा का बोध करा रहे हैं। अर्हन्त जिनेन्द्र की वह गम्भीर दिव्य-देशना, जो अभद्रों को भी समन्तभद्र कर देती है, कितने ही अभद्र प्राणी हों, जिनेन्द्र की देशना को सुनते ही समन्तभद्र हो जाते हैं। वह देशना 'देशना' नहीं जिससे अभद्र को समन्तभद्रता प्राप्त न हो।"

"हे माँ! गेहूँ से कंकड़ों को बीनने का विवेक तुमने कितने भवों से सीखा है? आटा पीसने से पहले कंकड़ बीनकर अलग कर देती हो। यदि गेहूँ के अंदर एक भी कंकड़ अवशेष बचा, तो रोटी का स्वाद क्या होगा? आकार तो ले लेंगी रोटियाँ, बन तो जायेंगी, पर पेट भरने के लिये नहीं बन पायेंगी?"

कुल मिलाकर "सद्-देशना" पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि—आचार्य कुलभद्र के श्लोकों पर यह बहुत विस्तार को लिए हुए एवं लोकहित तथा श्रोताओं के समूह के लिए विषयान्तरता को समाहित किए हुए भी यह अमृत रसायन है। इससे जन्म-जरा-मरण के कष्टकारक रोगों से मुक्ति का मार्ग प्राप्त हो सकता है।

पूर्व में प्रकाशित 'सार-समुच्चय' में भाषानुवाद एवं भावानुवाद प्रस्तुत किया गया है, पर इस देशना में तो आर्षमार्ग व चतुरनुयोग के तथा लोकस्थिति के परिप्रेक्ष्य में विस्तृत व्याख्या या व्याख्यान समीचीन रूप से प्रकट है। यह भी ज्ञातव्य है कि भाषण या प्रवचन में विरोधाभास भी संभव है, पर 'देशना' शब्द स्वयं ही सत्यार्थ का ही बोधक है।

"सद्-देशना" प्रकाशित हो रही है। अपने श्रेष्ठ रूप और गेटअप, मुद्रण आदि दृष्टियों एवं भाषा-शब्दों की प्रूफरीडिंग सावधानी से की गई है, फिर भी अशुद्धि संभव होती है इस हेतु क्षमाप्रार्थी हूँ। पाठक व प्रबुद्ध मनीषियों से प्रार्थना है कि—भूल सुधारकर लेवें।

पुनश्च परम पूज्य श्रमणाचार्य श्री विशुद्ध सागर जी महाराज को शतशः नमन। उनके मार्ग प्रभावना एवं प्रवचन वात्सल्य से ही यह कार्य, जिनवाणी के भण्डार में वृद्धि करेगा। समाज पर भी उनका उपकार अमिट छाप छोड़ने वाला है। इस हेतु उनका भूरि-भूरि आभार। श्री वाय. के. जैन, पिन्टु भैया आगरा एवं अन्य भी जो सहयोगकर्त्ता, प्रकाशक तथा मुद्रक आदि सभी साधुवाद के पात्र हैं।

आशा और विश्वास है कि—सुधी पाठकगण इस देशना का मनोयोगपूर्वक स्वाध्याय करके पारमार्थिक आनन्द को अनुभव करेंगे। मंगल कामना है कि—यह "सद्देशना" यावच्चन्द्र दिवाकरौ चिरंजीवी होकर जनता जनार्दन को सुख शान्ति का सन्देश देकर जाज्वल्यमान रहे।

समयसारस्य सारोऽयं, सर्वसारस्य चाप्ययं।
सद्देशनेति व्याख्यानं, विशुद्धकीर्तिं प्रकाशते ॥ (स्वोपज्ञ)

(इत्यलं)

श्यामभवन, बजाजा
मैनपुरी-205001 (उ. प्र.)
मो. 09219160350
दि. 28-08-2014

पं.शिवचरनलाल जैन
संरक्षक एवं पूर्व अध्यक्ष-तीर्थंकर
ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ
संरक्षक
अ. भा. दि. जैन शास्त्रि परिषद्

ध्यातव्य

एक गूढ़वादी के लिए यह आवश्यक नहीं कि वह बड़ा विद्वान् हो और न ही वर्षों तक व्याकरण और न्याय में सिर खपाकर उसमें सुयोग्य बनने का ही प्रयत्न करता है, किन्तु मानव-समाज को दु:खी देख आत्म-साक्षात्कार का अनुभव ही उसे उपदेश देने के लिए प्रेरित करता है और व्याकरण आदि के नियमों पर विशेष विचार किये बिना जन-सामान्य के सामने वह अपने अनुभव रखता है। अत: उच्चकोटि की रचनाओं में प्रयुक्त की जानेवाली भाषा को छोड़कर समय की प्रचलित भाषा को अपनाना ही महत्व रखता है। अध्यात्म में भाषा नहीं, भाव प्रधान हैं। भाषा का बोध विद्वता नहीं, विषय का बोध विद्वता है।

निवेदन

इस ग्रंथ में प्रमादवश व अज्ञानतावश टंकण, मुद्रण, शब्द संयोजन, शब्द संशोधन, शब्द विन्यास में रही त्रुटियों के लिए सुधी पाठक-विद्वत्जन से क्षमायाचना करता हूँ कि वे मुझ अल्पज्ञ को क्षमा करें और उनसे अनुरोध है कि वे त्रुटियों का शोधन यथास्थान करें तथा उन संशोधनों/त्रुटियों से मुझे भी अवगत करावें ताकि आगामी संस्करण में उन संशोधनों को समाहित किया जा सके। माँ जिनवाणी की सेवा में मेरा यह शिशुवत् प्रयास है, अत: त्रुटियों से अवगत कराने वाले सुधी पाठकों का मैं कृतज्ञ होऊँगा।

जिनेन्द्र जैन
ए-60, पद्मनाथ नगर, भोपाल 462023
दूरभाष-2756084
चलित-8989405479

मंगलाचरण

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव, ओंकाराय नमो नमः॥ 1॥
अविरल-शब्द घनौघ-प्रक्षालितः सकलभूतल-कलंका।
मुनिभि-रुपासित-तीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितान्॥ 2॥
अज्ञान तिमिरान्धानां, ज्ञानांजन-शलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्री गुरुवे नमः॥ 3॥

।। श्री परमगुरुवे नमः, परम्पराचार्य गुरुवे नमः॥
सकल कलुष-विध्वंसकं श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धकं,
भव्य जीवमनः प्रतिबोधकारकमिदं, शास्त्रं श्री ''सार-समुच्चय''
नामधेयं अस्य मूलग्रन्थकर्तारः श्री सर्वज्ञदेवास्तदुत्तर
ग्रन्थकर्तारः श्री गणधरदेवाः प्रतिगणधर देवास्तेषां
वचनोऽनुसार-मासाध्य आचार्य श्री कुल भद्राचार्य विरचितं तस्य
भाषा टीकां श्रमणाचार्य श्री विशुद्ध सागर विरचितं एषः
''सद्-देशना'' नाम ग्रन्थः।

श्रोतारः सावधानतया श्रृण्वन्तु !
मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो, जैन धर्मोऽस्तु मंगलम्॥
सर्व मंगल मांगल्यं, सर्व कल्याणकारकं।
प्रधानं सर्वधर्माणां, जैनं जयतु शासनम्॥

❖ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची ❖

● स्वयम्भू स्तोत्रम्	स्व.स्.	आचार्य श्री समन्तभद्र स्वामी
● स्वरूप संबोधन	स्व.सं.	आचार्य श्री भटट् अकलंकदेव
● इष्टोपदेश	इष्.	आचार्य श्री पूज्यपाद् स्वामी
● पुरुषार्थ सिद्ध युपाय	पु.सि.	आचार्य श्री अमृत चंद स्वामी
● समयसार	स.सा.	आचार्य श्री कुन्द कुन्द देव
● तत्त्वार्थसूत्र	त.सू.	आचार्य श्री उमा स्वामी
● रयणसार	र.सा.	आचार्य श्री कुन्द कुन्द स्वामी
● भावना द्वात्रिंशतिका	भा.द्वा.	आचार्य श्री अमित गति स्वामी
● सर्वार्थ सिद्धि	स.सि.	आचार्य श्री पूज्यपाद् स्वामी
● समाधि तंत्र	स.तं.	आचार्य श्री पूज्यपाद् स्वामी
● परमात्म प्रकाश	प.प्र.	आचार्य श्री योगेन्दु देव
● आप्त मीमांसा	आ.मी.	आचार्य श्री समन्तभद्र स्वामी
● मूलाचार	मूला.	आचार्य श्री वट्टकेर स्वामी
● गोम्मटसार जीवकाण्ड	गो.जी.	आचार्य श्री नेमिचन्द्र स्वामी
● रत्नकरण्ड श्रावकाचार	र.श्रा.	आचार्य श्री समन्तभद्र स्वामी
● कार्तिकेयानुप्रेक्षा	का.अ.	आचार्य श्री कार्तिकेय स्वामी
● प्रवचनसार	प्र.सा.	आचार्य श्री कुन्द कुन्द स्वामी
● तत्त्वसार	त.सा.	आचार्य श्री कुन्द कुन्द स्वामी
● आलाप पद्धति	आ.प.	आचार्य श्री देवसेन स्वामी
● नियमसार	नि.सा.	आचार्य श्री कुन्द कुन्द स्वामी
● लघु नय चक्र	ल.न.च.	आचार्य श्री देवसेन स्वामी
● वारसाणुपेक्खा	वा.अ.	आचार्य श्री कुन्द कुन्द स्वामी

मंगलाचरण

देवदवं जिनं नत्वा, भवोद्भवविनाशनम्।
वक्ष्येऽहं देशनां कांचिन्मतिहीनोऽपि भक्तितः ॥ 1॥

भावार्थ : मैं कुलभद्राचार्य संसारोत्पत्ति के नाशक देवाधिदेव जिनेन्द्रदेव को भक्तिपूर्वक नमस्कार करके, बुद्धि रहित होते हुए भी अर्थात् अल्पज्ञ होते हुए भी कुछ देशना कहता हूँ।

''दुःखमय संसार''

संसारे पर्यटन् जन्तुर्बहुयोनि समाकुले।
शारीरं मानसं दुःखं प्राप्नोति बत दारुणं ॥2॥

भावार्थ : बड़े खेद की बात है कि नाना योनियों से भरे हुए इस संसार में परिभ्रमण करता हुआ यह संसारी–प्राणी दारुण शारीरिक और मानसिक दुःखों को भोगता रहता है।

।। सद्–देशना ।।

अंतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सब विराजते हैं । तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूषदेशना मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञशासन, नमोऽस्तु–शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सार–समुच्चय' में परम–तत्त्व की व्याख्या करते हुए समझा रहे हैं। जो देवों के देव हैं, ऐसे जिनेन्द्रदेव की वंदना उनको खुश करने के लिए नहीं कर रहे हैं, उनको प्रसन्न करने के लिये वंदना नहीं कर रहे हैं, अपितु अरहन्त की वन्दना करके अपने-अपने कर्मबंधन को समाप्त कर रहे हैं।

हे ज्ञानी ! यदि प्रसन्न करने के लिए वन्दना करते हो तो इसका तात्पर्य है कि आपका परमेश्वर मोह से सहित है, द्वेष से युक्त है। जबकि जो आप्त है, वो मोह रहित है। जो आप्त हैं, वे द्वेषरहित हैं। जो आप्त हैं, वे रागरहित हैं। परम–आप्त के लिए आपकी वन्दना की आवश्यकता नहीं है। आप्त को आपकी आराधना की आवश्यकता नहीं है। हे मुमुक्षु ! जीवन में ये कभी नहीं विचार लेना कि यदि मैं परमेष्ठी की वन्दना नहीं करूँगा तो परमेष्ठी वन्दनीय नहीं होंगे। ज्ञानी! आपकी वन्दना से वन्दनीय नहीं हैं, वे तो निज–गुणों से ही वन्दनीय हैं। उनके गुणों में आपकी वन्दना से न कमी आती है, न अधिकता होती है।

न पूज्याऽर्थस्त्वयि वीतरागे, न निन्दया नाथ ! विवान्त–वैरे।

तथापि ते पुण्य–गुण–स्मृतिर्नः, पुनातु चित्तं दुरिताञ्जनेभ्यः ॥57 स्व.स्तो.॥

हे ज्ञानियो ! यदि आपको दुरित कर्म से रहित होना है, अपने परिणामों को पुण्यभूत करना है, अपनी परिणति को पवित्र करना है, अपनी भवावलियाँ कम करना है, तो परमात्मा की वन्दना कर लेना। ज्ञानी! आपकी वन्दना से परमात्मा वन्दनीय नहीं होते, आपकी अवन्दना से परमात्मा अवन्दनीय नहीं होते। यह मत सोच बैठना कि यदि मैं नहीं जाऊँगा तो भगवान के भगवत्पने में कमी आ जायेगी। नहीं, ज्ञानी! ऐसा नहीं है।

हे भव्य ! कभी-कभी अल्पबुद्धि पुरुष के हाथ में भी रत्न आ जाता है, परन्तु वह मणि को मणि न समझकर कंकड़ अथवा काँच समझता है। अरे ज्ञानियो ! न-समझने-वाले की दृष्टि से उस मणि की कीमत में कमी नहीं आती है। हाँ, इतना अवश्य है कि आप मणि को मणिभूत न समझ पाये, सो आप उससे जो लाभ लेना चाहिये था वो लाभ नहीं ले पाये, परन्तु मणि की कीमत में कमी नहीं आती है।

आप कुछ वस्तु खरीदने किसी महानगर में गये, आप समझदार थे सो यहाँ थोड़ा भेष बनाकर गये थे। ऐसा क्यों किया ? क्योंकि तुम्हारी जेब में गर्मी थी अर्थात् धन भरा हुआ था, परन्तु महानगर के लोग तुझे देहाती आदमी, निर्धन समझते हैं। धन्य हो तेरी प्रज्ञा को। फिर भी तू खेद नहीं कर रहा था, क्योंकि तुझे ज्ञात था कि मैं निर्धन नहीं, धनपति हूँ। मैं दूसरे के द्वारा जानने से न निर्धन हूँ, न धनिक हूँ। जो हूँ, सो हूँ।

हे ज्ञानी ! शहर के लोग सोचते हैं कि अरे! कोई देहाती आदमी है, घूम रहा है। चलो जाने दो। तुझे तो तेरा लक्ष्य पूर्ण करना था, तब तुझे किंचित् भी खेद नहीं था। न अपमान का खेद था, न उनके सम्मान की इच्छा थी, क्योंकि तुझे मालूम था कि मैं क्या हूँ ?

जेब की गर्मी का तात्पर्य समझ गये क्या ? हाँ। जड़द्रव्य के राग में। इतने शक्तिमान रत्न भरे रहता है। पूछो स्वर्णकार से, एक डिब्बी में ही कितनी कीमत के रत्न भरे रहता है। रत्न की डिब्बी जेब में रखकर स्वर्णकार चला जा रहा है। दुनियाँ सोचती है कि यूँ ही जा रहा है, परन्तु स्वर्णकार को अन्दर-ही-अन्दर आनन्द आ रहा है। जेब के अन्दर डिब्बी, उसके अन्दर रत्न, उसकी महिमा है कि—चेहरे पर चमक है। अन्दर-ही-अन्दर रत्नों का आनंद ले रहा है, प्रसन्न हो रहा है। भाव कुछ अलग ही बन रहे हैं।

कोई पहचाने या न पहचाने, पर बहिरंग द्रव्य के होने पर अंतरंग में इतना हर्षित हो रहा है, कि मैं गरीब नहीं हूँ। हीरे-मोती वाले के चेहरे अलग चमकते हैं। चमक हीरे में होती है, पर उसकी चमक का प्रभाव देखो इसके गालों पर हो रही है।

जब डिब्बी के रत्नों की चमक से गाल चमक सकते हैं, तो जिसके भीतर रत्नत्रय के मोती रखे हों, उसका चेहरा न चमके, ऐसा हो ही नहीं सकता। वीतरागी निर्ग्रंथ तपोधन, जैसे ग्रामों में रहने वाले सेठ लोग फटी धुतिया-मिरजाई जानकरके पहिनते हैं, जैसे तेल में डुबा लाये हों—बोले कि गरीब आदमी है। पर ज्ञानी! कपड़ों में मलिनता है, लेकिन धन में निर्मलता है, इसलिए कपड़ों को मलिन पहने है। आप समझो गहरी बात, कि ज्यादा अच्छे पहिनके चलेंगे तो लुट जाएँगे। ज्यादा सुंदर पहिनके चलेगा तो लुट जायेगा। ऐसे ही वीतरागी तपोधन, ये निर्वस्त्र होकर भी मलिन शरीर में स्नान नहीं करते। रज लगा रहे, मल लगा रहे, छपा रहने दो। क्यों ? क्योंकि भीतर रत्न भरे हुए हैं। यदि ज्यादा सुंदर कर लिया तो किसी नारी को राग उत्पन्न हो गया इनके शरीर में, तो तेरे शील के रत्न नष्ट कर देगी। इसलिये आप मलिन शरीर में रहते हो, किसी की बहिरंग सुन्दरता को देखकर अंदर की सुन्दरता की परीक्षा मत करना। तेरी अंतरंग की सुंदरता ही सुन्दर है, बहिरंग सुन्दरता किसी काम की नहीं। ये है मूल उद्देश्य। इस शरीर को शृंगारित मत करना, जिससे शृंगारविहीन हो जाओ। मुमुक्षुओ ! ब्रह्मचारियो ! शरीर को सजाके मत रखना। इतने सुन्दर कपड़े मत पहनना, जिससे शृंगार के राग में शृंगार चला जाय।

शृंगार देह का वे करें, जिनके पास शील का शृंगार न हो। जहाँ शील का शृंगार है, वहाँ देह के शृंगार की कोई आवश्यकता नहीं। शरीर सजाना घोर हिंसा है। ज्ञानी! पिंजड़े में भी काजू की खीर रखी हुई है। चूहे को फंसाने वाला भी उसमें फल रख देता है। वो चारा खाने के राग में जाता है, वैसे ही बंद हो जाता है। जैसे शिकारी जाल फैलाता है जीवों को फँसाने के लिए, ऐसे ही ज्ञानियो! ये शृंगार जो करके आ रहा है, वह जाल बिछा रहा है शीलवंतों के शील के हरने के लिए। इसलिए हिंसक है।

ज्ञानियो! प्राणों का वध करना, ये तो पर्याय का वध है; पर भावों का वध करना, ये परिणामों का वध है। भैया! ये हिंसा है कि नहीं?

अधिक सजके वे ही आते हैं, जो सजे नहीं होते हैं। स्वयं भग्न होते हैं, दूसरों को भग्न करना चाहते हैं। यही कारण है कि जिनशासन में कोई परमात्मा मुकुट नहीं लगाये, माला नहीं पहने, शृंगार नहीं किये। क्यों ?

जो सहजसुन्दर है, उनको जगत के अन्य द्रव्यों को लपेट करके सुन्दरता की आवश्यकता क्या है ? आपको ज्ञात होना चाहिये कि जब तीर्थंकर ऋषभदेव का जन्ममहोत्सव मनाने सौधर्म इन्द्र आया, और प्रभू को ले जाकरके सुमेरु पर्वत पर अभिषेक किया और अभिषेक करने के उपरान्त इन्द्राणी से कहा कि प्रभू का प्रक्षालन करो। जब इन्द्राणी प्रभू का प्रक्षालन कर

रही थी, उस समय बार–बार गाल घिस रही थी। सौधर्म इन्द्र खड़ा–खड़ा मुस्करा रहा था। हे देवी ! भले तू देवी है, पर नारी की बुद्धि होती कहाँ है? हे देवी ! देखो, बुरा मत मानना। अब "जो है, सो है"। क्या कर सकते हैं ? हे माँ! आप महान हो, आपने तो परमात्मा को जन्म दिया है। फिर भी देखो जिसने माँ के पहले लाल को खिलाया हो, जिनदेव को, ऐसी इन्द्राणी भी विवेक खो गई। वो बार–बार प्रभू के गाल को घिस रही है और सौधर्म इन्द्र खड़ा–खड़ा निहार रहा है। वो धीरे-से कहता है, हे देवी! क्या कर रही हो ? स्वामी–स्वामी! क्या करूँ ? पूरे बदन का नीर तो पोंछ लिया है, पर प्रभू के गाल पर एक बूंद लगी हुई है, वो छूट नहीं रही है, इसलिए घिस रही हूँ। अरे देवी! तुझे मालूम होना चाहिए कि ये पानी की बूंद नहीं है। ये प्रभू के शरीर की इतनी सुन्दरता है कि तेरे मुकुट में लगा जो मणि है, वो मणि की चमक प्रभू के गाल पर आ रही है, जिसे तू पानी की बूंद कहती है।

ऐसा सुन्दर रूप प्राप्त करना है तो 'भक्तिः सुंदर रूपं'। यदि संसार में सुन्दर रूप भी प्राप्त करना है तो ज्ञानी! पर के कलेवरों को लपेट करके सुन्दर नहीं होगे। संयम,शील का पालन करो और अरहन्तों की भक्ति करो, तो अपने आप सुन्दर रूप मिलता है। इसलिये ध्यान दो–'देव-देवम् जिनं नत्वा' देवों के देव को नमस्कार किया यहाँ। क्यों किया है ? प्रभू की वन्दना करने मात्र से कर्मों की असंख्यात गुणश्रेणी निर्जरा होती है।

ज्ञानियो ! चित्त निरोग है, तो चारित्र निरोग है। जिसका चारित्र निरोग है, उसका शरीर अपने आप निरोग रहता है। और तीनों निरोग हो जाते हैं तो मोक्ष उसका उसकी मुट्ठी में है। इसलिये चित्त को स्वस्थ कीजिए। जिनके चित्त स्वस्थ नहीं हैं, उनके शरीर भी स्वस्थ नहीं हैं, और मोक्षमार्ग उनके पास नहीं है।

इसलिये मुमुक्षुओ! जब भी किसी से मिलो, ये बाद में पूछा करो कि तुम्हारे तन का स्वास्थ्य कैसा है। सबसे पहले पूछा करो कि ज्ञानी! तेरे चित्त का स्वास्थ्य कैसा है। चित्त पवित्र है, तो 80 वर्ष का वृद्ध भी चमकता मिलेगा। चित्त जिसका अस्वस्थ हो चुका है, वह 16 साल का किशोर भी बिल्ली-जैसी, उल्लू-जैसी आँखें किये मिलेगा।

जिनके चित्त अस्वस्थ होते हैं, सबसे पहले उनकी आँखें खराब होती हैं। चित्त की अस्वस्थता नहीं देखी जाती है, शरीर में बुखार है तो वैद्य नाड़ी देखते हैं। ज्ञानी ! चित्त अस्वस्थ है तो वो नाड़ी से मालूम नहीं चलेगा, वो तो आँखों से मालूम चलता है।

हृदय में विकार होगा तो उसकी श्वास बढ़ जायेगी। हृदय में विकार होगा तो आँखों की टिमकार बदल जायेगी। भयभीत होगा तो उसकी श्वास बदल जायेगी। भयभीत होगा तो उसकी आँख बदल जायेगी। प्रसन्न होगा तो उसकी श्वास बदल जायेगी, उसकी आँख बदल जायेगी।

मनीषियो ! आँख पढ़ना तो श्वान भी जानता है। स्वान अक्षर पढ़ना जाने या न जाने, लिखे अक्षर वो नहीं पढ़ पाता, पर आँख पढ़ना जानता है। जब स्वान अक्षर पढ़ना नहीं जानता, पर आँख पढ़ना जानता है, हे इन्सान! तू आँख पढ़ना नहीं जानता क्या?

प्रेम की आँखें होगी तो स्वान पूँछ हिलाकर खड़ा हो जाता है और क्रोध की आँखें होगी तो स्वान भी धीरे-से भाग जाता है। छोटा-सा बच्चा भी जानता है कि पिता जी दुलार से पुचकार रहे हैं कि डाँटना चाह रहे हैं? आँखें बताती हैं।

स्वान जैसा जीव चोर का पता लगा लेता है। सूंघता है, फिर देखके चलता है। कितना गहरा जैनदर्शन है। 'ज्ञानार्णव' ग्रन्थ में शुभचन्द्र स्वामी ने जो श्वास का वर्णन किया है स्वर विज्ञान का, वह अपने आप में अनूठा है। जैसे—जैसे साधना बढ़ती जायेगी, वैसे—वैसे श्वास मंद होती जायेगी और जैसे—जैसे विराधना बढ़ेगी, आपकी श्वास की गति बढ़ जायेगी।

जब प्रवचन में आप आनन्दित होके हिलोरें लेते हो, उस समय हाथ ले जाना नाक की ओर। और कहीं भयभीत कोई करे, आपके अंदर डर भरा हो, भय हो, कामादिक, क्रोधादिक विकार आ रहे हों, उस समय स्वयं देखना, आपकी श्वास बढ़ जायेगी। आँख के टिमकार बढ़ जायेंगे। वीतरागी जिनेन्द्रदेव को आपने, टिमकार करते देखा क्या ? नासाग्र दृष्टि है। जितना सहज,शीलस्वभावी होगा, उसकी दृष्टि और श्वास की वृत्ति शांत मिलेगी।

स्वान पहचानता है श्वास को, आँख को। आप इन्सान हो, किसी से ठगे मत जाना, किसी से छले मत जाना। व्यक्ति की श्वास देखना, व्यक्ति की आँख देखना। जिसका चित्त पवित्र होगा, उसकी श्वास भी मंद होगी और ये दो पवित्रतायें दिख रही हैं। अशुभ कर्म के उदय से शरीर में रोग आ भी जायें, पर थकान नहीं आयेगी। वह पाँच मिनट के मानसिक तनाव में आयेगी।

ये जिनवाणी आपको इसलिये समझ में आ रही है, क्योंकि आपको मालूम है कि मेरा घर व्यवस्थित है, इसलिए शान्ति से सुन रहे हो। अभी मालूम चले कि दुकान में आग लग गई है, फिर देखना अब क्या हो रहा है? एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को प्रभावित करता है कि नहीं करता है? जिसका उपादान हीन है, उसको टपकेंगे आँख से आँसू और जिसका उपादान पवित्र है, वो यों कहेगा—'होता स्वयं जगत परिणाम'। ये है पहचान आपके भीतर की। निज ध्रुव आत्मा की रक्षा करना है तो मुमुक्षुओ! मन के पर्यटन का निरोध कर लीजिये। संसार के पर्यटन से निज भगवान्-आत्मा की रक्षा करना है, तो मन के पर्यटन को वश कीजिये। गति, अगति, गत्यागति में जो परिणरमन चल रहा है, नाना योनियों में जो भ्रमण चल रहा है, वह नाना भवों के कारण नहीं चल रहा है, नाना भावों के कारण चल रहा है।

भवातीत होना है तो भी भव साथ दे देगा। मुमुक्षु भैया! इस शरीर से पूजा कर सकता है कि नहीं? इस शरीर से पाप कर सकता कि नहीं? ओ ज्ञानी! शरीर पुण्य कराता कि पाप? बहुत सारे इस तरह के बैरागी जीव हो गये हैं, वे चौबीस घण्टे शरीर को ही गाली देते रहते हैं। ये बैरागियों की भीड़ नहीं है। पण्डित जी! ये आँखें चली गई, सो ऐसे हो गया। ये हाथ चले गये, सो ऐसा हो गया। ये पैर चले गये, सो ऐसा हो गया। ये जीव हैं कि जड़ हैं?

राग धर्म है, कि द्वेष धर्म है? ज्ञानी ! दोनों धर्म हैं, परन्तु ये विभावधर्म है। दोनों धर्म नहीं हैं, क्योंकि ये स्वभाव नहीं है । न राग धर्म है, न द्वेष धर्म है। विभावधर्म है, स्वभावधर्म नहीं है। विभाव की दृष्टि से ये विभावभूत धर्म है, स्वभाव की दृष्टि से अधर्म है।

राग धर्म है, कि द्वेष धर्म है? पण्डित जी! इस बात को आपको स्वीकारना पड़ता है कि अस्त्रों से जितना मेरा धात नहीं होता है, अजगर यदि भक्षण करे तो पर्याप्य मात्र को चबा पायेगा, सिंह भक्षण करे तो शरीर मात्र को छील पायेगा। पर यदि वक्ता ने भ्रमित कर दिया, तो भव—भव को नाश करायेगा, श्रद्धा का नाश करायेगा। जितना सर्प से मत डरना, जितना कालिया नाग से भयभीत मत होना, जितना अजगर से भयभीन मत होना, सिंह से भयभीत मत होना, जहर और अग्नि से भयभीत मत होना, उतना खोटे तत्त्वज्ञान से डरना। जो प्राणी हैं, जो वस्तुयें हैं, मात्र वर्तमान के अपघात के कारण तो हो सकते हैं, लेकिन परिणामों के घात के कारण नहीं हैं। परन्तु खोटा ज्ञान जो है, मुमुक्षुओ! ये परिणामों के घात का कारण बनता है। प्रज्ञा का मिल जाना, ये महान नहीं है। इनके मिलने के साथ सम्यग्ज्ञान का मिलना, इसका नाम महान है।

प्रज्ञा का दुरुपयोग मत करना कभी। पैसे से दरिद्री हो गये तो पुनः कमा लोगे, पर सम्यक् प्रज्ञा से दरिद्री हो गये तो ज्ञानी! कब कमा पाये? अपने वैराग्य को बढ़ाइये, भाषा बदलिये। यदि राग धर्म नहीं है, तो द्वेष भी धर्म नहीं है । एक दिन मैं सोच रहा था कि हे प्रभू! मेरा भाग्य है कि जिस मुद्रा में आप निकलते थे वह मुद्रा आज मुझे प्राप्त हुई है। हे श्रमणो! निर्ग्रन्थ तपोधन मत देखना, तुम देखना हे वर्द्धमान! तुम्हारी मुद्रा। जब पिता जी ऊपर चले जाते हैं तो बेटा तस्वीर पर माला पहनाकर संतुष्ट होता है। जब पिता जी की तस्वीर को देखकर वो मन-मुदित होता है, तब हे वर्द्धमान! आप न सही, आप की मुद्रा तो मेरे पास है। जब—जब वीतरागी तपोधन नगरी में पधारें, उस समय वर्तमान के मुनि को तो निहारो-ही-निहारो, पर साथ में ये भी देखो, जब पिताजी की तस्वीर देखकर आनन्द आता है, तो तीनलोक के नाथ की तस्वीर है, ये अरहन्त की मुद्रा है। गद्गद् भाव आना चाहिये। आनंद आना चाहिए।

ये मातायें क्यों बीमार हो रही हैं ? कुछ करने को नहीं है। अरे! कम-से-कम मथानी भांजती होती। पैसा देके कसरत करवे जात,और घरों में साइकिल रखे चलावे की। अरे! कैसे तुम अज्ञानी हो? मंदिर जाओगे तो विमान/वाहन से जाते हो। कम-से-कम नंगे पैर मंदिर आओ। कपड़ा पहने हैं सोला के, अभिषेक करवे जा रहे हैं महात्मा जी और चप्पलें पहने हैं। काय को तुमाओ सोला?

अरे! विवेक से चलें। श्री जिनालय में जो चरणपादुका पहनके आते हैं, ये आगम वचन है, कि जो जिसकी (काठ की) पहनके आओगे, तो उतई जाओगे।

चार हाथ भूमि देखके आओ। अब मालूम, सोला के कपड़े पहन लिये हैं, भगवान् की पूजा करने जा रहे हैं और उठाई गाडी और चल दिये। भैया! उसके नीचे क्या—क्या आया था ? और घर—घर के बगल में तो मंदिर हैं। सुनो, नियम ले लो कि जितनी पूजा करेंगे, सोला के कपड़े में। चप्पलें शोभा नहीं देती। बोले, महाराज! आप तनिक कम कै रये। हम तो इतने ज्ञानी हैं कि आपको आहार देवे जात, सो गाड़ी पै चले जात। और कै रये, मन शुद्धि,वचन शुद्धि और काय की शुद्धि महाराज। भैया! तनक विवेक रखो।जो जीव बिना सोले के दान पूजा करता है, जो पिण्डशुद्धि रहित है, ऐसे जीव दान देते हैं, वे कुभोगभूमि में जाते हैं और यदि देव-आयु का बंध कर लिया हो तो भवनत्रिक में जाते हैं।

वो सराफ जी हैं, उसके यहाँ चांदी की चप्पल बनती है। माना कि सर्राफे में। और वे चांदी की चप्पल लाये और भैया! कौनऊ ने तुमाय सिर पे रख दई, तो तू क्या कहेगा कि वो तो चांदी की हैं? भैया! सुन, वे चाहे सोने की हों या चांदी की, कहाय तो ये कि कोई ने चप्पल.....।आगे कुछ नहीं कहने का।

ऐसे ध्यान रखो, माँ! इतने सुकुमार नहीं बनना अपने को। रसोईघर में सोले की चप्पल पहनकर नहीं जाना। पाटा रख लो आप। ठीक है? तनिक संस्कृति की रक्षा करो। संस्कृति की रक्षा होगी तो संस्कार अच्छे आयेंगे और संस्कार अच्छे आयेंगे तो परिणाम अच्छे रहेंगे और परिणाम अच्छे रहेंगे तो भाव सुधरेंगे। भाव सुधरेंगे तो भव भी सुधर जायेगा।

एकेनाकर्षन्ती श्लथयन्ती वस्तुतत्त्वमितरेण।
अन्तेन जयति जैनीनीतिर्मन्थाननेत्रमिव गोपी ॥225 पु.सि.॥

ज्ञानियो ! जब मथानी चलती है, तो एक रस्सी को खींचना पड़ता है, दूसरी को छोड़ना पड़ता है। यदि दोनों को खींचकर बैठ गये, तो चलेगी क्या ?

हे मुमुझुओ ! जब निश्चय की डोरी हो, तो व्यवहार को ढीला कर देना और व्यवहार की डोरी खींचो, तो निश्चय को ढीला कर देना। जब दोनों चलाओगे, तब मक्खन निकलता

है। ऐसे ही निश्चय, व्यवहार दोनों को लेकर चलेगा तो शुद्धात्मतत्त्व का मक्खन निकलेगा और ध्यान की अग्नि में तपायेगा, तब घृत बन पायेगा। शुद्ध पर्याय मिलेगी।

अरे! तुम खींच-खींचकर खीचला बनाओ मत। खाने का खीचला बनाओ, तप का खीचला मत बनाओ। भैया! सुनो। तत्त्व को खीचला मत बनाना। एक को गौण करना, दूसरे को प्रधान करना। ऐसा 'पुरुषार्थ सिद्धयुपाय' ग्रंथ में आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी ने लिखा है।

माँ! राग धर्म है कि द्वेष? न राग धर्म है, न द्वेष धर्म है। तो इन बेचारे भटकते त्यागियों से कहना कि चौवीस घण्टे इस शरीर को गाली मत दो। 'मुझे वैराग्य हो गया है।' हाँ, बहुत अच्छी बात है। तो क्या करें ? 'भगाओ इन सब को, मुझे सामायिक करना है।' सामायिक क्या कहलाती है ? दूसरे को भगाना सामायिक है क्या? समता से बैठना सामायिक है। आप आँखें खोले क्यों हो ? आप बैठ जाइये, आप सामायिक करिये।

बनिया के बच्चे को देखा? किसी को भगाना हो तो वो कुछ नहीं करता, झाड़ू लगाने लगता है अपनी दुकान पर। वो बनिया है। कुछ कहो तो उपद्रव नहीं हो जाये? इसलिये वो झाड़ू लगाने लगता, तो अपने आप लोग खिसकने लगते।

भैया से कहने की क्या आवश्यकता भगावे की ? बैठ जाओ, सब अपने आप भगने लग जायेंगे। कुछ लोग ऐसे हैं, जो कहते हैं कि मैं तो वैरागी हूँ। तुम वैरागी तो हो, पर इतना ध्यान रखो कि द्वेष भी धर्म नहीं है, राग भी धर्म नहीं है और आप बार—बार अपने ही शरीर को गाली दे रहे हो। इसको तुम अपना मानते ही क्यों हो जो गाली दे रहे हो?

ये पुद्गलपिण्ड है, परवस्तु है और परवस्तु पर तुम्हारा अधिकार ही क्या है ? परवस्तु है, परवस्तु पर तुम्हारा अधिकार क्यों है? ये गाली देने के लिए नहीं है, आप सँभलके रहो सँभलके। स्वयं के शरीर के प्रति भी गलत भाव आ रहे हैं, वो अशुभ ही है। जैसे : मथानी चाहे दाँये हाथ की खींचो, चाहे बाँये हाथ की, दोनों को खोओगे।

''राग-द्वेष द्वयी दीर्घं,'' दो रस्सियाँ बड़ी—बड़ी हैं। उनको खींचने से क्या होता है? मथानी चलती है। ऐसी ही मुमुक्षुओ!

राग-द्वेष द्वयी दीर्घ, नेत्राकर्षण-कर्मणा।
अज्ञानात्सुचिरं जीवः, संसाराब्धौ भ्रमत्यसौ॥11 इष्टो.॥

ऐसे ही भो ज्ञानी! तू राग-द्वेष की नौतन में फँसा रहेगा, तो संसार में मथानी-जैसा घूमता रहेगा। इस देह को गाली मत देना। आपका कोई अधिकार नहीं है। अनधिकृत चेष्टा मत कीजिये। आपको मिली है, तो इस शरीर से तू पूजा कर। कुछ अन्य नहीं। ज्ञानी! शरीर पाप नहीं करता, शरीर पुण्य नहीं करता। शरीर के माध्यम से तू पाप करता है। शरीर के माध्यम

से पुण्य से पुण्य करता है। करता जो है, उसका नाम आत्मा है। अज्ञानी की धारा है जो शरीर को दोष देते हैं और स्वयं में मस्त होते हैं। निमित्तों को दोष दे—दे करके स्वच्छंदी मत हो जाना। अपने उपादानों को भी सम्हालने की बात किया करें। आज तक क्या किया ? निमित्तों को दोष दिया है। अपने उपादानों को क्यों नहीं सम्हाला ? लड्डू को दोष दे रहा था। ज्ञानी! लड्डू रखा था, मन कर गया, सो उठाकर खा लिया। अरे ज्ञानी! लड्डू ने तुझे कब श्रीफल चढ़ाया था कि मुझे उठाकर खा जा तू? सीधा बोल कि मेरा उपादान अशुभ हो गया था, इसलिये लड्डू उठाकर खा लिया है।

बकरी को देखा? ज्ञानी! कितना ही सुंदर खिला दो, जब भी कहीं निकलती है तो इस खेत में मुँह मारती है, उस खेत की पत्ती खींचती है। बैल को देखा? हाँ। कितना ही सुंदर घास डाल देना, पर बगल के बैल की घास खाने के लिए जरूर दौड़ता है। कितना ही माँ पेट भरके खिला दे भैया! तुझे, पर जब तू होटल में खड़ा दिखे, किसी ठेले पर खड़ा मिले, तो धीरे से कहना हे बकरे! क्या कर रहा है तू ? इतना खिला—पिला कर भेजा है तुझे, तब भी तू मुँह मार रहा है। आप कितने अच्छे लोग हैं, मेरी बातें बिल्कुल बुरी नहीं लगतीं। कितने बज्र के लोग हैं, थोड़ा भी नहीं पसीजते।

ज्ञानी ! जैसे तिर्यंचों की आदत होती है इधर—उधर मुख ले जाने की, ऐसी ही ध्यान रखना, जो जीव अपनी दृष्टि को इधर—उधर ले जा रहा है, वो वर्तमान में देह से मनुष्य के शरीर में है, लेकिन वो भविष्य का पशु है। देखो, जब तक हृदय न झकझोरे, तब तक उपदेश किस बात का? भैया! वो तिर्यंच है, तिर्यंच! वर्तमान में मनुष्य के शरीर में है, पर भविष्य का तिर्यंच है जिसकी दृष्टि इधर—उधर जा रही है। आँख सँभालो। आत्मा सँभल गई है तो आँख सँभल जायेगी। आँखें आत्मा को नहीं ले जाती, आत्मा आँखों को ले जाती है। इसलिये इन्द्रियों को दोष मत देना। अगर ये आँखें न होती, तो जिनवाणी कैसे पढ़ते ? ये आँखें न होती, आपको कैसे देखते ? ये आँख न होती, तो मुनिराज कैसे चलते ? इसलिये आँखों को दोष मत दीजिये। भैया! शरीर को दोष मत देना, अपनी परिणति को दोष देना।

परिणति को सँभालिये। देह बंध का कारण नहीं, देह मोक्ष का कारण नहीं। देह की परिणति बंध या मोक्ष का कारण है। भैया! स्वेटर क्यों पहने हो ? अब घबराओ नहीं, पहने हो तो बोलना तो पड़ेगा। सर्दी बचाने के लिए नहीं। साँची कहो, राग बचाने के लिए। क्या तुम सर्दी बचा पाओगे? भैया! स्वेटर क्यों पहने हो ? क्यों पहने ये काले—काले कपड़े ? ठण्ड बचाने के लिए? अच्छा, तनिक दौड़के आओ, फिर पहने रहना ये कपड़े। मौसम बदल गया क्या ?

सुनो भैया! मैं तो आपको समझा रहा था। तू तो यूँ कह रहा कि भीतर राग नहीं है, बाहर पड़े हैं। हे ज्ञानी! भीतर गर्मी लगन लगत, सो बाहर कपड़ा उतरके फिकन लगत तुमाय। जो स्वेटर पहने हो, अप्रैल-मई के महिने में ऐसे पहने मिलोगे क्या? क्यों नहीं पहनोगे? गर्मी लगत महाराज। हे मुमुक्षु! जब गर्मी लगन लगत, सो स्वेटर फिकन लगत।

जब तुझे भोगों की गर्मी लगने लगे, तो अपने आप दिगम्बर हो जायेगा। फिर अम्बर नहीं मिलेंगे। ये झूठी कह रहे कि कपड़े ऊपर पड़े हैं, मैं भीतर से दिगम्बर हूँ। मुमुक्षु! मुझसे श्वेताम्बर की पुष्टि मत करना। जो दिगम्बर होता है, वो भीतर व बाहर से एक होता है।

इसलिये राग तो बन्ध का कारण है ही, ज्ञानी! द्वेष भी बंध का ही कारण है। इसलिए पुनः सुनो,अपने शरीर से भी द्वेष नहीं करना, पर के शरीर से भी द्वेष नहीं करना। पर से तो राग करना ही नहीं है। दोनों बातें समझो। राग देह से करोगे तो मोक्ष मिलनेवाला नहीं है। इसलिए राग—द्वेष दोनों का अभाव कीजिये। और ऐसा हो जाता है कभी-कभी लोगों के साथ कि वे समझ नहीं पाते और उनको अपने शरीर के बारे में अशुभ भाव आते हैं कि ये देह नष्ट हो जाये तो मेरा कल्याण हो जाये। अरे ज्ञानी! ये तो बताओ गन्ने की गाँठ में अंकुर आता है कि जहाँ रस निकलता है वहाँ आता है?

धन्य हो। इतना सबकुछ जानने के बाद भी चूसते किसको हो? गाँठ को। हे ज्ञानी! गाँठ में रस होतई नइयाँ। पर गाँठ को जमीन में गाढ़ दो तो गन्ना उग आता है। ऐसे ही मुमुक्षुओ! इस देह को नष्ट कर दोगे तो साधना किससे करोगे? यदि गाड़ दिया तो पुनः गन्ना उत्पन्न होता है। इस देह को ज्ञानी! तुम यूँ ही मत समझो। जैसे गाँठ को गाड़ दो, ऐसे ही शरीर को धर्म्यध्यान की भूमि में गाड़ दो तो मोक्ष के फल लगते हैं।

इसलिए शरीर को गाली मत देना आज से। पर राग मत करना। राग करोगे तो बहिरात्मा हो जाओगे।

हे ज्ञानी ! एक माँ ने दो बालकों को जन्म दिया। एक बेटा शूद्र कुल में पला, दूसरा बेटा उच्च कुल में पला। पर जन्मदेनेवाली माता शूद्र नहीं थी, माँ उच्चकुलीन थी। पर नियोग ऐसा बना कि एक बेटा शूद्र कुल में दत्तक के रूप में चला गया। दूसरा मदिरा को देखकर पाप समझता है, छूना भी पाप कहता है। एक मदिरा के पान को कहता है पुण्य उदय है।

एक शूद्र कहला रहा है और दूसरा ब्राह्मणपुत्र कहला रहा है। प्रवृत्ति से देखें तो एक शूद्र है, दूसरा ब्राह्मण है। पर जहाँ उत्पन्न हुआ है, वहाँ दोनों क्या हैं? वंश दृष्टि से दोनों एक हैं, प्रवृत्ति से भिन्न हैं। हे मुमुक्षु! शुभ—अशुभ वंश की दृष्टि से दोनों बन्ध के कारण हैं, इसलिये एक हैं, लेकिन प्रवृति के कारण भिन्न हैं।

एक में अशुभ क्रिया हो रही है, वह दुर्गति में ले जायेगी। दूसरे में शुभ क्रिया हो रही है, वह स्वर्ग में ले जायेगी। पर मोक्ष जाने के लिए दोनों को छोड़ना ही पड़ेगा। अब नाटक समयसार हो या कोई भी समयसार हो, आप तो ये बताओ कि बराबर है कि नहीं? मुमुक्षु! आप नाटक समयसार क्यों कहते हैं ? आप 'समयसार' ही कहो। 'पुण्य–पाप अधिकार' देखो। ये ही तो आदत रहत इन पण्डित जी लोगन की। इन्हें कुन्दकुन्द नहीं सूझत, काहे से कि वे पण्डित जी नहीं हते, आचार्य हते और बनारसी दास पण्डित जी उनकी जाति के भैया थे। रहो आन दो राग। हमें कुछ मतलब नईया। अब बात पक्की भओ चाहिये। बराबर? देखो, अब ये नहीं कहिओ कि महाराज ने इन्हें बदल दओ है। ये पहले से बदले हते। वो तो ऐसे हते। कबहूँ–कबहूँ का होत, जिते रेहन लगत, वैसी भाषा सोचन लगत। बेचारे सरागियों के बीच में रहत, सो राग की प्रधानता से बोलत रहत। एक बार इते का भओ? इते टौरिया–मौरिया सोई, इते टीकमगढ़ में।

एक दिना सुनवहा, मिट्टी खोदवे गओ थो। सो साथ में गधा ले गओ थो। आपको नहीं बना रहे, ध्यान रखना। अब उस पर लादके तो लायेंगे, सो एक दिन क्या हुआ कि खोदते–खोदते तनिक हो गई देर। सो उसके जितने गधे थे वे चरवे चले गये। वे इधर–उधर हो गये। इतने में हो गया अंधेरा। जो भैया थे, उसके हाथ मे था हन्टर। तो लिये और जोर से चिल्लाता आ रहा वो गधावाला कि पता नहीं कहाँ चला गया ? अंधेरी रात है, कहाँ चला गया, अंधेरी आ रही है। तो एक टोरिया पर शेर खडो थो, मेरा नाम तो ले नहीं रहा है, मैं तो सबको भयभीत करने वाला हूँ। पर अंधेरी कोई विशेष वस्तु होना चाहिए। अब शेर को न आदमी दिख रहो थो, न आदमी को शेर दिख रहो थो। पर आवाज जरूर सुनाई पड़ रही थी कि अंधेरी आ रही है। सो उसने जैसे ही अंधेरी नाम सुना, वो शेर घबरा गया। भैया! कबहूँ ऐसो भी हो जात। और उसको तनिक छाया-सी दिखी, सो उसने पकड़ा कान और मारा हन्टर। भैया! वो शेर शांत खड़ा कि कहीं अंधेरी ने पकड़ लिया मुझे। पर वो तो कान पकड़के ले आया उसे। इनता डर गया, इतना डर गया वो। तो उसने गधों के साथ रखी पोटली और ले गया। अब तो प्रतिदिन उसके मन में बैठ गया कि हमको तो अंधेरी ने.....। ये सब अंधेरी के पकड़े बैठे हैं। सब बेचारे! अंधेरी ने पकड़ लिया।

पर बात ये है पण्डित जी साहब! एक दिन उसी खदान में फिर गया और शेर को छोड़ दिया उसने वहीं गधों के बीच में। पर उस टोरिया पर, पर्वत की चोटी पर दूसरा सिंह दहाड़ मार रहा था। जैसे ही शेर ने शेर की आवाज सुनी, उसे भान हुआ, ओ! मैं सिंह, और गधे के बीच में? अपने वंश की आवाज सुनकरके उसने दहाड़ मारी जैसे ही, सब गधे भग गये। गधेड़ा भी भाग गया वो।

हे मुमुक्षुओ! आप कहाँ बैठे हो गधों की पर्याय के बीच में? हटो—हटो। तुम वो सिंह हो जो तीर्थंकर अरिहन्त देव थे। उनकी वाणी सुनो। ओ हो हो! ऐसे पण्डित जी अबैं तक नहीं कहत थे, आज भर कही है इन्होंने।

कम्ममसुहं कुसीलं, सुहकम्मं चावि जाणह सुसीलं।
कह तं होदि सुसीलं, जं संसारं पवेसेदि॥145 स.सा.॥

सुकर्म सुशील है, अशुभ कर्म कुशील है। हे ज्ञानी! व्यवहार ऐसा ही कहेगा। पर परमार्थ से वे सुशील कैसे? चाहे शुभ करो, रहोगे संसार में ही ।

सुशील तो वह है, जो संसारतीत कर दे। इस दृष्टि से भैया! शुभकर्म, अशुभकर्म जाति की अपेक्षा समान हैं, पर प्रवृत्ति की अपेक्षा से भिन्न हैं। पर जब तक आप शुभोपयोग में नहीं जा पाओ, तक तक ज्ञानी! अशुभ से बचे रहना और शुभ को करते रहना, लेकिन लक्ष्य शुद्ध पर ही रखना। ठीक है?

मालूम, इनके मन को हम बता दे रहे। हमसे सुनवो चाहत कि सीधी कहो कि शुभ करो। कैसे कह दो सीधी ? सीधी नहीं कहो। ऐसी कहो कि शुभ करो, शुद्ध पर लक्ष्य रखो, पर अशुभ बिल्कुल मत करो। ठीक है? ये आगम-वचन है। और यदि हमने एक कह दिया, तो पक्के में खीचला बना दिया फिर आपको। न राग करना, न द्वेष करना। मैं आपको स्वयं की देह से राग—द्वेष को हटाने की बात कर रहा हूँ। स्वयं की देह में भी राग—द्वेष करोगे तो अव्रत भाव है। तो पर की देह में राग द्वेष करने वाला ब्रह्म में कैसे जा सकता है?

यही कारण है कि घर—गृहस्थी का राग छोड़ना सरल है, लेकिन सबसे जटिल राग है तो देह का राग है। सब छूट जाने के बाद भी जीव शरीर के राग को नहीं छोड़ पाता। सड़ रहा है, गल रहा है, तब भी ये नहीं सोचता—कि उसका परिणमन उसमें चल रहा है। तब भी कहता है कि कोई बचा लेता, कोई वैद्य लाओ, उपचार कराओ। पर ज्ञानी! जब बचने वाला नहीं है, तो जो बचता नहीं है, उसे क्या बचाने का ? जिसके अंदर तुम रह रहे हो, उसे मत बचाओ। जो तुम हो, उसे ही बचाके रखो। ज्ञानी! इसे कौन बचा पायेगा?

जब इसे नहीं बचा पाओगे, तो बचके ही रहो । नाना योनियों में भटकने से बचना है, तो देह के राग से बचके रहो। आप लोगों को अच्छा नहीं लग रहा क्या? पता नहीं एकदम ऐसे बैठे जैसे कुछ हो गया हो। ये क्या सोच रहे आप सब ? हाँ, ठीक है, करो चिन्तन। लेकिन हताश मत होना, निराश मत होना। जब तू नेतागिरी में हताश नहीं होता, कितनी बार हारता, कितनी बार जीतता, फिर भी खड़ा हो जाता।

हे ज्ञानी! इसलिए हताश नहीं होना। पुरुषार्थ करते चलो, पुरुषार्थ करते चलो। कभी समय आयेगा, विजय अपनी होगी। अपन सिद्धशिला पर बैठेंगे। बैठोगे,बैठोगे। यदि बैठोगे, तो ज्ञानी! खड़े हो जाओ। जब तक खड़े नहीं होगे, तो बैठोगे कैसे ? प्रश्न ये है। क्यों, बैठता कौन है ? जो खड़ा होता है। अरे भैया! जगत की नीतियाँ भी धर्म से चलती हैं, आप पकड़ नहीं पाते। कोई नहीं कहता है कि आप चुनाव में बैठते हैं। चुनाव में खड़े हैं। जब चुनाव में खड़े होते हैं, तब कुर्सी पर बैठ पाते हैं।

ऐसे ही धन्य हो जैनशासन को, नमोऽस्तु शासन को। इसके ज्ञानी निर्ग्रंथ भी खड़े होते हैं। आहार भी करते, खड़े होकर करते हैं। ध्यान भी करते तो कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े होकर कर रहे हैं। जब खड़े होकर करेंगे, तब कहीं सिद्धशिला पर बैठ पायेंगे। जाओ, खड़े हो जाओ। भैया! जब तेरी शादी होने गई थी, तो वहाँ कुर्सी पर बैठा था कि नहीं? पहले तो जाके बैठ ही गये थे। अब तुम ये तो बताओ भैया! कि जब देवी तेरे गले में वरमाला डालने आयी, तब तू बैठा था कि खड़ा था? शुद्ध बोलना, गलत नहीं बोलना। बैठे थे, खड़े हो गये थे। आने पर खड़े हुये थे, कि पहलेसे खड़े हो गये थे? सुनो भैया! क्या गजब है ?

संसार की नारी से वरण करने गया, तब भी इस बेचारे को कुर्सी से खड़ा होना पड़ा, तब वरमाला पड़ी। ज्ञानी! संसार की वधू से वरण करने गया, तब भी खड़ा होना पड़ गया। जब मुक्तिवधू से वरण करेगा, तब तो ज्ञानी को खड़ा होना ही पड़ेगा। इसलिये खड़े हो जाओ। क्यों? पर्याय रही तो।

ज्ञानियो! अब हमसे न कहियो कि हमाय टीकमगढ़ को बदल दओ। आपई बदले हो, सबई मुमुक्षु हो गये और सबई की भाषा बदल गई। बोले, पर्याय रही तो। एक ज्ञानी तो कल मुस्करा रहा था, बोले, महाराज! भले आप पधारे। पहले हम लोग बहुत कम थे मुमुक्षु, अब तो आपने हमाओ पूरो टीकमगढ़ कर दओ मुमुक्षु। ऐसा कहो कि अखण्डता आ गई। पहले तुम टुकड़ों में थे, अब तुम सब एक हो गये। 'आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।' चाहे राग करें, चाहे द्वेष, बचोगे एक भी नहीं। इसलिये प्रेम से रहो। ठीक है? श्लोक निकालो। ''जो है, सो है''। अब इन लोगों को चैन सोई नहीं पड़त जब तक चार बार सुन न लें। अब दादा! जाने तो पड़े, चाहे तुम कछू कर लो, ''जो है, सो है''।

संसारे पर्यटन् जन्तुर्बहुयोनिसमाकुले।
शारीरं मानसं दुःखं, प्राप्नोति बत दारुणं ॥2॥

आचार्यप्रवर यहाँ कह रहे हैं, हे मुमुक्षु! 'दारुणं संसारे' इस घोर संसार में। जीव, 'जन्तु' प्राणी। 'आश्चर्य', खेद के साथ कह रहे हैं। खेद है। 'बहुयोनि समाकुले', बहु योनियों से

युक्त/भरेहुए संसार में पर्यटन यानि भ्रमण करता हुआ, ''शरीरं मानसं दु:खं'' शारीरिक और मानसिक दु:खों को, 'दारुणं' दारुण दु:ख को प्राप्त हो रहा है। तब भी चेत नहीं रहा है।

जितना शारीरिक दु:ख नहीं है, उतना मानसिक दु:ख है। शरीर से जो फूले–फूले दिख रहे, वे भी बेचारे भीतर से पिचके–पिचके हैं। संसार में कोई सुखी दिखाई नहीं दे रहा है।

सुखी होना चाहते हो तो सुख छोड़ दो। सुखी होना चाहते हो तो सुख छोड़ना पड़ेगा। आत्मसुख चाहते हो तो इन्द्रियसुख छोड़ना पड़ेगा। ज्ञानियो! फूंक–फूंकके चलना। भैया! मेरे मित्रो! मित्रों को भी मत मानना, परिवार को भी परिवार मत मानना। इनके साथ सम्हलके रहना। भैया मैं आपको बहुत प्रेम से मित्र कह रहा हूँ। बुन्देलखण्ड में आप निवास कर रहे हो। अपने यहाँ की कहावत पर ध्यान रखना। भैया! सुनो, जब भी आँख फूटेगी, घर के कुर्मा से ही फूटेगी, विश्वास रखना।

जितने लोगों ने उपसर्ग किया है, वे बाहर के नहीं थे। पारसनाथ का भैया था, भैया। सुकुमाल, सुकौशल, गजकुमार पर उपसर्ग करनेवाले कौन थे ? सब संबंधी थे। पाँच पाण्डवों पर उपसर्ग करनेवाले कौन थे ? मामा थे। इसलिये ज्ञानियो! इतना ध्यान रखना, जिनके साथ तुम रहते हो, इनसे थोड़ी दूरी बनाके रहना, हिल–मिलके मत रहना। सुन रहे हो न? सुन रहे हो, इसलिए सँभलके रहना। दु:खी मत होना, दु:ख से बचना। और दु:ख से बचना है तो दादा! इन भैया को भी अपना मत मानना। पर सुनो, जीवद्रव्य है, उसको गाली भी मत देना। भगवान्-आत्मा है। इतना सँभलके रहना। सुन रहे हो न? किसी से अशुभ बोलना नहीं, किसी का अशुभ सोचना नहीं। आपके बोलने से अशुभ होता नहीं है, सोचने से अशुभ होता नहीं, पर आपके सोचने और बोलने से अशुभ नियम से होता है। इतना ध्यान रखना, ज्ञानी! तेरे बोलने से किसी का अशुभ होता नहीं, तेरे सोचने से किसी का अशुभ होता नहीं, पर सोचने वाले का अशुभ नियम से होता है। और पुन: बुन्देलखण्ड में चले जाओ और कहो कि, भैया! कौओं के चिल्लाने से ढोर मरत नइयाँ। ऐसे ही कोऊ के बारे में अशुभ सोचने से अशुभ होता नहीं है और पुण्य का उदय होता है तो ज्ञानी! शमशान घाट में भी रक्षा करने वाले मिल जाते हैं। जीवन्धर कुमार से पूछो।

पुण्य क्षीण होता है तो ज्ञानी! घर में भी फाँसी लग जाती है। ईके बारे में कोऊ से नहीं पूछो, घर–घर की कथा है।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

आर्त्तध्यान दु:ख का कारण है

आर्त्तध्यानरतो मूढो, न करोत्यात्मनो हितम्।
तेनाऽसौ सुमहत् क्लेशं, परत्रेह च गच्छति ॥3॥

आर्त्तध्यान में लवलीन मूढ़-आत्मा अपना हित नहीं करता है, अत: यह संसारी प्राणी इस लोक में और परलोक में बहुत भारी दु:ख प्राप्त करता है।

॥ देशना ॥

अंतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी 'सार–समुच्चय' जी ग्रन्थ में वस्तुस्वभाव की व्याख्या करते हुए समझा रहे हैं।

यह अज्ञ प्राणी निजध्रुव आत्मा की सम्यक् सत्ता को न समझता हुआ, जो दु:खभूत है ऐसे द्रव्य में सुखानुभूति करता रहा और नाना योनियों में भ्रमण करता हुआ क्लेश को प्राप्त हो रहा है। ज्ञानी दु:ख–सुख में अंतर ही भूल गया।

दु:ख भोगते–भोगते इतना लीन हो गया, कि दु:ख–सुख में अंतर ही भूल गया। समझो ध्यान से। दु:खानुभूति को सुखानुभूति मान रहा है, सुखानुभूति में दु:खानुभूति मान रहा है। दु:खानुभूति में सुखानुभूति स्वीकार रहा है, सुखानुभूति में दु:खानिभूति स्वीकार रहा है।

इन्द्रियसुखों में सुख नहीं होता। स्वर्गों में जो उत्कृष्ट देव हैं, वे विषयसुख से शून्य होते हैं। सोलह स्वर्ग तक ही कामचेष्ठा है, कामक्रिया है।

यदि कामइन्द्रिय सुखानुभूति देती होती, तो उपरिम जाति के देवों में अधिक देवियां होनी चाहिए थीं। जबकि वहाँ कोई देवी नहीं है। देवियों का स्थान मात्र सोलह स्वर्गों तक है। उपरिम जाति के देव काम-प्रवीचार से ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण प्रवीचार से रहित होते हैं। इससे ध्वनित होता है कि इंद्रियसुख को सुखाभास समझना चाहिये। जो अशांति को उत्पन्न कराये, संक्लेशता को उत्पन्न कराये, इच्छाओं को जन्म दे और पुन: इच्छाओं की पूर्ति को उत्पन्न कराये और संताप देकर चला जाय, वो सुख कैसा ? जिसकी प्राप्ति के लिए क्लेश, जिसके प्राप्त होने पर असंतोष, और भोग के बाद पश्चात्ताप, वह सुख कैसा ? समझ रहे न? वो सुख कैसा ? एक क्षण को अपने ही पास पहुँच जाइये।

कषाय के उदय में विवेक विहीन हुआ जीव, भाषावर्गणा का प्रयोग अन्यथाभूत करके, अन्यथाभूत प्रयोग कर लेने के बाद स्वयं ऐसा लगता है कि नहीं कि मैनें अच्छा नहीं कहा? कुपित भाव से जब भाषण कर रहा था, उस समय तुझे अशुभ आस्रव तो हो ही रहा था।

पर हे ज्ञानी! उद्रेक में था, विवेक भूल गया था और विवेक के अभाव में कुछ से कुछ तू बोल पड़ा और बोलने के उपरांत मित्रता नष्ट हो चुकी है और जब ठण्डा हुआ तो तेरे पास कुछ भी नहीं था। एकमात्र पश्चाताप के अलावा और अन्य कुछ नहीं था। कैसे ? जैसे स्वयं के भवन में स्वयं आग लगा दी हो और दूर खड़ा होकर निहार रहा था। आक्रोश में परिवार को तो नष्ट कर दिया, भवन राख हो गया। आग ठण्डी होने के पहले तू ही ठण्डा हो चुका था, फिर देख रहा था कि मैंने यह क्या कर डाला। अब अकेला दिखाई दे रहा है, कोई तेरे पास नहीं है। भैया! घर की आग बुझवाने के लिए पड़ौसी आ जायेंगे, पर मन के भावों में जो आग लग रही है, उसे पड़ौसी बुझाने भी नहीं आयेगा। उसकी ताप तो तुझे झेलना ही पड़ेगी। हे प्राणी! संसार में तूने परावर्तन किया है, नाना योनियों में भ्रमण किया है, उसका हेतु क्या था ?

वीतराग, अहिंसा धर्म को न समझने के कारण, सम्यक् विचार के अभाव में ये भ्रमण किया है। पूर्व निर्णय वहाँ पहुँचता है जब पर सम्बन्धियों को भीतर से अपना स्वीकार लेता है तो सारे अनर्थ वहाँ से प्रारम्भ होते हैं। संसार के बन्धुओं को भीतर से स्वयं का समझ लेता है, काषायिक भाव को स्वयं की वस्तु मान लेता है, वहाँ से सारे कष्ट प्रारम्भ होते हैं।

पहले अपने आप की स्वतंत्रता को पहचान ले। किस–किस के क्लेशों को देखेगा ? प्रत्येक जीव को जो क्लेश हो रहे, वे स्व-कर्माधीन हैं कि पर-कर्माधीन हैं? यदि स्वकर्माधीन है, तो वह तो तू अपने कर्म के अधीन हुआ भोग रहा है, फिर परिणाम खराब करके अपने वर्तमान के सुख को क्यों खो रहा है ?

स्वकर्माधीन है, स्वकर्माधीन है, सुनाई पड़ रहा है न? हम पर के प्रति चिन्ता तो कर पायेंगे, पर के प्रति चिन्तन तो कर पायेंगे, पर विश्वास रखना, आप पर की चिन्ता को मिटा नहीं पायेंगे। आप पर को निहार करके उस पर चिन्तन भी कर सकते हो, चिन्ता भी कर सकते हो, लेकिन पर की चिन्ता से ज्ञानी! अपनी चिन्ता को समाप्त नहीं कर पाओगे और पर की चिन्ता से पर की चिन्ता को भी समाप्त नहीं कर पाओगे।

क्षयोपशम स्वाधीन है। ''नाना जीवः नाना कम्मं''। नाना जीव हैं, नाना कर्म हैं। सबके अपने–अपने क्षयोपशम हैं। अपने–अपने क्षयोपशम से परिणमन होता है, पर के क्षयोपशम

से परिणन होता नहीं। वस्तुस्वभाव को निहारो। मैं कहने मात्र का परिणामी हूँ। मैं अपने परिणमन में ही परिणमन कर रहा हूँ। यदि आपके सोचने समझने की प्रज्ञा होगी, आप जो ज्ञानी बन रहे हो यहाँ बैठके, अपने ज्ञान से ही ज्ञानी बन रहे हो, मेरे ज्ञान से ज्ञानी नहीं बन रहे हो। गुरु के ज्ञान से शिष्य ज्ञानी बनता हो तो ज्ञानी गुरु का ज्ञान खाली हो जायेगा। गुरु के ज्ञान से शिष्य ज्ञानी नहीं बनता है। गुरु निमित्त हो सकता है, परन्तु ज्ञान का उपादान कोई है तो शिष्य का स्वयं का ही परिणमन है। स्वतंत्रता का अनुभव कीजिये। आप अपने बेटों को हिस्सा तो दे सकते हो करोड़ों का, पर करोड़पति बनाके रख नहीं सकते हो। हे पिता! जरा ध्यान से सुनो। आप सूख रहे हो बेटों के राग में, कि मेरे बेटों का क्या होगा ? क्या होगा ? ज्ञानी! व्यर्थ का सूखना बन्द करो। जब आप के पिता जी थे तो आप के बारे में सोचते थे कि उनका क्या होगा ? लेकिन उनके जाने के बाद आप जी रहे हो कि नहीं? जी रहे हो। आपके जाने के बाद वे भी जीना जानते हैं। पिता जी के जाने के बाद आप जी रहे कि नहीं जी रहे हो? यदि जी रहे हो तो आप तनावमुक्त/टैंशन फ्री हो जाओ। ज्ञानी! चार व्यक्ति हों, आप गिर जायें, तो उठा लेंगे। आपको लगता है कि वो उठ नहीं पायेगा। पर विश्वास रखना, जो गिरा होता है, वह स्वयं तड़पता है, अपने आप उठता है। काला कीड़ा भी उलटा हो जाता है, तो वो भी पैर फड़—फड़ाकरके सीधा हो जाता है। जब असंज्ञी कीड़ा उलटे से सीधा हो सकता है, तो क्या तुम्हारी संतान संज्ञी होकरके भी अपने भाग्य के सहारे नहीं जी पायेगी? इसलिए टेंशनफ्री हो जाओ, तनावमुक्त हो जाओ। मैं जगत का कर्ता नहीं हूँ, जगत मेरा कर्ता नहीं है।

भगवान् की भक्ति कैसे करें ? भगवान् की आराधना कैसे करें ? इस बात को तो आप जान रहे हो। पर भगवान् बने कैसे हैं, इस बात को नहीं जान रहे हो। भगवान् की भक्ति कैसे करें ? आराधना कैसे करें ? इस बात को आप बहुत अच्छे से जानते हो, पर विश्वास रखना, भगवान् कैसे बने हैं, इस बात को भी जानो। भगवान् जो बने हैं, पूर्व में आप-जैसी भक्ति किये हैं। पर मध्य में ही उनकी भक्ति विलीन हो गई और ज्ञानी! भगवान् की भक्ति में लीन हो गया कषाय का उपशमन करके। ज्ञानियो! पहले परिवार का राग छोड़ा, धन का राग छोड़ा, फिर भगवान् का भी राग छोड़ा जिसने, वही भगवान् बना है। पहले पाप का राग छोड़िये। पाप का राग छोड़ने के उपरान्त जब परमात्मा का राग छूटता है, तभी परमात्मा बनता है। जब परमात्मा का राग परमात्मा नहीं बनने देगा, तो मुमुक्षुओ! पापों का राग परमात्मा कैसे बनायेगा ? छोड़ना पड़ेगा। परमात्मा का राग भी छोड़ना पड़ेगा। ये भाषा पुरानी हो चुकी है कि राग छूट जायेगा, राग छूट जायेगा। ऐसा कहते—कहते संतुष्ट होकर बैठा है।

कैसे छूटेगा राग, ये बताओ। 'राग छूट जायेगा, राग छूट जायेगा' ये बातें बहुत पुरानी हो गई हैं। राग छूट जाने के पक्ष में हमारे पण्डित जी ने पूरी पर्याय ही निकाल दी, पर आज तक राग छूटा कहाँ है? राग छूट नहीं जायेगा, भैया! राग छोड़ना पड़ेगा। कैसे ? ये प्रश्न करें कि कैसे छोड़ना पड़ेगा ? ज्ञानी! घर के अशुभ राग से बचकरके ही तू मंदिर आता है। अशुभ राग से बचकरके न आता होता, छोड़के न आता होता, तो कह देता कि घर छूट जायेगा, मंदिर पहुँच जाऊँगा। तू मन्दिर पहुँचा है कि पहुँच जाऊँगा?

मुमुक्षु! बुद्धिपूर्वक आप मंदिर आये हो। बुद्धिपूर्वक घर की सीढ़ी से उतरे हो और मन्दिर की सीढ़ी चढ़े हो। अबुद्धिपूर्वक चढ़े कि बुद्धिपूर्वक चढ़े हो? बुद्धिपूर्वक चढ़े हो न? जैसे श्री जिनालय की सीढ़ी पर बुद्धिपूर्वक आपने पाँव रखा है, ऐसे ही तत्त्वज्ञानीजीव तत्त्व का निर्णय बुद्धिपूर्वक करता है। दूसरा शुभोपयोग है, तीसरा अशुभोपयोग है। एक शुद्धोपयोग है। तीनों उपयोग मस्तिष्क में झलकना चाहिये। शुभोपयोग की पर्याय भी दिखना चाहिये और शुद्धोपयोग की पर्याय भी दिखना चाहिए और तीनों पर्याय के फल भी नजर आना चाहिये। अशुभ उपयोग का फल नरक, तिर्यंच, दुर्गति है। शुभ–अशुभ की मध्यम दशा मनुष्य-गति है। शुद्धोपयोग का फल सिद्धशिला और शुभउपयोग का फल स्वर्ग है। तीनों उपयोग के फल जब दिखाई देंगे, तब फल देखकरके फिर परिणाम देखियेगा कि वर्तमान में मेरे कौन-से परिणाम चल रहे हैं?

अशुभ तो नहीं है, पाँच पाप में से कोई पाप तो नहीं है? ओ मुमुक्षुओ! क्या पाँच पाप के परिणाम ही अशुभ हैं ? और भी कोई परिणाम अशुभ है? भैया! तू झूठ नहीं बोलता है, हिंसा नहीं करता है, चोरी नहीं करता है, कुशील सेवन नहीं करता है। पाँच पाप का तूने त्याग कर दिया है। अब तो तेरे शुभ ही परिणाम रहेंगे न? क्योंकि तू तो पाँच पाप का त्याग कर चुका है। अरे मुमुक्षु! अभी तो पाँच पाप का त्याग किया है, वह द्रव्यभूत पाप का तो त्याग कर दिया है, पर पच्चीस कषायों में से त्याग किया कि नहीं किया है?

इतना तो ऊपर उठ गया कि पाँच पाप का त्याग कर दिया जीव ने, लेकिन अभी पच्चीस कषाय और हैं। क्रोध की भूमिका क्या चल रही है ? क्रोध, मान, माया, लोभ इन चार कषायों की ओर निहारिये। भगवान् से पूछने मत जाना, साधु से पूछने मत जाना। अज्ञानता का व्यवहार मत करना। साधु से पूछने जा रहे भैया, महाराज! मेरी क्या गति होगी ? वो बेचारा अपनी गति सुधारने में लगा है, लेकिन उसको आकर अपनी गति दिखा दी। कैसे लोग होते हैं? घर की, चूल्हे, चक्की की, घनौची की बातें सुना रहे महाराज को जाकर। स्वतंत्रता में जियो, स्वतंत्रता जियो। कुछ नहीं कहने का।

मेरी कौन-सी गति होगी ? गति पूछ रहे हो, मति क्यों नहीं पूछ रहे हो ?

भैया कहता है कि महाराज! कौन-सी गति होगी हमारी। हे ज्ञानी! अपने से पूछ कि मति कौन-सी चल रही है तेरी ? मति से गति बनती है। वर्तमान की मति तेरे हाथ में है, भविष्य की गति तेरे हाथ में नहीं है।

इसलिये पुनः सुनिये, पाँच पाप के त्याग करने के बाद भी अशुभोपयोग हो सकता है। पापस्थान को छोड़करके, पुण्यस्थान पर बैठकर के भी अशुभोपयोग हो सकता है। जिनालय में बैठकरके भी अशुभ-उपयोग हो सकता है। काययोग जिनालय में था, मनयोग वेश्यालय में घूम रहा था। उसका जिनालय में बैठने से क्या हुआ ? काय योग प्रशस्त होने पर भी मनयोग अप्रशस्त हो सकता है। इसलिये भावों की धारा पर भी जियो। शरीर को सम्हालने के बाद वचन सम्हालना चाहिये और वचन सम्हालने के बाद मन के सम्हालने में लग जाना चाहिये। शरीर सम्हालने के बाद, शरीर तो भैया! आप मेरे पास लेकर आ गये। अब वचनों को और ठीक कर लो। वचन भी ठीक हो गये, अब पुरुषार्थ मन पर कीजिये।

पहले शरीर को सम्हालिये, अनाचार तो नहीं हुआ शरीर के सम्हालने में। भैया! पानी तो वृक्ष की जड़ में जाता है और पुष्प ऊपर डालियों पर होते हैं। बस, मुमुक्षु! जिसकी मन की जड़ पर अशुभ के कीड़े लगे हुए हैं, उसके चेहरे भी अशुभ दिखना प्रारम्भ हो जायेंगे और अगली पर्याय फलभूत होगी। कितना ही काला आदमी होगा, कितना ही गोरा आदमी होगा, मन काला है तो गोरा का चेहरा भी काला हो जाता है और काले का महा काला दिखने लगता है। विश्वास मानिये। वर्तमान की पर्याय में जो कालापन झलक रहा है, ये तो पुरुष है, पुरुष। उसको शरीर विकृत दिखाई दे रहा है। जिसको क्रोध आ रहा है, चेहरा लाल हो रहा है, जिसको मान सता रहा है, उसका शरीर काँप रहा है। विकार सता रहे हैं तो श्वासें—उच्छवास लम्बी खींच रहा है। ये फल नहीं हैं, पुष्प हैं। फल तो लगने वाले हैं।

वर्तमान के चेहरे की विकृति पुष्प के रूप में है, भैया! भविष्य में जो दुर्गति होगी, वह इसका फल होगा। बिना पुष्प उत्पत्ति हुए माँ भी बेटे को जन्म नहीं देती और बिना पुष्प उत्पत्ति हुए वृक्ष भी फल नहीं देते। तो ज्ञानी! कर्म भी पुष्प उत्पत्ति के बिना फल नहीं देते। पृथ्वी भी पुष्पवती होती है। आषाढ़ के महीना में पृथ्वी पुष्पवती हो जाती है तो ज्ञानी! कितनी खेती को फल रूप में देती है। जननी पुष्पवती होने पर सन्तान देती है, ऐसे ही कर्म-पुष्प है, तो कर्म-फल है। बिना नोकर्म के कर्म का बन्ध होता नहीं। स्त्रियों जैसे बाल रखोगे, स्त्रियों जैसे भाषण करोगे, स्त्रियों जैसे वस्त्र पहनोगे, स्त्रियों से झगड़ा करोगे, तो भविष्य के नारी निश्चित होगे। आप चिन्ता मत करना। ये भविष्य की नारियाँ हैं।

ये विशुद्धसागर नहीं बोल रहे हैं, सिद्धांतचक्रवर्ती नेमिचंद्र स्वामी बोल रहे हैं। भैया! बात ऐसी है कि एक समय में एक ही चर्चा होती है। इस गम्भीर विषय को समझ लो या फिर पण्डित जी की पूजा–पाठ को समझ लो। तो वो तो उन से ही समझ लेना आज। इस गम्भीर बात को भी समझो। अष्टद्रव्य से भगवान् की पूजा किया करो। जो भगवान् की पूजा अष्टद्रव्य से नहीं करता, वो पापी होता है। अब बताओ भैया! पूजा करते कि नहीं? तो पापी हो आप ? अरे! हँसने का क्या विषय है ? एक को ही क्यों पकड़ रहे हो? बोलो महाराज! सीधा–सीधा पापी क्यों बोल दिया? तनिक घुमाके बोल देते? क्यों बोलूँ? ज्ञानी! तुझे शरीर से राग है, इसलिये सुबह से स्नान करके नहीं जा सकता। ज्ञानी गप्पें करते रहेगा, पेपर पढ़ता रहेगा, लेकिन जिनवाणी खोलके नहीं बैठ पायेंगे।

''प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा॥13 त.सू.॥

जहाँ प्रमाद है, वहाँ हिंसा है। ज्ञानी! तूने अपने शुभ भावों का घात किया है, इसलिये हिंसक है। और अष्टद्रव्य घर से सजाकर ले जाता तो एक थाली में कम–से–कम सौ–पचास रुपया तो लगते, उतना द्रव्य का व्यय होता तो लोभ कषाय छूटती। लोभकषाय के वश होकर पूजा नहीं कर रहा है, इसलिये तू पापी है। ये भी मैं नहीं कह रहा हूँ। मैं तो कुछ कहता ही नहीं। ये भी आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं। भैया! कौन बोल रहा है? इसलिये श्रावक वही है, जो प्रात:काल दान–पूजा करता है। वह श्रावक नहीं है जो दान–पूजन नहीं करता हो। मुनि वही है, जो ध्यान अध्ययन करता है। जो ध्यान–अध्ययन नहीं करता, वह मुनि 'मुनि' नहीं है।

दाणं पूया मुक्खं सावयधम्मे, ण सावया तेण विणा।
झाणाज्झयणं मुक्खं, जइधम्मे तं विणा तहा सो वि॥ 11 र.सा.॥

दान करना, पूजन करना श्रावक का मुख्य धर्म है और ध्यान करना, अध्ययन करना मुनि का मुख्य धर्म है।

अब अपने विषय की ओर आइये। इस जीव का कहना है कि छूट जायेगा। भैया! छूट नहीं जायेगा। तो क्या करें? बहुत पुरानी भाषा हो चुकी है। इसके रहते–रहते लोग अपने आप को भूल गये।

जब ये जीव अशुभ से बचने के लिए, घर की सीढ़ी से उतर कर मन्दिर की सीढ़ी पर चढ़ता है बुद्धिपूर्वक, ऐसे ही जीव जब शुभ–उपयोग में लीन होते हैं। शुभ–उपयोग की सत्ता में शुद्धोपयोग होता नहीं। एक समय में एक वस्तु में दो पर्याय एकरूप में एक भाव की होती नहीं।

एकस्मिन् द्रव्ये क्रमभाविनः परिणामाः पर्यायाः आत्मनि हर्षविषादादिवत्।। प.मु.सू.।।

एक ही समय में हर्ष परिणाम व विषाद परिणाम दिखा सकते हैं क्या आप? एक ही काल में, एक ही क्षण में, इस चेहरे पर रो के बताओ, हँस के बताओ? नहीं हो सकते न? हाँ, बस, यही सिद्धांत है, यही जिनवाणी है। लोग समझ नहीं रहे जिनवाणी को।

एक ही द्रव्य में, जो क्रमभावी परिणाम है, उसका नाम पर्याय है। कैसे ? हर्ष और विषाद परिणाम एकसाथ नहीं होंगे। जब विषाद परिणाम होंगे उस समय हर्ष परिणाम नहीं होंगे, पर आत्मा वही होगी। हर्ष के काल में विषाद नहीं, विषाद के काल में हर्ष नहीं। एक समय में जब शुभ उपयोग होगा, उस समय अशुभ-उपयोग नहीं होगा। शुभ—अशुभ में कोई भी एक होगा, उस समय शुद्धोपयोग भी नहीं होगा।शुभ-उपयोग का व्यय होगा, तभी शुद्धोपयोग प्रकट होगा। इसलिये ज्ञानियो! तुम एकसाथ रोये—हँसे न, पर चिल्लाये, जोर से बोले। जोर से बोले उस समय हँसता भी दिखे, रोता भी दिखे, ऐसा हो सकता है क्या ? हे ज्ञानी! जब विभाव पर्याय तेरी युगपत नहीं हो रही है, तो स्वभाव पर्याय में विभाव कैसे ?

माँ! रोटी बनाना जानती हो क्या ? लोई रोटी है, कि पूड़ी है, कि पराठा है? हाँ, सब मुमुक्षुजीव हो चुके हैं। ज्ञानी! ककड़ी, मटर, सारी सामग्री एकसाथ रखी हुई थी, पर जिसको खरबूजा खाना है, उसको क्या दिखता है ? सबकुछ होने के उपरान्त भी ज्ञाता सबका है, दृष्टा सबका है, परन्तु भोक्ता खरबूजे मात्रा का है। ज्ञानी! शेष में, किसी में हेय दृष्टि या उपेक्षा दृष्टि और उपादेयदृष्टि खरबूजा मात्र में। सबकुछ होने के उपरान्त भी रास्ते में जब जाता है बाजार में, सारी सामग्री दिख रही है, पर देख नहीं रहा है। उसका लक्ष्य है मात्र खरबूजा।

हे ज्ञानी! जब एक खरबूजे के प्रति इतना राग, कि मात्र खरबूजा ही दिखता है, ऐसे ही जब खरबूजे पर दृष्टि लेकर चलता है, तो बाजार में सबकुछ होने के बाद तू सबसे भिन्न करके खरीदता है। किसको ? खरबूजे को। ऐसे ही तत्त्वज्ञानी जीवद्रव्य उपयोग में जब शुद्धोपयोग को उपादेयभूत मानता है, तब शुभ—अशुभ इन पर उपेक्षा भाव रखता है, शुद्ध पर दृष्टि रखता है, तभी शुद्धोपयोग को प्राप्त कर पायेगा। जब तक प्राप्ति के भाव नहीं लायेगा, तो प्राप्त क्या कर पायेगा ? आप तो बैठ गये हो 'भज अरिहन्तं' शुद्धोपयोग हो जायेगा। अरे ज्ञानी! जैसे तू अरहन्त की आराधना कर रहा था, पहले आपको शुद्धोपयोग की भावना भाना पड़ेगी, तभी शुद्धोपयोग में प्रवेश कर पायगा।

हे ज्ञानी! सोने के आभूषण चाहिये हैं तुझे, तो स्वर्ण धातु खरीदेगा कि लौह खरीदेगा? स्वर्ण आभूषण चाहिये तो सोने की ही द्रव्य/धातु खरीदना पड़ेगी। शुद्धोपयोग चाहिये है तो शुद्धोपयोग की भावना शुभ-उपयोग में ही बनाना पड़ेगी।

ज्ञानी! जैसे सोने को खरीदने के लिए मुद्रा चाहिए, ऐसे ही भावों के लिए, भाव करने के लिए तेरे ही परिणाम चाहिये।

कुछ ऐसा गुट प्रारम्भ हो रहा है जो एकांत से प्रथम गुणस्थान में शुभउपयोग मानता ही नहीं है। पर प्रथम गुणस्थान में भी ज्ञानी! शुभउपयोग होता है। उपचार से, भद्र परिणाम, भद्र ध्यान। इसलिये जो जीव प्रथम गुणस्थान में बैठा हुआ है, उसने जैनेश्वरी दीक्षा ली, सीधे सप्तम गुणस्थान में जा रहा है। वह सप्तम गुणस्थान में शुद्धोपयोग में लीन हो रहा है। तो प्रथम अशुभ-उपयोग की पर्याय का नाश हुआ है और शुद्धोपयोग में प्रवेश हुआ है। ये करणानुयोग है।

हाँ, जहाँ तू कह जाता है कि प्रथम गुणस्थान में शुभोपयोग नहीं होता है, उसकी दृष्टि दूसरी है। ज्ञानी! कुमति, कुश्रुत ज्ञान अशुभ ही हैं। लक्षण की दृष्टि से उपयोग शुभ नहीं है, परन्तु पुण्यरूप परिणामों की दृष्टि से मिथ्यादृष्टि जीव का शुभोपयोग का परिणमन असुर पर्याय में ले जाता है और सम्यग्दृष्टि जीव का शुभोपयोग का परिणमन सुर पर्याय में ले जाता है।

इस गाथा की जब टीका की है आचार्य जयसेन स्वामी, अमृतचन्द्र स्वामी ने 'प्रवचनसार' जी में, वहाँ उन्होंने स्पष्ट कहा है ये 'सुरासुरों'। जो सुर—असुरों के द्वारा वंदनीय हैं, वे परमगुरु वर्द्धमान महावीर स्वामी। सुर कौन होता है ? असुर कौन होता है ? बिना शुभउपयोग के मनुष्य या देवायु का आस्रव नहीं होता। बिना शुभउपयोग के देवायु का आस्रव नहीं होता है। असुर भी बनेगा तो शुभ उपयोग से, सुर भी बनेगा तो शुभउपयोग से। तो कैसे ?

जो जीव मिथ्यात्व के साथ शुभउपयोग कर रहा है, पुण्यक्रिया, वह असुर बनेगा। जो सम्यक् के साथ पुण्यक्रिया कर रहा है शुभ की, वह सुर बनेगा। इसलिये भैया! सम्हल कर जीना। आप जिनवाणी सुन रहे हो, रोज पूजन-विधान करते हो। परिणामों की विशुद्धि के साथ करना, किंचित् भी अशुद्धि मत लाना। और कभी क्रिया गौण भी हो, तो हो जाने देना। भैया! कोई शांतिधारा में हाथ भी न लगाने दे, तब भी विकल्प मत करना। खड़े होकर, हाथ जोड़कर देख लेना, परन्तु शांतिधारा के हाथ लगाने के राग में शांति भंग मत कर लेना।

घर में शांति भंग हो तो परमात्मा के चरणों में उस कर्म को धो जाओगे। और परमात्मा के चरणों में ही शांति भंग हो गई, तो मुमुक्षु! कहाँ धोने जाओगे?

अन्यक्षेत्रे कृतं पापं , पुण्यक्षेत्रे विनश्यति।
पुण्यक्षेत्रे कृतं पापं , वज्रलेपो भविष्यति॥

अन्य क्षेत्र में किया पाप तो पुण्यक्षेत्र में धुल जायेगा और पुण्यक्षेत्र में कि गया पाप वज्रलेप हो जायेगा। भैया! अज्ञानता में तूने पाप किये तो सद्ज्ञान से छूट सकते हैं। यदि जान–जानके किये, फिर क्या करेगा? अब मैं तुमसे कहता हूँ भैया! पानी छान–छान कर पीना, तो तू पानी छान कर पीता है कि नहीं? भैया! कब छाना ? विलछानी का क्या किया? इनती–सी बात बताओ, फिर आगे चलते हैं।

भैया! पानी तो छान लिया, परम्परा का निर्वाह कर लिया। कड़े वाली बल्टियाँ कितने घरों में हैं? जरा हाथ ऊपर तो करना। कुआँ नहीं है तो इन मुनियों को कैसे बुलाया आपने ?

जैसे मंदिर के कुआँ से मुनिसंधों की चर्या कराते हो, वैसे ही व्रतियों को भी अपनी चर्या करनी चाहिये। सुनो ज्ञानी! कुए का ही पानी चलाने का , वो बोरिंग–बारिंग का पानी नहीं चलाने का ।

मन शुद्धि, वचन शुद्धि। भैया! काय की शुद्धि जब मार–मार के तो तुम जीव को ले के आ रहे हो? पण्डित जी! वो जेट से ,हेण्डपम्प से खींचा, प्राणी तो वहीं चले गये, अब तुम छान किसको रहे हो ? इससे भैया! हमसे श्रावकाचार की व्याख्या मत करवाओ। आप लोग जी नहीं पायेंगे। क्योंकि जैसा इन्होंने श्रावकाचार समझा है, वो श्रावकाचार वैसा नहीं है।

बिना समयसार के श्रावकाचार होता ही नहीं है। और आप लोग श्रावकाचार को समझ ही नहीं रहे हो। जिसको समयसार दृष्टि होगी, वही श्रावकाचार का पालन कर सकेगा, वही मूलाचार का पालन कर पायेगा। क्यों ?

पानी छानने की बात करें, भैया! तूने जो पानी छाना, उस पानी छानने का उद्देश्य क्या था ? स्वस्थ होना था, कि अहिंसा था? हे मुमुक्षु! इन्हें मालूम होना चाहिये कि जो पानी में जीव हैं, वो भी भगवान्–आत्मा हैं। आज पानी में विलखते दिख रहे हैं। हे प्रभू! भावी भगवान्! जब तू सिद्धालय में बैठेगा, तो हाथ जोड़ूँगा। आज मैं तेरी कौन–सी पर्याय देख रहा हूँ? जिसको पानी की जिवानी में भगवान्! दिखेगा, वही सम्मान से उसकी रक्षा कर पायेगा। आप तो चाहते हो कि महाराज! सरल करो, सरल करो, इनको सरल करो।

इनका समयसार हम समझते हैं। बोले, महाराज! मुनि बनने के भाव हैं। गर्मी में दो बार पानी की छूट दिला देना और सर्दियों में कम्बल दिला देना। मैं कहूँगा, ज्ञानी! घर में बैठ। फिर मुनि बचा कहाँ, मुनि बनने की आवश्यकता क्या ? अतः तू देख रहा था, वही पानी तेरी देवी घर में भर रही थी।

आ हा हा..... पियो पानी, पियो पानी सब मल के, और रिस–रिस के स्वाद भी जा रहा था। ओ हो हो..... स्वाद भी जा रहा था। कम-से-कम नल का पानी छोड़ दो, और-कछु मत करो। ये श्रावकाचार है। ज्ञानी! ईसे हम कुछ नहीं कहत आप औरन से, क्योंकि तुम ओरे पालन करत नाईया।

पहली प्रतिमा, दूसरी प्रतिमा धारण करते ही सण्डास में शौच जाने का त्याग करना चाहिये, फिर प्रतिमा धारण करना चाहिये। त्रसहिंसा के त्यागी हो और गर्म–उष्ण मल तेरा उन जीवों पर गिर रहा है नीचे, उनकी हिंसा हो रही है।

भैया वो नमक नहीं खाते समुद्र का। कबहुँ–कबहुँ। अच्छा, सब जगह अपने घर का नमक लेकर जाते हो? अच्छा, हे ज्ञानी! घर के नमक का तात्पर्य बाजार से लेकर आ जाये, आपके घर का हो जाये, वो नहीं कह रहा हूँ। सेंधा नमक। जो समुद्र का नमक खा रहे हैं, वे जीव तो माँस के पिण्ड चबा रहे हैं।

नाना योनियों में भटको। भैया! अब तो वृद्ध हो गये हो, मत जाना बफर में। घर में ही अफर जाना। लेकिन ज्ञानी! समझो, जितने उस समुद्र में कीड़े होते हैं, बड़े–बड़े मगरमच्छ आदि उन सबको। उन क्यारियों में हड्डी–मड्डी गल कर सब उसी का क्षार बनता है। वही तो नमक है खार। और बड़े प्रेम से। बिना नमक के तो भोजन ही नहीं जाता है। सड़ी सी सामग्री को खाने के लिए इतना मचलता है। और सच्चा जैनी बाजार का घी तो खा नहीं सकता है। घर की आठ दिन की मलाई तो बना करके खा सकते हैं। हे माँ! घर में, नगर में साधु आये तो सूखा भोजन करा देना, लेकिन आठ दिन की मलाई निकाल–निकाल कर घी मत खिलाना। ये जिस जाति का घृत निकालोगे, जिस प्राणी का होगा, गाय का होगा तो गाय, भैंस का होगा तो भैंस जाति के पंचेन्द्रिय सम्मूर्च्छन जीव उसमें प्रतिक्षण उत्पन्न हो कर मर रहे हैं। वो जीवों का पिण्ड है।

इसलिये आप कहो दो–तीन दिन का निकाल लें, तब भी पिण्ड ही है। ''अठपहरा'' के अलावा सब माँसपिण्ड है। कम-से-कम जानो तो, कि सब माँस का पिण्ड है। और ऐसा करोगे, फिर कहाँ जाओगे ?

नाना योनियों में भटकोगे। फिर शरीरिक और मानसिक दु:ख प्राप्त करोगे। जो पर को पीड़ा मन से दे रहे थे, वे मानसिक दु:खी होंगे। जो पर को पीड़ा शरीर से दे रहे थे, वे शारीरिक दु:खी होंगे और जो पर को पीड़ा वचनों से दे रहे थे, वे वाचनिक दु:खी होंगे।

इसलिये भैया! बड़े सम्हलके रहना आज से। यदि एक घण्टे पूजा करो, तो पाँच मिनट जाप में देना, पन्द्रह मिनट स्वाध्याय करना और पाँच मिनट और निकालना वो मात्र इसलिये देना–

सिद्धोहं सुद्धोहं अणंतणाणाइसमिद्धो हं।
देह पमाणो णिच्चो असंख्यदेसो अमुत्तोय॥ तत्त्वसार॥

धारा बदली कि नहीं बदली? जब तुमको स्वभाव–भाव का भास ही नहीं है, तो शुद्धोपयोग में कैसे जायेंगे? स्वभाव–भाव का बोध होना चाहिये कि नहीं? शुभ–अध्यात्म भावनारूप चिन्तन नहीं चलेगा तब भैया! बिना साधन के साध्य की सिद्धि होती नहीं है। माँ को उसी आटे से यदि बालूशाही बनाना है, तो उसके हाथ बदल जाते हैं। पूड़ी बनाना है तो हाथ बदल जाते हैं। रोटी बनाना है, तो हाथ बदल जाते हैं। बदलता कि नहीं, माँ? बदलता है। ये हाथ बदल रहा है कि भाव बदल रहे हैं? भाव बदल रहे हैं। जैसे माँ के हाथ बदलते हैं, भाव बदलते हैं। सो जैसे जिसको अपने भाव बदलवाना है, तो भाव बदलिये और शरीर व मन की क्रिया को व्यवस्थित कीजिए।

पुरुषार्थ करो, पुरुषार्थ करो, पुरुषार्थ करो, बार–बार पुरुषार्थ करो। भैया! ज्ञानी धर्म करते–करते अधर्म कर लेता है। जब पलक ऊपर गयी थी, तब धर्म कर रहा था। और नीचे पलक आते–आते अधर्म कर बैठा। भैया लोग! समझ में आ रहा है? नेत्र का पलक ऊपर गया तो धर्म कर रहा था और पलक नीचे आने के पहले अधर्म हो गया।

तीर्थंकर जिनेन्द्र की प्रतिमा का अवलोकन कर रहा था जब ऊपर पलक गया और नीचे कोई पुरुष बैठा था, तो तुम कब आ गये? हे पापी! तीनलोक के नाथ के चरणों में आकर तू पुरुष को देख रहा है, परमात्मा को भूल रहा है। ये फोन की डिबिया क्या आ गई, इनने तो नाश ही कर दिया। उधर पूजा करने लग गया, उधर बजने लग गई। पूजा भंग हो गई, घंटी सुनने लग गया। ऐसा भागा, ऐसा भागा, कि वहाँ से भागा, बाहर आ कर खड़ा हो गया। पर मुझे मालूम नहीं था, दूसरी घंटी और बज गई। फोन की घंटी ने भगवान के द्वारे से बाहर भगा दिया और जैसे ही भगवान के द्वारे से बाहर भगा, यमराज की घंटी बजी, ऊपर चला गया। कम-से-कम मोबाइल लेकरके न जाता, ऊपर जाता तो भगवान के चरणों में तो जाता। ज्ञानी! भगवान के चरणों से बाहर भाग कर गया। कितने लोग धर्मात्मा हैं यहाँ जो भगवान के दरबार में मोबाइल लेकर नहीं आयेंगे?

हे धर्मात्मा जीव! जब निमित्त ही नहीं आयेंगे, तो क्यों टेन्शन पालो ? भैया! तकलीफ है, भैया! तकलीफ है, कह रहा है। आफ कर दो तो तकलीफ नहीं है। भैया! जब तू पूजन करने खड़ा हुआ भीड़—भाड़ में और वो गिर गया अथवा कोई निकाल ले गया, अब बताओ तू पूजा करेगा कि मोबाइल खोजेगा? आजकल सबसे ज्यादा मोबाइलों की चोरी हो रही है। लेकर आया ही क्यों था जो चला गया? ये व्यवहार की बातें तनिक विचित्र प्रकार की होती हैं। समझ में आ गया सबको? सबको?

धन्य हैं वे योगीश्वर! निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि मल विसर्जन करने भी जाता है, यदि उसमें भी कोई जीव दिख गया, पेट में से कृमि भी निकल पड़े, तब भी वह प्रायश्चित लेता है। जबकि उसमें उसका कोई हाथ नहीं रहता है। तब भी प्रायश्चित लेता कि मेरे उदर में कितने भगवान और बैठे थे और उनको मेरे निमित्त से कष्ट हुआ है। और आप ऐसे हो कि वाहनों पर घूम रहे हो बहाने बनाकरके। कितने, कोटि—कोटि भगवानों को चूर—चूर बनाकरके भटको संसार में।

शरीरिक और मानसिक बड़ी व्यथा है जीव को। मानसिक पीड़ा बहुत बड़ी पीड़ा है। वर्तमान में सर्वाधिक रोगियों की संख्या मानसिक है। सर्वाधिक पीड़ा मानसिक है।

और जीवन में ध्यान रखना, हीन भावना है आत्मा का प्रबल शत्रु। हीनभावना मत आने देना। जितनी फांसी लग रही हैं, जहर खा रहे हैं लोग, हेतु क्या है ? मान की पुष्टि का अभाव, हीनभावना का सद्भाव। मान की पुष्टि का जब अभाव हो जाता है, तब हीनभावना का सद्भाव हो जाता है।

बालक वत् रहने का। क्यों रहने का ? जब कोई तत्त्व की व्याख्या करे, तो पण्डित जी! विद्वान् बनके बैठना। शेष काल में सामान्य बनके रहना। आप अपनी विद्वत्ता हर समय दिखायेंगे तो सामान्य लोग हीन हो जायेंगे और उनके मन को क्लेश पहुँचेगा। और ये मन का क्लेश जो है वह इतने नीचे गिर जायेगा कि वे फाँसी लगा सकते हैं।

इसलिये अपन को दिखावा करने की कोई आवश्यकता नहीं। मणि को कहीं भी रखो, पर उसकी कीमत में कोई कमी नहीं आयेगी। पर काँच के टुकड़े को सोने की डिब्बी में रखना मखमल पर, पर भैया! उसकी कीमत क्या? जौहरी के घर ले जाओगे तो पकड़े और जाओगे। ऐसे ही ज्ञानी! हीरा बनके जियो, रखा कहीं भी रहे। समझ गये? और तो कुछ नहीं कहना, वस्तुस्वरूप ऐसा ही है।

पंच-परावर्तन-संसार से बचना है। पंच-परावर्तन-संसार से बचना है तो पंचपरमेष्ठी भगवान को ध्याओ और पाँच पापों से दूर हो जाओ। पाँच पापों से बच जाओ, पंचपरमेष्ठी को ध्याओ, बनियो! पंचपरावर्तन से बच जाओगे। जिनकी आप वन्दना कर रहे हो, वैसे आप भी वन्दनीय हो जाओगे। बस, दो काम पर ध्यान करना। किसी का वध मत करना, किसी को बदनाम मत करना। दो बातें याद रखना जीवन में। ज्ञानी किसी का वध नहीं करता जीवन में और बदनाम भी नहीं करता। कभी नहीं करना। यदि तेरा कोई घात भी करने को खड़ा हो जाये, तब भी तू उससे बड़े प्रेम से बात करना।विश्वास रखो, कालिया नाग को भी वश में किया जा सकता है तो गुस्सा दिलाकर नहीं किया जाता, बीन बजा कर किया जाता है। भैया! नाग को वश में कर लेता है सपेरा। फुसकारने वाले नाग को टोकरी में रख लेता है। किसकी शक्ति है? मधुर बीन बजाओ तो कालिया को भी टोकरी में रख लो। ऐसे ही कितने ही क्रूर हो, शत्रु हो, उसमें मधुरता का व्यवहार करें, वो भी तेरा मित्र बन जायेगा।

शत्रु को शत्रु की दृष्टि से देखकर तुम महापुरुष कैसे? शठ के साथ शठता का व्यवहार करना, ये साधु का स्वरूप नहीं है। शठ पुरुष के साथ सज्जनता का ही व्यवहार करना। ''शाठ्यं शठं समाचरेत'' नीति, ये अर्हन्त की नीति नहीं है, ये निर्ग्रन्थ की नीति नहीं है। ये लोक की नीति है। अर्हंत की नीति तो भैया! बताऊँ क्या है ?

सत्त्वेषु मैत्रीं, गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थभावं, विपरीतवृत्तौ,सदा ममात्मा विदधातु देव ॥भा.द्वा.1॥

ये श्रमण की नीति है, अर्हंत की नीति है, निर्ग्रन्थ की नीति है, सज्जन पुरुषों की नीति है। विलात विषय रहता है एक—एक श्लोक में। श्लोक पढ़ लो, फिर अपन आगे और चर्चा करेंगे यदि पर्याय रही तो।

एक बालक वय्यावृत्ति कर रहा था और कह रहा था, महाराज! सुबह आऊँगा पर्याय रही तो। हमने कहा, ज्ञानी! बहुत अच्छा हुआ। कुछ समझ में आया हो या न आया हो, इतना तो सीख लिया। अभी तक वे इतना ही जानते थे कि पीछी-कमण्डल पकड़ो, अब ये इतना भी जानने लग गये हैं 'आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं' ज्ञानी! ये अभी नहीं कहना, जब तेरे पिता जी डाँटें, देवी बरसे, तब कहना, 'ओ ज्ञानी! आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं। जब हम पर असर पड़ता ही नहीं, तो क्यों तुम अपने परिणाम खराब कर रहे हो? जिसे असर पड़े, उसे कुछ कहा जाय।' भैया! एक सज्जन आये मेरे पास, कोई ने सिखाके भेजो कि महाराज से ऐसी कै दईयो। सो वे कैत गये और हम मुस्करात गये, सो केन लगो, 'क्या हम पागल हैं ?' हमने कही कि और नहीं तो क्या? बो बोला, क्या मैं पागल हूँ? मैंने कहा, और क्या हैं ?

जब मेरे ऊपर असर तेरी बात का पड़ ही नहीं रहा है, तो व्यर्थ में बक रहा है। हे ज्ञानी! जिनता तू दूसरे के लिए सोच रहा है, इतना तू स्वयं के लिए सोचने लग जाये, तो शौच धर्म आ जाये।

आर्त्तध्यानरतो मूढो, न करोत्यात्मनो हितम्।
तेनाऽसौ सुमहत् क्लेशं, परत्रेह च गच्छति।। 3 ॥

तीसरी कारिका में समझा रहे हैं, कि जो आर्त्तध्यान में लीन है, ऐसा मूढ प्राणी आत्मा का हित नहीं कर पाता है। ऐसा संसारी प्राणी इस लोक में और परलोक में क्लेश को ही प्राप्त होता है।

इसलिये मुमुक्षुओ! कोई दु:खिया दिख जाये तो उसका दु:ख दूर करने के राग में अपनी आत्मा को दु:खी नहीं करना। बेटे की माँ को सिर दर्द करता है तो दवा दिला देना, दबा देना, लेकिन रोने मत बैठ जाना। रोने से न उसका दर्द ठीक होगा, न तेरे परिमाण ठीक होंगे। तू आर्त्तध्यान और कर रहा है, तू दुर्गति का पात्र बनेगा। इसलिए धर्म के मर्म को समझो।

लोगों ने जो ध्यान की व्याख्या समझ रखी है, वो कोई ध्यान की व्याख्या नहीं है। ध्यान तो चित्त की एकाग्रता है। धर्म्यध्यान, शुक्लध्यान ये दो मोक्ष के साधन हैं, आर्त्त और रौद्र ध्यान नरक, तिर्यंच गति के साधन हैं।

यदि आपको स्वर्ग/मोक्ष जाना है, तो आज से नियम कर लो कि लाख बिगड़ जाये काम, लेकिन आर्त्त–रौद्र ध्यान नहीं करोगे। यदि नहीं करोगे, तो नियम से तिर जाओगे। भो ज्ञानी! सी.डी. में कुछ नहीं दिखता, टी.वी. में भी कुछ नहीं दिखता। सी.डी.,टी.वी. दोनों मिल जायें, बस। ज्ञानी! ज्ञान में भी कुछ नहीं है, चारित्र में भी कुछ नहीं है। ज्ञान व चारित्र दोनों मिल जायें, लाइट के साथ। श्रद्धा की लाइट भी होनी चाहिए। जैसे सी.डी. में सब भरा होता है, पर खोलना पड़ती है, ऐसे ही जिनवाणी में सबकुछ भरा है, लेकिन हमारे ज्ञानियों को पता नहीं है। खोलना पड़ती है। अभी तक तो बहुत सारे लोगों को 'सार समुच्चय' ग्रन्थ का नाम ही पता नहीं था। नहीं था न? अब मालूम चल गया। ग्रन्थ का नाम मालूम चला, ग्रन्थ खुला, तब समझ में आता है। ग्रन्थ खोलेंगे, तो ग्रन्थि खुल जायेगी, निर्ग्रन्थ बन जाओगे। इसलिये ग्रन्थ खोलना सीखो।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

आत्महित के साधन

ज्ञानभावनया जीवो, लभते हितमात्मनः।
विनयाचारसम्पन्नो, विषयेषु पराङ्मुखः॥4॥

विनयाचार में सम्पन्न तथा पंचेन्द्रिय विषयसुखों से परान्मुख हुआ जीव सम्यग्ज्ञान की भावना से आत्मा का हित कर सकता है।

॥ देशना ॥

वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी, मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवन्त हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी जगत के जीवों को श्रद्धा का बोध करा रहे हैं। अर्हन्त जिनेन्द्र की वह गम्भीर दिव्यदेशना, जो अभद्रों को भी 'समन्तभद्र' कर देती है। कितने ही अभद्र प्राणी हो, जिनेन्द्र को देशना को सुनते ही समन्तभद्र हो जाते हैं। वह देशना 'देशना' नहीं, जिससे अभद्र को समन्तभद्रता प्राप्ति न हो। अभद्रता तभी तक है, जब तक भगवती देशना का अभाव है। जहाँ भगवती देशना है, वहाँ अभद्रता रह ही नहीं सकती है। ये सावद्य दोष है। एकसाथ दो हो नहीं सकते हैं। भद्र में अभद्रता कैसी ?

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी तत्त्व की गम्भीर प्ररूपणा करते हुए समझा रहे हैं। मुमुक्षुओ! धर्म्यध्यान करो, शुक्लध्यान पर लक्ष्य करो, आर्त्त-रौद्रध्यान से निज की रक्षा करो। जीवन में आज तक किया क्या है ? ध्यान किया, पर ध्यान नहीं दिया कि ध्यान किया किसका है? ध्यान में ही बंध है, ध्यान में ही मोक्ष है।

इतश्चिन्तामणिर्दिव्यः, इतःपिण्याकखण्डकम्।
ध्यानेन चेदुभे लभ्ये, क्वाद्रियन्तां विवेकिनः॥ इष्टो. 20॥

हे माँ! गेंहूँ से कंकड़ों को बीनने का विवेक तुमने किन भवों में सीखा है? आटा पीसने से पहले कंकड़ बीन कर अलग कर देते हो। यदि गेहूँ के अंदर एक भी कंकड अवशेष बचा, तो रोटी का स्वाद क्या होगा? आकार तो ले लेंगी रोटियाँ, बन तो जायेंगी, पर पेट भरने के लिए नहीं बन पायेंगी।

जो जीव ध्यान पर ध्यान दिये बिना संयमी भेष धारण कर ले, त्यागीरूप बना ले, उसका त्यागी रूप वही होगा जो कंकड़युक्त रोटियों का होगा। ग्रास तो बनेंगे, रोटी तो बनेगी, पर

मुख में जायेगी तो किस–किसायेगी। ऐसे ही निज के ध्यान में ध्यान नहीं दे सका और निज के भीतर पड़े कंकड़ों को नहीं बीन सका, वो त्यागी बनके बैठ गया, वो ज्ञानी संयम के मार्ग पर किस–किसायेगा। किस–किसाना जानते हो न?

जो भेदविज्ञान से युक्त होकर, निज के भीतर बैठे विकारी भावों के कंकड़ों को भिन्न करके, फिर त्यागी बनता है, वो ज्ञानी मुस्करा करके अपने जीवन में आनन्द से जीता है। दूसरे के विकल्पों को भी समाप्त करता है, स्वयं की आत्मा के उपकार का साधन बनता है। परन्तु भैया! किस–किसानी रोटी कीमतविहीन हो जाती है। ज्ञानी! किस–किसाया साधु कीमत विहीन हो जाता है।

इसलिये ध्यान पर ध्यान दो। आज से ही, अभी से ही। मोक्षमार्ग धर्म्यध्यान–शुक्लध्यान भूत हैं। मोक्षमार्ग आर्त्त–रौद्रध्यानभूत नहीं है। दो ध्यान मोक्ष के हेतु हैं, दो ध्यान संसार के हेतु हैं। आर्त्त, रौद्र ध्यान की व्यवस्था को 'ध्यान' संज्ञा मोक्षमार्ग की दे देना, ये तो स्व व पर की वंचना है।

चित्त का निरोध ध्यान है। एकाग्रचित्त का नाम ध्यान है। निरोध जो शब्द है, अभाववाची नहीं है, भाववाची है। निरोध से तात्पर्य चित्त का अभाव नहीं है। जब, चित्त का अभाव हो जायेगा, तो ध्यान किसमें होगा? नये विद्वान् उत्पन्न हो गये, इनने सब उल्टा कर दिया। चित्त के निरोध का तात्पर्य तुच्छाभाव है क्या? तो सुगत हो जायेगा। निरोध से तात्पर्य अभाव नहीं है। निरोध से तात्पर्य सद्भाव है।

अभाव जो है, वह सद्भाव का प्रतीक है। अभाव जो है, वह तुच्छाभाव का हेतु नहीं है। न्याय से बोल रहा हूँ, ध्यान देना। अभाव जो है, वह सद्भाव का प्रतीक है। अभाव जो है, वस्तु का प्रतीक है। भैया! खरगोश के सींग नहीं होते हैं। 'खरगोश के सींग' का अभाव है, 'सींग' का अभाव नहीं है, सद्भाव है। खरगोश के सींग भी होते हैं, इसका तात्पर्य है। जब 'सींग' संज्ञा दी जा रही है, तो भैया! कहीं–न–कहीं सींग होना चाहिए। सींग का अभाव तभी होगा, जब कहीं सींग का सद्भाव होगा। गधे के सींग नहीं है, खरगोश के सींग नहीं है, घोड़े के सींग नहीं है। क्या बैल के सींग नहीं है?

अगर पण्डित जी तुम कहते हो कि मैं मुनि नहीं बन सकता हूँ, बिल्कुल सही है, तू मुनि नहीं बन सकता है, इसका तात्पर्य है कि कोई–न–कोई मुनि अवश्य बन सकता है। जैनदर्शन पकड़ो, दर्शन । बिल्कुल एकाग्र होके सुनना। जगत के न्याय जब अन्याय में बदल जाते हैं, तब जैन के न्यायालयों पर पुतलियाँ खड़ी होती हैं और उसके हाथ में तराजू होता है और उसकी आँखों बन्द होती हैं।

आपके राष्ट्र के न्याय के ऊपर काली पट्टी हो सकती है आँखों पर, अन्धा कानून हो सकता है, पर कर्मसिद्धांत और जैनदर्शन का न्याय काली पट्टी वाला नहीं है यानि स्याद्वाद गुण से मण्डित है। उभय नय खुले हैं। एक नय निश्चय का है और दूसरा नय व्यवहार का है। दोनों से युक्त जो न्याय है, उसका नाम सम्यक् न्याय है।

जब भी पदार्थ की सिद्धि होगी, तो किससे? 'नयः प्रमाणार्थ'। नयप्रमाणार्थ वस्तु सिद्धि इति सिद्धा सिद्धान्त। 'न्यायदीपिका' ग्रन्थ से बोल रहा हूँ।

'न्याय दीपिका' जैनन्याय का पहला ग्रन्थ। ये बालकों के लिये है। नय और प्रमाण के द्वारा ही वस्तु की सिद्धि होती है। ये सिद्धान्त सिद्ध है। भरतक्षेत्रों में वर्तमान में तीर्थंकरों का अभाव होता है। तीर्थकरों का अभाव है, ये जाना कैसे? इसका तात्पर्य यह है कि कहीं -न-कहीं तीर्थंकर का सद्भाव होना चाहिए, तभी तो यहाँ तीर्थंकर का अभाव है। भैया! ये लेखनी है। क्यों लेखनी है ? इसमें लेखनी का सद्भाव है। सद्भाव ही है कि अभाव भी है? महाराज! इसमें माईक का अभाव है। ऐसे ही माईक में लेखनी का अभाव है।

जहाँ सद्भाव होता है, वहाँ नियम से अभाव भी होता है और जहाँ अभाव होता है, वहाँ नियम से सद्भाव भी होता है। अभाव, सद्भाव नहीं स्वीकारोगे, तो माँ और पत्नी में भेद नहीं बना पाओगे। अभाव—सद्भाव नहीं समझोगे, विधी-निषेध नहीं जानेगे तो ज्ञानियो! माँ और पत्नी में भेद नहीं बनेगा।

अन्योन्याभाव स्वीकार करना ही होगा। अन्योन्याभाव है, परन्तु अभाव नहीं है, भाव है। अभी समझ में आता है, घबराना नहीं। ज्ञानी! कौए के कितने दाँत होते हैं ?कौए के दाँत नहीं होते हैं, ये कैसे जाना आपने ? अपने पड़ौसी से पूछ लो। ज्ञानी! तेरे दाँत कहाँ हैं ?

दाँत होते हैं, इसलिये कौए के दाँत नहीं होते हैं, कहीं-न-कहीं दाँत अवश्य होते हैं। तो चोंच देखकर अपने कौए के दाँत का अभाव कराया है, इसका तात्पर्य है कि कहीं-न-कहीं दाँत अवश्य होते हैं। किसी के दाँत होते हैं, किसी की चोंच होती है। परन्तु ज्ञानी! दाँत किसके गिरते हैं? जिसके होते हैं। जिसके होते ही नहीं, उसके गिरते हैं क्या?

ये तर्क है, ये प्रश्न है, ये मेधाशक्ति है। सीधे भी प्रवचन हो सकते हैं, पर नहीं। तर्क के साथ ही समझो आप।'तर्कात् तन्निर्णयः।' जो वस्तु का सम्यक् निर्णय होता है, वह तर्क से होता है। पण्डित जी ने कहा, इसलिये स्वीकार लिया है। ज्ञानी! इनके कहने से मत स्वीकारना। आज पण्डित जी आपको एक व्यक्तित्व दिखाई दे रहे थे, इसलिये आपने उनकी

बात को स्वीकार लिया। कल इनसे बड़ा कोई व्यक्तित्व आ गया तो आप उसकी बात को स्वीकार कर लोगे, तब आपका सिद्धांत क्या होगा ? इसलिये जैनपरम्परा में व्यक्तियों की बात को किंचित् भी स्वीकार नहीं किया जाता है।

ये व्यक्तिवादी दर्शन नहीं है। जो व्यक्तिवादी दर्शन हुआ करते हैं, वो हर दिन नया रूप बदलते हैं। ये बाबा वाले दर्शन नहीं हैं, ज्ञानियो! ध्यान रखना। जो यूँ कहे कि आओ बच्चो सीखें। आज इतना खोज किये हैं, आगे और खोजेंगे। ज्ञानी! तू अधूरा है। ये भौतिकविज्ञान की चर्चा नहीं है, ये वीतराग विज्ञान की चर्चा है। वीतराग वैज्ञानिक ये नहीं कहता कि और खोजूँगा। उनके ज्ञान में चराचर झलका है। ऐसे केवलज्ञान—विज्ञान में जो झलका है, वह ध्रुव सत्य है। समझ में आ रहा है कि और सरल कहूँ? समझ में नहीं आ रहा, पर समझके आ रहा कि नहीं?

भैया! मैं इसलिये बोल रहा हूँ कि पण्डित जी जैसे ज्ञानी लोगों को समझ में आना चाहिये कि अभी मुझे और-कुछ समझना है।

अधिक सरलीकरण ने क्या किया है? महिमा को कमजोर कर दिया है। शास्त्रों की भाषा को सरल नहीं होना चाहिए। शास्त्रों की भाषा कठिन ही होना चाहिये। समझाने की भाषा सरल हो जाये। शास्त्रों की भाषा, जैसे प्राचीन मंदिर, प्राचीन प्रतिमा। उससे हमारे पुरातत्व की पहचान ही नहीं, अपितु रक्षा भी होती है, पहचान भी होती है। जिसने प्राचीन साहित्य की भाषा और पुरातत्व को मोड़ दिया, उसने संस्कृति को क्षीण कर दिया। जिसने साहित्य की भाषा को और पुरातत्व की ईंट को नष्ट कर दिया हो, यानि उसने संस्कृति का नाश कर दिया। वह रक्षक नहीं, भक्षक हो गया। इसलिये साहित्य और संस्कृति की रक्षा है।

कहाँ हो आप? कौए के कितने दाँत? आपके घर में हाथी है क्या? हे ज्ञानी! तेरे घर में हाथी नहीं है। हाथी पूछ रहा हूँ। इसका तात्पर्य है कि आपके मस्तिष्क में शब्द गूँजना चाहिये कि हाथी नाम की कोई वस्तु अवश्य होना चाहिये, जिसके बारे में मेरे घर में पूछा जा रहा है। मेरे घर में नहीं है, पर किसी के घर में अवश्य होना चाहिये। क्योंकि अवस्तु पर प्रश्न नहीं होता। अवस्तु की व्याख्या नहीं होती है, व्याख्या वस्तु की होती है। वे अज्ञानी लोग हैं जो वस्तु के नाम पर प्रश्न खड़ा करें। प्रश्न भी होगा तो वस्तु पर ही होगा, अवस्तु पर नहीं होगा। देखो, आज समझ लो, कल कोई घुमानेवाला आ गया, तो आप घूम जाओगे।

आज समझ लो। व्याख्या वस्तु की होती है, व्याख्या अवस्तु की नहीं होती है। अभाव भी कहीं होता है तो कहीं सद्भाव होता है। वर्तमान में तीर्थंकर भरतक्षेत्र में नहीं हैं, क्या किसी

भी क्षेत्र में नहीं हैं ? विदेह में हैं। भैया! तुम्हारे पिता के पिता जी अभी कहीं दिखाई देते हैं क्या? ज्ञानी! जो वस्तु दिखती नहीं, वो होती है क्या ? अब समझ में आयेगा।

यदि दिखने वाले को कोई होने वाला मानता है, तो वह चार्वाक है। जो प्रत्यक्षमात्र को ही प्रमाण मानता है, भूत को नहीं मानता, भविष्य को नहीं मानता, वह चार्वाक है।

भैया! तेरे दादा जी आज दिखाई नहीं दे रहे हैं, तो क्या हुए ही नहीं इसके पिता जी? जब दिखाई नहीं दे रहे प्रत्यक्ष में, तो कैसे मानूँ पिता जी इसके थे? तेरे दादा जी हैं क्या आज ? हे ज्ञानी! आज नहीं हैं, तो कभी नहीं थे क्या ? कभी नहीं थे, तो तू आकाश से टपकके आया है क्या ? भूत से वर्तमान को जाना, वर्तमान से भविष्य को जानो। यदि आप दिखाई दे रहे हो, तो आपका जनक भी कोई होना चाहिये। बिना जनक–जननी के सन्तान का जन्म होता ही नहीं। बिना आप्त के आप्त की वाणी का जन्म होता नहीं। आप्त है, तो आगम है, तो आप्त व आगम को बतानेवाला कोई होना चाहिय। वो निर्ग्रन्थ गुरु होता हैं। तीनों की सिद्धि अवश्य है।

चित्त का निरोध 'ध्यान' है। पर निरोध का अर्थ अभाव नहीं है। कुछ लोग सोच रहे हैं, महाराज! कैसे मन वश हो? कैसे ध्यान करूँ ? कैसे मन का निरोध हो ? ये ज्ञानियों के प्रश्न हैं, अज्ञानियों के प्रश्न नहीं हैं।

मन को वश में नहीं किया जाता, मन का निरोध नहीं किया जाता। मन का अभाव कर दोगे तो विवेक समाप्त हो जायेगा। विवेक समाप्त हो जायेगा तो असंज्ञी जो जाओगे। असंज्ञी ध्यान कैसे करेगा? और मन आपने निकालके फेंक दिया तो एक अंग हीन होता है। जब पाषाण की प्रतिमा अंग–भंग होने पर प्रतिष्ठा के योग्य नहीं होती है, तो मुमुक्षुओ! परमात्मा बनने वाला जीव मन-भंग हो जाये तो कैसे परमात्मा बनेगा? युवाओ! ध्यान से सुनना। तुम लोगों को ही भ्रमित किया जा रहा है

भैया लोग वस्तुस्वभाव को भूल गये। वस्तु के परिणमन को कौन टाल पायेगा ? वस्तुव्यवस्था को भंग कौन कर पायेगा ?

भैया! तू ऐसा ही था क्या ? 1990 में तू बच्चा था। लेकिन अब तेरी माँ, तेरा पिता तुझे उस बच्चे की दृष्टि से देखे, तो उनका पागलपन। अरे! वस्तु में परिणमन होता है। मालूम, घर में झगड़े क्यों हो रहे हैं ? उसका ज्ञान मुझे बहुत अच्छे से है। हाँ, मेरा घर नहीं है, पर मुझे मालूम है कि आपके घर में झगड़ा क्यों हो रहा है। पिताजी जो होते हैं, उन्होंने बच्चे

को गोद में खिलाया है, बेटे को भोजन कराया है। अब बेटा हो गया पच्चीस वर्ष का, पर पिता जी को वो छोटा बेटा ही दिख रहा है, स्वयं की आयु पर ध्यान नहीं है। अस्सी वर्ष के पिता जी पच्चीस वर्ष के युवा को आठ वर्ष का देखना चाहते हैं। पर आपको मालूम होना चाहिए कि उम्र ढलने पर परिणाम भी ढलते दिखते हैं, परिणति भी ढलती है, विचार भी ढलते हैं। आपको अपनी उम्र पर जीना चाहिए, उसको उसकी उम्र पर जीने दो। आप एक दूसरे का समन्वय मत बनाइये। आप अपनी–अपनी उम्र का समन्वय मत बनाइये तो कभी झगड़ा नहीं होगा।

भैया! आप मनुष्य हैं। आपकी इस मनुष्यपर्याय में देवपर्याय का अभाव है। ये मनुष्य खड़ा हुआ है, इसमें देवपर्याय है क्या? मनुष्य नहीं है क्या? मनुष्य का सद्भाव, अभी इसमें देवपर्याय का अभाव। वर्तमान में किसी भी अंश में देवत्व इसमें नहीं है। देवत्व का अभाव, मनुष्यत्व का सद्भाव। एकसाथ दो पर्याय हैं इसमें, अभाव–सद्भाव। ज्ञानी! ये जीव देव बनेगा तब मनुष्यपर्याय का अभाव करेगा। सद्भाव का अभाव नहीं करेगा, तो अभाव का सद्भाव कैसे होगा ? मनुष्य पर्याय का अभाव, देव पर्याय का सद्भाव। वर्तमान में देव हैं क्या ? देवपर्याय का अभाव, मनुष्यपर्याय का सद्भाव। अभाव का भी सद्भाव होता है। जब वर्तमान का अभाव हो जायेगा, तो अभाव का भी सद्भाव बनेगा।

जब ये देव बनेगा, तो देवपर्याय का सद्भाव और मनुष्यपर्याय का अभाव। ये जीव कौन है ? देव कौन बना? जीव। मनुष्य कौन गया ? जीव। जो देव/मनुष्य पर्याय में जीव था, वही देवपर्याय में गया है। इसलिये ज्ञानी! पर्यायदृष्टि से सद्भाव का भी अभाव होता है और पर्यायदृष्टि से अभाव का भी सद्भाव होता है, जबकि द्रव्यदृष्टि से द्रव्य त्रैकालिक होता है।

जो आप अभी सुन रहे हो, यथार्थ में जैनदर्शन का दार्शनिक पक्ष है। ये ही रासायनिक तत्त्व है और ये ही जैनदर्शन है। इसलिये भैया! यदि इस विद्या को नहीं समझ पाये तो यूँ मानके चलना कि जैनकुल में, भारत में जन्म लेकरके भी हम एक विद्या से अधूरे चले गये। युवाओ! मानो मेरी बात। ये जगत के चुटकले, गीत–संगीत दुनियाँ में मिल जायेंगे, पर वस्तुस्वरूप जैनदर्शन मात्र में मिलेगा।

बैठ जाओ, अभाव कर दो। खड़ी पर्याय का अभाव, बैठी पर्याय का सद्भाव, पुरुष वो ही है । उसी में भाव, उसी में अभाव यानि भावाभाव। बराबर? हाँ।

आओ, ध्यान की व्याख्या चल रही है। ध्यान की व्याख्या को आप न्याय की भाषा में सुन रहे हो। तो चित्त का निरोध 'ध्यान' चित्त का अभाव नहीं।

लोई का आकर बदल जाये, तो पूड़ी बन जाये, रोटी बन जाये, पराठा बन जाये। लोई वही थी, हाथ वही है। यूँ करो तो गद्‌गद् हो गये और यूँ किया तो डर गये। पण्डित जी! मुद्रायें कुछ करती कि नहीं करती हैं? कितने भी मंत्र पढ़ लेना, मुद्रायें नहीं आती तो तेरा मंत्र काम नहीं करेगा। प्रोफेसर कक्षा में जाकरके घर के बेटे जैसी बातें करेगा, तो तेरी प्रोफेसरी चलेगी नहीं। आप को अपनी मुद्रा भी बनानी पड़ेगी।

किसी बात की गम्भीरता में व्याख्या करना है तो उसकी आपको मुद्रा भी बनाके चलना पड़ेगा। मुद्रा व मंत्र दोनों एकसाथ होते हैं तभी कार्य सिद्ध होता है। मंत्र मात्र से कार्य सिद्ध नहीं होता, मुद्रा मात्र से कार्य सिद्ध नहीं होता।

आगये वहीं फिर से। हे ज्ञानी! जब कर्ता आ गया है, कर्म आ गया है, तो बिना क्रिया के कर्म होता कहाँ है? स्वाध्याय कर रहा है, तो कर्म आ गया इसमें। 'सारसमुच्चय' ग्रंथ खोले है तो अब मैंने क्रिया नहीं कही। खोले है, तो क्या कर रहा है? स्वाध्याय कर रहा है। ये तो तू स्वाध्याय थोड़े-ही कर रहा है। वहाँ है ही नहीं। कर्त्ता निहित होगा। बिना कर्त्ता के क्रिया होती नहीं है। कहनेवाला नहीं कह रहा है। क्रिया में कर्त्ता वाच्य होता है। अहं पठामि, अहं पठामि, नहीं कहता हूँ मैं अहं पठामि। यदि 'पठामि' बोल रहा है, तो उसमें कर्त्ता बैठा है कि नहीं?

हे मुमुक्षु ! इसलिये कहता हूँ कि पढ़लो तनिक। कहाँ हो? इस बात का ध्यान दो, सम्पूर्ण गृहस्थी को छोड़ने के बाद साधु जीते कैसे होंगे? पण्डित जी! गहरी बात को लोगों के मस्तिष्क में डालने के लिए मैं इतना कठिन कर रहा हूँ। जितना कठिन सवाल होगा, उतना चित्त एकाग्र होगा। आप सब गृहस्थी में जीवन जी रहे हो। ये निर्ग्रन्थ गृहस्थी-विहीन हैं। ये अपने चंचल,बन्दर-जैसे चित्त को सम्हालके कैसे रखेंगे? उनके लिए आगमज्ञान और तर्कज्ञान है। आप जब तत्त्व में लीन होते हो तो, सारे विकल्प तुम्हारे शून्य हो जाते हैं। यहाँ श्रावक आ करके बैठे हुए हैं। पर श्रावक आज श्रावक-जैसे नहीं लग रहे हैं। ये साधुवत् दिखाई दे रहे हैं। एकदम शांत बैठे हैं।

लोगों ने क्या किया? ध्यान की व्याख्या को अभाव में डाल दिया और किसी ने बहिरंग क्रिया को ध्यान कह दिया। जबकि चित्त की एकाग्रता का नाम ध्यान है। चित्त का निरोध ध्यान है। निरोध शब्द लिखा हुआ है। भैया! ये हाथ आप देख रहे हो। जब आप इस हाथ पर लक्ष्यपात करोगे, तो इस हाथ पर सबसे बड़ी रेखा आप देख रहे हो। उसे देखिये आप।

जब इस हाथ की लम्बी रेखा को आप निहारते रहेंगे, निहारते रहेंगे, उस समय आपका चित्त हस्तरेखा पर है। निरोध किया है। पड़ौसी के चेहरे को देखने का निरोध नहीं है। पड़ौसी के चेहरे को देखने का निरोध है। देखने का निरोध नहीं हुआ है।

जो लक्ष्यभूत है उस पर स्थिर हो जाना, अलक्ष्य से दूर हो जाना, इसका नाम निरोध है। मेरा लक्ष्य पंचपरमेष्ठी, मेरा लक्ष्य परमात्मा। इन दो पर लक्ष्य करके, शेष के लक्ष्य से निज को हटा देना, इसका नाम ध्यान है।

जो यों कह रहे हैं कि मन वश करो। लाओ कोई रस्सी। उसको बांध लो। ज्ञानी! मन वश करने का तात्पर्य मन को नाश करना नहीं है। मन वश करने का तात्पर्य मन को बांधना नहीं है। जो मन असीमित विषयों में जा रहा था, उसको सीमित विषय में रोक लेना, उसका नाम मन वश करना है। ऊपर का प्रेशर बराबर है और आपने पानी निकालना बन्द कर लिया यहाँ पर, तो सटक फट जायेगी। सुनिये। यदि बर्तन भर गया है और आप डाले रहे, तो कीच हो जायेगी।

हे मुमुक्षु! इस चित्त को तू विषयों में डाले रहेगा तो कीच हो जायेगी और बाँधेगा जबरदस्ती, तो 'डिप्रेशन' में चला जायेगा, पागल हो जायेगा। तो क्या करना चाहिये ? कीच भी न हो और सटक भी न फटे, तो दूसरा बर्तन रख देना चाहिये।

जो तेरा चित्त विषयों में दौड़ रहा था, कर्मों की कीच उत्पन्न करा रहा था, उसको ज्ञानी! भोगों के बर्तन से निकाल करके, 'साधना' के बर्तन में रख देना। सटक को, चित्त को साधना में लगा देना। इसका नाम चित्त का निरोध है। ये मन वश करना है। जो इच्छा है, वो कार्य है। चित्त जो है, वो कारण है। समझ में आ रहा है? इसलिये मन वश करने का तात्पर्य ताला डालना नहीं है। मन वश करने का तात्पर्य नष्ट करना नहीं है। मन वश करने का तात्पर्य अशुभ में जाते चित्त को शुभ में लगा लेना है और शुभ में जाते हुए चित्त को भी निरोध करके चित्तातीत हो जाना, वह अर्हन्त-अवस्था है।

जो मन को विषयों में ले जाये, वो पापी कहलाये। जो मन को पंचपरमेष्ठी में ले जाये, वो पुण्यात्मा कहलाये। जो मन को ही न रहने दे, उसका ही नाम परमात्मा है। जो मन को विषयों में ले जाये, वो पापी कहलाये। जो मन से भी अतीत हो जाये, उसका नाम परमात्मा है।

हे मुमुक्षु! जिसे मैं पुण्यात्मा कह रहा हूँ, वो ही धर्मात्मा है। जो पुण्यात्मा नहीं है, वो धर्मात्मा भी नहीं है। जो धर्मात्मा नहीं है, वो पुण्यात्मा होता ही नहीं। आप पुण्यक्रिया को पुण्यात्मा मानते हो कि धर्मात्मा को पुण्यात्मा मानते हो?

हे मुमुक्षु ! पुण्यक्रिया तो मिथ्यादृष्टि भी करना जानता है। बहिरंग धर्म करना तो नाना जीव जानते हैं, पर अंतरंग धर्म सम्यग्दृष्टि ही जानता है।

व्यायाम/प्राणायाम ध्यान नहीं है। ध्यान तो एकाग्रता है। सब नाना योनियों में भटक रहे हैं दुर्ध्यान के कारण। 84 लाख योनियों में कैसे भटका ? पृथ्वीकाय के 7 लाख, जल काय के 7 लाख, अग्निकाय के 7 लाख, वायुकाय के 7 लाख, नित्य निगोदिया 7 लाख, इतर निगोदिया 7 लाख और वनस्पतिकाय 10 लाख, 2 लाख दो-इन्द्रिय, तीन-इन्द्रिय 2 लाख, चार-इन्द्रिय 2 लाख, पंचेन्द्रिय 4 लाख, देव 4 लाख, नारकी 4 लाख और 14 लाख मनुष्य। कुल 84 लाख योनियों है। जो 84 लाख योनियों में भटक रहा है, वो किस कारण से ?

भैया! कर्मक्षय के साधन आपके पास अनंतानंत हैं।

भैया! ज्ञायकभाव का तात्पर्य क्या है ? ज्ञान—दर्शन। साधु बनने का तात्पर्य ज्ञान—दर्शन का अभाव हो गया क्या ? जो वस्तु जैसी होगी, उसका स्वाद वैसा होगा कि नहीं होगा? हाँ, इन्द्रियों की लम्पटता का त्याग होना साधु है। पर वस्तुस्वभाव को नहीं जानना, इसका नाम साधु नहीं है। मुझे तो यहाँ तक मालूम चल जाता है कि किस मकान पर आज अन्तराय होने वाला है। देहरी पर पैर रखते ही पता चल जाता है।

अरे! मंदिर की देहरी देखो कि कैसी लग रही है तो समाज का पता लग जाता है कि समाज कैसी है। जब मन्दिर पर ही कूड़े-कचरे पड़े हों, तो समझ लो कि समाज के चेहरे कैसे होंगे? न्याय की भाषा में कहूँ तो घर की देहरी देखके सदस्यों का बोध हो जाता है।

''साधनात्साध्यविज्ञानमनुमानं''॥ प.मु.सू. ॥

साधन से साध्य का ज्ञान होना, ये अनुमान-ज्ञान है। धुँए को देख करके अग्नि का बोध होता कि नहीं? होता है। तो ज्ञानी! जिसके घर में कूड़ा-कचरा पड़ा हो, तो समझ लो कि घर के सदस्य कैसे होंगे? भैया! गली से तू जा रहा था, घण्टी की आवाज सुनाई पड़ी, तो तुझे मालूम हो गया कि कोई मंदिर है यहाँ पर। मालूम है न? जब घण्टी की आवाज से मंदिर का बोध हो जाता है, तो जिसके घर में किल—किल की घण्टियाँ बज रही हों, तो ज्ञान कर लेना कि नारकियों का वास चल रहा है। नारकी लोग रह रहे हैं इस घर में, जहाँ अशुभ आवाजें आ रही हैं।

हाँ, वर्तमान के नारकी न सही, भविष्य के नारकी सही, पर नारकियों का घर है वो। भैया! पूरे टीकमगढ़ में घूमके आना, साथ में एक पेन्टर को लेके जाना। जिस—जिस के घर में लड़ाई की आवाजें आ रही हों, उसके घर के ऊपर लिखके आना 'नरक भवन' और

जिसके घर के अंदर से आवाजें णमोकार की गूंज रही हों, तत्त्वचर्चा 'आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं', नमोस्तु शासन जयवंत हो, गूंज रहा हो, ज्ञानी! वहाँ लिख देना 'जिनभक्त भवन'। पर ज्ञानी! पहले अपने घर को सुधार कर जाना। 'जो है, सो है।'

अब बताओ भैया! जिनवाणी में आनन्द है कि नहीं? बाहर की बातों में मुस्करा तो सकते हो, ताली बज सकती है, लेकिन आनंद नहीं आता। अभी ध्यान की बात पूरी नहीं हुई। अभी तो परिभाषा हुई है। लेकिन इहलोक, परलोक में दु:ख देता है तो ध्यान। इहलोक, परलोक में सुख देता है तो ध्यान। प्रशस्त ध्यान करोगे तो सुख मिलेगा, अप्रशस्त घ्यान करोगे तो दु:ख मिलेगा। श्लोक पढ़ लो, इसकी व्याख्या आगे पुन: करेंगे। ठीक है? 'पर्याय रही तो'। हाँ, नहीं-तो आप कहो कि महाराज कह रहे थे। पर्याय रही तो। जितना कथन किया उतना पूर्ण समझना, नहीं-तो पण्डित टोडरमल जी जैसा अधूरा 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' नहीं करने का।

पण्डित जी साव ने बार—बार लिखा है, 'आगे कहूँगा, आगे कहूँगा।' लिखा कि नहीं? 'मोक्षमार्ग प्रकाशक जी' में पण्डित जी साव ने कहा कि इस विषय को आगे कहूँगा। पर क्या करूँ ? अशुभ कर्म के उदय से पर्याय नहीं बची। इसलिये ज्ञानियो! जितना कहा है, उसके आगे और भी कुछ कहने वाले थे, उस पर भी ध्यान देना चाहिए। ये भैया आधी बात सुनकर हाँ-हाँ करता। 'मैं नहीं आता तो ये मर जाता।' लड़ने खड़ा हो गया। अरे भाई! पूरी बात सुनो, फिर निर्णय करो। 'मैं नहीं आता, तो ये मर जाता।' इतना सुनकरके भाई से लड़ने खड़ा हो गया। भैया! सुनो। छोटे भाई का बेटा। पुराने काल में घर होता था। आँगन होता था। फिर बाखर होती भी, चबूतरा होता था। समझ गये? इतने खण्ड होते थे। तो आँगन में खेलता बालक बाखर में आ गया। बाखर माने गाय, बैल, भैंस बंधे रहते हैं। चबूतरे को जा रहा था। इतने में ही बड़ा भैया भीतर से निकल पड़ा। कमरे से निकला, कक्ष से। उसने देखा कि बच्चा घूमते—घूमते गाय के नीचे आ गया, तो उसके मुख से निकल पड़ा अचानक कि मैं नहीं आता तो ये मर जाता। इतने में जिसका बेटा था, वो बाहर से द्वारे से भीतर आ रहा था। उसने सुन लिया कि मर जाता। 'मैं नहीं आता' नहीं सुन पाया। वो लड़ने खड़ा हो गया कि मेरा बेटा मर जाता, तुमको क्या मिल जाता ? अब बताओ भैया! वो साँची कह रहा था कि झूठी कह रहा था?

ऐसे ही ज्ञानियो! अज्ञानी बनके रह जाना अच्छी बात है, पर अधूरे ज्ञानी बनके कभी मत रहना। जो अधूरे ज्ञानी होते हैं वे लड़ते-ही-लड़ते हैं। इसलिये अधूरे ज्ञानी नहीं बनने का। जितना है, उतना सम्यक् सोचना। ठीक है?

पर दुनियाँ के काम में उलझ जाओगे तो जिनवाणी नहीं सुन पाओगे। सुन लिया भैया! आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं।

भो ज्ञानियो, हे हंस-आत्माओ! यदि निज ध्रुव आत्मा का कल्याण चाहिये, आत्महित चाहिए, तो निज के ज्ञान को भावों में लगा दो। आप लोगों को एक घण्टा हो गया। कहीं विषियों में रुचि गयी क्या? नहीं न? घोड़ा उपद्रव करे तो लगाम लगा दो और गाय उपद्रव करे तो हेगूर। और भैया! तूने उपद्रव किया तो तेरे पापा ने ठेंगूर डाल दिया, शादी करा दी। अब बेटा बैठ शान्ति से। अब देख ले कि कैसा होता है पिता बनना। सही बात है, मेरा त्याग है झूठी बोलने का। भैया! ठेंगूर डल गया बेचारे को।

जब चित्त भटकता हो, चित्त भ्रमित होता हो, तो उसे वश में करने की कोई वस्तु है तो ज्ञान व वैराग्य, ये दो रस्सियाँ हैं। चित्त को आपको स्थिर करना है तो दो ही रस्सियाँ हैं। ज्ञान और वैराग्य। ज्ञान—वैराग्य की रस्सी से भटकते चित्त को वश में किया जा सकता है।

ज्ञानभावनया जीवो, लभते हितमात्मनः।
विनयाचारसम्पन्नो, विषयेषु पराङ्मुखः॥ 4 **॥**

ज्ञानभावना से जीव निज के आत्महित को प्राप्त कर लेता है। कैसे? 'विनयाचार सम्पन्नो' एक—एक बात पर ध्यान रखना। ज्ञान के लोभ में विनय मत छोड़ देना। कुछ लोग खा रहे, पी रहे, चल रहे, घूम रहे और शास्त्र जी लाये, बगल में दबाय है। ओ मुमुक्षु भैया! सुन। इन ज्ञानियों से कहना, कोई से युद्ध हो जाये तो शत्रु को कांख में दबा लो, तो वह पराजित कहलाता है। शत्रु को कांख में दबाया जाता है, जिनवाणी को कांख में नहीं दबाया जाता, सिर पर विराजमान किया जाता है। कौन समझाये इनको? जहाँ पसीना झर रहा हो, ये शमसान घाट है। सम्मूर्च्छन जीव नष्ट हो रहे हैं, जन्म ले रहे हैं। वहाँ माँ जिनवाणी दबाके चल दिये। जिनवाणी को कांख में नहीं दबाया जाता।

'वीर हिमाचल से निकली, गुरु गौतम के मुख-कुण्ड भरी है।' जो वीर हिमाचल से निकली, वो वाङ्गंगा गुरु गौतम के कुण्ड में आयी हो, ऐसी भगवती माँ जिनवाणी, वाङ्गंगा, उसको कांख में नहीं दबाओ, उसको सिर पर विराजमान करो, मस्तिष्क में रखो।

'विनयाचार सम्पन्नो' विनयसम्पन्न। कालाचार आदि का ध्यान रखते हुए स्वाध्याय करने का। जो पुरुष कालाचार का ध्यान नहीं रखता है, वो अपने अंतिम समय के पहले—पहले विक्षुब्ध हो जाता है या संयम विहीन हो जाता है। घर में होगा तो क्लेश करेगा और संघ में होगा तो झगड़ा होगा।

जो साधु कालाचार का ध्यान नहीं रखते, उस संघ में झगड़ा होता रहता है। हाँ, सुनो ध्यान से। इसलिये ग्रन्थ को समय पर ही पढ़ना और समय पर बंद कर देना। अष्टमी चतुर्दशी को सिद्धांतग्रन्थ नहीं पढ़ना। जो विनय से युक्त होकर जिनवाणी का पान करता है, वह विषयों से परांमुख हो जाता है। सम्यग्ज्ञान से परांमुख हो रहा है। वह कितना ही ज्ञान प्राप्त कर ले, आत्महित कर नहीं सकेगा।

इसलिये भैया, भो मुमुक्षु! अपन ने बहुत बार देखा। बहुत सारे जीव चंदन की पोटली को अपनी पीठ पर ढोते हैं ,परन्तु लगाने वाले दूसरे होते हैं, ढोनेवाले दूसरे होते हैं। ऐसे ही ज्ञानी! आपने जिनवाणी को कितना ही सीख लिया हो, पर चारित्र में नहीं ला पाये, तो तेरे चंदन का तिलक लगायेगा दूसरा और तू जैसा है वैसा ही रहेगा। इसलिये जाओ भैया! कल फिर आओगे न? पर्याय रही तो। धन्य हो। ठीक, भैया! जाओ, लेकिन अच्छे से जाइयो क्योंकि पर्याय का भरोसा नहीं होता। कोई विकल्प लेके मत जाना, निर्विकल्प होके जाना और निर्विकल्प होके आना। वस्तुस्वभाव को समझना है तो आज चिन्तवन कर लेना। और मेरा विश्वास है 5 मिनट के लिए बैठोगे तो उसमें 15–20 मिनट तो लग ही जायेंगे क्योंकि इतना गम्भीर विषय है। ठीक है, जाओ।

हित किस-किस से होगा? विषयों से परांमुख होओगे और ज्ञान की भावना से युक्त होगे, तो आत्मा का हित होगा। विनयाचार से युक्त होओगे, तो आत्मा का हित होगा। जाओ।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं।**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

करो आत्मभावना

आत्मानं भावयेन्नित्यं, ज्ञानेन विनयेन च।
मा पुनर्म्रियमाणस्य, पश्चात्तापो भविष्यति।। 5 ।।

सम्यग्ज्ञान और विनय के द्वारा नित्य आत्मा की भावना करनी चाहिए, अन्यथा मरने के बाद संताप होगा।

ज्ञान-भावनापूर्वक तप करणीय है

तथा च सत्तपः कार्यं, ज्ञानसद्भावभावितम्।
यथा विमलतां याति, चेतो-रत्नं सुदुर्धरं।। 6 ।।

जिस प्रकार से यह कठिनता से प्राप्त आत्मारूपी रत्न निर्मलता को प्राप्त हो, उसी प्रकार से ज्ञान की यथार्थ भावना करते हुए समीचीन तप करना चाहिए।

।। देशना ।।

जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्य कुलभद्र स्वामी ग्रंथराज 'सार समुच्चय' जी में उस परमतत्त्व की व्याख्या कर रहे हैं, जिस तत्त्व की प्राप्ति के अभाव में जीव जन्म-मरण कर रहे हैं। भव का अभिनन्दन, पर्याय का अभिनन्दन, यह परमार्थ प्राप्ति का साधन नहीं है। जिसके विनाश के लिये रत्नत्रय की आराधना है, उस पर्याय के अभिनन्दन की आवश्यकता क्या ? जन्म के नाश के लिए रत्नत्रय की आराधना है। जैनदर्शन, मनुष्यपर्याय इनकी प्राप्ति तो जन्म-मरण से रहित होने के लिए है। भव का अभिनन्दन करते—करते अनन्त भव व्यतीत हो गये। यह पर्यायाभिनन्दन है। पर्याय में लवलीन हो जाना, पर्याय की लीनता ही "पूज्जयमूढा परसमया"। जो पर्याय में मूढ़ है वही परसमयी है। बहिरात्मा, दुरात्मा विभाव-व्यंजन पर्याय तो है। इस विभाव-व्यंजन पर्याय के अभाव के लिए गणधर जैसे योगी, तीर्थंकर महापुरुष चिदानंद में लवलीन होते हैं। दुर्ध्यान का अभाव हो, सद्ध्यान का प्रादुर्भाव हो, ज्ञान-वैराग्य की ज्योति प्रज्वल्यमान हो, ज्ञानी तब कहीं पर्याय का अभाव कर सकेगा। पर्याय के अभाव से तात्पर्य असमान जाति पर्याय। पर्याय के अभाव से तात्पर्य द्रव्य में पर्याय का अभाव मत समझ लेना। ऐसा कोई द्रव्य नहीं होता है जो पर्याय से रहित होता हो और जो अशुद्ध पर्याय है उस पर्याय से पृथक् होना ही मोक्ष है। स्वभाव-व्यंजन पर्याय की प्रकटता, यही मोक्ष है। 'पज्जयमूढा परसमया' का अर्थ लोगों ने अधूरा समझ लिया कि पर्याय से रहित, पर्याय से पृथक् होने का पुरुषार्थ करने की

दृष्टि रखिये। ज्ञानियो! पर्याय से पृथक् होना तो कभी होता ही नहीं है। ज्ञानी असमान-जाति पर्याय से पृथक् होना है, समान-जाति पर्याय से पृथक् नहीं होना।

पर्याय से रहित द्रव्य, द्रव्य से रहित पर्याय किसी भी क्षेत्र में, किसी भी काल में, किसी भी स्वभाव से होती ही नहीं है। क्या किया ? अब तक समानजाति पर्याय पर तो दृष्टि ही नहीं गई, उसे देखने का भाव ही नहीं आया। असमान-जाति पर्याय में ही लवलीन रहा। क्या कभी चिंतन में आया कि भवातीत होऊँ— ? पाँच-इन्द्रिय की अनुभूति की स्वानुभूति ले रहे हो। इंद्रियातीत की अनुभूति नहीं ले रहे। ध्यान भी किया, उसमें में भी थोड़ा ध्यान रख लिया। मुमुक्षु धर्मात्मा ने साधन भी जुटाये, उसमें भी आर्त्तध्यान को विराजमान कर लिया। भैया ने एक दिन बोली ली, उस बोली लेने के उपरांत उसको किसी ने बुलवाया कि आप अमुख कार्य करें। और मेरे भैया को और बुला देना। लेकिन संचालक ने भैया को नहीं बुलाया। मेरे इष्ट को क्यों नहीं बुलाया ? ऐसे संयोग की भावना के कारण जब भैया नहीं आ सका और इष्ट को नहीं आमंत्रित कर सका, तो परिणाम बिगड़ गये। ज्ञानी ! इष्ट के संयोग की भावना थी, लेकिन इष्ट का संयोग नहीं हुआ। मेरे इष्ट का वियोग आपने कराया है। भगवान के सामने खड़े—खड़े अनिष्ट-इष्ट दृष्टि बन गई, आर्त्तध्यान प्रारम्भ हो गया। जहाँ कर्मनिर्जरा का आलम्बन था, वहाँ अशुभ कर्मास्रव प्रारम्भ हो चुका। भैया! कितनी बार भगवान् की प्रतिष्ठा के लिए आप पहुँचे? कदाचित दूसरा पहुँच जाय और आपको बोलने को न मिले, ऐसे समय के परिणाम खोजना कि मैं धर्म्यध्यान कर रहा हूँ या आर्त्त-रौद्र ध्यान में हूँ? देहधर्म मात्र को आपने धर्म समझ रखा है। आत्माश्रित धर्म पर दृष्टि ही नहीं है। निर्ग्रन्थ योगी नगर में पधारे। भैया! आपने चौका लगा लिया है। साधु नहीं पहुँच सके, उस समय के परिणामों को खोजना। क्योंकि लोगों ने तो यूँ तक कह दिया कि दान-पूजन करने से बहुत पुण्य मिलता है। पर इसमें ये और समझना चाहिये था कि दान-पूजन की भावना तो करना, कदाचित पात्र न मिले, प्रभू की प्रतिमा न दिखे, उस समय तेरे परिणाम क्या होना चाहिए? महिमा इतनी व्याख्यायित कर दी है कि जीव उस महिमा में इतना डूब गया कि महिमावान से शून्य हो गया। दान-पूजन का फल विशाल होता है, लेकिन आर्त्त-रौद्र ध्यान से रहित होना चाहिये। इसलिये ज्ञानियो! बहुत सारा अपना द्रव्य भी दान में दिया, समय भी लगाया, शरीर का उपयोग भी किया, लेकिन जैसा अनुकूल पुण्य मिलना चाहिये था, वैसा नहीं मिल सका। क्या किया? क्यों किया ? माँ! बेचारे ज्ञानियों ने बहुत कमाकरके घर में लाकरके भोजनसामग्री रखी और आपको बनाने को दी। हण्डी रखकर गये थे चूल्हे पर। जब तक मसाला लेने के लिए अंदर कमरे में गई, अग्नि का तापमान तब तक वो रुका रहता क्या? सब सामग्री आपने डाली,

हण्डी का पात्र जल चुका था। वैद्य ने कहा कि किसी को जुकाम हो गया है, इनको उकाली दे देना। उनके बेटे ने सुन लिया कि वैद्य जी ने कहा है उकाली दे देने को। बेचारे को अभी तो जुकाम ही हुआ था, इसने विधिवत् उकाली भी बनवाई, उसमें घृत का संयोग भी कराया, परन्तु उकाली बिलकुल शरबत जैसी हो चुकी थी। उसको पिला दिया। जो जुकाम ठीक करने वाली थी, वह शरबत जैसी उकली खाँसी और करा गई। बोले, औषधि को तो दिया था? हाँ, औषधि अवश्य दी थी। लेकिन समय कौन-सा था? उसका स्वभाव क्या होगा? औषधि भी राग का हेतु बन गई। क्यों? आपने उसके अनुपात में नहीं दिया, उसके स्वभाव में नहीं दिया और उसको समय पर नहीं दिया। उसी प्रकार से ज्ञानियो! ध्यान रखना कि आपने भगवान अर्हंत की पूजा भी की, निर्ग्रन्थ को दान भी दिया, परन्तु परिणामों को नापना चाहिये था कि परिणाम क्या चल रहे थे?

पहला आर्त्तध्यान है इष्ट वियोग। मेरे स्वामी का वियोग हो गया। भैया! जो आयु क्षीण हो चुकी है, उसे कोई रोक नहीं सकता। जिसका बंध करके आया था, वह तो नियत काल पर समाप्त हो गई। वो तो अपने समय पर समाप्त हो ही रही है, पर तू रुदन करके अपने पुण्य का क्षय जानके क्यों कर रहा है? असातावेदनीय कर्म का आस्रव है इष्टवियोग का चिंतन। कैसे मिलेंगे? कब मिलेंगे? कैसे मिलेंगे, कब मिलेंगे? वे तो नहीं मिलेंगे। माँ! बेटे ने नोटों की गड्डी अग्नि पर रख दी, अब वो नोट कब मिलेंगे? और तूने गुस्से में आकर बेटे को ही चूल्हे पर रख दिया, अब बेटा कब मिलेगा? पैसे तो बेटे की अज्ञानता में गये थे, पर बेटा तेरे सद्ज्ञान के साथ अज्ञानता में गया है। कैसी कषाय? कैसा रोष? और पति आये, उसने बेटे को झुलसते देखा, तो उसने पत्नि को उसी भट्टी में पटक दिया। ओ हो! विवेकियों की दशा देखो। और प्रशासन को मालूम चला तो उस पति को फाँसी पर टँगवा दिया। यानि हरा-भरा परिवार नष्ट हो गया। धैर्य होता, विवेक का आलम्बन होता, ऐसा क्यों होता कि तो आज इस घर में रोनेवाला कोई दिखाई नहीं दे रहा ? ऐसा नहीं होता। जानेवाले चले जाते हैं, पर पता नहीं कितने लोगों को दु:खी करके जाते हैं। भो ज्ञानी! सुनो, आप तो नियम ले लो कि कितनी भी विपत्ति के क्षण आ जायें, आपत्ति के क्षण आ जायें, दु:ख के आँसू तो रो लेना, लेकिन फाँसी लगाने के परिणाम नहीं करना। आप देव-शास्त्र-गुरुओं के भक्त हो तो प्रतिज्ञाबद्ध हो जाओ। आँसू दु:ख के न रोक सको तो रो लेना, लेकिन फाँसी लगाने के परिणाम नहीं करना। पर्याय का नाश करना कोई कर्म का नाश नहीं है। वर्तमान की पर्याय का नाश कर लोगे, लेकिन कर्म तो अगली पर्याय में भी भोगना पड़ेंगे। पर्यायातीत होना है तो वर्तमान की पर्याय के कष्ट को भी शान्ति से सहन करो। इष्ट वियोग, इष्ट वियोग,

हाय मेरे चले गये, हाय मेरे चले गये। भैया! तेरे थे कौन जो चले गये? समयसार दृष्टि जब तक निर्ग्रन्थ योगियों के भी मुख से समाज को नहीं दी जायेगी, तब तक क्रियाकाण्डों में तो उलझा कर रखा जा सकता है, लेकिन जीवन के उस पर्याय की परिणति की रक्षा नहीं की जा सकती। इच्छाओं की पूर्ति चल रही है। सब संयोग मधुर मिलते रहे, सारे लोग जय–जयकार करते रहे, उसमें चेहरा तेरा मुस्कराता रहे, ज्ञानी! ये परिणामों की विशुद्धि की मुस्कराहट नहीं है, ये मान कषाय की मुस्कराहट है। ज्ञानी ! सम्मान होना बंद हो जाये, पूजन होना बंद हो जाये और 'पूज्य' लोग कहना बंद कर दें, तब भी भीतर का पूज्य पुजता रहे, इसका नाम है विशुद्धि परिणाम। इसे भी सहन करो। अहो ज्ञानी ! रोक ही पाओगे, रोक नहीं पाओगे। क्या कर सकते हैं? रागियों की धारा ही ये है। पण्डित जी! अब तो परीक्षा की घड़ी आ गई। जब आपके कहने पर भी कोई आपकी बात न माने, उस वक्त चिंतन कैसा होना चाहिये? गुटखा पर बिच्छू बना रहता है और लिखा होता है कि कैंसर होता है। फिर भी अभागे, साँप और बिच्छू बने होने पर भी, उसे गुटकना बंद नहीं कर रहे हैं। तीर्थंकर–चौबीसियाँ अनंत हो चुकी हैं। उन अनन्त चौबीसियों में अपन दोनों थे। बार–बार प्रभू ने कहा था, लेकिन अपन ने एक बार नहीं माना। यदि मान लिया होता, तो अपन पंचमकाल में दिखाई देते ही नहीं। क्या कहूँ? **"मोहेन संवृतं ज्ञानं, स्वभावं लभते न हि।"** मोह से ढका हुआ ज्ञान स्वभाव को प्राप्त नहीं होता। **मत्तः पुमान पदार्थानां, यथा मदन कोद्रवैः।** जैसे मादक कोदों को खानेवालों को उन्मत्तता आती है, उनको विवेक नहीं जगता। जो ऐसा हो चुका है, उसको वस्तुस्वभाव का विवेक नहीं होता है। वे दिन भी आपके सामने बीतते हैं जब मन में और मुख में णमोकार गूँजता है। विश्वास मानो, मन में और मुख में णमोकार, फिर भी परिणति पाप की ओर जाती है। मन में और मुख में णमोकार गूंजता है, फिर भी क्रिया पापभूत चल रही है। भीतर हिलोरें ले रही है कि तू गलत कर रहा है और रोता भी है, पछताता भी है, फिर भी निज को रोक नहीं रहा है 'मोहेन संवृतं ज्ञानं'।

ये एक जीव की दशा नहीं है, नाना जीवों की दशा है। पाँच पाप किसे मालूम नहीं हैं? सारे जगत को उपदेश देने की सामर्थ्य रखता है जीव लेकिन उपदेश पर चलने की सामर्थ्य रखने वाले जीव कोटि–कोटि जीवों में अंगुलियों पर गिनने लायक यानि एक–दो मिलेंगे। व्याख्यान जो है, वो भाषावर्गणा, वचन–बल का प्रभाव है, वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम का प्रभाव है। एक निर्ग्रन्थ मुनि भी बन गया, यदि टीकमगढ की धरती से भी राग है, तो चारित्रमोहनीय कर्म का आस्रव कर रहा है। क्षेत्र में रति, मित्रों में रति, भाषा में रति, निर्ग्रन्थों

में रति, ग्रन्थों में रति, जब चारित्रमोहनीय का साधन बन रही है, तो विषयवासना में रति संयम की ओर कहाँ ले जायेगी?

बार-बार चिन्तवन चल रहा है इष्ट का। विश्वास रखो, वह अब नहीं मिलेगा। हाँ, आप ऐसा रुदन करके नारकियों के, तिर्यंचों के बीच में जरूर मिल सकते हो, लेकिन गया तो नहीं मिलेगा।

अनिष्ट संयोग है दूसरा आर्त्तध्यान। काँटा चुभ गया, पत्थर लग गया, फोड़ा हो गया, रोग हो गया, फुन्सी हो गयी। ज्ञानियो! तीव्र वेदना सता रही है। या ऐसे लोग मिल गये जो आपके इच्छित नहीं थे। मन में भाव आ रहा है कि कब ये जाये। अनिष्ट संयोग, इसको भी सहन करना सीखो। प्रतिदिन णमोकार मंत्र की सौ माला फेरने वाला जीव, उसकी 108 माला की साधना सरल है, पर एक अप्रिय व्यक्ति के साथ रहना बहुत कठिन है। चट्टान को सिर पर उठाके फेंक कर आ जाना सरल है, पर अनिष्टकारी वस्तु के साथ एक क्षण को रहना कठिन है। सम्पूर्ण सुख सत्ता में बैठा है, इसलिये मुस्करा रहे हो । अनिष्ट के संयोग पर अपनी इष्ट आत्मा को नहीं भूलना, इसका नाम तत्त्वज्ञान है।

इष्टों के बीच में इष्ट की बात कर लेना कौन-सी बहुत बड़ी बात है ? अनिष्टों के बीच इष्ट की बात करते रहना, ये महत्त्व की बात है। देखते-देखते पूरे वंश का वियोग हो रहा हो तब भी चिन्तनधारा चल रही है 'ज्ञानी! मैं कौन? मैं तो एक ही हूँ।' नये सम्बन्धियों का वियोग हुआ है, पर देही के सम्बन्धी ज्ञान—दर्शन का वियोग मेरे से कभी होता ही नहीं है। विश्वास रखना, जब पंचपरमेष्ठी की शरण भी मिली तब आत्मा की ही शरण मात्र बची। जिसमें अधिक अनाचार हो रहे हैं अपधात के, ये अनिष्ट संयोग के राग में हो रहे हैं, द्वेष में हो रहे हैं। अनिष्ट संयोग यानि इच्छित लोगों का नहीं मिलना, इच्छित सामग्री का नहीं मिलना। अभी किसी के शरीर में एकदम दुर्गन्धमय पसीना भर रहा हो और वह बगल में आकर बैठ जाये, फिर देखना आपका चेहरा। भैया! देखने लायक होगा। वहाँ क्या चिन्तन होना चाहिये— ? अमृतचन्द्र स्वामी मल के पिण्ड को देखकर नाक सिकोड़ने को मना कर रहे हैं। धर्मात्माओं को देखकर ग्लानि नहीं करना, इसका नाम निर्विचिकित्सा अंग है, यह तो आपने बहुत दिन से पढ़ रखा है। परन्तु सड़े चूहे ही घर पर निकल पड़े और मल का पिण्ड सामने पड़ा हो, उसको देखकर ग्लानि नहीं करना, इसका नाम निर्विचिकित्सा अंग है। मल ने अपना धर्म नहीं छोड़ा। मल का धर्म क्या है ? दुर्गन्ध देना। जब मल ने अपना धर्म नहीं छोड़ा, तो आप अपना धर्म क्यों छोड़ रहे हो ?

कितने ही कष्ट के क्षण आ जायें, वेदना हो, लेकिन विदित मत होना। वेद-भाव से वेदना, पर विदित मत होना। दुनियाँ के कष्टों को दु:खों को तुमने आँखों से देखा है। अब अपने कष्टों को आत्मा से देखो। पर को समझाना बहुत सरल है। बात मानिये, पर को समझाना बहुत सरल है। रावण भी ज्ञानी था। दूसरे के घर में कुछ हो जाये तो सब समझदार हो जाते हैं और स्वयं के घर में कुछ हो तो बताओ समझ कहाँ गई? उसको बुलाके लाओ। बहुत अच्छे से समझाना जानते हो— भैया! ऐसा तो होता ही रहता है। अब शरीर तो शरीर है, आत्मा तो आत्मा है। ये तब तक अच्छी लगती है जब तक तुम स्वस्थ हो। शरीर में गलित कुष्ठ हो रहा हो, ताप-संताप बढ़ रहा हो, तब भी यों कहता 'आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं।' किसी के गाल पर चाँटा मार दिया और कह रहा 'आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं।' ज्ञानी! दुरुपयोग मत करना जिनवाणी का । हाँ, जब तेरे ऊपर किसी ने चाँटा मार दिया हो, तो मुड़के मत देखना और वहाँ कहना, ज्ञानी! 'आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं।' स्वयं के कष्टों पर 'परभाव भिन्नं' निहारना और दूसरों को कष्ट देकर 'परभाव भिन्नं' मत कहना।

धन्य हो ज्ञानियो! बाजार में जलेबी खा रहा था, जिसमें इल्लियाँ पड़ी हुई थीं। सब घुट—घुटके मर गई थीं और कह रहा है, 'जो है, सो है।' ठीक, ज्ञानी! जब नरक में जायेगा, वहाँ भी कोई मिलेगा, कहेगा, भाई! क्या हो रहा है ? 'जो है, सो है।' खाई थी, सो निकल रही है। कहाँ जायें? कहीं नहीं जायें। जिते से आये, उते नहीं जायें। जिते आज तक नहीं पहुँच पाये, उते जाने। मैं कहता हूँ कि जाओ, तो ये समझ लेते हैं देवी के घर जाओ, बेटे के घर जाओ, माँ के घर जाओ। अरे ज्ञानियो! ये नहीं कहता हूँ। जाओ का मतलब समझ लो कि जहाँ आज तक नहीं गये हो, वहाँ पर जाओ। ये समझा करो भैया।

ध्यान रखना, शारीरिक वेदना आपकी आये वो तो पूर्व कर्म का विपाक था। लेकिन अब वर्तमान में अशुभ सोचकरके ज्ञानी! नया कर्मास्रव मत कर लेना। वर्चत्व वार्ता भी अनिष्ट संयोग है। पता नहीं कब घुटने दर्द करे, सिर दर्द करे और पेट पिराये, कब नाक में नाले बहने लग जायें, तब भी यहाँ अनिष्ट संयोग है। पीड़ा हो रही है तेरे शरीर में, चारों आर्त्तध्यान दिखाई दें, तो पीड़ाचिन्तन और सोच रहा है, भगवन्! कब ठीक हो जायें? तो निदान कर रहा है। अरे ज्ञानी! इस सड़े शरीर को ठीक करने का विकल्प क्यों करता है? ऐसा कह कि कब छूट जाये तो नया शरीर मिलेगा। मृत्यु हमारी दुश्मन नहीं है, मृत्यु हमारी मित्र है। सड़े को छुड़ा कर नया दिला देती है।

जिनते वृद्ध हों, वे आज से बूढ़ेपन से, मरनेपन से घबराना नहीं। मृत्यु आ जाये तो मुस्कराना कि अहो! मृत्यु तो बहुत अच्छी आई। कम-से-कम सड़े से निकाल करके नये में

तो भेजेगी। पर ध्यान रखना, पता है कौन-से में भेजेगी ? ये निर्णय आपको ही करना है। देह के राग में निज विदेही भगवान्आत्मा को मत भूल जाना। जन्म-मरण के राग में लिप्त होकरके जन्म—मरण से रहित अवस्था को भूल मत जाना। ज्ञानियो! ये भी अपने जीवन में ध्यान रखना।

आत्मानं भावयेनित्यं, ज्ञानेन विनयेन च।
मा पुनर्म्रियमाणस्य, पश्चात्तापो भविष्यति।। 5 ।।

ज्ञानियो! कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं कि नित्य ही आत्मा की भावना भावो, अन्यथा हाथ ही मलते रह जाओगे। क्यों ? आत्मा को नित्य ही भावो ज्ञान से और विनय से। यदि नहीं भा पाये, तो ज्ञानी! पुनः मर ही जाओगे, मात्र पश्चात्ताप रह जायेगा। पण्डित जी! वे दिन कहाँ चले गये जब आप दौड़ा करते थे तो जमीन काँपती थी? आज जमीन पर काँप—काँपके चल रहे हो। 'सबके दिन एकसे नहीं होते।' अब क्या है ? पश्चात्ताप करो कि मैं भी मुनिराज बन जाता। **यावत् स्वस्थं शरीरस्या, यावत् केननेन सम्पदा, तावत् उत्तम तपः, गतो वशयां केवल श्रमः** जब तक शरीर स्वस्थ है, इन्द्रियाँ स्वस्थ हैं, तब तक ज्ञानियो! तपस्या कर लो। वृद्ध होने पर मात्र पश्चात्ताप ही बचेगा, क्या कर पायेंगे ? जहाँ पर अभी तक नहीं गये, वहाँ पर जाओ। जो परिणाम तुम्हारे अभी तक जिन स्थानों को स्पर्श नहीं कर पाये, उन परिणामों को उन स्थानों पर ले जाओ।

भगवत् सत्ता त्रैकालिक विद्यमान है। उस सत्ता को समझने के लिए निज की शक्ति को समझना आवश्यक है। निज वैभव को समझे बिना बेभव होता नहीं। पर के वैभव को निज का वैभव मानना, यही भवभ्रमण का साधन है।

जो वस्तु मेरी है ही नहीं, उसको मैंने मेरा वैभव मान लिया है। अनन्तचतुष्टय मेरा वैभव है। उस अनन्तचतुष्टयभूत को जो समझ लेता है, वो बे—भव हो जाता है।

आर्त्तध्यान-ही-आर्त्तध्यान चल रहा है। निज को समझा पाना भैया! बहुत कठिन है। निज को सम्हाल पाना, निज को समझ पाना, कठिन है। क्योंकि अपने पास जो समझ है, वह पर को समझाने की बहुत अधिक है।

भोजन पकता है तो वाष्प निकलती है, जबकि सर्वाधिक शक्तिमान कोई वस्तु है, वो वाष्प ही है। हण्डी में से जो वाष्प निकल रही है, वो ही शक्तिमान रही है।

जितना अधिक वाष्पीकरण होता है, उतना भोजन जल्दी पकता है, दाल जल्दी पसीजती है। पर ज्ञानी! कुकर में भी सीटी है और वाष्प को निकलने का स्थान भी उसमें होता है।

भैया! इस बात को तो स्वीकार कर रहे हो कि वाष्पित होता है तभी भोजन पकता है। पर कुकर की सीटी के माध्यम से वाष्प निकल रही है बाहर। गहरे में जाइये, क्या कह रहा हूँ ? वाष्प निकल रही है बाहर। जो वाष्प बाहर निकल रही है, उस वाष्प को सुरक्षित रखके सग्रंहीत कर लेना बहुत कठिन है। यदि वाष्प बाहर नहीं निकली, तो कुकर का क्या होगा ?

जिसमें भोजन बन रहा है, उस वाष्प को पूर्ण रूप से संग्रहीत किया नहीं जा रहा है। जितनी भोजन को पकने के लिए आवश्यकता थी, उतनी तो ग्रहण कर रहा है, शेष बाहर निकल रही है। यदि उसी वाष्प को संग्रहीत किया जाए उसी कुकर के अंदर, तो उस वाष्प में उस कुकर को फाड़ने की सामर्थ्य है।

मुमुक्षुओ ! आपके पास अनन्तवीर्य की सामर्थ्य है। अनन्तशक्तिसम्पन्न हो। विभुत्व शक्ति आपके पास है, परन्तु इस विभुत्व शक्ति का जो उपयोग आप कर रहे हो, कुकर की भांति मात्र दाल-चावल के सिजाने-पकाने में लगा रहे हैं, परन्तु वाष्प को संग्रहीत करके भगवान बनाने में नहीं कर रहे हो। जब वाष्प में कुकर फाड़ने की सामर्थ्य है, तो मेरे ध्रुव भगवान-आत्मा की विभुत्व शक्ति है, ईशत्व शक्ति है, वह शक्ति कर्म के कुकर को फाड़ने की सामर्थ्य रखती है। इस विद्या का पता ही नहीं आपको। जैसे दाल-चावल पकाने के उद्देश्य से इतना ईंधन नष्ट कर रहे हो, ऐसे ही वर्तमान का जीव जो ध्यान भी कर रहा है, मात्र दाल-चावल, स्थानीय शरीर को स्वस्थ करने के लिए कर रहा है। ध्यान को दवाई बोल रहे हो। मात्र शरीर की रक्षा के लिए शरीर को स्वस्थ रखने के लिए ध्यान का उपयोग कर रहे हो।

कर्म के पिण्ड को फाड़करके इस आत्मा को सिद्धालय में भेजने की सामर्थ्य है, वो मात्र ध्यान में है। पागल होता पुरुष तो ध्यान से। स्वस्थ होता पुरुष तो ध्यान से। जो भी पुरुष पागल होता है, वह ध्यान से होता है। जो भी नरक जाता है, वह भी घ्यान से जाता है। जो भी स्वर्ग जाता है, वह भी ध्यान से जाता है और सिद्ध बनता है तो ध्यान से। ध्यान हुए बिना पागल हो नहीं सकता।

वर्तमान का वैज्ञानिक कोई भी खोज करता है, अन्वेषण करता है, उसका नियंत्रण भी साथ में रखता है। पण्डित जी विधान या प्रतिष्ठा के काल में अनेक प्रकार की मंत्राराधना करते हैं। जिनता विशाल कार्यक्रम होता है, उतनी विशाल साधना प्रतिष्ठाचार्य को करनी चाहिए। प्रतिष्ठाचार्य इतनी साधना क्यों कर रहे हैं? अलग से जाप क्यों कर रहे? पण्डित जी! विधान की पूजा आप कराते हो, लेकिन स्वयं पूजा अलग से करते हो, ऐसा क्यों ?

सोंरया पण्डित जी को मैंने देखा। वो जीव जब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव कराने जाता है, भैया! घंटों–घंटों माला फेरता रहता है। मैंने पूछा, ज्ञानी! क्या कर रहे हो? अलग से पण्डित जी माला फेर रहे थे और जहाँ विधान चल रहा था, पंचकल्याणक चल रहे थे, वहाँ स्वयं पूजन नहीं कर रहे थे, अपनी पूजन अलग से करके आये। मैंने पूछा कि ऐसा क्यों किया? बोले–महाराज! जब करवाता हूँ, तब करने के भाव कहाँ होते हैं ? किसी को आपके लिए डाँटना पड़ता है। किसी को धूप के लिए डाँटना पड़ता है, उस समय भाव नहीं लगते हैं। इसलिये पूजा करके ही पूजा करवाता हूँ। सुनते जाना। पुनः घंटों–घंटों जाप किस बात की चल रही थी ? बोले, स्वामी जी! ये प्रतिष्ठा करा रहे हैं, ये तो यज्ञ है। इसमें जो शक्ति का संचार होता है, उस आई शक्ति के नियंत्रण के लिए मैं अपनी शक्ति का संचय कर रहा हूँ। अलग से बैठकर माला तो फेरना ही पड़ती है प्रतिष्ठाचार्य को। ज्ञानी! साधना के लिए भी साधना चाहिये। यदि साघना करने बैठ गया और साधना लेकर नहीं आया, वो ज्ञानी डिस्टर्ब्ड हो जायेगा, पागल हो जायेगा, असफल हो जायेगा। एक मंत्र की सिद्धि के लिए, उसकी शक्ति को सम्हालने के लिए, दूसरे मंत्र की आवश्यकता होती है। हाँ, एक मंत्र की सिद्धि के लिए दूसरे मंत्र की भी आवश्यकता होती है।

पकाना भोजन पड़ता है, लेकिन पतीली को भी पकना पड़ता है। उद्देश्य जो ऊष्णता को देना है वो खीर के लिए है, न कि पतीली के लिए है। पर उतनी ऊष्णता तो आपको उसके लिए देना ही पड़ती है, क्योंकि उसके तपे बिना वो तपता ही नहीं है। समझ में आ रहा है? कुछ गहरी बातें हैं।

साधना को पचाने के लिए भी साधना चाहिये। आप मौन रहना चाहते हो तो गुस्सा पर नियंत्रण करना पहले। जिसका क्रोध–कषाय पर नियंत्रण नहीं है, वो भैया मौन न ले। इसलिये न ले कि मौन साधना से, जैसे आपके कुकर में वाष्प/ऊष्णता संग्रहीत हो रही थी, यदि वो सीटी न हो तो वह फट जाये। ऐसे ही बहुत सारी साधना से जो शक्ति उत्पन्न होती है, परन्तु लोग बोलकरके उसको सीटी की भाँति बाहर निकाल देते हैं। यदि सीटी नहीं है और मुख से बोलना बंद कर दिया और साधना प्रारम्भ कर दिया, तो हे ज्ञानी! तुझे उतना मोटे चादर का कुकर बनवाना था जो उस वाष्प को संग्रहीत कर सकता था।

मौन–साधना की वाष्प इतनी गम्भीर होती है। जो ज्ञानी बोलेगा नहीं और कषाय रोक नहीं पाया, वो इतना विकराल रूप लेगा, जो तेरी साधना और थी, उसको नष्ट कर देगा, फाड़ देगा। मौन के समय गुस्सा आ गई तो चेहरा देखने लायक होता है। अंदर–ही–अंदर सब झुलसा देगा। इसलिये जो साधना करो, उस साधना की भी साधना करो पहले। साधना एक वैज्ञानिक

तरीका है। साधना विवेक से होती है। शीघ्र साधना करने का विकल्प मत कीजिये। साधना के साधन संग्रहीत कीजिये।

इंदरसे चावल के बनते हैं, लेकिन हर माँ की बुद्धि से नहीं बनते हैं। माँ के भाव भी पवित्र होना चाहिए और माँ का चारित्र भी पवित्र होना चाहिए। खोटे चारित्रवान से सुन्दर पकवान भी नहीं बनते। अशुद्धि अवस्था में पापड़ भी काले पड़ जाते हैं। ये क्या है ? जो विषय पण्डित जी को बोलना चाहिये था, वो मुझे बोलना पड़ता है। जिसके घर में पाँच दिन की भी शुद्धि नहीं पलती है, उसके घर में क्या संस्कार होंगे ? संतान कैसी होगी?

''किशनलाल क्रियाकोश'' में लिखा है कि जिसको राम, महावीर, जैसी सन्तान चाहिये है, तो पाँच दिन की शुद्धि का ध्यान रखो। पण्डित जी! 'कल्याणकारकम्' जैन आयुर्वेदशास्त्र है। जो लंगड़े–लूले, तोतली सन्तानें होती हैं और तोतली संतान के लिए तो नियम है कि ये तो माता–पिता की पाँच दिन की भूल है। जो पाँच दिन भी संयम का पालन नहीं कर पाते हैं, उनकी संतानें तोतली होती हैं। जिसके संयम में भी शुद्धि नहीं है, जिसके चारित्र में भी शुद्धि नहीं है, ज्ञानियो! उससे सुंदर पकवान नहीं बनते हैं, तो भगवान कैसे बन सकते हैं? यही कारण है कि प्रतिष्ठा के काल में यजमान निर्लोभी हो, प्रतिष्ठाचार्य निर्लोभी हो। सूर्य मंत्र देनेवाला गुरु आचार्य भी चर्यावान् हो। क्यों इन सब को पकड़ा जाता एकसाथ?

यह निमित्त-नैमित्तिक प्रभाव है। इंदरसे बनाने के लिए भी बुद्धि प्रशस्त चाहिये। बड़ी–पापड़ काले होते हैं, यह सब लोग जानते हैं। समझ गये? जब जीव के शरीर की स्थिति, भावों की वृत्ति का प्रभाव जड़वस्तु पर पड़ सकता है, तो चेतन पर क्यों नहीं पड़ेगा ? जो इसे नहीं मानता है, वो जैन तो है ही नहीं, वैज्ञानिक भी नहीं है, रसायनशास्त्री भी नहीं है।

बादल गरजते हो, बादल छाते ही, पानी बरसते ही पीतल के बर्तन काले क्यों होने लगते हैं? धातु की प्रतिमा रंग बदल देती है और झूटे पण्डित इसे चमत्कार कहना प्रारम्भ कर देते हैं। भैया! अभी माऊठ का मौसम आने दो, मौसम खिचाव रूप हो जाता है। घर की खिड़कियाँ बंद हो जाती हैं, तो पसीजती हैं दीवालें। दिखने लगता है। और हमारे ये भैया चमत्कार कहना प्रारम्भ कर देते हैं। पण्डित जी साब! बहुत सारे चमत्कार पंचमकाल में ऐसे हो रहे हैं। इसलिये जो अतिशय हमारे आगम में आये हैं, उन अतिशय पर ध्यान दो। वर्तमान के अतिशय तो ऐसे हैं कि जहाँ कोई काम निकलवाना हो आपको तो ये ज्ञानी भी एक बटैया गाड़ कर आ जाता है और दूसरे दिन निकाल लेता है और कहता है कि भगवान प्रकट हो गये।

झूठे चमत्कारों को स्थान नहीं देने का। वही क्रिया करो जिसमें तत्त्व निहित हो। वही क्रिया करो, जिससे सम्यक् की वृद्धि हो। वही क्रिया करो जिससे जिनशासन की प्रभावना हो। कल तुम्हारा ढोंग किसी को मालूम चल जायेगा, उसी दिन सब निष्फल हो जाता है। यदि साधना भी आपको करना हो, तो जो साधना आप टीकमगढ़ में कर रहे हो, वही द्रोणगिरि, अहार जी में, भोपाल, इन्दौर में, सभी जगह एक-से दिखाई देना। टीकमगढ़ में कुछ दिखो, दूसरी जगह कुछ दिखो, ज्ञानी! वह साधना नहीं है। वह तो आप अवसरवादी गिरगिट हो।

नकल अधिक समय तक नहीं चलती। धोबी के बर्तन में गिरे गीदड़ का रंग अधिक समय तक बदला नहीं दिखेगा, एक बारिश की आवश्यकता है। समझ में आ गया क्या ?

धोबी के बर्तन में गीदड गिर गया तो उसका रंग बदल गया। वो कहता है कि मैं वनराज हूँ, मैं जंगल का सम्राट हूँ। मेरा रंग देखिये आप। लेकिन कब तक ? जब तक पानी नहीं बरसा। और पानी बरसा, नील धुल गई तो गीदड़ दद्दा जैसे हैं, वैसे ही हैं। ऐसे ही जब तक वस्तुतत्त्व की व्याख्या नहीं होती है, जिनवाणी का नीर नहीं बरसता है, तब तक नाना रंगों के मिथ्यात्व के गीदड़ दिखाई दे सकते हैं। लेकिन जिस दिन जिनवाणी की शीतल वर्षा होगी, उस दिन सब मिथ्यात्व के रंग धुल जाते हैं। जड़वस्तु पर भी चेतन के भावों का प्रभाव पड़ता है और चेतन पर भी जड़वस्तु का प्रभाव पड़ता है।

भैया! कल भोजन किया था! क्या किया था? भैया! इसके हृदय को पकड़ो। ये ही ज्ञानियों की पहचान है कि आदमी को पकड़ लेने का, कि छुपा रहा है कि नहीं। ये कह रहा है कि, जो कुछ चौके में था, वो चौका लगा हुआ था, वो ही भोजन मैंने किया। ये तो सबको मालूम है कि चौका ही लगता है, चौके में ही भोजन किया जाता है। लेकिन बना क्या था? यदि इसने बता दिया कि ये—ये खाया है, तो बहुत सारी पहचान हो जायेगी। एक तो घर की भी पहचान हो जायेगी और इसकी गृद्धता की भी पहचान हो जायेगी। सबसे ज्यादा क्या खाया था? उसकी पहचान हो जायेगी। उसके परिणामों की भी पहचान हो जायेगी। और एकसाथ में धुल जायेगी। सुनते जाओ। आचार्य विमलसागर जी के संध में एक परम्परा थी, कि जो साधु आहार करके आते थे, उनसे पूछते थे कि आपके आहार कहाँ हुये हैं? लोग हँसते थे। वो बड़ा रहस्य था, लेकिन सच समझिये। तो मालूम चल जाता था कि ये साधु लगातार कितने दिन तक किस घर में गया है? इसका मतलब है कि या तो राग है या फिर गृद्धता है। या पुरुष से राग है या भोजन से राग है कि वहाँ अच्छा बतायेगा। या उस व्यक्ति से राग है। उस घर में क्यों पहुँच रहे हैं। और इतना ही नहीं, भैया! मैं भी आचार्य महाराज के साथ एक माह संघ में रहा हूँ। वो सब बताना ही पड़ता था। मैं बताता था सब।

अब उसमें क्या होता था? बताओ, बेटा! क्या खाकर आये हो? कढ़ी, दाल, रोटी? कितनी दालें खाईं ? और क्या खाया ? उसमें दो लाभ थे। एक तो आचार्य को मालूम चलता था कि साधु क्या रोज बताता है। या तो इसमें गृद्धता है। सामान्य भोजन कितना किया है? उसमें दूसरा ये लाभ होता था कि साधु बीमार नहीं होते थे। क्यों? बताना पड़ेगा आचार्य महाराज को। और छुपा सकते नहीं, क्योंकि महाव्रती हो। और बताना पड़ेगा तो कितना बतायेंगे? और श्रावक खड़े हैं तो बेकार लगता है कहने में। इसलिये कम सामान लेते थे कि जल्दी—जल्दी बता देंगे।

हमारे आचार्यों के रहस्यों को लोग जानते नहीं हैं, हँसने लगते हैं। क्या गम्भीर रहस्य था ? बोलो—बोलो, तू कहाँ आहार करके आता है ? तो बोलता है कि अमुख के घर गये थे। दो—तीन दिन बाद फिर पूछा कि कहाँ गये थे ? छुपा सकते नहीं, क्योंकि महाव्रती आहार के लिये छुपाके तो जाते नहीं हैं । आप नहीं बताओगे तो श्रावक बता देंगे। चार दिन हो गये अमुख के घर जाते—जाते इनको। ये सब अन्तरंग के विषय थे। भैया ! चेतन का अचेतन पर प्रभाव, अचेतन का चेतन पर प्रभाव।

जैनन्यायशास्त्र 'प्रमेय रत्नमाला' ग्रन्थ में लिखा है कि यदि गर्भस्थ शिशु है और माँ साग अधिक खाती है, तो बेटा सांवला होता है। साग अधिक खाती है, पत्ती अधिक खाती है तो संतान सांवली होती है। उसके रंग पर प्रभाव पड़ता है। यदि माँ दूध अधिक पीती है तो संतान गोरी होती है। ये कर्म का नोकर्म है। अभी नहीं मानोगे तो मैं मनवा दूँगा, आप चिन्ता मत करो।

भैया! सुनो, जो दूध अधिक पीते हैं, वो सुबह छोड़ने जाता है तो उसका मल भी सफेद निकलता है। जो अनार का रस पीता है उसका मल भी काला ही निकलता है। भैया! वस्तु-स्वरूप क्या है ? जो यूँ कहता है कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ भी नहीं करता है, अब समझ में आना चाहिए कि वास्तविकता क्या है ? एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का उपादानभूत कर्ता नहीं होता है, पर निमित्तभूत कर्ता होता है। यदि नहीं होता है, तो आपको भोजन करना ही नहीं पड़ेगा।

चेतन का अचेतन पर प्रभाव, अचेतन का चेतन पर प्रभाव। तो सुनो, भैया! जो आपने शाम को भोजन किया था, वो सुवाशित थाली थी। पर सुबह तूने क्या किया? उसको छोड़कर आया न? उसका रूप क्या था?

पुद्गल की परिभाषा सुनी आप लोगों ने आज तक? पुद्गल की परिभाषा क्या है? मुझे मालूम है कि रटी हुई परिभाषा बतायेंगे ये। 'महाराज श्री! जो पूरण—गलन करता है,

उसे पुद्गल कहते हैं।' बराबर, मुझे मालूम था, मैंने उसे स्वीकार कर लिया। इसमें इनका कोई दोष नहीं है, शास्त्रों में लिखा है ऐसा, कि जो पूरण–गलन करता है, उसका नाम पुद्गल है। परन्तु भट्ट अकलंक स्वामी ने पुद्गल की जो परिभाषा बनायी है, उसे सुनिये आप। सुनने लायक है और लिखने लायक है। जो जो पूरण–गलन करता है, उसे पुद्गल कहते हैं, ये सर्व आचार्य-सम्मत परिभाषा है। लेकिन ज्ञानियो! भट्ट अकलंक स्वामी कह रहे हैं कि ये पूरण–गलन तो निहित है ही, जो पुरुष के द्वारा निगला जाता है उसका नाम पुद्गल है। अब देखिये पुरुष यानि आत्मा। ये आत्मा ही तो निगल रही है। किसको निगलते आप ? पुद्गल को।

पुरुष के द्वारा निगला जाये, उसका नाम पुद्गल है। हे पुरुष! पुद्गल के माध्यम से तू जी रहा है। पुद्गल के माध्यम से रो रहा है, हँस रहा है। ये सारा उपकार जीव का जो चल रहा, वह पुद्गल के माध्यम से चल रहा है। अचेतन के द्वारा चेतन का परिणमन चल रहा है।

नरक भी जायेगा तो पुद्गल के सहकारी साधन से जायेगा, स्वर्ग भी जायेगा तो पुद्गल के माध्यम से जायेगा। और मुमुक्षु ! ध्यान रखना, सिद्ध भी बनेगा तो पुद्गल के माध्यम से साधना करेगा, उसका वियोग करके ही सिद्ध बनेगा।

ये बड़ी सहजता में समझना। भैया! आप सामाजिक पुरुष हैं, राजनैतिक भी हो क्या? सामाजिक तो हो। भैया! ये पूरी समाज को सिखाना इस बात को। हम सम्पत्तिशाली हैं, विवेक आपकी जीवन की धारा को पूरा बचा नहीं पायेगा। नगर में जितने समाज के लोग रहते हैं, उन सबके साथ आपको प्रेम और वात्सल्य का भाव फैलाना पड़ेगा। अन्यथा आप घर ही में रह पाओगे, घर के बाहर सफाई करने नहीं जाओगे। उसका ध्यान ही नहीं रहेगा कि घर के बाहर भी आपका उपभोग रहा । आप कितने लोगों का भोग भोग रहे हो? जिस रोड पर आप चलकर आये हो, उस रोड को कितने लोगों ने बनाया? उन लोगों की मेहनत को तुम भोग रहे हो कि नहीं भोग रहे हो?

जिस भवन में आप रह रहे हो, उस भवन को कितने लोगों ने बनाया है? उनकी मेहनत को भोग रहे हो कि नहीं भोग रहे हो? रोड पर सफाई कर रहा है पुरुष, उस पर आप चल रहे हो कि नहीं, उस सफाई को आप निहार रहे हो कि नहीं? घर में कोई आवश्यकता पड़ती है तो मजदूर बुलाता है। अपने सिर के बाल बनवाना है तो दूसरों के घर जाता है। उसका उपभोग तूने भोगा कि नहीं? जिसको तूने वस्त्र धोने को दिये हैं, उसके शरीर की मेहनत को आपने भोगा कि नहीं भोगा?

इसलिये दास, दासी, इन सबके पाप का श्राप लगता है, परिग्रह है। इस पर दृष्टि ही नहीं जा रही है। आज से ध्यान रखना, कोई भी सामाजिक पुरुष को देखकरके उसके प्रति अशुभ भाव भी नहीं लाना, अनादर भी नहीं करना। राजा का राज्य तभी चलेगा, जब प्रजा उसका साथ देगी और प्रजा साथ नहीं देगी तो राजा का राज्य, किसका राजा ?

साधु का जितना सम्मान समाज रखती है, उतना साधु को भी समाज का सम्मान रखना चाहिए। आपको महात्मा कहने की ताकत आप में नहीं है, समाज में ही है। यदि आप अपनी समाज को हीन कहोगे तो आप पहले हीन हो जाओगे।

कभी भी आप मंच से समाज के लिए अशुभ शब्द नहीं प्रयोग करें। भूल कर भी नहीं करने का। महाराज भले ही 24 घंटे में एक बार अंजुली लगाके जाते हों, पर जाना आपको समाज के पास ही पड़ता है। तब उसका हाथ ऊपर होता है और आपका हाथ नीचे होता है।

भैया! विशाल चिन्तन चाहिये, विराट हृदय चाहिये, तभी जिनवाणी समझ में आयेगी। युवाओ! किसी भी जाति, किसी भी पंथ के पुरुष को गाली नहीं देना, क्योंकि आपका जीवन उनके ऊपर ही है। आपकी दुकान पर कोई किसान भी आता है, उसको भी सम्मान देना सीखो। वो अपना काम करना बंद कर देंगे, तो आपको भोजन मिलना भी बंद हो जायेगा। मैं गहरी बात बता रहा हूँ आगम से। मैं खोल इसलिये नहीं रहा हूँ कि कम-से-कम विद्वान् कुछ बोले। आपको कुछ कहना है क्या? आप कहेंगे कि महाराज! अध्यात्म की भाषा बोलने वाले इतनी स्थूल भाषा में क्यों बोल रहे हैं आज ? पण्डित जी! अध्यात्म की रक्षा के लिये बोल रहा हूँ। 12 व्रतों का वर्णन किया है। विश्व में ऐसा कोई धर्म नहीं मिलेगा जिसमें राज्य-व्यवस्था को धर्म में रखा हो, एकमात्र जैनधर्म ऐसा है जिसने श्रावक के 12 व्रतों में राज्य-व्यवस्था को व्रतों में रखा है। अब ये श्रावक जितने प्रतिमाधारी हैं, ये समझ ही नहीं रहे हैं। ये रूखे हो जाते हैं, जबकि इनका व्रत है।

जितने प्रतिज्ञाधारी व्यापारी हों, उनके लिये व्रत हैं। सर्विस वाले हैं, उनके लिये व्रत है। सबके लिये व्रत रखना है। धन्य हो जैनागम को। 12 व्रतों में एक व्रत 'राज्यातिक्रम' सुना कभी? राज्य के नियमों का उल्लंघन करना भी चोरी है। आपको भी राज्य के नियमों का पालन करना होगा। राज्य के विरुद्ध काम करोगे तो राजा दण्डित करेगा। आपकी धर्म की क्षति भी हो सकती है। यदि दीक्षा लेने आप आयें और राज्यकर्मचारी हैं, तो मैं इनको दीक्षा नहीं दूँगा, पहले मैं इनसे कहूँगा कि राज्याज्ञा लेकरके आइये आप। ये तो बैठे आपके मनोज्ञसागर। पहले आप अपनी सर्विस का काम पूरा करके आइये। आगम की आज्ञा नहीं

है राज्यपुरुष को सीधे दीक्षा देने की। यदि आप राज्यपुरुष हैं, तो आप अपने नहीं हो, आप पर दूसरों का अधिकार है। और मैनें आप को दीक्षा दे दी, आप के माध्यम से राजा का विशिष्ट काम होता था तो वो राजा मेरा शत्रु हो जायेगा। और वहाँ जैनसंघ पर उपसर्ग करा सकता है। इसलिये पहले आप अनुमति लेकर आइये। पूरे श्री संघ पर उपसर्ग हो जायेगा। इसलिये आचार्यों को, मुनियों को धर्मनीति के साथ राजनीति का अध्ययन होना चाहिए। राजनीति करने के लिये नहीं, धर्म की रक्षा के लिये।

अब समझ में आ रहा है कि जितना गहरा 'समयसार' है, उतना गहरा लोकाचार भी है। यदि लोकाचार की भाषा बोलो तो आप को लगेगा कि महाराज कौन-से राज्य के नेता बोल रहे हैं? विश्व में जितने नीतिग्रन्थ हैं, वो मैंने पढ़े हैं। जिस व्यक्ति को रीति का और नीति का ज्ञान नहीं होता, वो हर समय हँसी का पात्र होता है। दो वस्तु का ज्ञान होना चाहिये, रीति और नीति।

जिस दिन तुम बहू बनकर पहुँचती, बिटियाँ रीति और नीति शून्य होती हैं। आप अपने माँ के घर का वातावरण देखकर गयी हो, अतः आपको तुरन्त अपने घर की व्यवस्था नहीं फैलाना चाहिये। आप जिस घर में गई हो, उस घर के रीति-रिवाज का ज्ञान भी प्राप्त करना चाहिये।

तटस्थ होकर देखना, उसका नाम है नीति। उनके अनुसार चलने लग जाना, इसका नाम है रीति। और समय पाकर धीरे-से अपना प्रभाव फैला देना, यह है सुनीति।

अब माना कि मैं टीकमगढ़ आया और पहले से ही भैया! ऐसा नहीं, ऐसा करो। अरे महाराज! आपको मैंने समझा नहीं, पहचाना नहीं, अपरिचित की कौन बात मानता है? पहले आप मेरे बनो, मुझे अपना बनाओ, फिर अपनी बताओ। ये वक्ता का पहला लक्षण है। नोट कर लेना। और जो वक्ता अपना बनाये बिना, उनका बने बिना, बकना प्रारम्भ कर देता है, वह बकता ही है, वक्ता नहीं हो सकता।

आत्मीयता दीजिये। क्या हो रहा है? ये भी सुन रहे हैं। और सारे-के-सारे लोगों को लग रहा है, कि महाराज व्यवहार बोल रहे हैं। लग रहा है न? आपको पता नहीं है, 'समयसार' बोल रहा हूँ। चेतन भी अचेतन को प्रभावित करता है, अचेतन भी चेतन को प्रभावित करता है। अब 'समयसार' से बोलता हूँ–

जीवपरिणामहेदुं, कम्मत्तं पुग्गला परिणमंति।
पुग्गलकम्म णिमित्तं, तहेव जीवो वि परिणमइ।। 80।।

जब तक गाथा नहीं बोल रहे थे, तब तक आपको व्यवहार लग रहा था। और गाथा बोली तो आपको लगने लगा 'समयसार' है। हे ज्ञानियो! 'समयसार' अलौकिक रसायनशास्त्र है। इतना सूक्ष्म है। इसलिये भैया! कोई पागल पुरुष आपको मिल जाये, उसे आप पागल ही मत कहना। कभी—कभी पागल होता नहीं है। जिसकी संख्या अधिक बढ़ जाती है, वे ज्ञानी कहलाने लगते हैं और जिनकी संख्या कम होती है, वे पागल कहलाते हैं। भैया! आप मानो। आप अनपढ़ों के बीच में जाकर बैठ जाओ और ज्यादा कुछ बोलो तो पत्थर मारेंगे आप को। इसलिये बहुत सारी बातें तो मैं आपको बताता ही नहीं हूँ, नहीं-तो कल हमें ही पत्थर मारोगे आप। हाँ, आप मानिये मेरी बात को।

ये ज्ञानी बोल रहा था महाराज! थोड़ा श्रावकों के बारे में और कह दो कुछ। अब ये अन्दर का विषय था जीव का। उसको यूँ लग रहा था कि हाँ, बात बिलकुल बराबर चल रही है। लेकिन महाराज ने श्रावक के बारे में नहीं बोला तो श्रावक धर्म का क्या होगा?

भैया! जीव को लगता है कि देखो महाराज जी एक नय से बोलते चले जा रहे हैं। इसलिये पता नहीं अब क्या हो जायेगा? पर इसको मालूम नहीं कि मैं अकेला हूँ। इसलिये ऐसा लगता है कि एक नय से बोल रहे हैं। सत्यता ये है कि तुम एक नय से जी रहे हो, इसलिये आपको ये शब्द एक नय लगते हैं। जबकि आप व्यवहार और बहिरंग के अलावा भीतर जाने की बात नहीं करते हो। इसलिये आपको मेरी बातें एक नय से लगती हैं। जबकि आप स्वयं एक नय में ही हो।

जो पुरुष आपको पागल लगता हो, उसे सर्वथा पागल मत समझना। हो सकता है कि वह इतनी ऊँचाइयों को स्पर्श कर गया हो।

जड़ को चेतन प्रभावित करता है, चेतन को जड़ प्रभावित करता है। तो कुन्दकुन्द स्वामी 'समयसार' में कह रहे हैं 'जीव परिणाम हेदुम्' जीव के परिणाम हेतु बनते हैं। जो कार्माणवर्गणायें लोक में ठसाठग भरी हुई हैं, वे कर्मरूप परिणत हो जाती हैं। ये जीव के द्वारा अचेतन को प्रभावित किया गया है।

'पुग्गल कम्म णिमित्तं' और पौद्गलिक कर्म के निमित्त से आपके भीतर जो रागादिक भाव आ रहे हैं, वो जड़ के निमित्त से चेतन में परिणमन चल रहा है।

मनुष्य होते ही उसकी परिणति अलग होती है, वही मनुष्य पशु बन जाये तो उसकी संज्ञायें अलग दिखती हैं। नारकी हो जाये, तो उसकी कषाय अलग टपकती है। देव हो जाये तो उसका दैवत्व अलग झलकता है। जबकि जीव वही था। हे ज्ञानी! जैसी पर्याय के परमाणु

मिले, वैसा जीव का परिणमन हुआ है। सुबह के प्रवचन में आप आते हो तो अलग से हाव-भाव होते हैं। ऐसा क्यों? क्योंकि जो सुबह की शब्दवर्गणा होती है, वो भिन्नरूप से होती है और जो मध्याह्न की शब्दवर्गणा होती है, वो भिन्न रूप से होती है। वो जीव को प्रभावित करती है।

कुछ क्षण पहले मैं राजनीति की बात कर रहा था तो आपके भाव कैसे हो रहे थे ? आप सब समझ रहे होंगे। पुनः बदल दिया तो पुनः बदल गये। ये सब मैं जान कर कह रहा था। क्यों? मैं ये आपको बताना चाहता हूँ कि जो यूँ समझते हैं कि कोई किसी का कुछ करता नहीं है। नहीं, ज्ञानी! एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को निमित्तभूत प्रभावित करता है, पर उपादानभूत कर्ता कभी नहीं होता है। भोजन से भाव बदलते हैं। धन्य हो जैनशासन को जिसमें शुद्ध भोजन की व्याख्या की गई है। तामसिक भोजन करोगे तो परिणाम तामसिक होंगे, कामादिक भाव होंगे। क्योंकि हर कर्म का नोकर्म होता है। शरीर में शुद्ध धातु की वृद्धि होगी वो तो होगा । और जिसको कमी होगी, तो रोग होगा। आपकी भाषा में बोलें -कभी हाई होता, कभी लो। कितने ज्ञानी लोग हैं? रसि का पालन करो तो न हाई हो, न लो हो। सम बना रहे। अद्भुत व्यवस्था है। व्यवस्थित चर्या करेगा तो कभी वैद्य के घर नहीं जायेगा। अव्यवस्थित रहेगा तो वैद्य के घर जायेगा या वैद्य को बुलायेगा और जब नहीं सम्हाल पायेगा तो यमराज ले ही जायेगा। समय हो गया। क्या करूँ, समय हो ही जाता है।

(महाराज जी! मालूम ही नहीं चलता) ओ ज्ञानी! ऐसे ही मालूम ही नहीं चलेगा और कब अपन लोग चले जायेंगे। ईसे ऐसे कर लो कि जावे से पहले कछु अच्छो कर लो। नहीं तो कल कह ही दिया कि 'मरने के बाद पछताता रह जायेगा, कर कुछ नहीं पायेगा'। ध्यान, धर्म्यध्यान/शुक्लध्यान स्वर्ग/मोक्ष ले जाते हैं। आर्त्तध्यान रौद्रध्यान ये नरक और तिर्यंचगति में ले जाते हैं। आर्त्त की चर्चा कल की थी। अब रौद्र। रौद्र यानि क्रूर। जिसमें हिंसा प्रथम रहती है, क्रूर परिणाम होते हैं। क्रोध कषाय से संधित है, उसका नाम है रौद्रध्यान। हिंसानंदी रौद्रध्यान यानि हिंसा में आनन्द मनाना। भैया! तेरे कपड़े धुल गये? अच्छे लग रहे। किसी से धुलवाये थे? 'दादा धोने वाले ने धोये थे।' वे कहाँ पर धोये थे? 'घर पर धोये थे।' वो पानी छना था क्या? 'कह नहीं सकते।' बहुत अच्छी बात। वो पानी नाली में गया था कि नहीं? 'गया था।' उसमें पाउडर था कि नहीं? अरे! तेरे कपड़ों में तो नील भी दिखाई दे रही है। (भैया! सुनते जाना। उसको नहीं पकड़ना, मेरी बात पकड़ना।) फिर जब स्वच्छ हो गये, तो फिर पहनने में आप को अच्छा लगता है? 'हाँ।' बहुत अच्छी बात है। आज तो अच्छे धुल गये। हे ज्ञानी! तू सोच रहा था कि मेरी प्रशंसा चल रही है। हे ज्ञानी! यदि तू व्रती होकर अपने हाथ से धोता, तो कम पानी फैलाता, प्रासुक पानी से धोता और जिस पानी से धोया था उस

पानी को ऐसे सूखे स्थान पर छोड़ता जहाँ नाली में न बहता। पाउडर का पानी नाली में बहकर गया, कोटि-कोटि जीवों की हिंसा होती है और तू मुस्करा रहा है कि मेरे कपड़े अच्छे लग रहे हैं। ये हिंसानंदी रौद्रध्यान है। पर व्रती हो, सम्यग्दृष्टि हो, अतः इसे नरक तो नहीं भेज पायेगा, लेकिन इसे सिद्ध भी नहीं बना पायेगा तेरा व्रत। इसलिये दिगम्बर मुनि बनना पड़ता है। कपड़े धोने में कोटि-कोटि जीवों की हिंसा होती है। अर्हन्त की पूजा, निर्ग्रन्थ को दान मलिन वस्त्रों से नहीं किया जाता है। फूटे बर्तन, टूटे चावल, मलिन वस्त्रों से पूजा करे सो अगली पर्याय में दरिद्री बने। हाँ, महाराज कहीं नहीं छोड़ते। क्यों छोड़ूँ? वस्तुस्वभाव ऐसा है। मुनिराज बनो। लेकिन कपड़े न धोने पड़ें इसलिये मुनि नहीं बनना जीवन में। ज्ञानी! किसी भी भव में कपड़े पहनना न पड़ें, इसलिये मुनि बनना। तो तिर्यंच बन जायेगा, फिर क्या करेगा? हाँ, ठीक है, ऐसा निदान कभी कर मत लेना कि कपड़े पहनना न पड़ें। अरे ज्ञानी! तिर्यंच बनता रह तो कभी भी नहीं पहनना पड़ेंगे तुझे। कपड़े न पहनना, इसका तात्पर्य समझो। मुझे जीवन में कभी कर्मसहित कपड़े न पहनना पड़े। कर्म नहीं पहने, तो कपड़े क्यों पहने? ज्ञानी सिद्ध भगवान बन जायेगा।

हिंसानंदी, ये तो दृष्टांत मात्र था वस्त्र। ऐसे भी कितने सारे काम हैं जिसमें आप खुशी मनाते हो। मकान बन गया। बहुत सुंदर बना है। मुस्करा रहा है। अरे ज्ञानी! कितने जीवों की हिंसा होती है मकान बनाने में। तू हँस क्यों रहा है? तुझे तो प्रायश्चित्त लेना चाहिए। 'बहुत बड़ी दुकान चलती है, महाराज! फुर्सत नहीं होती है, इतना पैसा आ रहा है।' सुना क्यों रहा है? सुना रहा है, इसका मतलब तू आनन्द ले रहा है। परिग्रहानंदी रौद्रध्यान है। नोट कर लो। जो धन, वैभव में आनन्द मना रहे हैं, ये परिग्रहानंदी रौद्रध्यान है। और ज्ञानी! मुहूर्त नहीं था, लेकिन तनिक ऐसी व्यवस्था है। व्यापार कुछ है नहीं, तो उसी में रहना पड़ता है। इसलिये बिना मुहूर्त के भी निकाल लेता हूँ, हर समय को अच्छा बना लेता हूँ। ज्ञानी! झूठे मुहूर्त भी निकालेगा और मुस्करा रहा है कि मेरा तो काम चलता है। मृषानंदी। मालूम चला कि यहाँ कोई विधान-प्रतिष्ठा होनी थी और तू दूसरे जगह भी ले चुका था, सो कह रहा कि अभी मुहूर्त नहीं है। सीधी कह दो कि भैया! मैं बाहर जा रहा हूँ, आगे आ कर कराऊँगा। मृषानंदी। बुरा मत मानना, भैया! ऐसा ही होता है। और मालूम, माना कि कोई पण्डित जी बन गये। अब कोई समाज के आये और बोले, पण्डित जी! प्रवचन को चलना है, तो कहता है कि बम्बई, दिल्ली आदि से लोग आये थे, पर अब आप नहीं मानते हो, पर उनकी ऐसा-ऐसा लिफाफा के बारे में चर्चा आयी थी। परन्तु आया कोई भी नहीं था। बड़े-बड़े शहरों के नाम ले दो तो पहचान भी हो गई। अरे भैया! मैं तो इन महाराजों से कहता हूँ, भैया! जहाँ तुमको

चातुर्मास करना है, वहाँ कर लेना, लेकिन बार-बार समाज को दौड़ाना, और अनेक वाहनों को चलवा करके हिंसा करवाना और फिर पहुँचके पहुँचना नहीं, ये मायाचारी नहीं करने का। रौद्रध्यान लगेगा, रौद्रध्यान। पाप पड़ेगा। सीधा बोलो कि अभी निश्चित नहीं है, और निश्चित कर ही लिया मन में तो भैया! निश्चित है। अन्यथा अभी स्पष्ट नहीं है, इसलिए आप ज्यादा परेशान मत हो। देखो, टीकमगढ़ वाले लोग आये थे द्रौणगिरि में। मैंने तो स्पष्ट बोल दिया था कि भैया! अभी संभावना कम है। मुझे पसन्द नहीं है घुमाना-घुमाना। अरे! इधर मैं श्रावकों से कहता हूँ, कितनी हिंसा हो रही है। धर्म कुछ और है, नाटक कुछ और है। इसलिये धर्म की व्याख्या होना चाहिए, नाटक छोड़ देना चाहिए। मिठाई याद है आपको? जब अपन स्कूल में पढ़ते थे, वो लाल गोली आती थी। इन्जेक्शन वाले आते थे। अपना बस्ता लेकर भागते थे। याद है आपको? हाँ, लेकिन पकड़े भी तो जाते थे। कितने सारे टीके लगते थे? तो भैया! याद है।

वो लाल गोली आती थी, उसमें शक्कर का कोटर होता था। पर वो शक्कर का जो कोटर होता था वह मात्र बच्चों को रिझाने के लिये होता था। वह औषधि ही होता था, पर यथार्थ में जब मीठा हट जाता था तो कड़वा ही होता था। ज्ञानियो! ये लोक की मिठाई मत दिखाओ, मिठाई से रोग ठीक नहीं होता है। जो गोली के भीतर औषधि भरी हुई है, वही औषधि है।

धर्म का मर्म तो समझना पड़ेगा। रौद्रध्यान । हिंसानंदी हो गया, मृषानंदी हो गया, अब चौर्यानंदी। भैया! हीटर भी जलता तेरे घर में, लाइट भी, पंखे भी, कूलर भी। पूरा बिल देता है क्या? भैया! तू तो व्रती है, यहाँ तो झूठ बोल ही नहीं सकता। यहाँ भैया मात्र से तात्पर्य नहीं है। चोर-चोर मौसेरे भाई। भैया! पूरे मीटर का बिल भरता है? आजकल बुद्धिमान लोग हैं, मीटर में ही तार फँसा देते हैं। कहने हैं कि चलने ही नहीं दूँगा, घूमने ही नहीं दूँगा। (महाराज जी अब तो खम्बे पर लग गये)। अच्छा, खम्बे पर लग गये, ठीक है।

भैया! इनकम टैक्स, सेल्स टैक्स पूरा भरते हो? देख लो, बड़ी सफाई दे रहा था, इसलिये फंसाया इस ज्ञानी को। फिर मालूम क्या कहता है? देख, इतना कमाया है और कैसे कमाना पड़ता है? ज्ञानी! झूठे-झूठे, चोरी-चोरी से कमा रहा है। चौर्यानंदी रौद्रध्यान कर रहा है। बताओ, कल्याण कैसे होगा? कम-से-कम चार रौद्र और चार आर्त्त, इन आठ ध्यानों से रक्षा कर लो, तो विश्वास रखना, अष्टम वसुधा पर तुम्हारा निवास हो जायेगा। सिद्धालय पर पहुँच जाओगे। भैया! कितनी ही क्रिया कर लो, देह का धर्म शरीर का धर्म, देह की प्रशंसा तो करा देगा, लेकिन विदेही नहीं बनायेगा।

आज्ञा विचय, अपाय विचय, विपाक विचय, संस्थान विचय ये 4 धर्म्यध्यान हैं। इनका आश्रय लो। एकत्व वितर्क, पृथक्त्व वितर्क, सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाति, व्युपरत क्रिया निवर्तीनि ये 4 शुक्लध्यान हैं। इनका आश्रय होगा, तभी जीव सिद्ध भगवान बनेगा।

ठीक है? कठिन किनता ही हो, पर इतनी श्रद्धा रखना। आपसे पालन नहीं हो रहा, मैं आपको मानसिक तनाव में नहीं डालना चाहता। पर इतना विश्वास रखना कि जब भी सिद्धि होगी, इनके पालन से ही होगी। इस श्रद्धा को मत तोड़ बैठना। कोई पाप भी करता रहे, मैं उसको हीन नहीं समझता, परन्तु इतना ध्यान रखना, तू पाप कर रहा है, पाप छोड़ नहीं पा रहा है, इतना ख्याल रखना कि पाप को पाप कहते रहना। कभी-न-कभी तो तू पाप छोड़ देगा।

पाप को पुण्य कह करके मुस्कराना मत। आपके हृदय में बहुत सारी बातें ऐसी रखी हुई हैं, जो आप छोड़ना चाहते हो, लेकिन तुमसे छूटती नहीं हैं। पर इतनी श्रद्धा बनाकर रखना कि जो मैं कर रहा हूँ, वो सही नहीं है। जो होना चाहिये, वही सही है। समझता हूँ कि बहुत सारी ऐसी विषमतायें आपके सामने हैं। लेकिन असत्य को सत्य कहने की इच्छा मत रखना। अगर कोई मेरे से पूछे-महाराज! वाँचना कहाँ कर रहे हो? टीकमगढ़ में। वो कहेगा कि कहाँ करनी चाहिये थी? मैं कहूँगा, तालाब के किनारे, नदी के किनारे। बोले, क्यों? भैया! मेरी सामर्थ्य नहीं है, इसलिये टीकमगढ़ में कर रहा हूँ। परन्तु यदि मैं भी चतुर्थ काल का होता तो मैं भी आपको दिखा देता कि मैं भी तालाब के किनारे ही बैठता। क्या करूँ? ऐसा कोई पाप किया होगा, सो यहाँ बैठना पड़ रहा है। ये हमारी कमजोरी है। परन्तु विश्वास है कि आज से भावना भाऊँगा तो वो दिन भी कभी मिलेगा।

पर्वत की चोटी पर ध्यान करूँगा। नदी, तालाब के किनारे, वृक्ष के नीचे बैठूँगा। और निज में रहकरके, कर्मो का नाश करके, अर्हन्त और सिद्ध बनकर सिद्धालय में बैठूँगा। और फिर कभी आपसे मिलने नहीं आऊँगा। वो दिन भी आयेगा, जरूर आयेगा। विश्वास है मुझे। आप सब भी विश्वास कर लो। कमरे में शान्ति नहीं है, कुण्डी लगा रखी है, वे नदी के किनारे बैठे हैं।

उपसर्ग, को वह सहन कर रहे हैं शान्ति से। धैर्य का कम्बल ओढ़े हुये हैं। हम भी कम्बल ओढ़ते हैं, पता है आपको? पर अधूरी मत सुन लेना, नहीं-तो हल्ला कर दो। कम्बल से तात्पर्य धैर्य का कम्बल ओढ़ते हैं मुनिराज। जब सारे लोग सी-सी करते हैं, तब वे ध्यान में लीन होते हैं।

तापते भी हैं। ध्यान की अग्नि में तापते हैं।

जे जाया झाणग्गियए कम्म-कलंक डहेवि।
णिच्च-णिरंजण-णाण-मय ते परमप्प णवेवि॥ प. प्र.॥

ध्यान की अग्नि के द्वारा कर्मकलंक को नष्ट कर दिया है जिनने, उन सिद्ध परमेष्ठी भगवान को नमस्कार हो। वे जयवन्त हों।

एक बच्चा तो कल हमारा गुरु निकल आया था। मुझे उसकी बात अच्छी लगी। वास्तव में गुरु बनके आया था। शाम को वैयावृत्ति कर रहा था। धीरे से कहता है, महाराज श्री! जो आशीर्वाद हम सबको दिया था, वो ही भावना में आपके प्रति भाता हूँ। वो कह रहा था, हे महाराज! आपका ये ही भव आपका अन्तिम भव होये, आपके सब भव समाप्त हो जायें। बेटा! धन्य हो तेरे सोच को। वो कह रहा था कि जो बात आपने कही थी हम सबके लिए, वो ही आपको फलीभूत हो जाये। बस यही भावना है, कोई आपको भेंट नहीं देता। तब लगा कि ये मत सोचना कि बच्चे सुनते नहीं हैं। बड़े गहरे से सुनते हैं। ऐसा भी नहीं था कि किसी ने सिखा कर भेजा हो। मैंने पूछा कहाँ से बोलते हो? बोला-अन्दर से बोलता हूँ। अब आप सोचो, जिस नगर के बच्चे-बच्चे आत्मा में लीन हो रहे हों, उस नगर के बूढ़ों से क्या कहना?

तथा च सत्तपः कार्यं, ज्ञानसद्भावभावितम्।
यथा विमलतां याति, चेतो रत्नं सुदुर्धरं।। 6 ।।

जिस प्रकार से यह कठिनता से प्राप्त आत्मारूपी रत्न निर्मलता को प्राप्त हो, उसी प्रकार से ज्ञान की यथार्थ भावना करते हुए समीचीन तप करना चाहिये।

शीघ्र तपस्या में लवलीन हो जाना विवेकहीनता है। सुगन्धित, अतिघृतपुष्ट दुग्ध यदि आपको तैयार करना हो तो घास की आग में कभी मत तपाना क्योंकि एकदम लौ आती है। ऐसे ही जो साधक धीरे-धीरे तपस्या करता है, उसको चारित्र की मलाई पड़ती है, भेदविज्ञान का मक्खन निकलता है और मोक्ष का घृत निर्मित होता है। इसलिये साधना की विधि सीखना चाहिये, रिमोट कण्ट्रोल के साथ। गुरु की यही आवश्यकता है। मेडीकल स्टोर खोलने से कोई डाक्टर नहीं होता, दवाई दे सकता है। पण्डित जी के पास जाये, तो वे अट्ठाईस मूलगुणों के बारे में अच्छी तरह से समझा देंगे, लेकिन अनुभूति शून्य।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

नरजन्म का सार: आत्मज्ञानपूर्वक संयम-धारण

नृजन्मनः फलं सारं, यदेतज्ज्ञानसेवनम्।
अनिगूहितवीर्यस्य, संयमस्य च धारणम्।। 7 ।।

मानव-जन्म का यही सार (उत्तम फल) है कि अपनी शक्ति को न छिपाकर (शक्ति के अनुसार), संयम को धारण करना और आत्मज्ञान की भावना करना।

।। देशना।।

अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी, मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यप्रवर कुलभद्रस्वामी ग्रन्थराज 'सार समुच्चय' में मुमुक्षु जीव के अन्तस्थ परिणामों की धारा का व्याख्यान कर रहे हैं और यूँ कह रहे हैं, ज्ञानी! अंतरंग के भावों का अपहरण मत कर और बहिर् में वीर्यान्तराय कर्म का अपहरण मत कर।

परवस्तु को हरनेवाले तस्करों को बहुत देखा, परवस्तु को छीननेवाले लुटेरों को बहुत देखा, लेकिन मालूम ही नहीं है कि निज वस्तु को अपहरण स्वयं ही कर रहा है। जो जीव अपनी शक्ति को छिपाके रहता है, वह तस्कर है।

शासन के विरुद्ध व्यापार करना तस्करी कहलाती है। बस, मुमुक्षुओ! जिनशासन के विरुद्ध क्रिया करना, ये तस्करी नहीं तो क्या है? भगवान जिनेन्द्रदेव ने कहा है कि अपनी शक्ति को अनुग्रहीत करके, अपने वीर्य को अनुग्रहीत करके, बिना छुपाये साधना करना। जब आपके शरीर में पौरुष है, आपके शरीर में बल है, इन्द्रियाँ सशक्त हैं, उस काल में आपको साधना करनी चाहिये थी। जो साधना का समय था, उसको विराधना में लगाया है।

पण्डित जी! घर में दीप दिया था आपकी माँ ने कि बेटा! जाओ, इस दीपक को ले जाकर भगवान की आरती उतार लेना और जिनवाणी का वाचन करना इसके प्रकाश में। हे ज्ञानी! माँ ने दीपक दिया घृत भर करके कि बेटा! जाओ, श्री जिनेन्द्र की आरती उतार लेना और आरती उतारने के उपरान्त इसी के प्रकाश में जिनवाणी का स्वाध्याय कर लेना। उस माँ के द्वारा प्रदत्त दीप को लेकरके आप उस स्थान पर पहुँचे जहाँ अंधकार था और हाथ में ताश की गड्डी थी। उस दीपक के प्रकाश से ताश की गड्डी को देखा और मित्रों के बीच में बैठकर आपने ताश खेलना प्रारम्भ कर दिया। और उस दीपक के प्रकाश में आपने रात्रि में भोजन प्रारम्भ कर दिया। हे ज्ञानी! तूने ये क्या किया ? 'कारण कार्य विपर्यास।'

जिस कार्य के लिए तुझे दीपक दिया था, उस कार्य को तूने नहीं किया। और तूने गलत कार्य किया है। ऐसे ही हे ज्ञानियो! आपके पुण्य से प्रदत्त मनुष्यपर्याय, इन्द्रियाँ, सुकुल, प्रज्ञा ये सबकुछ आपको मिला है। माँ भारती कह रही है, हे बेटे! इतनी द्रव्य को प्राप्त करके भी तूने विषयों की भट्टी पर डाल दिया है। हे ज्ञानी! तूने क्या किया है? माँ के साथ छल किया कि नहीं किया?

ज्ञानी! कण्ठ मिला है, प्रज्ञा मिली है। कोटि-कोटि द्रव्य तुझे देने आ जाये और कहे कि चलो, मेरी शादी में भोजन खा कर आ जाओ। तो जाने का नहीं। वो यूँ कहे कि मेरी मिथ्यात्व की पुष्टि की संगति कर दो आप, मेरी इच्छाओं की पुष्टि की संगति कर दो आप, तो कह देना कि ज्ञानी! मैंने पूर्व में तपस्या की थी, साधना की थी।

जिस जीव ने उज्जवल मौनव्रत की साधना की हो, उग्र-उग्र तपस्या की हो, ऐसे जीव के सार से संदर्भित मधुर वाणी प्रकट होती है। और जिसने मौनसाधना न की हो, उसके कण्ठ से फटे बाँस जैसी आवाज निकलती है।

साधना का फल तो साध्य की सिद्धि है। साधना का फल विराधना नहीं करना। कह देना कि पुद्गल के टुकड़ों से नहीं बचा हूँ, भगवान की भक्ति पर टिका हूँ। कोई आपसे कहे कि भैया! मेरे पक्ष में आप बोल दो, इतना आपको द्रव्य मिलेगा, तो कह देना, ज्ञानी! मैं पुद्गल के टुकड़ों पर बिका विद्वान् नहीं हूँ, मैं अर्हन्त की भक्ति पर टिका, पंचपरमेष्ठी की भक्ति पर टिका विद्वान् हूँ ।

पुद्गल के टुकड़े तो किसी भी रूप से कमाये जा सकते हैं। आश्चर्य है पण्डित जी! लाभान्तराय कर्म का क्षयोपशम होता है, तो कसाई भी जीवों का वध करके पैसा कमा रहा है। बहुत अच्छे से सुनना, भैया! पैसे कमाने को महत्व नहीं देना। पैसा कमाने से नहीं मिल रहा है। वर्तमान का पुरुषार्थ तो निमित्त मात्र है। भूत का, पुण्य का, लाभान्तराय का द्रव्य रखा हुआ था इसलिए छुरी लेकरके भी करोड़पति बना बैठा हुआ है। जिसके कत्लखाने खुले हों, कत्लखाने जिसके नाम पर चल रहे हैं। इसलिये ध्यान रखना, श्री का आना कोई तीव्र प्रशस्त पुण्य है, ऐसा नियम नहीं है। इसलिये श्री पर ध्यान नहीं देना। लाभान्तराय कर्म के क्षयोपशम से जहाँ हाथ डालेगा वहाँ मिलेगा।

पर श्री के राग में श्री-जी छूट गये तो, ज्ञानी! भव-भव में भटकेगा। जब तक शरीर स्वस्थ है, इन्द्रियाँ सहकारी हैं और प्रज्ञा प्रशस्त है, तब तक तपस्या कर लो। बुद्धि के क्षीण हो जाने पर विवेक नष्ट हो जाता है। और विवेकविहीन पुरुष के पास साधना किस बात की?

समितियों व गुप्तियों के पालन करने के लिये प्रज्ञा चाहिये। वीतरागी जिनेन्द्र के शासन में, आगम में ये स्पष्ट लिखा हुआ है कि आचार्य पागल पुरुष को दीक्षा न दें। उन्मत्त पुरुष को आगम में दीक्षा देने का निषेध है। माना कि पण्डित यों कहे कि महाराज! उसका कल्याण कैसे होगा ? तो ज्ञानी! उसके कल्याण का नियोग ही नहीं था। क्यों? ऐसे पुण्य का बंध करके आया कि कल्याण का नियोग ही नहीं बनता।

कल्याणकारी शरीर का मिलना भी कल्याण का निमित्त होता है। और शरीर कल्याण के लिये नहीं मिला, इसका तात्पर्य है कि तू कितना घोर पाप करके आया होगा। अब तू सीधा मुनिराज बनने के भाव कर ही पायेगा, पर बन नहीं पायेगा। भाव करते रहना, श्रावक के व्रतों का पालन करते रहना, जिससे कि भविष्य में ऐसा पुण्य कमा लो कि सुन्दर शरीर मिले, प्रशस्त पुण्य मिले, उज्जवल प्रज्ञा प्राप्त हो, जिससे महाव्रतों का पालन कर सके।

एक वो शिला है ग्रेनाइट की जिस पर गोम्टेश बाहुबली स्वामी उत्कीर्ण हैं। पाषाण तो पाषाणत्व की दृष्टि से सदृश्य है, परन्तु सभी का स्वभाव तो भिन्न-भिन्न है। हर पत्थर में प्रतिमा बनने की योग्यता नहीं होती है। यदि एक जीव हीनाधिक अंग से युक्त हो, कुल से हीन हो, और उस पुरुष में संयम-व्रत धारण करने के परिणाम हों, उस समय उसको लगता है कि कुल की श्रेष्ठता कितनी महान होती है।

युवाओ! यह वह कुल है कि प्रातः होते ही आपके लोटे से अरिहन्त का मुख धोया जाता है। भैया! विश्वास रखना, हीनकुलाचरण से युक्त पुरुष उज्जवल कुल वाले पुरुष को देखकरके अपने-आप में हीनभावना महसूस करता है और उसके मुख से निकलता है कि भैया! आप तो बड़े आदमी हो। कहाँ से बड़े हो?

जिसका भाव विशुद्ध है, आचरण पवित्र है, वही बड़ा पुरुष है। जिसका भाव विशुद्ध नहीं है, आचरण पवित्र नहीं है, वो उज्जवल कुल में जन्म लेने के बाद भी हीन ही है। विश्वास रखना, ज्ञानियो! कर्म का कलंक तो मिट सकता है, पर कुल में लगा कलंक नहीं मिट सकता है। चारित्र में लगा कलंक नहीं मिटता, कर्म-कलंक मिट जाता है। हे भरतेश! हे बाहुबली! आप दोनों भाई कर्मकलंक रहित हो चुके हो, लेकिन सगे भाई आपस में लड़े थे, वो कलंक आज तक नहीं मिटा।

हे भैया भरत! आप तो ज्येष्ठ थे। शक्ति व सम्यक्त्व आप के पास था। क्षायिक सम्यक्त्व की निधि को प्राप्त थे, तो आप छूट गये, परन्तु जो भाई पर चक्र चलाया था, उसका जो कलंक लगा हुआ था, वो आज तक नहीं छूटा। जब भी इतिहास की बातें होती हैं तब यूँ कहा जाता है कि भरतेश ने अपने भैया पर चक्र चलाया था। मेरे भैया, मेरे छोटे भैया,

बड़े भैया, जितने भी यहाँ बैठे हों, इतना ध्यान रखना कि घास की रोटी खा लेना और रोटी न भी मिले तो णमोकार मंत्र पढ़के सल्लेखना ले लेना, लेकिन ऐसा कार्य करके मत जाना कि इतिहास ये कहे कि आपने ऐसा किया था।

पर्याय नहीं बचती। जिस पर्याय में पाप किये हों, वह पर्याय नहीं बचती। जिन परिणामों से पाप किये हों, वे परिणाम भी नहीं बचते। परन्तु इतिहास जीवन्त रहता है। स्वयं के जीवन में सोचो। भैया! जीवन में कितनी भूलें की होंगी, वे दिन निकल गये। पुनः तू भगवान का पुजारी भी बन चुका है। पर उन भूलों का ध्यान तो आता है, वे मिटी नहीं।

भैया! जब सारा जगत आपको सम्मान की दृष्टि से देखता है, जिस समय तेरा सम्मान चल रहा था, उसी काल में तुझे तेरी करतूती का बोध हो जाये, तो सारे सम्मान का आनंद अपमानभूत नजर आता है। देह की चमक का सम्मान है। देह की चमक का सम्मान, देह की पर्याय का सम्मान तो जगत के लोग कर पायेंगे, पर मेरे परिणामों का सम्मान मेरे परिणाम ही कर पायेंगे।

जिसके स्वयं के परिणाम स्वयं के प्रति सम्मानभूत दिखें, समझ लेना कि महान है। भैया सुनाई दे रहा है सबको? ज्ञानी! स्वयं के परिणाम में स्वयं का सम्मान न दिखे, समझ लेना कि तू सम्मान के योग्य हो चुका है। स्वयं के प्रति बोध हो गया, इसलिए वह सम्मान के योग्य है। पर जिसे स्वयं के दोष समझ में न आ रहे हों, वह असम्मानीय है।

लोक का सम्मान तो ऐसा है कि अभी ये बेन्चें बिछा दो आप। 10,15 दिन बिछाते रहना, वाचना के अन्त में आपको तिलक लग जायेगा। क्यों? इसने बहुत सहयोग किया है।

शरीर की साधना तो लोक में दिखाई देती है, शरीर की तपस्या तो लोक में दिखाई देती है, पर भावों की तपस्या निजलोक में ही दिखाई देती है। इसलिये आचार्यभगवान् कह रहे हैं।

एक-एक शब्द पर ध्यान देना। हे श्रावक! उस तपस्या को करो, जिस तपस्या से कर्म का क्षय हो। 'कर्मक्षयार्थं तप्यते इति तपः।' जो कर्मक्षय के लिए तपा जाता है, उसका नाम ही तप है। और जिससे कर्मक्षय का लक्ष्य नहीं है, वह ज्ञानी तपस्या को प्राप्त नहीं होता। चक्रवर्ती भी 8 उपवास करता है, नारायण भी उपवास करता है जब दिग्विजय को निकलते हैं। ये राज्य-तप है, राजसी तप है। और कहीं आपकी इच्छा की पूर्ति न हो, तो लोग चौराहे पर बैठकरके 'अनशन' कर रहे हैं। हे ज्ञानी! ये हड़ताल है, भूख हड़ताल। कोई व्यक्ति यों कहे कि मेरी इच्छा की पूर्ति नहीं हो रही है, मैं उपवास किये लेता हूँ। ज्ञानी! उपवास ही

करना था तो इच्छा से रहित होकर करता, तो अनशन तप हो जाता है। तू साकांक्षा से कर रहा है, इसलिये परिग्रह है। भैया! नोट कर लो।

आप जयसागर बनके टीकमगढ़ पधारे और आपने कहा-पण्डित जी! मैं यहाँ आया हूँ, कुछ धार्मिक अनुष्ठान होना चाहिए। कल तक मुझे बता देना कि निर्णय हो गया कि नहीं? पण्डित जी नहीं आ पाये, अथवा समाज की कोई विषमता रही जिस कारण निर्णय नहीं कर पाये, तो बोले—जब तक निर्णय नहीं होगा, तब तक मेरा उपवास है।

हे स्वामी! क्यों स्व-पर के परिणामों की हिंसा कर रहे हो? लोग कहेंगे महाराज ने ठीक तो किया है। धार्मिक अनुष्ठान के लिये किया है, अच्छा ही तो किया है। हाँ, लोक की आँखें तो बहुत अंधी हैं। खुली आँखें भी अंधी हैं। क्योंकि जितने भी अनिष्ट हुये हैं, खुली आँखों से हुये हैं।

यदि किसी रावण ने सीता को देखा तो खुली आँखों से देखा था। खुली आँखों से ही लंकेश ने सीता को देखा, तो रावण नेत्रवान् था कि अंधा था? अहो! आश्चर्य- खुले नेत्रों से देखने वाले घोर अंधे हैं।

उल्लू को दिन में नहीं दिखता, कौए को रात में नहीं दिखता, पर कामी को न रात में दिखता, न दिन में दिखता। वो अंधा नहीं तो क्या हैं? उसको दिन में भी नहीं दिखता, उनको रात्रि में भी नहीं दिखता। हे लंकेश! लोग कहेंगे कि आपने सीता का अवलोकन नेत्र खोल कर किया है, परन्तु हे लंकेश! सद्गुरु कहेंगे कि तूने आँख बंद करके देखा है।

यदि हृदय की आँख खुली होती, तो परनारी का हरण नहीं करता, अपने शील का पालन करता। जितने वासनाओं की कामनाओं को खुले आँख से देखते हैं, सारे-के-सारे अंधे हैं। आज समझ में नहीं आये तो किसी पर्याय में समझ में आ जायेगा। और अभी समझ में न आये तो केवली के समवसरण में जाके पूछ लेना कि विशुद्धसागर जी ने कहा था कि खुली आँखों से देखने वाले अंधे होते हैं।

जिस जीव ने इन नेत्रों से जिनवाणी को नहीं निहारा, जिस जीव ने इन नेत्रों से निर्ग्रन्थ गुरु को नहीं निहारा, जिस जीव ने नेत्रों से अर्हन्त की मुद्रा को नहीं निहारा, जिस जीव ने इन नेत्रों से जीवों की रक्षा को नहीं देखा है, ईर्यापथ का शोधन नहीं किया है, वो जीव खुली आँखों से अंधा है।

एक वे पुरुष हैं जो देख-देख कर जीव की रक्षा कर रहे हैं और एक वे पुरुष हैं जो देख-देख कर जीव को मार रहे हैं। देख-देखके, कोई बचा तो नहीं, पकड़ो। ऐसे भी

लोग हैं लोक में। एक कसाई भी छुरी चला रहा है बकरे के ऊपर तो देखकरके ही तो चला रहा है। लेकिन देख कहाँ रहा है? यदि देख लिया होता, तो उसे भी उसमें भगवान-आत्मा दिखते। भैया! सम्हलके सुनो। तप की व्याख्या चल रही है। सुनो समझ के। यथार्थ स्वरूप समझना। क्योंकि अब तो वृद्ध-अवस्था है आपकी। अब तो सत्य समझ में आता ही है। जब पुरुष अपने बेटे की माँ के पास जाता है, तो दुनियाँ कहती है कि आँख खोलके गया है, पर हे ज्ञानी! आँख बंद करके गया वो। स्वयं का बैरी बन कर गया है। स्वयं के शील को भंग करेगा, सो स्वयं का बैरी है। एक नारी के शील को भंग करेगा, सो उसका बैरी है। हे बैरी! कोई धनुष-बाण चला कर शरीर में मारे, वो तो पर्याय का नाश करेगा, पर तूने आत्मा के परिणामों का घात किया है। तेरे से बड़ा हिंसक कैसे होगा? इसका शोधन करने कहाँ जाओगे?

धर्म के निमित्त से भी यदि भूखहड़ताल की है, तो जिनवाणी उसे उपवास की संज्ञा नहीं देती है। मैं तीन उपवास करूँगा, चार उपवास करूँगा। क्यों ? मेरी इच्छा की पूर्ति नहीं हुई। जिनवाणी तुम्हें तपस्वी नहीं कहेगी। कसाई है, कसाई। शरीर सुखा रहा है कषाय के उद्रेक में। हे ज्ञानी! शरीर सुखाने के स्थान पर कषाय सुखा लेता तो भगवान बन जाता। क्या किया? तूने आज तक क्या किया?

भैया! घर में कितनी बार थाली फेंकी? लगता था कि मैं थाली फेंक दूँगा तो मेरा काम बन जायेगा। अज्ञानी को थाली फेंकते समय काम बनता दिख रहा था, पर ज्ञानी कह रहा है कि तेरा काम बिगड़ चुका। जो तेरी पत्नी प्रेम से रोज भोजन परोसती थी, अब सुन्दर-से-सुन्दर बना कर लायेगी, लेकिन भीतर से बोलेगी-ले खा ले। ऊपर से कहेगी कि खा लो, लेकिन भीतर से बोलेगी कि ले खा ले। जब तक पति था, तब तक परोसती थी। जिस दिन से तेरी प्रीति का पतन हुआ है, उस दिन से परोसना बन्द कर दिया है उसने, डालना शुरू कर दिया कि ले खा ले। भैया! क्या हो गया? भैया! क्या सही नहीं कह रहा हूँ? हाँ, शत-प्रतिशत सत्य है। किसी से काम बिगड़ जाये तो उसको सम्मान देना चाहिये। क्योंकि जब काम बिगड़ता है तो ध्रुव सत्य मानके चलना, उसको गलत कहने वाला बच्चा भी मिल जाता है।

भैया! यदि आप के मुख में गुटखा भी दिख जाये, विश्वास मानना, आपका वो सुन्दर चमकता चेहरे वाला बेटा है, वो पिता जी तो बोलेगा, लेकिन मेरे पास जरूर आयेगा, सो धीरे से कहेगा महाराज जी! आप पिता जी को थोड़ा समझा देना, गुटखा खाने लगे आजकल। ऐसा बोलेगा वो।

जिससे भूल हो जाये, उसको भी सम्मान से देखना। क्यों? इसलिये सम्मान से देखना कि देखो इसने भूल की है, इसका अपमान शुरू हो चुका है। ये मेरा गुरु बन चुका है। ऐसा मुझे नहीं करना चाहिये वरना मेरा भी अपमान होगा। विश्वास मानिये, यदि सिनेमा भवन में पण्डित जी टिकिट लेकर पहुँच गये, बेचारे ने पैसे तो दिये ही हैं। उसी दिन सबसे घटियल चित्र दिखाये गये हों तो उसका मन भी नहीं लगता, तब भी बैठा है वो। क्यों? इसलिये कि अब पैसा देके तो आये हैं।

धन्य हो, कि धिक्कार है? पैसे कमाने में पाप कमाया और पैसे गँवाने में भी पाप कमा रहा है। और पैसे दे करके चारित्र भ्रष्ट करने के लिए चित्र देखने गया था। क्या किया? युवाओ! समझ में आ रहा न? भैया! समझ में आ गया, कि आ रहा है? ज्ञानियो! ये तो भगवती जिनवाणी माँ का अतिशय है कि ऐसे कठिन/जटिल विषयों को सुनने के लिए वृद्ध से लेकर बालक तक यहाँ बैठे मिलते हैं । नहीं तो ये समय था कि लोग कहते थे कि जिनवाणी की भाषा वृद्धों के लिये है।

ये वर्तमान काल का कोई चमत्कार मैं नहीं मानता। ज्ञानियो! टीकमगढ़ का यही चमत्कार मानियो कि सुबह जो बच्चे आठ बजे और ग्यारह बजे जगने वाले होते थे, वे छह बजे यहाँ कमण्डल पकड़े मिलते हैं। यही तो चमत्कार हो सकता है पञ्चम काल का। इससे बड़ा क्या चमत्कार हो सकता है? बच्चे ग्यारह बजे जगने वाले हों, वो कहते हैं भो स्वामी! चलो, समय हो गया।

मानना पड़ेगा कि कलिकाल में भी धर्म है। आप लोग मानते कि नहीं मानते? आज भी धर्म है। साढ़े अठारह हजार वर्ष तक भारत की भूमि पर नमोऽस्तु शासन ऐसे ही जयवंत रहेगा, जैसे आज हो रहा है। यदि कोई आप का अपमान कर रहा है, उसको भी सम्मान की आँख से देखना। इसलिये देखना कि उसका अपमान आपको अच्छा नहीं लगा। उसने जो आपका अपमान किया है, वह आपको अच्छा नहीं लगा, इससे तात्पर्य है कि यह मेरा गुरु है। मुझे भी किसी का अपमान नहीं करना चाहिये क्योंकि उसे भी बुरा लगेगा।

दूसरों ने तेरा अपमान किया तो भैया! किंचित खिन्नता आई न मन में? फिर जिनवाणी कहती है कि जो कषाय से युक्त होता है, वह आत्मा से आत्मा का घात करता है। निज में किंचित भी क्षोभ आया है, भैया! तो निज भावों का घात हुआ है। जब इसके निमित्त से मेरे भावों का घात हुआ है, तो मेरे निमित्त से भी दूसरों के भावों का घात होगा। इसलिये मुझे किसी का अपमान नहीं करना है। यही साधु की पहचान है।

जब व्यक्ति को गर्मी चढ़ जाती है, चाहे वो काम की गर्मी हो, चाहे लोभ की गर्मी हो, चाहे तापमान की गर्मी हो, चाहे तनाव की गर्मी हो, सभी गर्मियों में आदमी पागल हो जाता है। उस पुरुष को ये भान नहीं रहता है कि मैं क्या-क्या बोल रहा हूँ, क्या नहीं बोल रहा हूँ? ऐसे ही जिस जीव को कषाय की गर्मी चढ़ जाये, विकारों की गर्मी चढ़ जाये, ईर्ष्या की गर्मी चढ़ जाये, उस जीव को भान नहीं रहता कि मैं क्या कर रहा हूँ, क्या नहीं कर रहा हूँ? जब वही पागलपन उसका उतर जाये, दिमाग/मस्तिष्क उसका ठण्डा हो जाये, तो वही पुरुष अपनी करनी को देखकर कहता है—ओ! मैंने क्या किया है?

माँ को पीटने वाले बेटे भी हैं भैया। धिक्कार है। पत्नि के राग की गर्मी चढ़ गयी थी बेचारे को, तो माँ को पीट डाला उस पापी ने। जब उस राग की गर्मी उतरती है, तो हाय-हाय चिल्लाता है कि मैंने क्या किया है? एक सज्जन सही घटना बता रहे थे।

एक गरीब माँ ने हाथ की चक्की पीस-पीस करके उस बेटे को इनता पढ़ा दिया कि उसको कलेक्टर बना दिया। माँ! बेटे को कलेक्टर बनाना आपके लिए वरदान बन गया कि श्राप बन गया? ये कर्म-विचित्रता है। जिलाधीश के नाते उसका संबंध एक बहुत धनी परिवार में हो गया। मेहनत करने वाली माँ थी। वृद्धावस्था के कारण शरीर से थोड़ा दुर्गन्ध आती थी। जैसे ही देवी पधारी, चार दिन भी नहीं हुये थे, वो कहती है कि इस बुढ़िया के शरीर की दुर्गन्ध मुझे सहन नहीं होती है। या तो ये रहे, या मैं रहूँगी। भूल गया कि इसने चक्की पीस कर मुझे जिलाधीश बनाया है। वह रागी इतना गर्मी में भर गया। भैया! इतनी करुणा करना कि किसी भी व्यक्ति के कान में बार-बार एक बात मत बोलना। भैया! पचास बार अपने हाथ की उँगली से यहाँ (मस्तिष्क) रगड़ोगे तो जल जायेगी। जब स्वयं के हाथ की अंगुली से स्वयं के मस्तिष्क को रगड़ने से चमड़ी छिल जाती है, जल जाती है, तब हे ज्ञानी! तू एक ही बात किसी व्यक्ति के कान में हजार बार कहेगा तो उसके कान भी जल जाते हैं।

जिलाधीश महोदय ने माँ को बुढ़िया कहकरके घर के बाहर निकाल दिया। योगियों से, विद्वानों से मेरा कहना है कि वृद्ध माँ मेरी भगवती जिनवाणी है, उसका अध्ययन करके ही आज तुम बहुत ऊँचे दिख रहे हो। बुद्धि को विकसित करके माँ जिनवाणी को धक्का मत दे-देना। और मनमानी व्याख्या प्रारम्भ मत कर देना। क्योंकि अनेक प्रकार के लोग मिलेंगे। वे स्त्री-स्वभावी लोग हैं। वे द्रव्य से पुरुष हैं, भावों से स्त्री हैं। जो दूसरों के दोष घोषित करें, वे शुद्ध स्त्रियाँ हैं। माँ! आप लोग बुरा मत मानना। और मान भी लो, तो मुझे विकल्प नहीं है। आपको बुरा लगे तो आचार्य नेमिचन्द्र स्वामी से शिकायत करने जाना। क्योंकि मैं नहीं बोल रहा हूँ, उनने लिखा, सो मैं पढ़ कर बताये देता हूँ।

दोषों से आच्छादित करना ही जिसका धर्म बन चुका है, उसी का नाम स्त्री है। वो चाहे पुरुष हो, चाहे नपुंसक हो, चाहे स्त्रीवेदी हो। वे तीनों स्त्रियाँ हैं। 'गोम्मटसार जीवकाण्ड' से बोल रहा हूँ।

जिस जीव को दोष ही दिखते हों, दूसरों के दोष प्रकट करना ही जिसका धर्म बन चुका हो, वह द्रव्य से पुरुषवेदी है, लेकिन भावों से शुद्ध महिला है। माताओ! आप नहीं, महिला। जो श्रद्धा के महल को हिला दे, चारित्र के महल को हिला दे, जो संयम के महल को भी, किसी के श्रद्धान को तुड़वाये, पुरुष हो करके भी क्यों न नारी बनी हो, जो श्रद्धा, ज्ञान-दर्शन से विपरीतता की ओर ले जाये, हिला दे, मोक्ष के महल को हिला दे, उसका नाम है महिला।

हे महिलाओ! तनिक रक्षा करना। ये भी मेरा शब्द नहीं है। कोई शिकायत हो तो 'मरणकण्डिका' ग्रन्थ का अध्ययन कर लेना चाहिये। किसी के बारे में अशुभ-ही-अशुभ सोचोगे, अशुभ करोगे, तो ज्ञानी! तेरा कुमरण होगा कि सुमरण? ज्ञानी! जो कुमरण को (श्रावक) करा दे, उसका नाम कुमारी है। जिसके कुमारी जैसे परिणाम हों, वे कुमारी कुमरण को करने वाले लोग हैं। बल और वीर्य का घात करा दे, उसका नाम अबला है। जिन्हें तुम अबला समझते हो, वही तो सबल है। तेरे बल को भी खींच लिया और वीर्य को भी खींच लिया, उनका नाम अबला है। देखो, बेचारे कैसे सुन रहे?

आचार्य महाराज ने जो कथन किया है, 'अबला', बिलकुल सत्य किया है। आप उसको भीतर से देखो। हे मुमुक्षु! जब तू युवा था, तब शील का पालन करते हुए अपनी युवावस्था में तू चमकता था, माँ के हाथ की खीर खाता था, लेकिन जिस दिन से देवी आई है, चटपटा खाने को तो मिलने लगा, तब से तेरे भीतर का चटपटापन नष्ट हो चुका है। बल भी गया, वीर्य भी गया। जब आपके संयम-व्रत की बात करेंगे, तब हम ऐसा ही कहेंगे कि इनमें दुर्गुण-ही-दुर्गुण है । पर हे माँ! ये जैसा आपके लिये कह रहे हैं, वैसा इनको आप समझना। ये पुरुष नहीं है, तेरे शील को चुराया है, अतः इन तस्करों से दूर रहना। जब नारी का कथन आये तो इन पुरुषों को तस्कर बोलना चाहिये। जब पुरुष का कथन आये तो हे ज्ञानी! तू व्याघ्री के समान नारी को छोड़ देना। जैसे व्याघ्री, जंगल में कोई पुरुष दिख जाये उसको छोड़ती नहीं है, ऐसे ही नारी जगत में किसी के शील को छोड़ती नहीं है। अब भैया! 'जो है, सो है'। हे मुमुक्षु! नारी यानि न-अरि नाम है नारी।

तो सुनो, आगे चलो। जिलाधीश ने माँ को डण्डा मारके भगा दिया। धन्य हो उस माँ की ममता को। भैया! वो माँ अपने बेटे की रक्षा करते हुए, कुल की रक्षा करते हुए, एक

अस्पताल में जाकर काम करने लगी। पर जिलाधीश की माँ थी, ये कहीं परचा दे देंगे तो बेटे पर लाँछन लग जायेगा। धन्य हो माँ की महिमा। माँ अपने बदन को शीत से भी पीड़ित कर लेती है, ऊष्णता से पीड़ित कर लेती है, अपने बच्चे को कुछ नहीं भी होगा तो अपनी साड़ी के पल्लू से ढके रहती है। हे अभागे पुत्रो! उस दिन की याद करो जब माँ ठिठुर रही थी तब भी तुझे अपनी धोती के पल्लू में छिपाये हुये थी। यदि भूल आपसे जीवन में हो गयी हो तो आज ही माँ के चरणों को छूकर क्षमा माँग लेना और कहना-माँ! क्षमा करना। मैं जिनवाणी-माँ से पूछ कर आया हूँ और गुरु के मुख से सुनकर आया हूँ। मैंने जीवन में बहुत बड़ी भूल की है। क्योंकि मुझे मद चढ़ गया था देवी का। ये विश्वास रखना कि घर में वृद्ध माता-पिता का होना बहुत आवश्यक है। मैं टीकमगढ़ में हूँ, आचार्य विरागसागर कहीं विहार कर रहे होंगे, तब भी मुझे मालूम है कि मेरे ऊपर गुरु हैं।

एकलविहारी साधु स्वछंदी हो जाता है। गुरुविहीन शिष्य की वही दशा होती है जो पिता-माता विहीन पुत्र की होती है। भले ही भैया! आप अच्छे घर के आदमी हो, लेकिन वृद्ध माँ कुछ भी नहीं करती है, तब भी माँ का अदब रहता है कि माँ घर में है। हे श्रमणो! जैसे माँ की अदब करके घर में व्यवस्थित रहता है, ऐसे ही दिगम्बर मुनि को 24 घण्टे माँ जिनवाणी की अदब में रहना चाहिये। माँ तेरी मौजूद है और पिता तेरा यदि कोई है, तो अरहन्त देव है। जगत के सम्बन्ध छोड़िये।

जैसे ही माँ घर से बाहर निकल गयी, अब पति-पत्नी स्वच्छन्दी हो गये। खूब मदिरा का पान किया और भोग भोगे। कुछ ही दिनों के अंदर जिलाधीश महोदय टी.बी. रोग से ग्रसित हो गये। और इतनी स्थिति पर पहुँच गयी कि उनकी हालत खराब हो गई। वदन पीला पड़ गया। टी.बी. रोगी बहुत गोरा दिखने लगता है। वो गोरे नहीं हुये हैं। ज्ञानी! सड़ा फल भी अधिक पकने लगता है। यानी नष्ट होने का समय आ गया। भैया! वो जिस अस्पताल में पहुँचे, माँ उसी हास्पीटल में काम करती थी। बेटे को पता ही नहीं था। उसकी एक किडनी खराब हो चुकी थी और दूसरी पर भी प्रभाव हो चुका था। पर माँ तो काम कर रही थी। पत्नी चेहरा मुरझाये और हास्पीटल में डाक्टर साहब से कह रही थी। क्या है? डाक्टर बोल रहा था कि आप पूर्ण स्वस्थ हैं। एक से भी काम चल सकता है। यदि आपको अपनी माँग की रक्षा करना है, तो एक किडनी आप अपने पति को दान कर दो। ऐसा बोला, 'दान' कर दो।

जैनशासन को बदनाम मत करना, ध्यान रखना। भैया! बच्चों को पाठ्यपुस्तक तो पढ़ाना, पर पुस्तकें देख कर पढ़ाना। कहीं पुस्तकों में आप 'रक्त दान' को 'अभय दान' घोषित कर

रहे हो तो ज्ञानी! फिर महावीर का अहिंसा धर्म कहाँ जायेगा? जैसे 'श्वेताम्बरों' को पेचिस नाम का रोग हुआ, तो मांसपिण्ड का सेवन भी करा साधुओं ने। तब भारत सरकार में नेता लोग कहने लग गये, कि ये क्या है? तुम्हारे ग्रंथों में तो लिखा हुआ है। ऐसे ही मुझे आश्चर्य होता है कि लोक में आज के साधु इतने बढ़ते चले जा रहे हैं कि बाल-बच्चों की पुस्तकों में 'रक्त दान' को 'अभय दान' लिखते रहे हैं और पण्डित-जैसे लोग सहयोग कर रहे हैं। मतलब मैं तो ऐसे ही कह देता हूँ। इनको चाहिये है कि निवेदन करो गुरुमहाराज के चरणों में। लोकव्यवस्था अलग है, इसको धर्म में नहीं डाल पाओगे। कल तुम देख नहीं पाओगे कि हमारा अहिंसा धर्म क्या है। हमें नहीं चाहिये ऐसा प्रचार। जो शुद्ध है, वही शुद्ध है। और सत्य को आप मानते हो, कि मेरा विरोध कर रहे हैं? किसी का विरोध नहीं है। और जिनवाणी का शब्द आपको विरोध लगता है तो आपको दुर्गति का बन्ध हो चुका है। इसलिये, भैया! तू कितने ही सामाजिक कार्य करता, लेकिन श्री जिनालय में, मंदिर में, महावीरजयन्ति के दिन वो पोस्टर मत चिपकाना कि 'रक्तदान' कीजिये। ज्ञानी! महावीर का धर्म समाधि कराना तो है, लेकिन रक्त देकरके किसी को जीवित रखना नहीं है। इसलिये रक्त देना अपने घर की, लोक की व्यवस्था है, धर्म नहीं है। धर्म की व्यवस्था भिन्न है।

कलेक्टर की पत्नी से डाक्टर कहता है कि आप दे दो एक किडनी। अहो! आज समझ में आया। माँ वहाँ झाड़ू लगा रही थी, सब देख रही थी कि क्या हो रहा है? वो पढ़ी-लिखी पत्नी बोलती है कि क्या नियत है कि ये बचेंगे? यदि नहीं बचे, तो बच्चों का पालन कौन करेगा? इसलिये कोई उपचार हो तो करिये, ये आप व्यर्थ की बातें मत करो। उस बात को, पोंछा लगाते हुए, माँ सुन रही थी। धीरे-से डाक्टर साब के कक्ष में जाकर कहती है कि मेरे शरीर में जो किडनी है, वो इसके काम आ सकती है क्या? डाक्टर साब बोले, माँ! तेरे तो एक ही है। यदि तू दे देगी, तो चली जायेगी। डाक्टर साब! रहस्य है। आप किसी से कहना मत। पर आप इसका उपचार करो। मेरी निकाल लो। मुझे मरना ही है, पर बेटा जीवित रहेगा। जो जिलाधीश है, वो मेरा ही बेटा है। डाक्टर की आँख से आँसू टपक पड़े, जबकि डाक्टर कभी रोता नहीं है। बोली, ये रहस्य प्रकट मत करना। पर उसका उपचार करो आप। अपने शरीर के अंग को निकाल कर बेटे को प्रत्यारोपित करा देती है और अंतिम श्वास भी गयी। डाक्टर साब ने जिलाधीश महोदय का उपचार करके पूर्ण स्वस्थ कर दिया। वो नोटों की एक थैली डाक्टर साब को देते हैं और कहते हैं कि आपकी अनुकम्पा से मैं स्वस्थ हो गया, मुझे नया जीवन मिला है। तब डाक्टर कहता है 'हे पापी! तुझे मालूम होना चाहिए। ये थैली मुझे मत दे, उस बूढी माँ को दे, जो तुझे जीवन देकरके मरण को प्राप्त हो चुकी है। और

तूने उसे धक्का देकर घर के बाहर निकाल दिया था।' अब उसकी आँखें खुलीं, ओ हो हो. ... मैने खुली आँखों से किया, कि बन्द आँखों से किया है?

मेरे बेटो! ये तो मात्र दृष्टान्त था! पर आज वर्तमान में प्रत्यक्ष घटित होते दिखाई दे रहा है। ये रूमाल घर में रख लेना सुरक्षित। जो यहाँ आज आँसू टपका रहे हो। जब स्वयं की माँ के प्रति ऐसे भाव आयें, उस समय उस रूमाल को खोलकर रख लेना कि मैने महाराज के प्रवचन सुनते समय आँसू टपकाये थे। भैया! यथार्थ मानिये, पता नहीं क्यों, आप राग कहो या अनुराग कहो, जिनवाणी के प्रतिकूल कोई किंचित भी कहता है तो मेरे से सहन नहीं होता है। क्योंकि मैंने निर्णय कर रखा है कि समाधि निश्चित है। यदि कोई मेरी इस पर्याय का घात भी करना चाहेगा वो मुझे स्वीकार है, पर मेरे जीते-जी अर्हन्त की वाणी के विपरीत कथन कर नहीं सकता हूँ, किसी की सुन नहीं सकता हूँ। कितने लोगों के ढेरों विकल्प मेरे पास आते हैं कि महाराज से कह दो कि 'मुमुक्षु' कहना बन्द कर दो। क्यों बंद कर दूँ? कोई कहता है 'नमोऽस्तु शासन' बोलना बंद कर दो। क्यों बन्द कर दूँ? जिनवाणी में लिखा है, आप नहीं देख पाये तो तुम्हारी भूल है। पण्डित जी! रिसर्च किसे कहते हैं? जो बात सामने न आयी हो, उसको सामने लाना, इसका नाम ही तो रिसर्च है। डर किस बात का लगता है? लोगों ने जिन्दगी भर स्वाध्याय किये हैं, पर जिनवाणी के रहस्य सामने नहीं आये।

ज्ञानियो! ये हर सभा में हुआ है। जब किसी जीव ने क्रियाकाण्डों को देखा है, तो एकांत में कहा कि इसकी आत्मतत्त्व की व्याख्या करो, तो इस पर विरोध हुआ ही है। इसलिये विकल्प करने की आवश्यकता नहीं। भैया! अर्हन्त की वाणी की रक्षा करते हुए जाना, यही समाधि है। मृत्यु के बाद फूलों की शैय्या पर सुला देना, अर्थी पर फूल फेंक देना, इसका नाम समाधि नहीं है। ज्ञानी! भगवती माँ जिनवाणी को मुस्करा करके सुनना और मुस्करा करके कहना, इसका नाम समाधि है। क्या करोगे? भैया! जीवन जीने के लिए आये हैं, कि जन्म-मरण से रहित होने के लिये आये हैं? इतनी बात बता दो, फिर आगे चलते हैं। यदि जीवन जीने के लिये आये हो, तो कुछ भी करो, जीते रहो। और जन्म-मरण से रहित होने के लिये आये हो, तो जो जिनदेव ने कहा, वो ही करो और यदि नहीं का पाओ तो श्रद्धा में रखो।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

करो संयमपूर्वकआत्मभावना

ज्ञान-ध्यानोपवासैश्च, परीषहजयैस्तथा।
शीलसंयमयोगैश्च, स्वात्मानं भावयेत् सदा।। ४।।

मानव-पर्याय को सार्थक करने के लिये शास्त्रज्ञान, आत्म-ध्यान तथा उपवास करते हुए तथा, क्षुधा, तृषा आदि परीषहों को जीतते हुए, शील संयम एवं योगाभ्यास के साथ निरन्तर आत्मा की भावना करनी चाहिए।

।। देशना ।।

अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेश की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है।

यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो! जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

भोजन करने में चंचलता थी। भोजन हो जाता है, तो लोग इलायची खाकरके शान्ति से जब बैठते हैं, तो क्यों भाई! क्या हो रहा है? मैं साता से बैठा हूँ, मैं निर्विकल्प हूँ। निर्विकल्प। जब इन्द्रिय-भोग के बाद निर्विकल्प दशा बनती है, तो उसमें आनन्द आता है। तब जो आत्मानन्द का भोग करता है, उसमें क्या आनन्द नहीं आता होगा? उसकी अनुभूति लेना भी सीखो।

एक तृप्ति होती है भोजन के बाद, नहाने के बाद। खाने के गाल अपने-आप दिखाई देते हैं। भोजन करके आया हो और गालों पर चमक न हो, ये हो ही नहीं सकता। या फिर भोजन रुचिकर नहीं बना। और योगी बनकर आया हो, चेहरे पर चमक न हो ,ये हो ही नहीं सकता है। इसका मतलब है कि योगी का आनंद नहीं है इसको। निर्ग्रन्थ योगी बनके आया हो, जिसके चेहरे पर भद्रता न झलके, प्रसन्नता न झलके, वह दिगम्बर मुनि बनकर 'मुनि' बना ही नहीं है। क्योंकि रुचिकर मिल जाये, जो तू चाहता था, तो उस दिन कुछ अलग ही आनन्द होता है।

जब यह जीवद्रव्य मिश्रधारा में पर-पुद्गल-द्रव्य को ग्रहण करता है, तब इतना आनन्दित होता है। भो ज्ञानी! जब निज में निज की अनुभूति लेगा, निज द्रव्य का अनुभव करेगा, तो कितना आनन्दित होगा? चिदानन्द स्वरूपोऽहं। जो चिदानन्द है, चैतन्य-आनन्द है, वही उत्तम आनन्द है, जो सम्पूर्ण उपाधियों से शून्य है।

जब तक निर्ग्रन्थ मुनि नहीं बने आप, तब तक हे श्रावको! तुम्हारी जो देशजिन संज्ञा है, उसकी अनुभूति का तो प्रयास करो। मैं बार-बार इसलिये कह रहा हूँ क्योंकि आपने

ये सोच रखा है कि जो मेरी जो दान-पूजन की विधि है, यही मेरा धर्म है। ज्ञानी! ये क्रियाभूत पुण्य धर्म है, परन्तु स्वात्मा जो है तेरी, देशजिन की अनुभूति लेना तेरा अंतरंग की अनुभूति है।

भोजन करे और तृप्ति न हो, तो भोजन कोई काम का नहीं। बहिरंग धर्म करे और आत्मानन्द न मिले, तो बहिरंग धर्म कोई काम का नहीं। तप कर रहा है योगी, बहिरंग तप करते हुये अंतरंग तप पर लक्ष्य रहता है। अशन का परित्याग किया है, पर वासना के त्याग के साथ। अशन यानि भोजन। यदि अशन का त्याग किया वासना के त्याग किये बिना, तो ज्ञानी! जैसे दूध फट जाता है, वैसे ही तेरी साधना फट जायेगी। कैसे? बर्तन खाली तो किया है, पर वासना खाली नहीं की। भैया! कल का दूध रखा था जिस बर्तन में, उस बर्तन को खाली तो कर लिया, और नया दूध भरेगा उसी बर्तन में, तो उस दूध का क्या होगा? सुनिये, मैं क्या कह रहा हूँ? ये यहाँ-वहाँ की चर्चा नहीं चल रही है। ज्ञानियो! बर्तन खाली तो किया, कपड़े उतार दिये, गहने उतार दिये, घर से बाहर चला गया, पर जो वासना की लगार लगी थी, उसको खाली नहीं किया, तो साधना फट जायेगी।

जिसे आप लगार बोलते हो, वो ही शास्त्रीय भाषा में वासना है। वासना का अर्थ आप लोग कामवासना मात्र समझते हो।

वासना का तात्पर्य है किसी भी वस्तु के संस्कार/लगार। तो दुग्ध में वासना लगी हुई थी। उस बर्तन में पुराने दुग्ध की वासना थी, तो नया दुग्ध भी फट जायेगा। ऐसे ही वसन उतार दिये, साधना प्रारम्भ कर दिये, लेकिन वासना नहीं उतार पाये, तो ज्ञानी! साधना तेरी विफल हो जायेगी। अब समझ में आई। क्या करें? तनिक देर से समझ में आत।

पहला तप 'अनशन' किया, तो भोजन-पानी का चतुर्विध आहार का त्याग किया है। जिस योगी को सल्लेखना की सिद्धि चाहिये, तो अनशन तप करना ही चाहिये। वासना के त्याग के साथ। इन्द्रियों के गर्व को दूर करना है। दूसरा तप बहिरंग तप चल रहा है, भूख से कम भोजन करना। अपने उदर के चार भाग कर लेना। यदि ठण्डी का मौसम है तो 2 भागों में ठोस, एक भाग में तरल और एक भाग खाली छोड़ दो। ग्रीष्म काल है तो 2 भागों मे तरल, एक भाग में ठोस, एक भाग खाली छोड़ दो।

स्वस्थ जीवन जीना है और साधना को अच्छी तरह करना है, प्रमाद से बचना है, तो ऊनोदर करना है । जो 'मूलाचार' की विधि से जीवन चलायेगा, उसको ज्ञानी कहो। दूसरे, वैद्य के पास नहीं जाना पड़ेगा। तब ज्ञानी! भोजन ही औषधि है। रोग किसे कहते हैं? रोग

कौन-सी वस्तु है? वात, पित्त, कफ इन तीन का व्यसन हो जाना है रोग। वात, पित्त, कफ की हानि-वृद्धि करनेवाला भोजन होता है। जिसके भोजन में व्यसन है, उसके शरीर में रोग होगा। और जिसके भावों में व्यसन है, उसको भव के रोग होंगे।

सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र ये तीन औषधियाँ हैं। माया, मिथ्या, निदान ये तीन व्यसन हैं। ज्ञानियो! जिसके रत्नत्रय में व्यसन होगा, उसके भव का रोग बढ़ेगा। जिसका रत्नत्रय साम्यभूत होगा, वह भवातीत होगा। वह जीव भव के रोग से रहित होगा। समानाधिकरण में चलिये। जड़बुद्धि-पुरुष खनन करके समीकरण करते हैं। समीकरण क्या होता है? दो पक्षों को बराबर कर लेना समीकरण है। और खनन यानि, खोद देना, गड्ढ़ा कर देना। ज्ञानी! खनन करके समीकरण करना, ये कौन-सी बड़ी बला (बुद्धि) है। पहले भूमि में गड्ढा खोदा, फिर भूमि को भर रहा है, समीकरण कर रहा है।

हे मुमुक्षु! धन्य है उन कुमार ब्रह्मचारियों को। नमस्कार हो जिन्होंने कुमार-व्रत का पालन किया। ज्ञानी! जीवन का गम्भीर कोई संयम है, गम्भीर कोई व्रत है, उसका नाम कौमार्य-व्रत है। जिसने कौमार्य व्रत का पालन कर लिया हो, वह तो ज्ञानी! भविष्य का भगवान ही है। वैसे तो कुमार कई हैं, पर संयम से कुमार विरले ही जीव हैं। उन्होंने खनन ही नहीं किया। भवन बनाने के लिये उनको ज्यादा मेहनत करना पड़ती है जिनके द्वार पर गड्ढे होते हैं। और जहाँ गड्ढे नहीं होते हैं, तो सीधा अपना भवन तैयार करता है। जिसने अपने संयम का खनन ही नहीं किया, उसको समीकरण की आवश्यकता नहीं, उसका समीकरण ही है।

ये भी एक विद्या है। माताओ! सुन रही हो? प्रवचन सुन रही हो, कि चर्चा सुन रही हो? ये ही तत्त्ववार्ता है, ये ही तत्त्वचिन्तन है, ये ही उपदेश है, यही प्रवचन है। धन्य है वह जीव, जिसने अपने कौमार्य व्रत का पालन किया है। भैया! ये बड़े-बड़े विद्वान् जो हैं, वे बड़े-बड़े मंदिर तो बना लेंगे इस पर्याय में, पर इस पर्याय में कौमार्य व्रत का पालन नहीं कर पायेंगे। श्री जी विराजमान तो कर सकते हैं, पर कौमार्य पाने का जो आनन्द था, उसकी अनुभूति नहीं ले पायेंगे।

अहो! एक पुत्र पाने के राग में नौ कोटि जीवों की हिंसा कर डाली। अपने बेटे से कह देना, बेटे! मेरे ऊपर तिरछी आँख से मत देख, तुझे जन्म देने में जो मैंने अपना नाश किया है, उसकी क्षतिपूर्ति तू कभी नहीं कर पायेगा। मैंने अपना कौमार्य व्रत भंग किया है। मेरे बेटे! तुझे जन्म देने में जो मैंने अपना नाश किया है, वो कितनी बड़ी विभूति का नाश किया है?

जीवन में एक नया नहीं, अत्यन्त पुराना, अत्यन्त प्रसिद्ध, अत्यन्त पूज्य जो शब्द था 'कुमार व्रत', उस कुमार ब्रह्म का नाश करके तुझे जन्म दिया है। मेरे बेटे! तब भी तुझे लज्जा आनी चाहिये कि तेरे पिता ने किनती बड़ी विभूति को छोड़कर तुझे जन्म दिया है। भैया! बुरा लग रहा है, तो बन्द कर दें?

ज्ञानियो! चेहरे देखने लायक होते हैं लोगों के। देखो, बेचारे कैसे देख रहे हैं ये चातक जैसे। ज्ञानी! चकोर बनके देखता तो कितना अच्छा होता? चकोर भले ही जमीन पर होता है, पर चाँद को देखता है। चकोर बन करके जीवन तो जी लेगा, पर चाँद को देखता है। चील आकाश में होती है, पर किसी गड्ढे में मांस के टुकड़े को देखती है।

भैया! कुछ ऐसे लोग हैं जो चील की भांति होते हैं। आकाश के जैसे पदों पर तो अधिष्ठित होते हैं, लेकिन पर के दोषों के मांस के टुकड़ों को गड्ढों में देखते हैं। वे जीव धन्य हैं, भले ही श्रावक हों, जो गुणियों को चकोर की भाँति देखते हैं। जीवन में बन सको तो, भैया! चकोर पक्षी बनकर बैठना। हम भले ही जमीन पर बैठे हों, पर देखेंगे ऊपर। लेकिन ऊपर बैठकर नीचे नहीं देखेंगे। छिद्रान्वेशी नहीं बनना। कभी नहीं बनना। बहुत बड़ी तपस्या न कर सको, कोई आवश्यकता नहीं है, पर सबसे बड़ी तपस्या ये है, कि पर के दोषों को छिपाने की ताकत रखना, अपने गुणों को छिपाने की ताकत रखना। इससे बड़ी कोई तपस्या नहीं है।

यहाँ से सम्यक् प्रारम्भ होता है। पर के दोषों को छिपाने की सामर्थ्य और अपने गुण को छिपाने की सामर्थ्य रखना अपने में। यदि ये ताकत नहीं है तुम्हारे पास, तो ज्ञानी! कपड़े उतारके भी बैठ जाओगे, पर मोक्षमार्गी नहीं कहलाओगे। बहुत बड़ी साधना है। भोजन छोड़ना तो परवस्तु है। उपवास कर लेना तो सरल है, पर किसी के दोषों को झेल पाना कठिन है।

ज्ञानी! केशलुंचन, बाल खींच लेना सरल है, पर हृदय से बालाओं को निकाल फेंकना कठिन है। बाल खींच लेना सरल है, पर कुभावनाओं को खींचके अलग कर देना, ये कठिन है। बाल मात्र खींच लिये और खोटे भाव नहीं खींच सके, तो तुम्हारा बाल खींचना वैसे ही मान कर चलो, जैसे तिर्यंच प्राणियों के लोग बाल खींच देते हैं। लेकिन उनके बाल बलात खींचे जाते हैं।

मोक्षमार्ग बड़ा मधुर है। बहुत कठिन है। मुमुक्षु! 'भेष' धर्म नहीं है, 'भाव' धर्म है। पर भेष के बिना भाव आते नहीं हैं। वो घड़ी चल रही है, देख जरा अच्छे से। बन्द हो गई, क्यों बन्द हो गई? काँटा नहीं है क्या? नम्बर नहीं हैं क्या? तो बन्द कैसे हो गई? हे मुमुक्षु!

पड़े रहने दो काँटे, पड़े रहने दो नम्बर, लगा रहने दो काँच। जब तक घड़ी का सेल नहीं है, तो कांटे क्या करेंगे? पड़ी रहने दो पीछी, पड़ी रहने दो कमण्डलु, बना लो भेष। लेकिन भावों की विशुद्धि की सेल नहीं होगी तो मोक्षमार्ग चलनेवाला नहीं है। भावों की विशुद्धि की सेल चाहिये। परिणामों की विशुद्धि चाहिये। वो परणामों की विशुद्धि, ज्ञानियो! न प्रसिद्धि दिलायेगी, न धन दिलायेगा, न धरती दिलायेगी, न जन, कुटुम्ब, परिजन आदि दिलायेंगे। वो विशुद्धि तो ज्ञानी! तेरे भीतर से ही उद्घटित होगी।

वो भूख से कम तो खाता है, लेकिन गम नहीं खाता है। भूख से कम तो खा लेना, लेकिन गम खाना मत छोड़ना भैया! विश्वास रखना। शीघ्र उद्वेलित होना, आक्रोशित हो जाना, ये प्रज्ञा की प्रक्षीणता (कमी) की सूचना है।

धैर्येण लक्ष्मी, सूर्येण विजया।
दानेन यशः ज्ञानेन मोक्षः।।

जितने व्यापारी हैं, धन्य हो तुम्हारी क्षमा को। ग्राहक आते हैं, पूरा सामान गिरवा देते हैं, कि ये भी दिखाओ, ये भी दिखाओ, और कहो लेकर एक भी न जाये। वो बेचारा दुकान पर बैठा है, कोई देहाती आया, उसने पूरे थान पटकवा दिये और एक लत्ता भी लेके नहीं गया। अब वो बेचारा लपेट रहा है। ज्ञानी! तू उस पर लपेट के शान्ति से बैठा रहता है। कहता है, गुस्सा करें तो कल कौन आयेगा?

धन्य हो तुम्हारी क्षमा। जैसे बार-बार शान्ति से लपेट कर बैठ जाता है, वैसे ही विषय-कषाय लपेट ले शान्ति से, उपशम करले, और मुनि बनकर इतना संतोष धारण कर लेता तो ज्ञानी! तू भगवान बन जाता।

बिना धीरता के व्यापार नहीं चलता। पैसा भी कमाना पड़ता है तो धैर्य रखना पड़ता है। मन में तो ऐन गुस्सा आ रही थी, लेकिन फिर भी, 'हाँ, भैया! शान्त रहो, वरना ग्राहक चला जायेगा।' यह क्षमा नहीं है। न लौकिक, न पारलौकिक। ये स्वार्थ है। मायाचारी चल रही है अभी। भीतर से जल रहा है। तुम्हें पता होना चाहिये भैया! चूल्हे पर कोई सामग्री पकाये तो उसकी तो आग दिखती है, पर गुर्सी में पकती अच्छी है, लेकिन दिखती नहीं है।

तो सुनो, जो अंदर गुर्सी जैसे झुलसते रहते हैं और बाहर से दिखते हैं कि भगवान बैठे हैं, वे पक्के पक रहे हैं। ज्ञानी! धर्म के बिना पैसे नहीं मिलते। और शूरता के बिना विजय नहीं मिलती है। और दान के बिना यश नहीं मिलता है। जो दान देता है, उसका यश फैलता है। परन्तु ज्ञान के बिना मोक्ष नहीं मिलता है।

सम्यग्ज्ञान ही मोक्ष का साधन है। ज्ञान मात्र नहीं, सम्यग्ज्ञान। अब तूने लिख दिया "ज्ञान मंदिर", उस पर लिखो सम्यग्ज्ञान। नहीं तो ऐसा होता है, कि दुनियाँ में सभी ज्ञानी हैं। तो कौन से ज्ञान का मंदिर है ये? उसमें सम्यक् शब्द जोड़ो, नहीं-तो अनर्थ हो जायेगा। सम्यक्-ज्ञान मंदिर है, ये मिथ्या मंदिर नहीं है।

सम्यक् शब्द जोड़ना बहुत जरूरी है। अन्यथा ये जितने जगत में दर्शन हैं, वे सभी मोक्षमार्ग हो जायेंगे। जितने ज्ञान हैं, सभी मोक्षमार्ग हो जायेंगे। जितने चारित्र हैं, सभी मोक्षमार्ग हो जायेंगे।

अनशन, ऊनोदर, व्रत-परिसंख्यान ये बहिरंग तप हैं। विधि को परखने के लिये विधि लेकर जाना। विधि यानि भाग्य, विधि यानि आखड़ी। जो मन में आकर खड़ी हो जाये, उसका नाम है आखड़ी। अब आप कहो, महाराज! का विधि हती? विधि भी तब मिलती है, जब विधि होती है। और मिलती भी वही है, उसकी भी विधि होती है। दाता की विधि है तो उध र विधि मिलेगी और पात्र की विधि है तो उसके विधि मिलेगी। यदि विधि नहीं है, तो भैया! विधि सामने चलती है साथ में, फिर भी विधि मिलती नहीं है।

एक पण्डित जी थे पन्ना में, वे बहुत सेवा करते रहते थे। तो मेरे मन में एक दिन आ गई कि पण्डित जी की विधि ले लो। सो पण्डित जी की विधि ले ली। वे मेरे साथ में चले। भैया! जैसे ही वे खड़े हों, लोग उन्हें हाथ पकड़ कर बाहर कर दें और बोलें कि तुम्हें देखकर महाराज चले जात। 3 चक्कर मैं पूरे शहर के लगाके आ गया। अब मैं जैसे ही मंदिर जाने लगा, लोग कहने लगे कि विधि नहीं मिल रही, विधि नहीं मिल रही । मैंने सोचा, क्या करें? विधि तो साथ में चल रही है, तुम लोग मिलाते नहीं। और जैसे ही मैं मंदिर में प्रवेश करने को खड़ा हुआ, वो पण्डित जी छलांग मार करके द्वार पर खड़े हो गये, और बोले 'भैया! एक बार तो खड़े हो लेने दो।' और जबरजस्ती खड़े हो गये। हमने मन में कहा कि तुम परमेश्वर पहले से खड़े हो जाते, तो काहे को घूमते हम? मंदिर के द्वार पर विधि मिल गई। इसलिये ऐसा है कि 'जो है, सो है।'

व्रतपरिसंख्यान जो नियम है, ये बहिरंग तप है भाग्य की परीक्षा के लिये, राग-द्वेष की हानि के लिये। टीकमगढ़ में 80-85 चौका लग रहे, अब बताओ एक दिन में किधर-किधर जाऊँ? सभी तो कहेंगे, महाराज! हम भी तो खड़े थे। राग-द्वेष बढ़ेगा। भैया! चलो, जिनकी विधि होय, उनके ही इधर मिले और जैसी तुम्हारी विधि होय सो मिल जाये। सब श्रावक हैं, किसमें तुम राग-द्वेष करोगे? सभी भक्त हैं। मैं तो महाराजों से कहता हूँ कि साधु बन कर

आहार लेने जाओ, पर एक बार श्रावक की अनुभूति करके। बेचारा 4 बजे से जग जाता है। कितने दिनों से सोचता है कि मेरे घर में भगवान आयेंगे। और आप पहुँचे उधर, नखरे करे, तो उस बेचारे को कैसा लगे? इससे बार-बार लौटा-लौटी नहीं करने का। अब कोई विषमता आये तो लौटना ही पड़े। वो तुम्हारी गलती है कि प्लाई पर रखे थे सो लौटना ही पड़े। बिना चंदोवा का होगा तो लौटना ही पड़ेगा। आप भूल नहीं करना। ठीक है? लेकिन 'जो है, सो है'। मुझे बहुत दया आती है, करुणा आती है कि कैसे मिले मुश्किल से महाराज? और वे लौट कर आ गये।

रस परित्याग। षट्रस में से कोई रस का त्याग करके भोजन करना। इन्द्रियों की तृप्ति के उपशमन के लिये और साधना की वृद्धि के लिये रसपरित्याग तप है।

कायक्लेश। एक आसन से बैठना। स्थिर बैठना, कंकड़ चुभ रहे, पत्थर चुभ रहे, फिर भी क्लेश मन में नहीं लाना। ये नहीं देखना कि चिकना पाटा चाहिये कि खुरदरा पाटा है। ऐसा कुछ नहीं। ठीक है। ये ही तो साम्यभाव है। ये बहिरंग तप है। ये बाहर से लोगों को दिखते हैं, इसलिये बहिरंग तप है।

अंतरंग तप है प्रायश्चित्त। चित्त की शुद्धि के लिये। कोई दण्ड नहीं है प्रायश्चित्त , ये ध्यान रखना। लोगों ने उल्टे-उल्टे अर्थ कर लिये । ज्ञानी! बहिरंग तप से जितनी निर्जरा होती है, उससे उत्कृष्ट निर्जरा अंतरंग तप से होती है। कोई दोष लग लाये, भैया! कोई बात नहीं है, ये दोष ही था। पर दोष को छिपा लेना,ये महादोष है। एक पल भी ऐसा नहीं निकालना जो प्रायश्चित्त से रहित हो।

परिणाम हैं असंख्यात-लोक-प्रमाण। परिणाम जीव के चल-विचल हो सकते हैं। तब भी गुरु के चरणों में बालकवत् निवेदन करके, प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध हो जाना। चित्त की शुद्धि जिससे हो, उसका नाम है प्रायश्चित्त। और प्रायश्चित्त में किं क्या नहीं चलता? कुछ नहीं। तथाऽस्तु, जो गुरु ने कहा है तथाकार। और गुरु-आज्ञा से रहित होगा तो उसका चित्त जीवन में कभी भी शुद्ध हो ही नहीं सकता। गुरु-आज्ञा से विहीन जो शिष्य जियेगा, उसका चित्त जीवन में कभी भी विशुद्ध नहीं होगा। ज्ञानी! काँटा लगने के पूर्व जैसा दौड़ता था, काँटा लगने के पश्चात क्या वैसा ही दौड़ेगा सड़क पर?

हे ज्ञानी! तनिक-सा काँच, तनिक-सा काँटा पैर में चुभ जाये, तो मार्ग पर पैर अच्छे से नहीं रखा जाता। जब मिट्टी की सड़क पर पैर अच्छा नहीं रखा जाता, तो जिसके हृदय में दोषों के शूल चुभे हों, उसके मोक्षमार्ग पर कदम कैसे प्रशस्त रखे जायेंगे?

जीवन में गुरु से रहित कभी मत जीना। धन्य इस ज्ञानी को, भोपाल में 2 प्रतिमा धारण कर ली। अब तुम्हारे यहाँ के जितने बुजुर्ग पण्डित जी हैं, सब व्रती हैं, व्रती। जैसा प्रतिष्ठाशास्त्र में लिखा, वे लक्षण आ गये अब। इसका तात्पर्य है कि इनकी नरक गति, निर्यञ्च गति, मनुष्य गति तो टल गई। जिसने कुगति का बंध कर लिया है, वो कभी व्रती नहीं बन सकता। उसके भाव ही नहीं होंगे। जिसने कोई भी आयु का बंध न किया हो, अथवा देवायु का बंध किया हो, वही व्रती बन सकता है।

कभी-कभी मुझे ही शर्म लगती है, कि देखो ये बूढ़े लोग आकर पैर दबाने लगते हैं। इनके पैर दबाने के योग चल रहे हैं कि हमारे? हम तो युवा हैं। तभी लगता कि हे विशुद्ध सागर! तेरे पैर नहीं दब रहे हैं, ये संयम की साधना के पैर दब रहे हैं। आप भूल मत जाना, ये सम्मान तेरा नहीं है, ये सम्मान संयम का है। जब संयम के प्रभाव से तेरा सम्मान होता है, तो संयम का कितना सम्मान करना चाहिये?

हे ज्ञानी! तुम्हारा बेटा दीक्षा ले रहा था और पीछी-कमंडल हाथ में आते ही तुम नमोऽस्तु करने लगे। ये संयम की महिमा तो देखो, पिता भी बेटे को नमोऽस्तु कर रहा था। पर जब पिता नमोऽस्तु करने आये, तो मुनि बने बेटे को सोचना चाहिये कि अहो ! जिसके चरण छूते थे, आज नमोऽस्तु कर रहा है, चरण छू रहा है। ये तेरे चरण नहीं छुये जा रहे हैं, ये आचरण की वन्दना चल रही है। 'वन्दे तद्गुण लब्धये।' ये वीतराग दर्शन कितना महान है? ये दरिद्री दर्शन नहीं है। दरिद्री वे होते हैं, जिनके गुणियों के गुण कहने में मुख में दर्द होता है। और जो आपने मुख से दूसरे के दोष गिनाये, उसके मुख में खाज हो गयी है। ये हम नहीं कह रहे हैं। व्यर्थ में कुछ लोगों की बड़बड़ाने ही आदत होती है। रास्ते में जा रहे, पास में कोई भी नहीं है, तब भी बड़बड़ाते जा रहे हैं। वो "मुखकण्डूक" है। जब कहीं खुजली पड़ जाये तो खुजाना ही पड़ती है उसको।

माताओ! ध्यान रखना, अब कोई भी यहाँ-वहाँ की बातें सुनाये, तो कहना 'देवी! ये मुखकण्डूक दूसरे को जाकर सुनाओ। आत्मा की बात करने तो करो।' ठीक है? आज का तुम्हारा नियम यही है। जो यहाँ-वहाँ की बातें करे, उससे कहना मुखकण्डूक । पर स्वयं सम्हल कर कहना।

पंचपरमेष्ठी की विनय करना, ये अंतरंग तप है। बिना मार्दव, आर्जव धर्म के कोई किसी की वैयावृत्ति सेवा नहीं कर पाता। साधु भी साधु की वैयावृत्ति कर सकता है। ये कभी सोचना नहीं कि साधु वैयावृत्ति नहीं करते। पर अन्तर इतना रह सकता है, कि श्रावक सावद्य व निर्वद्य

दोनों वैयावृत्ति करेगा, परन्तु साधु निर्वद्य वैयावृत्ति करेगा, सावद्य वैयावृत्ति नहीं करेगा। सावद्य मात्र से तात्पर्य है कि किसी साधु को जुकाम हो गया, खांसी चल रही है, अब माना कि आपको, उनको गरम तेल लगाना है तो साधु गरम करने नहीं जायेगा क्योंकि वो सावद्य वैयावृत्ति है। वो वैयावृत्ति श्रावक करेगा, गरम करके उनके लगा देना। ये वैयावृत्ति के 2 भेद हैं। धन्य है आचार्य महावीरकीर्ति महाराज। आचार्य वीरसागर महाराज की जब सल्लेखना चल रही थी, महावीरकीर्ति महाराज सामने थे जयपुर में। जब महाराज को कफ आ रहा था, आचार्य महावीरकीर्ति महाराज ने अंजली कर दी, आप इसमें छोड़ो। 'नहीं-नहीं, आप मेहमान हो।' नहीं, स्वामी! ये हमारा धर्म है। 'निशदिन वैयावृत्ति करैया, सो निश्चिय भव-नीर तरैया।'

धन्य हैं टीकमगढ के बच्चे। जो दूधमुही यानि दूध पीने वाले हैं छोटे-छोटे से, वे भी आ जाते हैं और पैर दबाते हैं। धन्य हैं वे माता-पिता जिन्होंने ऐसे संस्कार दिये हों। धिक्कार है उन माता-पिता को जिनके बेटे वैश्यालय के लिये दौड़ते हों। घर में मालूम है कितना आनन्द आता है माँ को जब बेटा कहता है कि मैं वैयावृत्ति करके आया महाराज की? माँ को बेटे के जन्म पर जितना हर्ष होता है, उससे कई गुना हर्ष होता है ये सुनकरके। जब बेटा गुरु के पास से जाता है तो माँ मुस्कराती है, पिता मुस्कराते हैं।

लोगों के यहाँ तो कभी-कभी जलूस निकलता है, भैया! लगता है कि सुबह से जलूस निकलता है। जंगल के समय। स्वर्ग का देव भी देख रहा होगा, देखो यहाँ टीकमगढ़ में कैसे नमोऽस्तु-नमोऽस्तु गूँज रहा है। बेचारे कैसे लगे हैं गरीब-गरीब लोग भी, कि आ जायें महाराज। उनकी सामर्थ्य न भी हो, तब भी खड़े हैं, 'हे स्वामी।' धन से गरीबी आ जाये तो तनाव मत करना, पर भक्ति में गरीबी बिलकुल भी नहीं आने देना। जैसे अखण्ड समाज की अनुभूति आप ले रहे हो, आनन्द आ रहा न? बस, भैया! ऐसे ही आनन्द में डूबे रहना। अखण्डता ही आनंद है। जितने भी मंदिर हैं, सब बन जाने दो, और बनाओ, लेकिन ज्ञानी! सब मंदिरों में भगवान अर्हन्त को ही रखना। तुम किसी नाम विशेष से मंदिर मत बनाना। सभी मंदिर भगवान के बनाना, सभी मंदिरों में तुम जाना, और सभी मंदिरों में सबको बुलाना। क्योंकि मंदिर हमारे निजी नहीं हैं। चौबीस तीर्थंकरों के मंदिर हैं। हमारे पास पुण्य का द्रव्य था, सो लगा दिया है। अब मंदिर भगवान का है और भक्ति समाज की है।

नहीं तो भैया मंदिर तो बना लें, और कहें कि जब तक मैं नहीं आऊँ, ताला नहीं खुलेगा। भैया! मंदिर तो बनाना, लेकिन इस प्रतिज्ञा की हानि करके बनाना। विनय, वैयावृत्ति, स्वाध्याय। जब कहीं कोई किसी का नहीं दिखता, तब ज्ञानी! स्वाध्याय ही साथ देता है। जब भी समाधि होगी, स्वाध्याय से ही होगी।

इसलिये दिगम्बर मुनि की शेष क्रियायें एक या दो या तीन बार, पर स्वाध्याय चार बार। मालूम सुबह, मध्याह्न, शाम और रात्रि में स्वाध्याय करते हैं। जब लोगों को मधुर-मधुर नींद आती है, तब ये मुनिराज जाग कर बैठ जाते हैं। आपको तो मुस्कराहट दिखती है। एकाध दिन 24 घंटे रहो, फिर देखो कि क्या होती है आनंद की अनुभूति। वैरागी होगा तो कहेगा कि घनानन्द, घनानन्द। आनन्द-ही-आनन्द है। इसलिये भैया! जिनके घर कुटाई -पिटाई हो गई हो, जिनका घर पर मन न लगे, वे इधर न आना। एक बालक आया इन्दौर में, ब्रह्मचारी था किसी संघ का। बोला, हमें आपके पास रहना है। उसने 24 घंटे जैसे ही देखा, और बिना बताये वो धीरे से खिसक गया। कोई महाराज से मिला होगा, मैंने कहा, भैया! वो आया था, वो चला गया? बोले, महाराज! वो तो ऐसी कह रहा था, कि जिसके पीछे घर छोड़ा, तो वो ही इधर। फिर क्या शान्ति है? मैंने पूछा, क्या हो गया? बोले- पढ़ाई, पढ़ाई। पढ़ना ही होता, तो स्कूल छोड़के क्यों भागता?

भो ज्ञानियो! बिना पढ़ाई किये तीर्थंकर नहीं बनते। 'अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग' चौथी भावना है सोलहकारण भावनाओं में। एक क्षण भी ज्ञान से रहित मत चले जाना। यदि ज्ञान से रहित हुये, तो जैसे बिना धागे की, बिना मंजे की पतंग टूट कर झाड़ियों में उलझ कर फट जाती है, वैसे ही बिना श्रुत के साधु जियेगा, तो पतंग जैसे फट जायेगा। जैसे पतंग सूत से चलती है, वैसे ही निर्ग्रन्थ सूत्र में चलते हैं।

ममत्व का त्याग करना व्युत्सर्ग है। और अंतिम कोई तप है, उसका नाम है ध्यान। जब भी निर्वाण मिलेगा, तो ज्ञानी! ध्यान से मिलेगा।

ज्ञानियो! मन को वश करना है, तो आचार्य महाराज ने आठवीं कारिका में विधि बता दी है। ज्ञान और ध्यान, उपवास, परीषह-जय तथा शील, संयम, योग के द्वारा अपनी आत्मा को सदा भावो। और शील संयम के पालन किये बिना मन वश होता नहीं और मन वश किये बिना मोक्षमार्ग होता नहीं।

ज्ञानी! जैसे इधर खड़े हो हाथ जोड़े, ऐसे ही हाथ में पीछी-कमण्डल लेकर खड़े हो जाते, तो अब तक कहाँ-से-कहाँ पहुँच जाते। जाओ, भैया! कल फिर आओगे? महाराज! पर्याय रही तो। भैया! आनंद आता है क्या ? आता है। अब तो सब शुद्ध बन गये। द्रव्य, गुण, पर्याय की बातें करने लगे। उसको कौन टाल सकता है? 'जो है, सो है'।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

ज्ञानाभ्यास और तप करणीय है

ज्ञानाभ्यासः सदा कार्यो, ध्याने चाध्ययने तथा।
तपसो रक्षणं चैव, यदीच्छेद्धितमात्मनः ।। 9 ।।

हे आत्मन्! यदि आत्मा का हित चाहते हो तो, ध्यान में और अध्ययन में निरन्तर ज्ञान का अभ्यास करो और तप की भी रक्षा करो।

।। देशना ।।

ज्ञानियो! यह सर्वज्ञशासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्य कुलभद्र स्वामी ज्ञानाभ्यास एवं तप का महत्व बता रहे हैं।

ज्ञानी! सुखानुभूति व दुःखानुभूति का बोध भी तभी होता है जब सम्यक् तत्त्वानुभूति है। तत्त्वानुभूति पर दृष्टि नहीं है, तो न सुखानुभूति का वेदन कर पा रहा है, न दुःखानुभूति का वेदन कर पा रहा है। वस्तुतत्त्व को समझने के लिये जो सारे जगत को समझ रहा है, उसे समझना बहुत आवश्यक है। ज्ञान को ज्ञान की धारा में समझना आवश्यक है। ज्ञान को ही नहीं समझ पाया है, तो अज्ञान को क्या समझेगा?

जिसे हम अज्ञान कह रहे हैं, वो ज्ञान ही है। अज्ञान नाम की कोई वस्तु नहीं है जगत में। ज्ञान नाम की ही वस्तु है। तो फिर अज्ञान नाम जुड़ा कैसे? प्रश्न करो। अज्ञान नाम की कोई वस्तु नहीं है, तो अज्ञान क्यों?

ज्ञानियो! प्रकाश न नीला होता है, न पीला होता है, न हरा होता है। प्रकाश तो प्रकाश ही होता है। उसमें लगे काँचों के वर्ण के कारण प्रकाश में भेद दिख रहे हैं। दुग्ध मधुर है। दुग्ध अपने स्वभाव में है। दुग्ध मधुर ही है, दुग्ध मीठा नहीं है। दुग्ध कड़वा भी नहीं है। समझने के लिए मस्तिष्क लगाना, बुद्धि लगाना। दुग्ध तो दुग्ध ही है। दुग्ध मीठा होता ही नहीं है। कुछ कड़वा होता ही नहीं है। दुग्ध का सहज धर्म 'मधुर' है।

माँ! आज तक आपने बेटे को शुद्ध दूध नहीं पिलाया। और पीने वाला भी शुद्ध पीने में मुस्कराया नहीं है। 'कितना मीठा माँ ने दूध दिया।' मुस्करा रहा है। अभागे! तूने दूध के स्वाद को चखा ही नहीं है। जो मिश्री थी, शक्कर थी, बूरा था, गुड़ था, वो घोल करके तूने दूध पिया है। तूने मिश्रधारा का स्वाद लिया है, दुग्ध का स्वाद लिया कहाँ है? मीठा दूध होता है क्या? ये तो आपने ऊपर से मिश्री घोली है। दूध कैसा होता है? वो कड़वा होता है क्या ? 'जो सो दु सो चेव'। वो तो जैसा होता है, वैसा होता है। 'जो है, सो है'।

कड़वी तुमड़ी में भर दिया, तो दुग्ध कड़वा हो गया, तो तू दूध पीना पसंद नहीं करता है। लेकिन ध्यान रखना, दूध कड़वा नहीं है। ये कड़वी तुमड़ी के सद्भाव से कड़वा है। यदि दोनों की सत्ता को निहारोगे तो एक-दूसरे का मिलन हुआ है। जो मिश्रधारा है, यही ध्रुव की विभाव धारा है।

ज्ञानियो! ज्ञान सम्यक् नहीं होता, ज्ञान मिथ्या नहीं होता। ज्ञान अज्ञान नहीं होता, ज्ञान सुज्ञान नहीं होता। ज्ञान तो ज्ञान ही होता है। सम्यक् की सत्ता में है तो सम्यक् ज्ञान है। और मिथ्या की सत्ता में हो तो मिथ्याज्ञान है। जो मिथ्या के सद्भाव में ज्ञान हो रहा है, उसका नाम अज्ञान है, पर वास्तव में ज्ञान तो ज्ञान है। इसलिये मुमुक्षुओ! इतना ध्यान रखना, मिथ्यादृष्टि के ज्ञान को गाली मत देना। आचार्य वीरसेन स्वामी दिगम्बर जैन आम्नाय में 'कलिकाल सर्वज्ञ' को उपाधि से विभूषित हैं। उन्होंने 'धवला' पुस्तक नं. 1 में लिखा है—मिथ्यादृष्टि जीव का ज्ञान भी मंगलभूत है।

ज्ञानगुण कभी अमंगल नहीं होता है। मिथ्यादृष्टि भी ज्ञान का उपदेश दे रहा है, वह ज्ञान भी मंगलभूत है। उस मिथ्यादृष्टि के ज्ञान का सम्मान मत छोड़ देना। क्यों? ग्रन्थ अचेतन है। जिनमें चेतन गुण नहीं है, उन ग्रन्थों में द्रव्यश्रुत लिपिबद्ध है। जब द्रव्यश्रुत को नमन कर सकते हो, अलमारियों में रखे ग्रन्थों को देखकरके अलमारी के सामने झुक सकते हो, तो जिस जीव के अंदर जिनवाणी विराजमान है, ऐसी आत्मा को अलमारी मान करके ही पूज लो। वह आत्मा पूज्य ही है।

कुन्दकुन्द स्वामी ने 'प्रवचनसार' जी ग्रन्थ की चरणानुयोग चूलिका में उल्लेख किया कि मिथ्यादृष्टि कोई मुनिराज हैं, उनकी वन्दना करें कि न करें? बड़े सम्हलकर सुनना आप लोग, क्योंकि कुछ ऐसे जीव आपको मिल जाते हैं, जो स्वयं मात्र को ही मुनि स्वीकारते हैं, किसी अन्य को मुनि नहीं मानते हैं। पण्डित जी किसी को मुनि ही नहीं मानते वो पहला मिथ्यादृष्टि जीव है, जो अपने अलावा किसी को मुनि मानने तैयार नहीं हैं। तू केवली नहीं है, तू सर्वज्ञ नहीं है, मनःपर्ययज्ञानी नहीं है, तो तू कैसे कह सकता है? ये तो अहंकार बोल रहा है कि मैं मुनि हूँ, कोई अन्य मुनि नहीं है।

ज्ञानी! किसी गुरु विशेष से दीक्षा लेने से मुनिपना नहीं आता है। मुनिपना अनंतानुबंधी, प्रत्याख्यान, अप्रत्याख्यान इन सर्वधाती के उदयाभावी क्षय और देशधाती प्रकृति संज्वलन के उदय के क्षयोपशम से जो जीव के परिणाम हैं, उसका नाम मुनि है।

आप कैसे निर्णय कर सकते हो कि किसने क्षय किया है और किसने नहीं किया है? यह तेरे ज्ञान का विषय नहीं, यह अवधिज्ञानी मुनिराज का विषय है अथवा केवली भगवान का विषय है कि किस जीव ने कितने कर्म की प्रकृतियों का क्षय किया है? इसे श्रुतकेवली भी नहीं बता सकते हैं। श्रुतकेवली भगवान इतना बता सकते हैं कि जो जीव इन कर्म की प्रकृतियों का क्षय या क्षयोपशम करता है, वह मुनि हो सकता है। लेकिन ये निर्णय नहीं कर सकते कि ये है। उनका विषय परोक्ष है। ज्ञानियो! सम्हलके सुनना। ये तत्त्वनिर्णय है। और तत्त्वनिर्णय में व्यक्ति नहीं चलता है, वस्तुस्वभाव चलता है। क्या लिख रहे हैं कुन्दकुन्द स्वामी 'प्रवचनसार' की 'चरणानुयोग चूलिका' में? हे श्रावको, हे मुनियो! यदि मिथ्यादृष्टि जीव भी है, तो जनसमूह के बीच में मुनि की अवहेलना मत कर देना। क्या तर्क दिया? अब आप आचार्यों की बात सुनो ध्यान से।

प्रमाण का ध्यान रखना 'प्रवचनसार'। दूसरा प्रमाण सुनिये। भट्ट अकलंकदेव स्वामी जी लिखते हैं, मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी मुनिमहाराज। पुलाक, वकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक ये 5 प्रकार के निर्ग्रन्थ मुनियों के भेद है। उनमें जो पुलाक और वकुश नाम के मुनि हैं, ये मूलगुणों में भी दोष लगा लेते हैं। मूलगुणों में दोष लगाने पर भी वे भावलिंगी दिगम्बर मुनिराज हैं। तो प्रश्नकर्ता प्रश्न करता है कि स्वामी! जब इन्होंने मूलगुणों में ही दोष लगा लिया है, तो फिर उनको 'मुनि' संज्ञा कैसे दें, 'निर्ग्रन्थ' संज्ञा कैसे दें? और निर्दोष संयम का पालन करें, तो हम श्रावक को भी तो मुनि कह सकते हैं?

भैया! ये गहरे तत्त्व हैं। मैं श्रावक को भी तो मुनि कह सकता हूँ। एक सम्यग्दृष्टि श्रावक संयम की साधना कर रहा है, तो उसे निर्ग्रन्थ कह दो, मुनि कह दो? तो अकलंक स्वामी कहते हैं, नहीं। मुझे मुद्रा प्रमाण है, भेष प्रमाण है, नग्नत्व प्रमाण है। श्रावक के पास नग्नत्व नाम की वस्तु नहीं है, वीतरागत्व नाम की वस्तु नहीं है, इसलिये इसकी निर्दोष चर्या भी श्रावक ही कहलायेगी और निर्ग्रन्थ मुनि की सदोष चर्या भी मुनि ही कहलायेगी, क्योंकि वह मुद्रा है।

सम्यक् सहित सदोष चर्या भी भावलिंगी ही है। सम्यक् रहित निर्दोष चर्या भी द्रव्यलिंगी ही है। नोट करना ये सब बातें। क्या है? हमारे सब विद्वान् बुजुर्ग हो गये हैं। और आज जमाना ऐसा आ रहा है कि - बताऊँ? पैकिग का जमाना आ गया है। वस्तु कैसी भी सड़ी-गली हो, बस उसकी पैकिंग अच्छी होनी चाहिए। ये हमारे बुजुर्ग विद्वान् जैसे दूध में पड़ी मक्खी को निकाल कर फेंक दिया जाता, इनको ऐसे ही फेंक दिया गया है। एक समय था जब

इनसे ही सब काम होते थे। इन विद्वानों के बिना देश में कोई काम ही नहीं होता था। आज बेचारों को कोई देख भी नहीं रहा है कि कहाँ हैं? परन्तु ध्यान रखना, जितना घी पुराना हो जाये, दुर्गन्ध भले ही दिखती हो, पर ज्ञानी! जब गम्भीर रूप से स्वास्थ्य बिगड़ता है, तो पुराना घी ही काम में आता है।

दिगम्बरचार्यों ने आयुर्वेद शास्त्र भी लिखे हैं। जीर्णघाव के लिये यदि कोई औषधि है, तो जीर्ण घृत होता है। ऐसे ही ज्ञानियो! वृद्धों को कभी ठुकरा मत देना।

सम्राट ने किसी कारण एक वृद्ध मंत्री को कुएं में डाल दिया, परिवार सहित। और भोजन कितना दिया? मात्र एक व्यक्ति का पेट भर सकता था। परन्तु वे लोग बहुत समझदार थे। मंत्री के परिवार के लोग कहते हैं, भैया! ये पूरा भोजन आप करो। हमारे जीने से कोई फायदा नहीं है। आप जियोगे तो कुछ और हो सकता है। देखो, सम्राट के ऊपर शत्रु राजा ने आक्रमण किया और जितने नये-नवोड़े मंत्री बन गये थे, वे मंत्रणा देने में सफल नहीं हो सके। एक बुजुर्ग सेनापति कहता है, स्वामी! अमुख मंत्री ही मंत्रणा दे सकते थे। उनको तो कुए में डलवा दिया। बहुत दिन हो गये अंधकूप में। क्या वो जीवित हैं? मालूम किया जाये। आवाज लगायी गयी कुए के ऊपर से। तो मंत्री की आवाज आती है कि हाँ, मैं जीवित हूँ, पर मेरे पूरे सदस्य, परिवार को नष्ट करके जीवित हूँ। ऊपर निकाला गया। सम्राट लज्जित हुआ, बोला- आज ऐसी आवश्यकता है। जिसकी ऐसी पुरानी प्रज्ञा थी, उसने राज्य मंत्रणा का ऐसा सूत्र प्रदान किया जिससे राजा उस मंत्रणा से विजय श्री को प्राप्त हुआ। तब राजा से कहता है कि स्वामी! 'सबके दिन एक-से नहीं होते हैं।'

भैया! पैकिग का समय चल रहा है। भीतर कुछ भी भरा हो। नहीं, नहीं। वस्तुस्वभाव पर दृष्टि करो। ये विद्वान तत्त्व को जानते हैं, परन्तु वर्तमान की भड़कीली भाषा बोलना नहीं जानते हैं, इसलिये आप समझते हो कि ये सब पुराने हो गये हैं। इनको आगम की भाषा बोलते बनता है। ये साहित्य की भाषा बोलते हैं। दार्शनिक भाषा बोलेंगे, सैद्धान्तिक भाषा बोलेंगे, तो उसको सुनकरके लोग समझेंगे कि ये तो पुरानी भाषा बोल रहे हैं, पर ज्ञानी! विश्वास रखना, जो नये लोग हैं, वे पुरानों से ही हैं। अगर पुराने न होते तो, तो तुम नये आये कहाँ से?

जो तुम्हारे माता-पिता हैं, उनके माता-पिता का अभाव होता, तो तुम्हारे माता-पिता कहाँ, और तुम्हारे माता-पिता का अभाव होता तो तुम कहाँ से हो? जो भी वर्तमान में नयी भाषायें दिखाई दे रही हैं, भड़कीले शब्द दिखाई दे रहे हैं, वो भी आप आगम से सीख कर आये हो। तो क्या कह रहे हैं कुन्दकुन्द स्वामी? हे जीव! श्रद्धागुण महान है। जैसे अलमारी में रखे

ग्रन्थ, मंदिर में विराजित प्रतिमा। श्री जी की प्रतिष्ठित प्रतिमा को देखकर मंदिर की देहरी को सिर टेकते हो, जिनवाणी को विराजित देखकरके अलमारी के पैर पड़ते हो। ऐसे ही जिस दिगम्बर मुनि के हृदय में सम्यक् विराजमान हो, उस ज्ञानगुण की वन्दना कर लेना। लेकिन जनसामान्य के बीच में दिगम्बर मुनि की अवहेलना करके ये सूचित मत कर देना कि जैनसाधुओं से हम दूर रहते हैं। अन्य लोग ये समझेंगे कि हम लोग विधर्मी हैं, ये गुरु को नहीं मानते हैं। कितनी प्रीति भी भाषा में समझा रहा हूँ, ये कहाँ से? 'प्रवचनसार' जी ग्रन्थ से बोल रहा हूँ। मतिज्ञान व श्रुतज्ञान, ये आत्मा का गुण नहीं है। ये ज्ञानगुण की पर्याय हैं। ठीक है, ये नियोग है कि यहाँ लोग सुन रहे हैं, तो मेरा भी विचार ये होता है कि जब लोग सुन रहे हों तो क्यों न हम अपने बुजुर्गो की भाषा को सुनायें पुनः। नहीं-तो लोग ये समझ चुके हैं कि चार फिल्म की कहानियाँ, चार शेर-शायरियाँ सुना देना, एक घंटा प्रवचन हो गया पूरा। ज्ञानी! ये कोई प्रवचन नहीं है।

जिसमें तत्त्वदृष्टि नहीं, द्रव्यदृष्टि नहीं, गुणदृष्टि नहीं और द्रव्य-गुण-पर्याय का व्याख्यान नहीं आ रहा है, ज्ञानियो! वह तत्त्व-उपदेश नहीं है। ये श्रोताओं के साथ छल है। उपने व्यक्तित्व अपने प्रभुत्व को लेकरके श्रोताओं को कुछ भी सुनाते रहना, ये सम्यक् बुद्धि का साधन नहीं है। तत्त्व-उपदेश मात्र इतना हो जिसमें ज्ञानी श्रोताओं को सम्यक् गुण की जागृति हो और सम्यग्दृष्टि को विशुद्धि बढ़े और चारित्रगुणधारण करने के परिणाम हो और चारित्रवान् की वैराग्य की ओर वृद्धि हो और निर्दोष संयम के पालन का परिणाम हो और निर्दोष संयमी को वीतरागी बनने के भाव हों, उसका नाम तत्त्वोपदेश है। यही तत्त्वोपदेश है।

विषय गहरा है, बिलकुल एकाग्र होके सुनना। ज्ञानियो! ज्ञान मिथ्या नहीं होता, ज्ञान सम्यक् नहीं होता। ज्ञान मात्र ज्ञान होता है। वो जो ज्ञानगुण है, वह त्रैकालिक है।

हे मुमुक्षुओ! प्रकाश पर काँच का आवरण है। उससे रंग वैसा दिखाई दे रहा है। विद्युत तो जैसी है, वैसी ही है। इसलिये जब ज्ञान पर सम्यक् का सद्भाव होता है, तो वह ज्ञान सम्यक् ज्ञान कहलाता है। और ज्ञान पर जब मिथ्या का आवरण आ जाता है, तो वह मिथ्या ज्ञान कहलाता है। वास्तव में ज्ञान तो ज्ञायकभाव है। जब भी ध्यान करने बैठना, मतिज्ञान का ध्यान नहीं होता, श्रुतज्ञान का ध्यान नहीं, केवल, मनःपर्याय का ध्यान नहीं। योगी जब ध्यान में लीन होता है, तो ज्ञायकभाव का ध्यान करता है। जैसे ज्ञायकभाव में पाँचों ज्ञान, ऐसे ही सुख आत्मा का गुण है। कभी-कभी पूज्यता में अधिक बह गया जीव, श्रद्धा में अधिक बह गया जीव, तो भी वस्तुस्वभाव को समझ नहीं पाता है। और यदि अश्रद्धान में बह जाये, तब भी वस्तुस्वभाव को समझ नहीं पाता।

तत्त्व वही समझ पाता है, जो तटस्थ होके रहता है। जिसे अच्छी भाषा में 'श्रद्धा' बोला जा रहा है, उसे मैं अब दूसरी भाषा में बोलता हूँ 'राग'। तत्त्व के प्रति राग भी श्रद्धाभूत हो जाये, और श्रद्धा में भी राग तत्त्वभूत हो जाये, तो ज्ञानी! तू दूसरी वस्तु सुनना भी पसंद नहीं करता। तू समझ नहीं पायेगा। जैसे कि भैया! तू पण्डित जी का बेटा है न? हे ज्ञानी! ये जीव जब प्रवचन करता है, तो इसके मुख से जिनवाणी झरती है और जब घर में बेटे की माँ को डाँटता है, तब इसका चेहरा देखने लायक होता है। वो बेचारी सीधी-सादी मिल गई है। कुछ भी बोल देता है। पर भैया! मुख तो वही होता है। जब ये अपने बेटे की माँ को अशुभ शब्दों में पुकार रहा हो, तो जिन वार्णों से जिनवाणी बोली जाती है, वही वर्ण होते हैं कि कोई वर्ण अलग से लेकर आता है?

जो-जो अपने घर में गाली देते हों, वे ध्यान से सुनना। एक काम करना, 'अ' से लेकर 'ह' पर्यन्त जो बीजाक्षर हैं, इन बीजाक्षरों के लिये हमारे यहाँ मांत्रिक यंत्र कहा है। जब भी वेदी प्रतिष्ठा होती है तो उसे ह-पर्यन्त लिखना पड़ता है। जब भी तीर्थंकर की प्रतिमा प्रतिष्ठित होती है, तो अंकन्यास जो विधि होती है, इन्ही वर्णों से लिखी जाती है। जब भी कोई मंत्र का उच्चारण होता है, इन्हीं वर्णों से होता है। तो भैया! आप लोग बड़े पुण्यात्मा जीव हो। बस इतनी करुणा, इतनी कृपा, अनुकम्पा करना कि जब तुम गाली देना तो कोई दूसरे शब्द खोज कर लाना। लेकिन इन 64 वर्णों से तुम किसी को गाली मत देना। इनसे तो हमारी जिनवाणी लिखी गयी है।

जो जीव इन वर्णो से किसी को श्वान कहे, सुअर कहे, अज्ञानी कहे, पापी कहे, भैया! सुनो, ये वीजाक्षर हैं, इन वीजाक्षरों का दुरुपयोग मत करो। किसी को गाली मत देना। ये मंत्राक्षर हैं, बीजाक्षर हैं। नाम लिखाने का शौक हो आपको, तो दीवालों पर लिखा लेना, भैया! फर्श पर मत लिखाना। जिस श्री पर तीर्थंकर की प्रतिमा को स्थापित किया जाता है अभिषेक के समय, उस श्री बीजाक्षर को तुम पैरों के नीचे दबा रहे हो, तो तुमको ज्ञानावरणी कर्म का घोर आस्रव होगा। क्या कारण है कि सात स्थानों पर मौन रहने के लिये कहा है? मल-मूत्र विसर्जित कर रहे हो तो मौन रहिये। मुख से जो भी कहा जायेगा, वह उच्चारित होगा, वह शब्द होगा। 'शब्द' अक्षरों से बनता है और अक्षर 'मंत्र' होते हैं। इसलिये मंत्रों का उपयोग खोटे स्थानों पर मत कीजिये। (1) भोजन के समय (2) मल विसर्जन के समय (3) मैथुन के समय (4) वमन के समय (5) स्नान के समय (6) पूजन के समय (7) भगवान की भक्ति के समय। इन 7 स्थानों पर मौन रखना चाहिये। पूजन के समय मात्र

पूजा का ही उच्चारण करना चाहिये, शेष कोई उच्चारण नहीं करना । वही मौन है। हाँ, मंत्र तो बोलना, पर अन्य बातें नहीं बोलना। पूजन कर रहे हो आप और बगल में पूछ लिया, 'पण्डित जी! कब आये आप?' और फिर पूजा शुरू हो गयी। अन्तराय डाल दिया आपने। एक समय के लिए अपने शुभोपयोग में अन्तराय डाला है आपने। वो इतना महान था कि एक तीर्थंकर जिनेन्द्र के सामने, आप अर्हन्त को निहारते हुए भी, आप एक क्षण को उस जीव को लेकर आ गये।

माँ भगवती जिनवाणी कह रही है, मेरे लाल! माँ के आँचल से जब बछड़ा लग जाता है तो एक क्षण भी वह मुख हटाना पसन्द नहीं करता है। मुख हटा देगा तो उतने समय के लिए उसके मुख के दूध का स्वाद समाप्त होगा, कि नहीं होगा?

हे वत्स! गाय का बछड़ा भी माँ के आँचल को छोड़ता नहीं है, क्योंकि उसे विघ्न नजर आता है। आप तीनलोक के नाथ के चरणों में भक्ति कर रहे थे और आप दूसरे कार्यों में लग गये ज्ञानी! आपने एक समय को आनन्द भंग किया है। जिनवाणी सुनते समय मोबाईल की घंटी बजी, तो धीरे से पूछ लिया कि 'भैया कहाँ गया है?' हे व्यवस्थापक! बगल में जो आये सो आन दो, जो नहीं आये सो न आन दो। जब शुरू हो जाये, सो मत कहना कि आओ, बैठो। ज्ञानी! तीर्थंकर की सभा में हर व्यक्ति सामान्य होता है। जब आपने यों कहा 'पण्डित जी! बैठो', तब आपने एक का तो सम्मान रखा। व्यवहार कहेगा कि आपने बहुत अच्छा किया, लेकिन परमार्थ दृष्टि कहेगी कि चार लोगों की दृष्टि और गयी थी, उन चार का आपने चित्त भंग किया है, उसमें आपने अन्तराय डाला है। समझ में आ रहा है न?

जैसे माँ का आँचल छूटने पर माँ को दुःख होता है, ऐसे ही माँ जिनवाणी के प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग ये चार थन हैं। उन चारों थनों से श्रुत की दुग्ध-धारा झर रही थी और ये मुमुक्षु कर्णेन्द्रिय लगाकर रसपान कर रहे थे। उसमें कोई दूसरी बात आ जाये तो उनको विघ्न होता है।

आपको ज्ञात होना चाहिये कि कीड़े-मकोड़े को चबाने वाला विषधर दूध पीना भी जानता है। दूध का कटोरा रख दो तो कालिया नाग पी लेगा। भैया! कालिया नाग भी दूध पीना जानता है। दूध का स्वाद उसे भी मालूम होता है। जगत में कैसा ही अज्ञानी जीव होगा, पर भगवान जिनेन्द्र की वाणी का दुग्धपान करना सबको अच्छा लगता है। ये कभी मत कहना कि पापियों को उपदेश मत देना। ज्ञानी! उपदेश पापियों को नहीं दोगे तो वे पापां को छोड़ेंगे कैसे? पापियों को इसलिये उपदेश देना कि वे पाप छोड़ें और पुण्यात्मा को इसलिये देना कि अपने संयम का और अच्छे से पालन करें।

आज के विषय को हृदय में रखके ले जाना। भाई! कभी किसी के प्रति अशुभ सोचना नहीं, अशुभ कहना नहीं, अशुभ उसके लिए करना नहीं। कभी भी नहीं सोचना। यदि कोई आपको गाली भी दे, तब भी उसके प्रति अशुभ नहीं सोचना। क्योंकि तुम्हारा धर्म जो है, वो प्राणीमात्र के लिए हित चाहनेवाला है। और ज्ञानी! जो आपको गाली दे रहा है, वो भी एक प्राणी है। आपने उस पर अशुभ भाव नहीं किये, यही तुम्हारा धर्म है।

'सत्त्वेषु मैत्रीं' प्राणीमात्र पर मैत्रीभाव हो । मिथ्यादृष्टि जीव मारीचि नहीं होता तो आज महावीर कहाँ से होते? हे मारीचि! आपको गाली मैंने तब भी नहीं दी, आज भी नहीं देता हूँ, क्योंकि मुझे मालूम है कि कच्चा माल ही पक्का होता है। बनी रोटियाँ देखकर घर के डिब्बे में रखे आटे को फेंक मत देना। सुबह रोटियाँ बन गयी, पेट भर गया, अब तू यों कहे कि इस आटे को कौन छुयेगा? तो ज्ञानी! शाम को क्या खायेगा?

मिथ्या पर्याय का विनाश करके ही सम्यक् प्रगट होता है और सम्यक् पर्याय से युक्त जीव ही अर्हन्त पर्याय को प्राप्त होता है। पर मिथ्यात्व की पुष्टि नहीं करना। साम्यभाव से तटस्थ रहना। हे वर्द्धमान! आपकी भूल की पर्याय को देखें तो आप सांख्य दर्शन के संचालक थे और वर्तमान की पर्याय को देखें तो आप सिद्धालय में विराजमान सिद्ध भगवान हो। इसलिए किसी को गाली मत देना। उसको लगे या न लगे, पर तेरे द्वारा जिनवाणी का अवर्णवाद हुआ है। श्रुत का विपर्यास किया है। तीव्र ज्ञानावरणी कर्म को प्राप्त करेगा। मुख से अशुभ शब्द भी बोलना श्रुत का अवर्णवाद है। 'कारण-कार्य विपर्यास।' मित्र को मित्र कहने वाले कोटि-कोटि हैं, लेकिन शत्रु को मित्र देखनेवाले ज्ञानी विद्वान् अँगुलियों पर गिनने लायक हैं। अगर आप मेरे से दिगम्बर मुनि की परिभाषा पूछोगे, मेरे से मतलब माँ जिनवाणी से, तो जिनवाणी माँ साधु की परिभाषा इतनी मात्र करती है कि जो साधु व असाधु दोनों को साम्यभाव से देखता है, उसका नाम साधु है। कंचन व कांच पर साम्यदृष्टि जिसकी है, उसका नाम साधु है। कंचन-कांच पर साम्यदृष्टि जिसकी है उसका नाम साधुस्वभाव है। असि प्रहारण अर्घावतारण में सदा समता धरें।

एक असि का प्रहार कर रहा है और दूसरा अर्घ का उतारण कर रहा है, वे दोनों को साम्यभाव से देख रहे हैं। एक काला नाग गले में डाल रहा है और दूसरा नाग को निकाल रहा है, पर योगी दोनों को बराबर आशीर्वाद दे रहे हैं।

जयवंत हों वे यशोधर महाराज। राजा श्रेणिक ने नाग डाला, चेलिनी ने नाग निकाला। पर हे श्रेणिक! भूल तेरी नहीं, भूल सोपादिक दशा है। इतने चिंतन के लिये बहुत ठण्डा

मस्तिष्क चाहिये। गर्म पानी में भैया! चेहरा नहीं दिखता। गर्म मस्तिष्क पर तत्त्वदृष्टि आती नहीं। यदि श्रेणिक सांप डालता होता, तो वही श्रेणिक पुनः चरणों में क्यों सिर टेकता? हे श्रेणिक! ये तेरे विभाव की दशा थी। ये कषाय की तीव्रता थी और कषाय की तीव्रता में ही सबकुछ हुआ है। और जब कषायभाव विगलित हुआ तो जो नाग को डाल रहा था, वह सिर टेक रहा है। सिर टेका कि नहीं टेका? हे श्रेणिक! निमित्तदृष्टि से कहूँ कि यदि तू नहीं होता, तो 60 हजार प्रश्न कौन करता? और 60 हजार प्रश्न न होते, तो आज ये जिनवाणी मुझे कहाँ से मिलती? योगी के पास ज्ञान है, पर उस ज्ञान को उद्घाटित करने वाला श्रोता श्रावक तो चाहिये। गुरु के पास ज्ञान है, लेकिन शिष्य नहीं हैं, तो क्या मालूम गुरु के ज्ञान है कि नहीं है। गुरु के ज्ञान को उद्घाटित करानेवाला कोई है तो उसका नाम शिष्य है। जितना गुरु शिष्य का उपकार करता है, शिष्य भी गुरु का उपकार करता है। पढ़नेवाले नहीं होंगे तो तुम्हारी विद्या किस काम की? अंदर ही रखी रहेगी विद्या। पर ज्ञानियो! पानी लबा-लब है। बर्तन में भरकर ले जाओगे, पर ढक्कन ठोकना भी पड़ता है। ऐसे ही शिष्य की बुद्धि कुटिल हो रही हो, तो उसे ठोकना पड़ता है, फिर उसमें पानी भर देना चाहिये।

ज्ञान, दर्शन, सुख जो है वो भी जड़भूत है। पण्डित जी! इसमें आप विद्वान् हो और विद्वानों की सभा में उपदेश चल रहा है। और ये भी मान कर चलना भैया! जिस सभा में विद्वान् न हों, वह सभा बन्ध्या का शृंगार है। जनसामान्य को तुम कुछ भी कह दो, सब सुनने को तैयार हैं। पर विद्वानों के बीच में तुम उनको कुछ दे सको, वो बात करो।

ज्ञानियो! सुखगुण भी अचेतन है, वीर्यगुण भी अचेतन है। एकमात्र चेतनगुण कोई है, तो ज्ञान-दर्शन है। दो गुण अचेतन हैं। जीव का लक्षण जब भी होता है, तो सुख से नहीं होता, वीर्य से नहीं होता, अन्य गुणों से नहीं होता। जीव का लक्षण जब भी बनता है तो 'चेतना लक्षणो जीवः।'

जिसमें चेतना है, वह जीव है। प्राणों से जीव का लक्षण नहीं बनता है। द्रव्यप्राणों से जीव का लक्षण नहीं करना, क्योंकि द्रव्यप्राण तो नष्ट होते हैं, बदलते रहते हैं। चेतन प्राण ही जीव का ध्रुव लक्षण है, त्रैकालिक है। अब जो सुख है, इसका वेदक कौन है? ज्ञान। 'विद्धातु ज्ञानार्थे'। ज्ञान के अर्थ में 'विद्' धातु का प्रयोग होता है। जो वेदन कराता है, वह सम्वेदन स्वभावी है। स्व-पर सम्वेदी है। ज्ञान स्व-पर सम्वेदी है। हम पर-सम्वेदी मात्र नहीं मानते। स्व-पर सम्वेदी है। दर्शन के साथ उपदेश सुन रहे हैं आप। ज्ञान ही ज्ञान में लीन होता है। उसमें ज्ञान अद्वैत सुख की अनुभूति लेता है। ज्ञान जब इन्द्रिय में लीन होता है, उस

समय ज्ञान द्वैत की अनुभूति लेता है। ज्ञान जब ज्ञान में लीन होता है, तब ज्ञान अद्वैत का सुख वेदन करता है। और ज्ञान जब इन्द्रियों मे लवलीन होता है, तब ज्ञान द्वैत की अनुभूति का वेदन करता है।

सुख गुण एक है। इन्द्रिय-सुख भी सुख है। अतीन्द्रिय सुख भी सुख है। आनन्द है। अब ये इतना सारा विषय क्यों मैंने विस्तार किया? कभी-कभी आनन्द जो शब्द है, इतना ऊँचा हो गया है, तो लोगों ने उस आनन्द शब्द को आत्मानन्द में रखा है। भैया! शब्द की पूजा में मत चलो जाओ, वस्तुव्यवस्था मात्र को समझो। आनन्द जो है, वो आत्मा का गुण है। सुख है। उसका आनन्द आता है। विकल्प मत करना। आज विषय चल रहा है, कल का मालूम नहीं कि मेरा क्षयोपशम चला कि नहीं चला। आप विशुद्धसागर के ज्ञान को भी शाश्वत मत मानिये। जो कह रहा हूँ, वह जिनवाणी का ज्ञान है। क्षयोपशम बढ़ता भी है, घटता भी है। पर इतना विश्वास रखना, साधक की जितनी विशिष्ट विशुद्धि होगी, ज्ञान बढ़ेगा और विशुद्धि की हानि होगी, तो क्षयोपशम नष्ट होगा। भैया! कोमल वैद्य के लिये उतने तरीके से सुरक्षित रखना पड़ता है।

पान के पत्तों को सामान्य खेत में क्यों नहीं उगाते हैं? भैया! पान के पत्तों के लिये खेत वही होते,लेकिन व्यवस्था अलग से होती है। चारों तरफ से सुरक्षा करके, उनको शान्ति से भरा है पानी, छाया है, टटिया लगी हुई है, उसमें पान के पत्ते उग रहे हैं। ज्ञानियो! संसार के विषयभोगों के ज्ञान के लिये कहीं भी आप धूप में बैठ जाओ, वहीं सुरक्षित रह जायेगा। लेकिन तत्त्वज्ञान के लिए मस्तिष्क को पान के पत्ते की भाँति ठण्डा करना पड़ेगा, तब तत्त्वज्ञान बढ़ेगा। यदि विशुद्धि की क्षति हो गई, तो तत्त्वज्ञान नष्ट हो जायेगा।

सुख और आनंद। आनंद कार्य है, तो सुख कारण है। सुख होगा, तो आनंद आता है। सुख नहीं है, तो आनंद नहीं आता। सामग्री कितनी ही रखी रहे, सुख है तो आनंद है। वह सुख कहाँ है? पदार्थ में। साता में वही भवन, वही राज्य, वही वैभव, मंगलाचरण, माँ कौशल्या मुस्करा रही है। माँ एक क्षण उपरांत में राजमाता बनने वाली है। राजमाता बनने के स्वप्न सजो रही है माता कौशल्या 'मैं राजमाता बननेवाली हूँ।' पर क्या करूँ? हे माँ! आपके पति दशरथ को भी स्वीकार था कि मेरी ज्येष्ठ पत्नि, राम की माँ, कौशल्या, राजमाता बनेगी। कब? जब राम सम्राट बनेगा। नगर को स्वीकार था, देश को स्वीकार था, पति को स्वीकार था, पुत्र को स्वीकार था, लेकिन हे कौशल्या माँ! हम केकई को दोष क्यों दें? पर विधि को स्वीकार नहीं था। ज्ञानियो! जब भाग्य उलटा हो जाता है। 'दैवस्य कुटिलः गति' दैव

की कुटिल गति होती है। वक्र गति होती है। निमित्त बनके तो कैकई मात्र को कलंक लगता था, परन्तु ध्रुव सत्य था कि कर्म ऐसा खड़ा हुआ था। तो कैकई कहने लगी कि मेरे बेटे को राज्य दो।

अनुभव करो, वही राज्य था,अवधपुरी थी, चौक पुरे थे। एक भी चौक मिटा नहीं था। मात्र इतनी सूचना कानों तक पहुँची थी कि कैकई कह रही है कि मेरे बेटे भरत को राज्य दिया जाये। ज्ञानी! क्षणमात्र में। जबकि दोनों बेटा दशरथ के थे, तब भी आनंद में कमी आयी थी। क्यों? बेटे तो दोनों थे न? तटस्थ भाव से देखते दशरथ जी तो ज्येष्ठ नहीं, तो छोटा सही। पुत्र तो मेरे हैं, राज्य भी मेरे बेटों के हाथ में है।

ज्ञानियों! ये तो राज्य की बात थी। ज्ञानी! तू अपने दाँये कान में बाली पहनना चाहता है और कान छिदाने गया तो उस समय तुझे भी ध्यान नहीं रहा और उसने बाँया कान छेद दिया। बाली एक ही थी। उसने छेदा ही नहीं, पहना भी दी। कान तेरे ही दोनों थे, चाहे दाँया हो या बाँया हो। लेकिन तब भी मन में विकल्प आया । बोले- क्यों भाई? अरे ! तुझे क्या टेंशन? कान तो तेरे ही हैं न? कोई बाली बाहर नहीं गयी, तेरे ही शरीर पर है। तब भी ज्ञानी! दाँये से बाँये हो जाये, तो तेरी भौहें तन जाती हैं। फिर तो और पर में चला जाये, फिर कैसे? पकड़िये भावों को।

भैया! तू दान देने के भाव किये था और तूने विचार कर लिया कि मैं चार श्रीफल मांझ मंदिर में चढ़ाऊँगा, पांच श्रीफल पपौरा जी में, दस श्रीफल अहार जी में चढ़ाऊँगा। ऐसा विचार करके तू घर से निकल पड़ा। बीच में बाजार का मंदिर पड़ गया। ये तेरे मित्र कहते हैं कि भैया! यहाँ चढ़ा दो। तेरा मन विकृत होगा। बोले- ये कह रहे हैं, सो चढ़ाये देता हूँ, पर मेरा मन तो पपौरा में चढ़ाने का था। ज्ञानी! तूने धर्म नहीं समझा। तूने यह नियत कर लिया कि पपौरा जी में चढ़ाऊँगा। अरे! तुझे ये मालूम होता कि तीनलोक के नाथ के चरणों में चढ़ाऊँगा, तो ज्ञानी! जहाँ प्रभु मिल जाते, वहीं तेरा पपौरा था।

अभी धर्म बहुत दूर है। लोगों ने यही बाँटके रखा है कि प्रमेयसागर मिलेंगे तो उनको आहार कराऊँगा, कहीं प्रशमसागर पहुँच गये, सो बोले-आज प्रशमसागर आये। और यदि दिगम्बर मुनि को आहार कराना होता, तो ज्ञानी! कोई मुनिराज आ जाते तो कहता कि अहोभाग्य हमारे जो धरती के देवता आज घर आये हैं। पर क्या करूँ? सम्यक् बोध देने वाले ज्ञानियों की न्यूनता आ चुकी है। वो तो व्यक्तियों को दिखाने लग गये हैं, वस्तु को दिखाना बंद हो चुका है। व्यक्तियों के उपदेश चल रहे हैं, वस्तु के उपदेश समाप्त हो रहे हैं।

जैसे विश्व की सबसे सुन्दर प्रतिमा गोम्टेश बाहुबली है, वैसे ही विश्व की सबसे सुंदर प्रतिमा देखने जाओ शान्तिनाथ की, तो अहार जी में है। सुन्दरता की बात कर रहा हूँ। अब तुम सुन्दरता में लिप्त होकरके कहीं टीकमगढ़ में शान्तिनाथ विराजे हों, उनकी अवहेलना मत कर देना। ज्ञानी! वो सुन्दरता कारीगर की शिल्पकला है। लेकिन वीतरागता तो सभी प्रतिमाओं में है, पंचकल्याण एक-से हैं।

हे दशरथ! कैकई राज्य मांग रही है बेटे के लिये। कौशल्या निहार रही है कि मेरा क्या होगा? हे दशरथ! कैकई की ओर देखोगे तो द्वेष आयेगा, कौशल्या की ओर देखोगे तो राग आयेगा। हे दशरथ! दोनों रानियाँ तुम्हारी हैं। भरत भी तेरा बेटा है, राम भी तेरा बेटा है। मांगने वाले की इच्छा-अनिच्छा है, पर वस्तुस्वभाव से देखो तो राज्य तेरा ही है।

घटमौलिसुवर्णार्थी नाशोत्पादस्थितिष्वयम्।

शोक-प्रमोद-माध्यस्थ्यं जनो याति सहेतुकम्।। (आ.मी. 59)।।

स्वर्ण घट, स्वर्ण मुकुट। कन्या चाहती है कि कुंडल बने इसका। कुमार चाहता है कि मुकुट बने। राजा सामने तटस्थ है। मुकुट बनेगा तो मेरे ही बेटे का है और कुंडल बनेगा तो मेरी ही बेटी का है। चाहे मुकुट बने, चाहे कुंडल बने, पर सोना तो मेरे ही घर का है।

हे मुमुक्षुओ! ज्ञायकस्वरूप से देखोगे तो चाहे दु:ख हो, चाहे सुख हो, दोनों ही कर्म की दशा है संसार में। संसारसुख की बात कर रहा हूँ। संसार में चाहे इन्द्रियसुख हो, चाहे इन्द्रियदु:ख हो, दोनों कर्म-दशा हैं। ज्ञानी ज्ञायकभाव से देखता है तो न सुख मेरा है, न दु:ख मेरा है। ये तो भावों की पर्याय है। पुण्योदय, पापोदय दोनों पुद्गल की पर्याय हैं। ज्ञायकभाव मेरा है।

इसकी अनुभूति के लिये मुमुक्षु भाई! कोटि-कोटि भव लग जायेंगे। दिगम्बर मुनि बनके भी अगर इसकी अनुभूति नहीं ले सका, तो विश्वास रखना, हीरे-मोती देकरके तू कांच का टुकड़ा ले आया है। दिगम्बर मुनि इसलिये बनना पड़ता है, ज्ञायकभाव मात्र की अनुभूति के लिये। कोई अन्य काम नहीं है यहाँ। जो भी काम आपको दिखते हैं, वे मात्र ज्ञायकभाव में स्थिर रखने के लिये हैं। इस पण्डाल का क्या काम है? कोई काम नहीं है। इसमें बैठने के लिये कोई नहीं आता। अगर इसमें बैठने के लिये आते होते, तो अभी मैं जाता हूँ। क्यों मुमुक्षु! तेरे जबलपुर में कितना बड़ा पण्डाल तना हुआ था और जैसे ही मैंने वहाँ से विहार किया, सो ऐसे रोज रात होत जात। ध्यान से सुनने का। इस पण्डाल का क्या काम है? खम्बों

पर सब चादर लपेटे हुये हैं। सब तटस्थ हैं अपने आप में। कोई काम दिखाई दे रहा है क्या? नहीं दिखाई दे रहा है, फिर भी काम हो रहा है।

ज्ञानियो! निहारिये जो लक्ष्यभूत है, इस पण्डाल में उपदेश है। अलक्ष्यभूत उपदेश की प्राप्ति के लिए सभी साधन बनाये गये हैं। ऐसे ही जो भी धार्मिक क्रिया आदि हैं, सब पण्डाल की भाँति हैं।

"**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

ज्ञानादित्य का प्रभाव

ज्ञानादित्यो हृदि यस्य, नित्यमुद्योतकारकः।
तस्य निर्मलतां याति, पञ्चेन्द्रियदिगङ्गना।। 10॥

जिसके हृदय में सदा ज्ञान-रूपी सूर्य प्रकाशित रहता है, उसकी पाँचों इन्द्रियरूपी दिश-अंगनायें निर्मल रहती हैं।

।। देशना ।।

अंतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेश की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी, मनीषियो! जगत्कल्याणी है।

यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी 'सार समुच्चय' जी ग्रन्थ में तत्त्व की प्ररूपणा करते हुये समझा रहे हैं। हे मुमुक्षु! यदि आत्महित की आकांक्षा है, तो ज्ञान में लवलीन हो जाओ। स्वहित चाहता है तो ज्ञान में लीन हो जाओ। विवेक-बुद्धि का ह्रास ही जीवन की सबसे बड़ी आपत्ति है।

जहाँ विवेक है, वहाँ आनन्द है। 'विवेक' शब्द जो है, बहुत गम्भीर है। विवेक यानि भेदविज्ञान। विवेक का अर्थ है पृथकीकरण, भिन्नत्व भाव। जैसे श्रमणों को विवेक नाम का प्रायश्चित्त है। दो भिन्न द्रव्यों का सेवन एकसाथ नहीं करना, ये विवेक नाम का प्रायश्चित्त है। घृत लेना तो घृत ही लेना, रोटी में नहीं लगाना। नमक लेना तो नमक ही लेना, दाल में नहीं डालना। दाल ही लेना, उसमें और-कुछ नहीं डालना। ये विवेक है, विवेक। जैसे दो भोज्यसामग्री को भिन्न-भिन्न करके देखते हो, ऐसे ही ज्ञानी! आत्मा और शरीर इन दो को भिन्न करके देखना, इसका नाम है विवेकज्ञान।

देह और आत्मा को भिन्न निहारना, इसका नाम है विवेकज्ञान और जो विवेकज्ञान है, उसी का नाम है भेदविज्ञान। जबकि लोगों ने विवेक का अर्थ बुद्धि की प्रकर्शता ग्रहण किया है। यही तो बुद्धि की प्रकर्शता है कि दो भिन्न द्रव्यों में अभिन्न को निहार लेना। जो-जो अनर्थ हुआ है, हो रहा है, होगा, वो विवेकज्ञान के अभाव में हुआ है। किंचित भी विवेक जाग्रत हो जाता, तो ज्ञानियो! कभी भी अशुभ निर्णय तेरे अंदर में न आते। पश्चात्ताप तो अशुभ करने के उपरान्त होता है। ये पश्चात्ताप अशुभ करने के पूर्व आ गया होता, तो विश्वास रखना, पश्चात्ताप ही नहीं करना पड़ता। सभी जीव ज्ञानी हैं। ज्ञानी होना भिन्न विषय है, ज्ञान का उपयोग करना, विद्या होना भिन्न विषय है।

आनन्द से जीने के परिणाम थे, सुख में जीने के परिणाम थे तो, ज्ञानी! विवेक को खोया ही क्यों? तटस्थ होके समझना, मध्यस्थ होके समझना। जगत की सम्पूर्ण वस्तुयें अपने आप में तटस्थ हैं। सम्पूर्ण द्रव्य तटस्थ हैं। किसी से कोई यों नहीं कहते कि आप मुझे छोड़ें या स्वीकार करें। एकमात्र जीवद्रव्य ऐसा है जो ग्रहण भी करता है और छोड़ता भी है।

जब मोह में लिप्त होता है, तो सारे जगत को अपना मान बैठता है और मोह मंद पड़ता है, तो सारे जगत से भिन्न होने लगता है। जब राग में होता है, तो अपने मल के पिण्ड को भी अपना कहता है और द्वेष में होता है तो जन्म देने वाली माँ को भी धक्का मार देता है। विवेकहीनता। ज्ञानी! मस्तिष्क को मध्यस्थ बनाके रख पाना बहुत बड़ी साधना है। मस्तिष्क को, अपनी प्रज्ञा को, अपनी बुद्धि को मध्यस्थ बना कर रखना, ये बहुत बड़ी साधना है। बहुत ध्यान से सुनना। जो भी तत्त्व के निर्णय होंगे, हेय-उपादेय का निर्णय होगा, वो ज्ञानियो! बुद्धि की मध्यस्थता से ही होगा।

अत्यन्त हर्षित भाव में ज्ञानियो! तत्त्व का निर्णय नहीं करना। अत्यन्त दु:खित भाव में तत्त्व का निर्णय नहीं करना। हर्षित परिणाम भी संक्लेशित परिणाम ही है। विषाद परिणाम भी संक्लेश परिणाम ही है। लोगों ने हर्षित होने को आनन्द मान लिया, हर्षित होने को लोगों ने विशुद्धि मान लिया है। जबकि हर्षित होना विशुद्धि नहीं है क्योंकि नोकषाय में 'हास्य' कषाय है। अन्यथा हर्षित होने से कर्म की निर्जरा होना चाहिए, जैसे क्रोध कषाय चारित्रमोहनीय कर्म का आस्रव कराता है। उदाहरण देखो। भैया! उबलते पानी में चेहरा दिखाई देता है क्या? बर्फ में चेहरा दिखाई देता है क्या? ये दोनों स्वभाव से भिन्न हो चुके हैं। जैसे शीतल बर्फ में चेहरा नहीं दिखता, उबलते पानी में चेहरा नहीं दिखता है, ऐसे ही हर्ष के अतिरेक में, जिनागम में लिखा है कि सिद्धांतशास्त्रों की वाचना नहीं होती। पर्व के दिनों में, विशिष्ट धार्मिक अनुष्ठान हो रहे हों, अत्यन्त उत्साह चल रहे हों, ऐसे काल में सिद्धांतशास्त्रों की वाचना नहीं होती।

व्यवहारिक दृष्टि से अपन चर्चा करें। यदि किसी व्यक्ति को बहुत ज्यादा मुनाफा हो जाता है तो उसका हार्ट-अटैक हो सकता है कि नहीं? हृदय की धड़कन कब-कब भड़कती है? अधिक लाभ में और अधिक दु:ख में।

हर्ष में, विषाद में दोनों में संक्लेश भाव है। यदि विषाद में हृदयाघात होता है तो स्वीकार था। प्रसन्नता में तो नहीं होना चाहिये था न? जबकि प्रसन्नता में भी हृदयाघात होता है। विवेक जो है मध्यस्थ भाव है। निद्रालु पुरुष सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं कर सकता। सम्यग्दर्शन जब भी होता है जागती अवस्था में होता है, सोते में नहीं होता है। आयुबंध भी होता है तो

परिणामों की तीव्रता में आयुबंध नहीं होता है। अत्यन्त हीनता में भी नहीं होता है। कषाय और परिणामों के मध्यम अंश में ही आयुबंध होता है।

अरे! आप तो 'गोम्मटसार जीवकाण्ड' पढ़िये। कषाय और लेश्या के मध्यम अंश में ही आयु का बंध होता है। जैनदर्शन में तत्त्व की गहराइयाँ हैं। ज्ञानी! जहाँ लोग वर्तमान में हृदय के घात की माप-तोल करते हैं, अब कहीं नहीं जाना। लेश्या स्थान, परिणाम और ज्ञान की धारा। हर पुरुष के शरीर का स्वास्थ्य उसके हाथ में है। सहज हो जाओ। जो लोग ध्यान की बात किया करते हैं, भैया! कुछ नहीं।जिस विषय का निर्णय जीवन में कभी न हुआ हो, शांत परिणाम हो जायें, तो अपने-आप विषय मस्तिष्क में प्रारम्भ हो जाता है।

तत्त्व कैसे दिखाई देता है? द्रुत गति से चलता हुआ पंखा आँखों से दिखता नहीं है। वही पंखा शांत हो जाये, धीमे-धीमे चलना प्रारम्भ कर दे, तो आँखों से दिखना प्रारम्भ हो जाता है। यह भी आपके मस्तिष्क तक पहुँच जाये, इसलिये इतना लघु दृष्टांत जान कर दे रहा हूँ। द्रुतगति से घूमता पंखा दिखाई नहीं देता, वही पंखा अपनी गति को मंद कर दे तो आँखों में दिखना प्रारम्भ हो जाता है। होता है न ऐसा?

जिस प्रकार द्रुतगति से पंखे की पंखुड़ियाँ नहीं दिखती, ऐसे ही भावों की द्रुतगति जब काषायिक होती है तब न अर्हन्त दिखते हैं, न निर्ग्रन्थ दिखते हैं और न ही जिनवाणी दिखती है। और जब कषाय भावों की दशा मंद होती है, तब देव-शास्त्र-गुरु दिखना प्रारम्भ हो जाते हैं। तीव्रमिथ्यादृष्टि जीव को प्रभू के दर्शन करने के परिणाम कभी नहीं होते हैं। और जब मिथ्यात्व मंद होता है, तो उसके मन में से भाव आता है कि चलो, अपन देखें तो है क्या?

जब भी आपके अंदर तीव्र कषाय का वेग हो, माताओ! ध्यान रखना, कोई भी निर्णय मत ले लेना। अन्यथा आपका जो भी निर्णय होगा, झूठा होगा, अनर्थकारी होगा। चाहे मोक्षमार्ग का निर्णय करो, चाहे संसारमार्ग का निर्णय करो, कषाय के मन्दोदय में करना। अतिरेक कभी सत्यार्थ नहीं होता।

अचानक कोई पुरुष सातवीं मंजिल से जमीन पर गिर जाये, उसे कहाँ लगी, उसे पता ही नहीं रहता है। सातवीं मंजिल से जमीन पर गिरा है, उस पुरुष को ये मालूम ही नहीं होता है कि मुझे लगा कहाँ पर है। क्योंकि अभी वो गिरने की रफ्तार में था। उसको अभी मालूम ही नहीं था। होश ही नहीं था। जब वो शांत होता है, तब उसको मालूम होता है कि उसे कहाँ-कहाँ लगी है। भक्ति के काल में भेदविज्ञान की गहराई का निर्णय नहीं होता। बिलकुल धीरे-धीरे समझना। ऐसे गहरे विषय हैं जिन विषयों में ज्ञानियों का प्रवेश नहीं है। ये छोटे-छोटे

बालक क्यों शान्ति से सुनते हैं। क्योंकि यहाँ जो व्याख्या चल रही है, सबके मन की चल रही है। और अपने ही मन में, मन का प्रवेश नहीं हो रहा है। जो भी व्याख्या चल रही है, अहर्निश प्रवृत्ति में आ रही है, लेकिन उसमें आपका प्रवेश नहीं है। द्रुत गति से चलता पंखा नेत्रों से दिखता नहीं है। द्रुतगति के परिणामों से विवेक दिखाई देता नहीं है।

इतिहास उठा लो, चाहे अपना घर देख लो। श्री राम को वनवास देने के उपरांत, कैकई पुनः भरत को मनाने गई कि नहीं? कैकई के मन में भी ये भाव आये थे कि ओ हो! मैंने ये क्या किया? भरत को राज्य माँग कर ठीक नहीं किया। यदि किसी से गुस्सा में आपने कुछ बोल दिया है, तो आज ही चिन्तवन कर लेना। आज ही। कषाय का काल कितना है? अन्तर्मुहूर्त। अर्न्तमुहूर्त में कषाय बदलती है।

ज्ञानियो! एक अन्तर्मुहूर्त अपने आप को दे देते, तो जगत के कितने अनर्थ बच जाते। एक अन्तर्मुहूर्त के उद्रेक में व्यक्ति अपना जीवन नष्ट कर बैठा है। प्रत्येक कषाय अन्तर्मुहूर्त में बदलती है। क्रोध से मान में आयेगा, मान से लोभ में, लोभ से माया में। कोई-न-कोई कषाय बदलती है उसकी। नोकषाय में जायेगा। नोकषाय से कषाय में आयेगा। एक मुहूर्त देना सीखो। किसी से विसम्वाद भी हो जाये तो कह देना भैया! मैं आपसे एक घंटे बाद बात कर लूँगा। और बहुत अच्छा हो यूँ कहना कि पहले चलो मेरे घर पर, भोजन-पानी करो, फिर अपन लड़ते हैं आराम से। जब भोजन-पानी करने बैठेगा तो उपयोग बदल जायेगा। उपयोग बदलेगा तो भाषा बदलेगी और भाषा बदलेगी तो भाव बदलेंगे, विसम्वाद समाप्त हो गया।

भोजन करने से विषधर भी काटना छोड़ देता है। भोजन में, पानी में बहुत शक्ति है। कोई भी व्यक्ति, आपका शत्रु भी, घर में आकर आपसे लड़ने लगे तो उससे कहना भैया! आप तो अच्छे से लड़ लेना। आप तो थके-थकाये आये हो, भोजन कर लो। निर्णय ही करके आये हो, अब तो अपन को लड़ना ही है न? एक काम कर लो, अपन थोड़ा विश्राम करके लड़ेंगे। ज्ञानी! वहीं आप कषाय को भी विश्राम दे दोगे।

'धवला' जी की भाषा में बोलें, 'षट्खण्डागम' जी की भाषा में, सम्यग्दृष्टि जीव जब भी चारित्र की ओर बढ़ता है, तब परिणामों की धारा उसकी अपूर्व बनती है। श्रेणी की ओर जाता है तब। जब मिथ्यादृष्टि जीव सम्यक् की प्राप्ति के लिये चलता है, तब उसकी जो ध ारा बनती है, करण परिणाम, जब करण परिणाम जीव करता है, तो एक प्रकार से आप अपना निर्णय करते हो। बहुत सारा काम शरीर से होता है, तो बहुत सारा काम मस्तिष्क से भी होता

है। और यूँ कहता भी है पुरुष, कि मैं अभी काम कर रहा हूँ। हाथों के काम जगत को दिखाई देते हैं, लेकिन प्रज्ञा के काम दिखाई नहीं देते हैं, पर कार्य तो है। व्यापार ही है। अध्यवसाय भाव ही तो व्यापार है। व्यापार ही तो अध्यवसाय भाव है।

निर्ग्रन्थ योगी भी काम करते हैं। इनको भी फुर्सत नहीं है। यदि कोई व्यक्ति कोई लेन-देन के हिसाब में कहीं भ्रमित हो रहा हो, तो शान्ति से अंदर-ही-अंदर सोच रहा है। उस समय बेटे ने कहा, 'पिता जी! भोजन कर लो।' तो क्या कहोगे बेटे से? 'बेटा! थोड़ा ठहर। अभी काम कर रहा हूँ।' जबकि बेटा देखेगा कि पिता जी कुछ भी तो कर नहीं रहे हैं। हाँ, पिता जी काम कर रहे हैं। क्या काम कर रहे हैं? जो अंदर गुत्थी लगी हुई थी, उसको सुलझा रहे हैं।

भैया! टोकरी ढोनेवाले का वेतन अधिक है, कि टोकनी को ढोते देखनेवाले का वेतन अधिक है? फाबड़े से मिट्टी खोद करके, टोकनी को सिर पर रखकर रोड पर डालने वाले पुरुष की अपेक्षा उसके कार्य को देखनेवाले पुरुष का वेतन अधिक होता है। वो तो कुछ भी नहीं कर रहा है, मात्र बैठा हुआ है कुर्सी डाले। अभी आपको समझ में आता है। क्योंकि मैं तो जो कहता हूँ, आपको लगता है कि बोल क्या रहे हैं महाराज?

भैया! स्कूल में टीचर अधिक काम करता है, कि चपरासी अधिक काम करता है? दौड़ते हुए तो चपरासी ही दिखाई देता है कि काम कर रहा है। लेकिन, ज्ञानी! वेतन किसको अधिक मिलता है? ठहर जाओ। बस। यदि इस विषय को समझ लिया तो आपने जिनागम/जिनवाणी के गूढ़तम रहस्य को समझ लिया। क्या गूढ़ रहस्य है? जो टोकनी ढो रहा है, वो काययोग की क्रिया कर रहा है। उसको प्रज्ञा की ज्यादा मेहनत नहीं चल रही है। उसको वेतन भी कम मिल रहा है और लोक में प्रतिष्ठा भी कम मिलती है। और लोग बोलते भी हैं, 'क्या है? टोकनी ढोता है।' और कोई प्राचार्य है तो बड़े सम्मान से कहते हो कि कालेज के प्राचार्य हैं। क्यों? ये कार्य जो हो रहा था, ये अन्तरंग कार्य था। बहिरंग कार्य स्थूल होते हैं, अन्तरंग कार्य सूक्ष्म होता है। तो 'धवला' जी की भाषा में कहो -

जो मिथ्यादृष्टि जीव सम्यक् की ओर आता है तो पहले विशुद्ध होता है और विशुद्धि को प्राप्त करके फिर विश्राम लेता है यानि समय देता है। क्योंकि विशुद्धि के बाद, दूध तपाने के बाद शीघ्र ही जामन नहीं डाल देना। उसको थोड़ा रखिये। और ज्यों-ही तपाया त्यों-ही जामन डाला, माँ! क्या करोगी? बस, आत्मा को समझना है तो पुद्गल का दृष्टांत देना पड़ता है और पुद्गल को समझना है तो जीव का दृष्टांत देना पड़ता है। ओम की विवक्षा ही ऐसी है।

तो जो विशुद्धि में उबल कर आया था जीव, उसको विश्राम दिया है और विश्राम लेकर फिर तीन करण-परिणाम करता है। अघःकरण, अनिवृत्तिकरण और अपूर्णकरण परिणाम करता है। जो अनुभूति जीव ने पूर्व में कभी नहीं ली हो, ऐसे अपूर्व-अपूर्व आनन्द को प्राप्त होता है, उसका नाम 'अपूर्वकरण' परिणाम है।

पुनः पुनः मैं आपसे कहता रहता हूँ कि जीते-जीते अनुभव करो और अनुभव करते-करते जियो। प्रतिष्ठा भी कर रहे हो आप, तो उसको भी ज्ञेय बनाइये और ज्ञाता बनके देखो। विशुद्ध हुआ, विश्राम किया, आगे का काम किया। भैया! सह प्रवृत्ति चल रही है।

हर वस्तु के लिये, हर प्रक्रिया के लिए, ज्ञानियो! विपाक के लिये भी काल चाहिये। जो विपाक के लिये काल नहीं देता है, उसका कार्य विफल हो जाता है। यदि जलेबी बनाते हो तो मैदा को फेंटकर तुरन्त ही शुरू कर देते हो क्या? शीघ्र बनाना प्रारम्भ नहीं कर देते हो। विपाक के लिये काल चाहिये।

कृषक भूमि में बीज डालता है, फसल तुरन्त नहीं निकलती है। विपाक के लिये काल चाहिये। ज्ञानी! ध्यान देना। 'महाराज बहुत दुःखी हूँ। इतना पूजन करता हूँ, तब भी दुःखी हूँ। अरे! तू पगला गया है। पूजन से दुःखी नहीं है तू। विपाक के लिये काल चाहिये। जो तुमने अशुभ बन्ध करके रखा था, वह इतना प्रचुर था, उस पर तुम पूजन का पुण्य क्षेपण कर रहे हो। उसको पक्व के लिए काल चाहिये। कम-से-कम अन्तर्मुहूर्त तो चाहिये-ही-चाहिये। हम शीघ्र चाहते हैं, लेकिन शीघ्र नहीं होता है।

टोकनी ढोनेवाला और कुर्सी पर बैठनेवाला, वेतन कौन अधिक प्राप्त कर रहा है? जितने पुजारी बैठे हैं, हमारी बात सुनकरके पूजा मत छोड़ देना, पर ध्यान से सुनना। लक्ष्यभूत तो आपको सुनना ही पड़ेगा। एक जीव पूजन कर रहा है, विधान कर रहा है। और पूजा करके, उतरके आये हैं आप, पूजन के वस्त्र पहने होने पर भी आपसे किसी ने क्यों नमोऽस्तु नहीं बोली? और जबकि मैंने सुबह से कोई पूजा नहीं की, स्नान भी नहीं किया है, अभिषेक भी नहीं किया है। आपने मेहनत अधिक की है देह से, लेकिन किसी ने आपको नमोऽस्तु निवेदित नहीं किया। आप पूजन करके आये हो बस, तो जयजिनेन्द्र जरूर किया है। क्योंकि तू जिनेन्द्र का भक्त है। नमोऽस्तु किसी ने नहीं किया।

किसी ने आपका पड़गाहन भी नहीं किया। कोई आपका पड़गाहन भी नहीं करेगा। बल्कि आपको मांगना ही पड़ेगा कि पूजन करके आ गये, अब भोजन दो। पर इन निर्ग्रन्थों ने न पूजा की आप जैसी, न अभिषेक किया, बल्कि अभी यहाँ से जायेंगे, शुद्धि के लिये

निकल पड़ेंगे 'भो-स्वामी! नमोऽस्तु।' नमोऽस्तु करके लोग जायेंगे और अपना अहोभाग्य मनायेंगे।

साधना की दो धाराएँ हैं। देहाश्रित धारा और ज्ञानाश्रित धारा। एक क्रियाभूत धारा है, दूसरी ज्ञानभूत धारा है। क्रियाधारा में भी ज्ञान का प्रयोग होता है, लेकिन प्रधानता क्रिया की होती है। इसलिये क्रिया की प्रधानता में फल अल्प मिलता है। क्रिया की धारा में ज्ञान का उपयोग तो होता है, पर उपयोग क्रिया में अधिक जाता है। ज्ञान का ज्ञान में लगाना कठिन होता है। भैया! ध्यान दो। अब बहुत ऊँची बात सुन रहे हैं आप।

सुई में धागा पिरोना सरल है, पर वो जो सुई में धागा पिरो रहा था, उसको आँख बंद करके देख पाना कठिन है। जो मैंने सुई में धागा पिरोया है, उसी धागे को पिरोना बंद करके, एक हाथ में सुई, एक हाथ में धागा, उसको ज्ञानी! आँख बन्द करके, वेदन करते हुये कि कैसे डाला था? इसे देख लीजिये आप। समझ में नहीं आ रहा? कठिन हो रहा है क्या? हाँ। समझो, प्रयास करो। एक हाथ में सुई थी, दूसरे हाथ में धागा था। आँख खोलकर आपने डाल दिया था, बड़ा सरल था। अब उसी सुई को, उसी धागे को, अपने ही हाथ से, आँख बन्द करके देख लीजिये कि आपने कैसे डाला था? आप समझो कि मैं क्या बोल रहा हूँ?

जो यूँ कहते हैं कि सामायिक में मन नहीं लगता, मन भागता है, ये क्यों है? आँख खोल कर और मुँह से बोल कर णमोकार पढ़ रहे हैं, इसलिये मन भागता है। मैं भगवान के ध्यान की बात नहीं कर रहा हूँ। आज सुबह से आपने कुछ किया कि नहीं? आज की बात कर रहा हूँ। भगवान के दर्शन तो सुबह से करके आये हो आप। और आँख बन्द करके कैसे आपने पुंज चढ़ाये थे, उसी पर्याय को देखो जरा आँख बन्द करके। सब आँख बन्द करलो, शान्त हो जाओ। आपने कैसे पुंज चढ़ाये थे, इसे देखने का प्रयास करो।

जो पर्याय से किया था, उसे परिणामों से देख लो, ज्ञानी! यही ध्यान है। शरीर से करने पर अन्तरंग की ताकत नहीं लगी थी। जब से जीव सुई के धागे को आँख बन्द करके निहार रहा था, उस समय सर्वांग संकुचित हुआ है। आत्मप्रदेश एकाग्र हुआ है। ज्ञानियो! जो कुर्सी पर बैठा कार्य कर रहा था, उसको प्रज्ञा का प्रयोग करना पड़ता है और जो मात्र टोकनियाँ ढो रहा था, उसको स्थूल पुद्गल से काम रहा है। ऐसे ही जो जीव पूजा कर रहा है, विधान कर रहा है, पाठ कर रहा है, उस जीव को तो देहाश्रित धर्म की प्रधानता चल रही है और जो ध्यानस्थ बैठा है, उस योगी के कर्म की निर्जरा अधिक होती है। क्योंकि आत्मा को, आत्मा से, आत्मा में देखता है। पर हे गृहस्थो! उस आत्मा से आत्मा को निहारने की सामर्थ्य

प्रकट नहीं हो रही जब तक, तब तक आप शरीर से और मन,वचन से अर्हन्त की आराधना छोड़ मत देना। लेकिन लक्ष्य में ये ही रखना। जब लोकसम्मान बढ़ रहा है, लोकप्रतिष्ठा बढ़ रही है, ये व्यर्थ की नहीं है, कोई हेतु होना चाहिये। पर जिस जीव ने अर्हन्त की मुद्रा को प्राप्त करके, मात्र सम्मान की दृष्टि से स्वीकार कर लिया है उसने, अर्हन्त की मुद्रा का लक्ष्य समझा नहीं अभी।

भैया! तू डॉक्टर का भेष तो बना सकता है, पर जब तक डॉक्टर की परीक्षा उत्तीर्ण नहीं की और ज्ञान नहीं है, तब तक कितनी ही सुन्दर तू पूरी औषधियाँ इकट्ठी करके, आला-माला सब लटका करके, डॉक्टर की ड्रेस भी पहन करके बैठ जायेगा, तब भी ज्ञानी! तू निज को डॉक्टरभूत अनुभूति में नहीं ला पायेगा।

ऐसे ही मुमुक्षुओ! यदि पिच्छि- कमण्डलु धारण कर लिये,कषाय की चौकड़ियों पर कोई आपका नियंत्रण नहीं हुआ है, तो ज्ञानी! जैसे किसी सामान्य पुरुष के हाथ में डॉक्टर की सामग्री देने से उसको डॉक्टर की अनुभूति नहीं होती है, परन्तु डॉक्टर सामग्री न भी लिये हो, भोजन भी कर रहा हो, तो भी उसको डॉक्टर की अनुभूति होती है।

नाटक के राजा! मंच तक ही तुम्हारा राज्य है। लेकिन विश्वास रखना, मंच के नीचे श्वान भी तुमको नहीं पूछता कि तू राजा हो, महाराजा हो। इन्सान क्या पूछेगा? ये निर्ग्रन्थ मार्ग मंच के राजा नहीं है। ये निर्ग्रन्थ मार्ग जो है, स्वात्म मंच का सम्राट है। ये रंगमंच का राजा नहीं है। यही कारण है कि योगी के जो कर्म की निर्जरा होती है, वह ज्ञानधारा की निर्जरा है, अध्यात्म की निर्जरा है। ज्ञान को ज्ञान में लगाना बहुत कठिन है। यही अद्वैत ध ाारा है। यही शब्दब्रह्म-धारा है और शब्दब्रह्म जो है, वह द्वैत धारा है। शब्दब्रह्म जब गूढ़ हो जाता है, तब आत्मब्रह्म पैदा होता है। यह द्वैतधारा है। हुआ यों कि आगमिक शब्दों को लोगों ने पर को प्रदान कर दिया है। भाषा का ही प्रयोग बंद हो गया। कब-कब सुना आप लोगों ने विद्वानों के मुख से द्वैत की अनुभूति, द्वैत की अनुभूति?

अरे भाई! ज्ञानकल्याणक का दिन जब होता है उस दिन प्रतिष्ठा-मण्डप का जो वातावरण होता है, वह अलग होता है। पण्डित जी साव! आपने तो अनेक बार देखा है। और जन्मकल्याणक का माहौल भी आपने देखा। राग-रंग चलता है। भाषा आपकी बदली होती है और गर्भ कल्याणक की भाषा आपकी ही अलग होती है। जिस दिन तपकल्याणक होता है, आपकी भाषा बदल जाती है। ज्ञान-कल्याणक के दिन तो ऐसा लगता है कि उस मण्डप में बहुत बड़ी शक्ति का संचार हो रहा है, लेकिन निर्वाण कल्याणक के दिन सब पूर्ण विरक्त।

ध्यान दो। जवाहरात की दुकान पर भाजीमण्डी की आवाजें सुनायी नहीं पड़ेंगी। सागमण्डी में जाओगे तो कुछ हल्ला सुनाई पड़ता है कि नहीं? सागमण्डी की आवाजें अलग दिखाई देती हैं। वहाँ बैठे हो तो वहाँ मस्तिष्क आपका अलग चलेगा। गल्लामण्डी में जायेगा तो वहाँ की आवाजें अलग हैं। हर बाजार की दुनियाँ अलग है। और यदि आप वैज्ञानिक हो, ध्वनि-वैज्ञानिक हो, तो वहाँ से पकड़िये कि किस ध्वनि में परिणाम कैसे हो रहे हैं? जब संगीतकार गीत बोलता है, वहाँ पकड़ना उस समय के भाव।

जैनदर्शन की विद्या जो है, कितनी ही श्री का खर्च हो जाय, परन्तु इन विद्याओं को विश्व में भेजने की आवश्यकता है। लोग ये समझ रहे हैं कि जैनियों का धर्म-आचरण पूजन-पाठ मात्र तक है। वैज्ञानिक तत्त्व तो लोगों के पास पहुँच ही नहीं पा रहा है, क्योंकि हमने उसको इतना संकीर्ण कर दिया है कि जो अंतरंग की साधना है उसका विकास लोगों को समझ में नहीं आ रहा है। योगीजन भी गृहस्थोचित क्रियाओं में लवलीन हो गये। जो योगी की धारा थी, वह अलौकिक धारा है। जब वाष्प से कुकर फट सकता है, ये तो आप ने स्वीकार कर लिया न? तो ज्ञानी! ज्ञान की भाप से कर्म नहीं फटते, ये किसने मना कर दिया है?

जेम्सवाट ने एक वाष्पित पतीली के माध्यम से इतनी बड़ी ट्रेन को खड़ा कर दिया, इंजन बना। ये अंदर की विद्या थी। उस पतीली में था क्या? पानी और नीचे अग्नि और ऊपर ढक्कन, इसके अलावा और क्या? यदि उसी पानी को छोड़ दिया जाता, तो अग्नि को बुझा देता। मिट्टी में डाल दिया जाता तो कीचड़ कर देता। ज्ञानी! समझिये, सम्हलिये। जैसे उसी पानी को मिट्टी में डाला जाता तो कीचड़ और पतीली फूट जाती तो अग्नि बुझ जाती।

मुमुक्षुओ! तुम्हारे शरीर में वो शक्ति भरी हुई है जिसे शुक्र कहा जाता है, वीर्य कहा जाता है। इसको भोगों की नाली में डाला तो दुर्गति की कीचड़ और इसको वाष्पित कर लिया ब्रह्मचर्य के द्वारा, तो हे मुमुक्षु! जैसे ट्रेन चल गयी इस पतीली की भाप से, वैसे ही तू ज्ञानी सीधा जाकर बैठेगा सिद्धालय में भीतर की भाप से।

वाष्पित करना सीखो, कीचड़ करना मत सीखो। समझानेवाले समझ जाओ। इतना कठिन नहीं बोल रहा हूँ। अपने ज्ञान को वाष्पित करना सीखो। ज्ञान के वाष्पीकरण की विधि जो है, वह ध्यान है। जैसे भाजीमण्डी की आवाजें अलग होती हैं और गल्लेमण्डी की आवाज अलग होती हैं, इसी प्रकार से ज्ञानियो! भक्तिमार्ग की आवाज भिन्न है और ज्ञानमार्ग की आवाज भिन्न है।

ये ध्यान का विषय चल रहा है। अपने ही घर से आप प्रारम्भ करो। जब घर में शोकाकुल वातावरण होता है, उस दिन का माहौल कैसा होता है? और किसी की शादी हो, उस दिन का माहौल कैसा होता है?

जब बेटे ने जन्म लिया हो, उस दिन का माहौल और बेटी ने जन्म लिया हो, तो उसका माहौल क्या होता है? ये भी वर्गणा पकड़ना सीखो। जब तुम्हारे बेटा-बेटी के जन्म के समय तुम्हारे परिणामों में अन्तर होता है, जब सामान्य जीवों के जन्म में अन्तर होता है, तो जिसके घर में तीर्थंकर जन्म लेता है, तो तीनलोक में अद्भुत आनन्द होता है। कुछ नहीं है, समय देना पड़ता है।

अचाक्षुष अनुभूति को आप जान नहीं पा रहे हो। क्या करें? मुमुक्षु! चाक्षुष अनुभूतियों को तो दुनियाँ जान रही है। चाक्षुष मात्र को देखने के लिए मुनि नहीं बने हैं, अचाक्षुष को देखने को मुनि बने हैं। चक्षु से सारा जगत देखता है। इसलिये निर्ग्रन्थ की जो आँख है, नेत्र हैं, 'आगम चक्खू साहू'। और प्रेक्टीकल में आप सब अनुभव कर रहे हो। इतनी बड़ी सभा में सहज चर्चा चल रही है, कोई आपको रस्सी से बाँध के नहीं रखा गया। न कोई लोभ देके बुलाया गया है। इस सभा में कभी आपको प्रसाद नहीं बटता है। ईनाम/पुरस्कार भी नहीं बटते। सहज आप आये हो। ये कौन लेके आया है?

जीवन की अंतिम श्वास के काल में भी, जो विषय चल रहा है, इसकी अनुभूति एक क्षण को भी हो गयी तो अर्द्ध-पुद्गल-परावर्तन के अन्दर-अन्दर नियम से तुझे मोक्ष मिलेगा। इन विद्वानों से पूछ लेना ,श्वास के कोटि-कोटि खण्ड कर दो, इतने कालप्रमाण भी सम्यक् की झलक भी आ गई तो कल्याण हो जायेगा।

तत्त्व की गहराई में प्रवेश करना है। मैं आपको वहाँ ले जा रहा हूँ। जो पेट पिचका रहे, पेट फुला रहे, दुनियाँ को पागल किये हैं। ये ध्यान की धारा नहीं है। समझ गये? खींचो, छोड़ो, इसी में उपयोग लगाये हैं। जब आप यहाँ आये थे, तब चित्त में चंचलता थी। यहाँ उपस्थित होते ही तत्त्वोपदेश प्रारम्भ हुआ, सब शांत हो गये हैं। अब अपनी नाक के पास हाथ ले जाओ, देखो, श्वासें मंद हो चुकी हैं। जिस विद्या को सिखा रहे हैं, उस पर ध्यान दो। जो सहज मन्दता आ रही है, ये हमारी श्वासोच्छवास की साधना है।

जैसे- जैसे चित्त शान्त होता जाता है, श्वासें भी शान्त होती जाती हैं। जैसे-जैसे चित्त उद्वेलित होगा, आपकी श्वासें तीव्र हो जायेंगी। कामी की, क्रोधी की, मानी की, लोभी की श्वासें बढ़ जाती हैं। जब शरीर में काम का विकार आया और वीर्य के क्षरण का काल आता

है, उस समय व्यक्ति न स्वयं को सम्हाल पाता है, न श्वास को सम्हाल पाता है, न अपनी आत्मा के भावों को सम्हाल पाता है।

जैनतत्त्वविद्या, भैया! तेरी लेखनी और कण्ठ में ये लग जाये। भले ही कोई अपनी प्रशंसा के लिये तुझे बुलाये, पर इस विद्या का एक-न-एक भजन वहाँ बोल कर ही आना। पुण्य के उदय से मंच मिल रहा है तुझे। तूने पूर्व में कौन-सा पुण्य किया होगा, किस केवली के चरणों में बैठकर श्रुत की आराधना की होगी जोकि आज 'पण्डित' संज्ञा के प्राप्त हुआ है और ये बुद्धि आपके पास आयी है। इस पर्याय को तो क्षत-विक्षत होना ही है। इसकी राख होगी, विश्वास रखो। पर जब तक इस पर्याय में मैं रह रहा हूँ, तब तक अर्हन्त की शुद्ध देशना का विस्तार होना चाहिये।

योगी से कह दिया कि जिनशासन की प्रभावना, आत्मा की प्रभावना रत्नत्रय के तेज से करो। ये है परमार्थ दृष्टि, निश्चय दृष्टि। व्यवहार से आगे फिर बोलते हैं कि दान, तप, जिनपूजा, विद्या के अतिशय, जिनधर्म। सुधी श्रावको! श्रम के द्वारा, जो विद्या तुमसे बनती है उस विद्या के माध्यम से जिनशासन का उद्योतन करना चाहिये, प्रभावना करना चाहिये। ये सम्यक् का अंग है। पका मधुर आम्रफल जब लोगों के मन को खींच लेता है, तो पर पक्व वाणी, पर पक्व जिनवाणी यदि चित्त न खींचे, ऐसा हो ही नहीं सकता है।

मिट्टी का प्रभाव होता है, क्षेत्र का प्रभाव होता है। हे मुमुक्षु! सुन, ये मत सोचना कि मैं अपने आप सबकुछ सीख गया हूँ। ध्यान दो, बेटा! हर मिट्टी में हर फसल नहीं होती।

एक सम्राट सैर के लिये निकल पड़ा। उसने देखा कि बहुत सारी मजदूर मातायें काम में लगी हुई हैं। उसकी बुद्धि थोड़ी भ्रमित हो गयी। वो राजभवन में लौट आया और बैठ गया सोचने कि महारानियाँ कुछ भी नहीं करतीं, सब पड़े-पड़े खाती रहती हैं। और देखो ये हमारे देश की मजदूर महिलायें काम करती हैं। उसने आदेश कर दिया, कि मजदूरी न सही, लेकिन प्रत्येक रानी अपना काम अपने हाथ से करेंगी।

अब जितने सुखिया लोग होते हैं उन्हें पता नहीं चलता है कि हमारे लिये कितना काम लगता है। यथार्थ बात है कि जितनी मस्तिष्क की मेहनत होगी, उतना ही परिपक्व भोजन चाहिये। जो व्यक्ति जितना स्वादिष्ट खायेगा, मधुर खायेगा, अच्छा खायेगा, अच्छी सुविधा में रहेगा, उसे तो पता नहीं होता कि इसमें समय कितना लगता है। गहरी बात पकड़िये। ज्ञानी! मोक्ष जाने में आ, ई, ऊ, ऋ, ऌ इतना अल्प समय लगता है, लेकिन उसकी सामग्री मात्र में कितना समय लगा था? ऐसे ही बादाम का हलुआ खाने में समय नहीं लगता, जितना कि रोटी चबाने में लगता है।

अब हुआ ये कि महारानियों को पता ही नहीं था कि मेरी सेवा में कितनी सामग्री लगती होगी। जब राजा ने आदेश कर दिया कि सब काम अपने हाथ से करना होगा। कपड़े ध ोते हुए बेचारी के हाथ दर्द करने लग गये। जब कंचुकी (सेवक) आया पट्टमहिषी का चेहरा देखा, बोला, देवी! आज मुख, बदन पर मलिनता क्यों?

भैया! कुछ मत पूछो। अब हम लोगों का जीवन तो मुश्किल हो गया है। हो सकता है एक-दो दिन में ऊपर चले जायें हम सब। 'क्यों?' स्वामी जी ने कह दिया है, कि अपना काम अपने हाथ से करना। हम राजकुमारी, पिता के घर कुछ किया नहीं और यहाँ आकर पट्टमहिषी बनकर मेरे से कहाँ काम होता है।

जानते हो, व्यक्ति कितना ही महान हो, जो जुगाड़ करना नहीं जानता, वो असफल होता है। रीति-नीति का ज्ञान होना चाहिये चाहे वो साधु बन जाये, महात्मा बन जाये, सम्राट बन जाये। रीति-नीति का ज्ञान नहीं है तो उनको असफल होना-ही-होना है। हर समय मुँह लटकाये रहेगा तो भी फेल, हँसता रहेगा तो भी फेल, रोता रहेगा तो भी फेल, क्रोध करेगा तो भी फेल। यदि गुस्सा करना हो तो समय देखकर करना। लेकिन ज्ञानी! करना नहीं, क्योंकि कर्मबंध होता है।

वो बुजुर्ग था। उसने एक युक्ति सोची। इन महारानियों की कैसे रक्षा की जाये सम्राट से। मैं सेवक, मेरी क्या ताकत?

उसने जुगाड़ निकाल ली। स्वामी! आपकी सेवा के लिये, शृंगार के लिये कश्मीर से केशर आता है, तो कितना धन व्यय होता है, समय व्यय होता है? क्यों नहीं अपने यहाँ केशर की खेती की जाय?

श्रीमान् और धीमान् इन दोनों में छत्तीस का आँकड़ा रहता है। वो आज का जमाना कि धीमान भी श्रीमान है। वे दिन सोचो अपने बुजुर्ग विद्वानों के। ऐसा विद्वान् भी अपने देश में हुआ है जिसकी पत्नि की चूड़ियां बेचकर शब्दकोष मँगाया था। मंगलसूत्र बेचकर शास्त्र मँगाये हैं, ऐसे विद्वान् भी अपने यहाँ हो चुके हैं। आगम और जिनवाणी की रक्षा की है। ये ध्रुव सत्य है कि जो देखते कम हैं उनकी बुद्धि ज्यादा चलती है। इसलिये कम देखा करो। योगी इसलिये नीचे दृष्टि रखता है।

भैया! हुआ क्या? उस सेवक ने अपनी प्रज्ञा दौड़ाई और राजा को वश किया। वह धीमान् था और श्रीमान् नहीं था। बोले, 'हाँ, ठीक।' उचित भूमि चुनी गई। उसने इतनी बुद्धि दौड़ायी कि एकाध भवन भी गिरवा दिये। बोले, महाराज! नजदीक में ही लगना चाहिये केशर।

केशर के बीजारोपण किये गये, पौध-रोपण किये गये। लगा भी केशर, लेकिन लगते ही केशर सूख गया। पानी डाला, खाद डाला, तब भी केशर नहीं उगी। उस कंचुकी को बुलाया गया। बोले, 'क्यों, भाई! क्या हुआ?' स्वामी! पुरुषार्थ करना अपना काम था। आप खोज करवाइये कि ये उगी क्यों नहीं है?

जो कृषिमंत्री थे, बड़े-बड़े पण्डित थे, उन सबको बुलाया गया। तो वो कहते हैं महाराज! खाद-पानी तो बराबर दिया गया है। यहाँ तक तो सामर्थ्य थी। लेकिन जिस मौसम में केशर होती है, वो मौसम यहाँ नहीं है, उसके लिये तो काश्मीर ही चाहिए। तो कंचुकी धीरे से कहता है, नाथ! जब ये केशर, एक इन्द्रिय वनस्पति, अपने वातावरण में जहाँ उपजती है, वहीं उपजती है, इसको आप यहाँ नहीं लगा सकते हो, तो महाराज! ये महारानियाँ राजभवन में जन्मीं हैं। राजभवन के सुख ही भोग पायेंगी, मजदूरी नहीं करा पाओगे उनसे। राजा की आँख खुल गई, अहो! मैने भूल की है। ज्ञानियो! ये बुन्देलखण्ड की माटी है। इसने बहुत बड़े श्रीमानों को जन्म नहीं दिया आज तक, इसने बुद्धिमानों को जन्म दिया है। पूरे देश में जितने भी बुद्धिमान दिखेंगे, वे बुल्देलखण्ड की मिट्टी के दिखेंगे। बुद्धि विकसित है, ये मिट्टी का प्रभाव है। कर्नाटक में मूलबद्री है। मैं मूलबद्री में पहुँचा। वहाँ के भट्टारक जी बोले, महाराज उपदेश कर दो। तो मैंनें कहा, भैया! आप कन्नडी, हम हिन्दी। कैसे समझौता होगा? बोले, हम सब समझते हैं। उपदेश हुआ और जैसे ही तत्त्वोपदेश प्रारम्भ हुआ, जितने श्रोता कन्नडीभाषी बैठे थे, वे सब हिन्दी समझ रहे थे और सुनते-सुनते, जैसे यहाँ के लोग शांत है, वे सब शांत हो गये। जैसे ही प्रवचन बन्द हुआ, भट्टारक हाथ जोड़कर सिर टेकता है कि महाराज! मुझे नहीं था मालूम, कि दक्षिण भारत तो जो है सो ठीक है, पर उत्तर भारत अभी भी मुनि और विद्वानों की खदान है।

हमने कहा, भट्टारक जी! ये मिट्टी का प्रभाव है। दक्षिण भारत आचार्यों की भूमि है तो उत्तर भारत तीर्थंकरों की भूमि है। शुद्ध वाणी तो उत्तर भारत में ही लिखी गई है। ये आपको मालूम होना चाहिए कि भगवान् का जन्म कहाँ हुआ? उत्तर भारत में अब ये क्यों सूखा हो गया? दक्षिण भारत से चलते-चलते नारियल यहाँ तक आते-आते सूखा हो गया। इसलिये यहाँ के लोगों को सूखे-सूखे ही दिखे और कर्नाटक के लोगों को गीले-गीले ही दिखे।

कुछ जो जीवों के आचरण हैं, वे क्षेत्रीय या प्राकृतिक विभाग से भी बनते हैं। जहाँ जो होता है, उसको वो ही दिखता है। अपन इते चना-गेंहूँ देखें, उते वे गेहूँ के खेत नहीं दिखाई देत। यहाँ देखो द्वारे पर नारियल लिये कोई शोभा के लिये खड़ा होगा, पर वहाँ घर-घर में खेत-खेत में नारियल खड़े हुये हैं। समझ में आ गया? बुद्धि का दुरुपयोग नहीं होना चाहिये,

किंचित भी। पुनः-पुनः कहूँगा, पुद्गल के टुकड़ों के राग में हमको किसी प्रकार का विपर्यास करने की आवश्यकता नहीं है।

निर्ग्रन्थ मिले तो निर्ग्रन्थों से सीखो। विद्वान् तुम्हारे यहाँ हर समय रहते हैं, इनसे कुछ सीखो। जिनके पास जो विद्या हो, वो सीखो। उपयोग कर लो, चलती बिरिया है सबकी। देखो, मैं स्पष्ट बोलता हूँ। मैं इनसे भी कहूँगा कि वन्ध्या बनकर नहीं जाने का। बन्ध्या नारी जीवन भर सुख भोगती है और कुछ छोड़ कर नहीं जाती, चली जाती है। पर यहाँ के विद्वान् ऐसे नहीं दिखे। भोगभूमियाँ लोग हैं, भोगभूमियाँ। भोगभूमियाँ जीव मृत्यु के पहले युगलिया छोड़कर जाता है। तुम्हारे ये विद्वान्, इन लोगों ने पहले ही अपने बेटों को पण्डित बना ही दिया। इसलिये ये बाँझ स्त्री बनके नहीं जा रहे हैं, ये भोगभूमियाँ बनके जायेंगे। कैसे मन-ही-मन मुस्करा रहे? भली कही, महाराज! 'जो है सो है'।

भैया! ये दाल, बाटी, रोटी छोड़ो, स्वाध्याय में लग जाओ। जो पिता जी से सीखा, वो तो तेरे पास है। दो प्रकार की विद्यायें होती हैं। एक पैतृक, एक सिद्ध। विद्याधर लोग पैतृक विद्यायें तो सोंप देते हैं, कुछ स्वयं के पुरुषार्थ से भी तो सिद्ध करते हैं। जो पिता जी ने देदी है, उनको स्वीकार कर लो, लेकिन अब स्वाध्याय करो। क्योंकि जैसे इस समाज की आँखें मुनियों पर हैं। मैं स्पष्ट बोलता हूँ कि यदि निर्ग्रन्थ योगी श्रेष्ठ चर्यापालक, श्रेष्ठ ज्ञानी होता है तो पूरा समाज सुगन्धि की लहर में सुगन्धित होता है, आनन्द लेता है। मेरा सोच है कि देश में अच्छे-अच्छे ज्ञानी, त्यागी, चारित्रवान मुनि इस समाज को मिले, तो हमारी समाज मुस्कराती रहे। ऐसा ही विद्वानों के प्रति हमारी आँखें होती हैं कि हमारा विद्वान् जितना ज्ञानी होगा, देश उतना तरक्की करेगा। चाहे युद्ध हो या न हो, पर अस्त्र-शस्त्र की व्यवस्था बराबर रहती है। ऐसे-ही मैं क्यों आपको इंगित कर रहा हूँ? आज शास्त्रार्थ नहीं होते हैं, शान्ति है, लेकिन तब भी आपको न्याय, तर्क और व्याकरण का ज्ञान होना चाहिये। क्या मालूम कब, किसके मन में आ जाये कि तुम मेरे से शास्त्रार्थ करो। यदि अपनी विद्या ही खो बैठोगे, कोई होगा ही नहीं, तो कैसे करोगे?

मैं 'भगवती आराधना' से बोल रहा हूँ। जैसे एक निर्ग्रन्थ योगी इतना सतर्क रहता है, जैसे देश का सम्राट सतर्क रहता है कि कब शत्रु आ जाये? हर केन्द्र पर अपने अस्त्र-शस्त्र तैयार रखता है। ऐसे ही दिगम्बर मुनि हर समय अपनी समाधि के लिये तैयार रहता है। हे यमराज! जब आना हो, आ जाना, मैं तैयार हूँ। जितना पवित्र स्वाध्याय होगा, उतना पवित्र तेरा संगीत निकलेगा। प्रवचन की तैयारी वे करें जिन्हें तत्त्व का ज्ञान नहीं होता है। जब ज्ञान होगा, तो अपने आप निकलता है। ज्ञान नहीं है, तो काली टंकी का पानी। समझ गये न?

क्या? जो तुम्हारे छत पर रखी काली टंकी है, उसमें जितना भर दो, उतना ही निकलता है। लेकिन तत्त्वज्ञानी का ज्ञान काली टंकी का पानी नहीं, कुए का पानी होता है। उसमें भरा नहीं जाता, निकाला जाता है। इसलिये वक्ता नहीं, ज्ञाता बनिये।

जो ज्ञाता होगा, वह नियम से वक्ता हो जायेगा। हमारा सर्वज्ञ पहले ज्ञाता होता है, फिर वक्ता। पहले कैवल्य होता है, फिर बोलते हैं। मुँह से नहीं बोलते हैं, सर्वांग से बोलते हैं।

ज्ञानादित्यो हृदि यस्य, नित्यमुद्योतकारकः।
तस्य निर्मलतां याति, पञ्चेन्द्रिय-दिगङ्गना ।। 10 सा.स.॥

कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं कि जिसके हृदय में ज्ञानआदित्य प्रकट हो चुका है, ज्ञानसूर्य का उदय हो चुका है, जिसके हृदय में सदा ज्ञानरूपी सूर्य का प्रकाश हो रहा है, उसके पाँच-इन्द्रिय-रूपी अंगनायें, जैसे जगत की नारियाँ जीवों को चिपकाये हुये हैं, ऐसे ही ये पाँच इन्द्रियरूपी अंगनाएँ जो हैं, वे अपने आप निर्मलता को प्राप्त हो जाती हैं। अर्थात् पाँचों इन्द्रियाँ उसके वश में हो जाती हैं जो ज्ञानी सूर्य को अपने हृदय में उद्घटित कर लेता है। जितनी दुर्घटनायें घटती हैं, अधिकांश अंधकार में घटती हैं। रात्रि में ही सबसे ज्यादा एक्सीडेंट होते हैं और खोटे काम भी रात्रि में ही सबसे ज्यादा होते हैं। सूर्य उदित होता है तो पापीजीव भी पाप करना छोड़ देते हैं।

जैसे आकाश में सूर्य के उदित होने पर मुरझाये कमल भी खिल जाते हैं, ऐसे ही जिसके हृदय में ज्ञान का सूर्य उदित हो गया है, उसके भेदविज्ञान की रश्मियाँ प्रकट हो चुकी हैं, उसकी इन्द्रियाँरूपी जो कुमुदनियाँ हैं, जो कमल हैं, वो विकसित हो जाते हैं और जो पाप में लिप्त परिणाम हैं, वे भी समाप्त हो जाते हैं। इसलिये ज्ञान की महिमा है।

सतत् स्वाध्याय करो। सभी युवाओं से कहना है, भैया! घुमा-फिरी से कम-से-कम थोड़ा समय निकाल लो, स्वाध्याय करो। ज्ञान की वृद्धि होगी तो अपने आप पाप से दूर होगा। पण्डित जी! मुझे तो मालूम है कि आप लोग प्रतिष्ठा के बाद नियम दिलाते हो। अब तो एक ही नियम दिलाओ, 'स्वाध्याय करो सद्ग्रन्थों का सद्शास्त्रों का।' अब वो भारत के जैनी नहीं बचे जो मूँग की दाल का पानी पीने वाले थे। अब तो उनके पास बहुतकुछ है। हमारे बुजुर्गों को बार-बार प्रणाम किया करो। किस बात पर? भले ही मूँग की दाल का पानी पीकर सोये होंगे, लेकिन संस्कृति की रक्षा के लिये। आप देखो पपौरा में कितने मंदिर हैं? 108 जिनमंदिर शिखरबंद हैं। ये कोई बाहर के सेठियों के नहीं हैं। यहीं के मूंग की दाल का पानी पीने वालों के हैं। भले ही अपन ने झुपड़िया में रह लिया है, पर अपने भगवान को शिखरबंद जिनमंदिर में विराजमान कराया है। उनकी भूमि है। संस्कृति की रक्षा की है।

यहाँ के विद्वानों को दक्षिण भारत में जाकर रहना पड़ गया, उन्होंने वहाँ पर भी जाकर जिनवाणी की सेवा की है। ये 'षट्खण्डागम' को निकाल कर लाने वाले कौन हैं? इन विद्वानों ने कितनी मेहनत की है? और अपन आज मुस्करा रहे हैं। और सुनो। इस युग में आर्यिका माताओं की भी बहुत देन है। ज्ञानमति, विशुद्धमति, सुपार्श्वमति इन आर्यिका माताओं ने कितना काम किया है? जो बड़े-बड़े आचार्य नहीं कर पाये, वो इन्होंने किया है ज्ञान के क्षेत्र में ।

इसलिये गुणियों के गुण कहने में कोई कंजूसी नहीं करना। हर समय गुणों का अनुवाद करना। माताओं को चाहिये कि अपनी बेटी को ऐसी आर्यिका बनायें। इताव-उताय काम में न लगें, श्रुत की आराधना करें। देखो, हम तो न बनायें। आगमिक व्यवस्था तो ये ही है कि आर्यिकाओं को दीक्षा गणिनी-आर्यिका दें। पुराणग्रन्थों में जब भी आप पढ़ोगे तो गणिनी के द्वारा दीक्षा होगी। ठीक है कि आओ, जाओ, लेकिन आर्यिका दीक्षा तो गणिनी आर्यिका से लो।

'**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

ज्ञानाभ्यास का फल

एतज्ज्ञानफलं नाम, यच्चारित्रोद्यमः सदा।
क्रियते पापनिर्मुक्तैः साधुसेवापरायणैः।। 11 ।।

पापों से निर्मुक्त और साधु-सेवा में तत्पर भव्य पुरुषों को नित्य चारित्र पालन करने का पुरुषार्थ करना चाहिये, क्योंकि चारित्र का पालन करना ही ज्ञान प्राप्त करने का फल है।

।। देशना।।

अन्तिम तीर्थेश, वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेश की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी, मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में ज्ञानदृष्टि की व्याख्या करते हुये समझा रहे हैं। चित्त की एकाग्रता, चारित्र की पवित्रता आत्मोन्नति का प्रथम सोपान है।

चित्त की एकाग्रता नहीं और चारित्र की पवित्रता नहीं है, तो कोटि-कोटि ग्रंथों का ज्ञान यश का साधन तो है, पर कर्मातीत की ओर नहीं ले जायेगा। चित्त की पवित्रता से युक्त, चित्त की एकाग्रता से युक्त, चारित्र की पवित्रता से युक्त जो ज्ञान की धारा है, वह शिवत्व की ओर ले जाने का प्रथम सोपान है।

चित्त यदि पवित्र होता है, उसके लिये भी ज्ञान चाहिये। चित्त की पवित्रता भी ज्ञान पर आलम्बित है। यदि उपयोग सम्यक् है तो। स्वाध्याय सम्पूर्ण इन्द्रियों का निग्रह है। इस खोटे काल में कोई पवित्र साधना है, उसका नाम स्वाध्याय है। क्यों इतना महत्व दे रहे—आचार्य महाराज? वही ज्ञान 'ज्ञान' है, जिसमें हित की प्राप्ति है, अहित का परिहार है। हित की प्राप्ति का उपाय न हो, अहित की प्राप्ति का परिहार न हो, वह सम्यक् ज्ञान कैसा? जिनेन्द्र के शासन में जिसे ज्ञान कहा है, उसे 'बट्टकेर स्वामी' यों कह रहे-

जेण तच्चं विबुज्झेज्ज, जेण चित्तं णिरुज्झदि।
जेण अत्ता विसुज्झेज्ज, तं णाणं जिणसासणे ।। 267 मूला.।।

'जेण तच्चं विबुज्झेज्ज' जिससे तत्त्व का बोध हो, 'जेण चित्तं णिरुज्झदि' जिससे चित्त का निरोध हो,' 'जैण अत्ता विसुज्झेज्ज' जिससे आत्मा विशुद्ध हो, 'तं णाणं जिणसासणे' भगवान् जिनेन्द्र के शासन में उसे ही ज्ञान कहा है।

तत्त्व की उपलब्धि हो, भीतर निरोध हो, आत्मा विशुद्ध हो, वह ज्ञान 'ज्ञान' है। जो ज्ञान नित्योदक है, प्रकाशक है, पाँच इन्द्रिय रूपी अंगनाओं को वश करने वाला है, वह सम्यक्-ज्ञान है। ध्यान दो, कैसे पाँच इन्द्रियाँ वश होती हैं इस ज्ञान से?

नेत्रों का सबसे अधिक उपयोग किया इस जीव ने। जितना आपकी जीभ नहीं चख पाई, उतना नेत्रों ने चखा। जितना जीभ स्वाद नहीं ले पाई, जितना घ्राण नहीं सूंघ पाई, कान नहीं सुन पाये, उतना नेत्रों ने भोग किया है। जितना भोग नेत्रों ने भोगा है, उतना भोग जगत में किसी इन्द्रिय ने नहीं भोगा है। कर्ण इन्द्रिय के विषय को भी तू लेने जाता है, उसे भी नेत्र भोग लेता है। घ्राण इन्द्रिय को लेने जाता है, उसे भी नेत्र भोग लेता है। रसना इन्द्रिय के विषय को लेने जाता है, उसे भी नेत्र भोग लेता है। नेत्र का क्षेत्र विशाल है। और मन का विषय भी तूने भोगा है तो नेत्र ने पहले भोग डाला। इच्छित सामग्री पर मन नहीं जाता, इच्छित सामग्री का निर्णय मन नहीं करता है। इच्छित सामग्री का निर्णय कराने वाले मन को दिखाता कौन है? उसका नाम आँख है।

नेत्र न जाये, मन तो शांत बैठा था। दृष्टि पर ध्यान दो।

आहारदंसणेण य तस्सुबजोगेण ओमकोठाए।

सादिदरुदीरणाए हवदि हु आहारसण्णा हु॥ 135 गो. जी.॥

नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती देव 'गोम्मटसार जीवकाण्ड' जी ग्रन्थ में लिख रहे हैं कि सबसे पहले दर्शन। 'आहार दंसणेण' जैसे ही भोजनसामग्री देखता है। 'तस्सुवजोगेण' उस पर उपयोग गया। जैसे ही उपयोग गया, विषय पर प्रवृत्ति प्रारम्भ हो गई।

पहला हेतु दर्शन। शुभ में भी दर्शन, अशुभ में भी दर्शन। आँख को सम्हालो। हे नारायण कृष्ण! आपने रुक्मणि का चित्र ही तो देखा था, आपने रुक्मणि को तो देखा ही नहीं था। नारद जी ने चित्र ही तो दिखा दिया था। नारायण जैसा महापुरुष भी चित्र को देखकरके चित्त चंचल कर बैठा और नारद जी से कह बैठा, 'यह कोई देवी है या मनुष्यनी? यह कौन है?'

और आज भी जितने चित्त चंचल हो रहे हैं, चित्र को ही देखकर हो रहे हैं। चित्र ही तो देखा है। युवाओ! टेलीवीजन पर क्या देखा है? चित्र ही तो देखते हो। प्रशस्त चित्र देखोगे तो प्रशस्त चारित्र बनेगा। अप्रशस्त चित्र देखोगे तो अप्रशस्त चारित्र बनेगा।

जिनमुद्रा दिखती है, अर्हन्त मुद्रा दिखती है तो परिणाम विशुद्ध होते हैं। वहीं किसी एक्टर आदि के चित्र दिखाई दें, तो तुम्हारे परिणाम वैसे ही होते हैं। इसलिये साधुपुरुष! अधोदृष्टि करके चलो। आँख को स्थिर करो।

तिरछा देखना ही तिरछापन है। तिर्यक् वे देखें, जिनके परिणाम तिर्यंच के हों। आपकी किसी भी संज्ञा को परपुरुष समझ लेता है, तो मनुष्यपना समाप्त।

पुनः सुनिये। हे मानवो! आपकी किसी भी संज्ञा को अन्य पुरुष समझ रहा है कि इनकी काम की इच्छा चल रही है, कि भोजन की इच्छा चल रही है? इनकी परिग्रह संचय की दृष्टि चल रही या भय लग रहा है। ये चारों संज्ञायें तेरी प्रकट दिख जायें पर को, दूसरे पुरुष को, बस ये तिर्यंच है। मनुष्य मानव है, मर्यादापूर्ण है। संज्ञाओं की पूर्ति भी करता है तो मर्यादा के साथ करता है।

युवाओ! ध्यान से सुनना। ये श्वान पर्याय नहीं है। स्पष्ट शब्दों में कह रहा हूँ। जिसको कोई विवेक नहीं होता है, किसी भी स्थान पर अपनी इच्छाओं की पूर्ति करने के लिये खड़ा है, कोई विवेक नहीं है, मर्यादा नहीं है।

यदि वर्तमान के ज्ञानी लोग अमर्यादित जीवन जी रहे हैं तो सिद्धांतशास्त्र की भाषा में बोल देना कि ये द्रव्य से पुरुष का भेष अवश्य है, मनुष्य है, लेकिन भाव से तिर्यंच ही है। तिर्यंचों की जो संज्ञा होती है, वह प्रकट दिखाई देती है। आप सब समझ रहे हो? उनके पास कोई लोकमर्यादा नहीं होती है। जिनकी लोकमर्यादा ही भंग हो चुकी हो, वह अपने आपको मनुष्य कहना ही बन्द कर दे।

आत्मवंचना तो तभी हो चुकी होती है, जब पाप करने का मन में भाव आता है। आत्म निंदा तो तभी हो चुकी होती है, जब परनिंदा करने का भाव आता है। जो चित्त की प्रसन्नता, हृदय का गद्गद् भाव निर्दोषता में होता है, वह सदोषता में नहीं होता है। एक ग्रास भी यदि आपने छिपके, उठाकर खा लिया हो, तब भी मन में ठेस रहेगी, विकल्प रहेगा—क्या है? पूरा भोजन सामने करके आना, तब कोई विकल्प नहीं होगा। पर छिपकर एक ग्रास खाने वाला विकल्प में रहेगा। जीवन की उन अवस्थाओं का चिन्तवन करो। संयमी जीवन बनाने के पहले का जो जीवन था, उस पर चिन्तवन करो।

लोचन शुद्ध है तो बस, वस्तु पवित्र दिखाई देगी। और लोचन शुद्ध नहीं है, लोचन स्पष्ट नहीं है, पाण्डुरोग हो गया, पीलिया रोग हो गया जिसके लोचन में, उसको हर वस्तु पीली दिखाई देगी और लोचन साफ है तो वस्तु जैसी है वैसी दिखाई देगी। इसलिये लोचन साफ करने के लिये आलोचन है। करो निज आलोचना। लोचन यानि आँख। अक्ष यानि लोचन, अक्ष यानि आत्मा। आँख का पर्यायवाची है लोचन और लोचन यानि आत्मा। दर्शन गुण किसमें है? आत्मा में। इसलिये, आलोचन इसलिये करना कि निज लोचन शुद्ध हो जाये। करो निज की आलोचना।

बुद्धि की प्रशस्तता आने के पूर्व क्या-क्या कर चुके हो? जब घर में पैसा नहीं था, तो गरीबी के दिनों में आपने कैसे-कैसे काम किये? उनका चिन्तन करो। एक नोट कमाने के लिये क्या-क्या नहीं किया? और जीव मुस्करा कर आता है। जन्म देने वाली माँ के साथ भी दगा करा देता है पैसा। जिसने तुझे अंगुली पकड़कर चलना सिखाया था, जब तू चलना नहीं जानता था तो तुझे पिता ने कंधे पर बिठाल कर चलना सिखाया था। उस पिता को दगा देता है तेरा लोभ, पैसा।

पचास रूपया भी बड़े भैया को अधिक मिल जाये तो छोटे भैया की हालत देखो। ऐसा महत्वपूर्ण है पैसा । जिसे तू पिताजी -पिताजी पुकारता था, पड़ोसी से अच्छा बोल लेता है, पर पिता तुझे पचास रूपये नहीं दे पाये, तो पिता तेरा शत्रु बन गया।

ये हमारे वक्ताओं को, मुनीश्वरों को तत्त्व के भावात्मक उपदेश और भावात्मक सुधार की आवश्यकता की व्याख्या करनी चाहिये। भिन्न कर दिया है। माँ से माँ कहने में हिचक लगती है बच्चों को। बोले कि एक बार लड़ चुका था, तो अब माँ कैसे बोलूँ ? माँ से माँ नहीं कह पा रहा है और पिता से पिता नहीं कह पा रहा है।

कहीं तत्त्व-उपदेश सुनके कषाय ऋजु पड़े, तो अब उसे शर्म आती है कि मैं कैसे बोलूँ फिर से? हाँ, ऐसा ही होता है। कषाय की मन्दता में भाव भी करे कि अब तो मुझे बोल लेना चाहिये। भैया! पिता से कभी भी झगड़ा हो जाये, तो पिता से बोलना मत छोड़ना। नहीं तो पिता की अंतिम श्वास आयेगी तब भी णमोकार सुनाने में हिचक आयेगी। यहाँ कोई श्रावक ऐसी भी बैठा हो। यदि कोई विकल्प आ जाये। संसारी हो, गृहस्थ हो। आ भी जाये विकल्प, तो भी सोने के पहले-पहले पिता के पैर छू आना।

पुद्गल के टुकड़ों के पीछे भगवान-आत्मा से द्वेष नहीं करना। समयसार ये लगाना चाहिये कि पिता का जीव भगवान-आत्मा है कि नहीं और तू भगवान-आत्मा है कि नहीं? और जब दोनों भगवान-आत्मा हैं, तो कषाय के उद्रेक में भगवान से भगवान का विद्रोह कैसा?कषाय क्या तेरी निज वस्तु है? यही तो आलोचना है। यही तो लोचन शुद्ध करना है। कुन्दकुन्द देव ने 'समयसार' को स्मरण करके लिखने के पूर्व प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय जैसे अलौकिक ग्रन्थ लिखे हैं। वारसाणुपेक्खा, अष्टपाहुड, आदि चौरासी पाहुडग्रन्थ कुन्दकुन्द स्वामी ने लिखे हैं। जिस महायोगी ने 'षट्खण्डागम' जी ग्रन्थ पर विशाल टीका लिखी हो, वे चारों अनुयोगों के ज्ञाता थे कुन्दकुन्द स्वामी। 'धवला टीका' बहुत बाद की है। 'षट्खण्डागम' जी ग्रन्थ पर धवला टीका नौवीं सदी में लिखी गई। इसके पूर्व

कुन्दकुन्द स्वामी 'षट्खण्डागम' जी पर टीका लिख चुके थे। ये अपना दुर्भाग्य है कि टीका अनुपलब्ध हो गयी।

ज्ञानियो! घर के सम्बन्ध में मधुरता नहीं, तब घर में मधुरता कैसी? जब निज घर में ही मधुरता नहीं। आपको यूँ लगता होगा कि महाराज व्यवहार से बोल रहे हैं। नहीं। आप समझो, मैं क्या कह रहा हूँ? परिवार के लोगों को आप परिवार क्यों मानते हो? इनको परिवारवादी मानिये। जीव त्रैकालिक नहीं हैं आपके। जीवद्रव्य त्रैकालिक है। और जो आपके घर में आया सदस्य है, उसके अंतिम क्षण, भव अब कितने बचे अवशेष? जो बिना समझाये आपका पोता/नाती आकरके सुबह से मंदिर की डिब्बी लेकर दौड़े और कहे महाराज जी के दर्शन के लिये ले चलो, प्रवचन के लिये ले चलो, बेटा मचल रहा है, अब विश्वास मानिये कि पुण्यात्मा जीव ही घर में आया है। उसकी भवावलियाँ कम बची हैं। उसकी इच्छापूर्ति कीजिये और आज उसको तुम मंदिर ले जाइये।

ज्ञानियो! जो पिता आज जीवद्रव्य मानकरके संतान के प्रति शुभभाव रख रहा है और जिनालय की ओर ले जा रहा है, वृद्धावस्था में बेटा भी तुमको श्री मंदिर के दर्शन करायेगा। इसलिये माँ! जितने अच्छे से स्कूल के लिये तैयार करती हो बेटे को, उससे अधिक अच्छे से जिनालय की ओर ले जाने के लिये तैयार किया करो। उसके सम्यक् के साधन बनो। निहारो निज की ओर। पुद्गल के एक टुकड़े के अर्जन के राग में कितने भविष्य के भगवान के प्रति अशुभ भाव किये हैं? एक का पक्ष लिया था या दूसरे का विपक्ष लिया था, पर हे ज्ञानी! स्वभाव से देख लेते तो तेरे लिये दोनों ही भिन्न हैं। और दोनों ही तेरे काम में नहीं आयेंगे। पर पक्ष-विपक्ष में जो संक्लेश परिणाम किये थे, उनसे जो कर्मास्रव हुआ था, वह तेरे काम में अवश्य आयेगा।

माँ! ज्येष्ठ पुत्र या लघु-पुत्र, कोई एक के प्रति राग है, तो दूसरे के प्रति द्वेष है। पर ध्यान रखना, माँ! वे दोनों ही कार्यकारी नहीं होंगे। उन दोनों के राग-द्वेष में तूने जो कर्मास्रव किया है, वह कर्मास्रव अगली पर्याय में तुझे अवश्य काम में आयेगा।

कोटि-कोटि उपवास करने की अपेक्षा तटस्थ जीवन जीना उत्कृष्ट साधना है। भोजन का भूखा बन रहना तो शरीराश्रित है, लेकिन परिणामों को तटस्थ बनाके रहना, ये निज के भीतर का पुरुषार्थ है। गाली देने वाले और प्रसंशा करने वाले, दोनों के प्रति परिणाम तौलिये। निंदा करने वाले व स्तुतियाँ करने वाले, इन दोनों के युगपत होने पर, उस समय परिणामों को निहारिये। किस के प्रति मुस्कराहट छूटती है और किसके प्रति भृकुटियाँ खिचती हैं? आप समझ लो, मोक्षमार्ग कितना प्रारम्भ हुआ है?

मोक्षमार्ग में भी, मोक्षमार्गियों के बीच आकर भी मोक्षमार्गियों के प्रति राग-द्वेषात्मक भाव बन रहे हैं। मैं क्या करूँ? ये अनादि-संसारी के संस्कार हैं। बकरियों के लिये मोतियों की भूमि पर खड़ा कर देना। कोई कूड़ा नहीं होना चाहिये वहाँ पर। कंकड़ नहीं होना चाहिये। कुछ नहीं होना चाहिये। साफ-स्वच्छ भूमि पर खड़ा कर देना। तब भी बेचारी बकरी करे क्या? उसके जातीय संस्कार ऐसे हैं कि बिना जमीन को कुरेदे वह बैठ नहीं सकती है। और कितना ही स्वच्छ पानी भरा हो, भैंस को पिलाने ले जाना, पीने के पहले क्या-क्या करती है? आपको पता है क्या? बिना लघुशंका किये वो पानी पीना शुरू नहीं करती।

कुछ ऐसे ही ज्ञानी लोग होते हैं, तुम उनको कितने ही ऊँचे शिखर पर बिठाल देना, पर जब तक वे अपने हृदय की गंदगी नहीं फैला लेंगे, तब तक वस्तुस्वरूप पर दृष्टि नहीं जा रही है। ये भैंसा-प्रवृत्ति है।

आचार्य जिनसेन स्वामी ने 'महापुराण' में श्रोताओं का वर्णन किया है, उसमें भैंसा-श्रोता लिखा है। भैंसा श्रोता। भैंसावृत्ति का जो श्रोता होता है, वह पूरी सभा को मचा देता है। ऐसे ही जिसकी प्रवृत्ति भैंसेभूत हो चुकी हो, ऐसा जीव तत्त्वसभा में आकर तत्त्वोपदेश नहीं सुनेगा, पहले मचा देगा।

लोचन साफ करो, यदि वस्तु की यथार्थता जानना है तो। मिट्टी से युक्त कटोरे में खीर भरोगे तो खीर का स्वाद बदल जायेगा। कषाय युक्त परिणामों में जिनवाणी सुनोगे तो, जिनवाणी का स्वाद बदल जायेगा।

ज्ञान का आनन्द लूटना है तो पहले अपने हृदय को खाली करो। 'सर्वआलोच्य' सम्पूर्ण प्रकार से आलोचना करो! निज निंदा करो, कि मैंने इस जीवन में क्या-क्या किया? सुनाई पड़ रहा है न आप सबको? चेहरे उदास क्यों कर रह हो? जब से समझ में आई है, तब से आजतक सोच लीजिये, माँ के संबंध को सम्बध नहीं जाना, बहिन के संबंन्ध को संबंध नहीं जाना, पिता के संबंध को सम्बन्ध नहीं जाना। इन चार संज्ञाओं ने क्या-क्या नहीं कराया है?

अहो पापी चित्त! तूने तिर्यंचों के बीच में तिर्यंच ही बनाकर रख दिया। आपकी वकालत में दण्डसंहिता है, मुझे मालूम है। ऐसे अधम नर भी होंगे जो स्वजाति, स्ववंश को छोड़करके अपनी इच्छाओं की पूर्ति तिर्यंचों में भी करते हैं। निज की इच्छाओं की पूर्ति यानि पशुवृत्ति, पशुओं के साथ भी किये हैं। क्या करोगे? उस समय के हृदय को टटोल लो और निहारो। समझ आने के पूर्व जो किया है, उसे आज की समझ से समझ लो और श्वास निकलने के पहले प्रायश्चित्त लेकर जाना। पश्चात्ताप कर लेना और उस पाप को छोड़ देना।

पुण्य की चमक में चारित्र सत्य हो, यह कोई नियम नहीं है। चारित्र चमके, कोई नियम नहीं है। पूर्व पुण्य के नियोग से आदमी छुपके भी पाप करले और पकड़ा भी जाये, तब भी पुण्य उसका इतना तेज काम कर रहा है, ये आदमी के चारित्र की चमक नहीं है। जिस दिन पुण्य की चमक फीकी पड़ जायेगी, उस दिन चारित्र का जो घात किया था, वह उदय में नियम से आयेगा।

क्या दिख रहा है ऊपर देह पर? सफेद चमड़ी को देखकर मुस्करा रहे हैं आप सब। ये चमड़ी उतर जाये तो भीतर क्या है? घाव-ही-घाव है। पुण्य की चमक, ये आज समझना हो तो समझ लो। भविष्य आप जानो। क्योंकि मुझे निज को ही निहारना है। लगता है आपको कि ये उपदेश चल रहे हैं। यथार्थ मानिये, जितना मैं आपके लिये बोलता हूँ, यह सब बोलनेवाले को ही बोलता हूँ। ये पुण्य की चमक है। चमड़ी हटी, भीतर देखो, घाव है। पुण्य छटेगा, सब कर्म उदय में आयेंगे। अशुभ-हो-अशुभ। फिर बिलखेगा जीव।

अभी तुम्हारे घर की दीवाल पर कौआ बैठा हो, आप निकल पड़ो, तो उड़ जाता है। पर जिस दिन चमड़ी हट जायेगी, वो उड़ेगा नहीं, शरीर पर बैठकर खायेगा। सुनो ध्यान से, मैं क्या बोल रहा हूँ? जो आज तुम्हें देखकर भाग रही हैं, वे पुण्य की चादर हटते ही सिर पर बैठना प्रारम्भ कर देंगी। विश्वास मानो। इसलिये आज से किसी को अपना मानना नहीं। जीव-तत्त्व की दृष्टि से निहारिये। किसी से बंधकर मत रहना। किसी के बनकर मत रहना। संबंध चल रहे हैं। जहाँ-जहाँ सम्बन्ध होते हैं, वे छूटने के लिये ही होते हैं। गांठ तो बंधी थी आपकी, फिर क्या हुआ था? फिर छोड़ी थी कि नहीं?

वकील की बुद्धि ले जाओ, मैं क्या बोल रहा हूँ? गांठ बंधी थी और पता नहीं कितने लोगों की आपने बंधवायी थी। क्यों, बंधती कब है? खुलती कब है? अरे! क्या शर्माने की बात है? जो है, सो है। आप तो बताओ। भूल गये हैं क्या?

ज्ञानी! जो गांठ बंधी हुई थी, वो तो खुल गई। पर जो भीतर गांठ बंधी थी, वो आज तक नहीं खुली। गांठ तो खुलने के लिये ही बांधी गई थी। और ये आपको दिखा दिया गया था उसी दिन। और खोली किसने थी? बांधता कौन है और खोलता कौन है? ओ हो! तुम लोग तो ऐसे लग रहे जैसे बिलकुल साधु बन चुके हो। क्यों मायाचारी कर रहे हो? सबको पता है। कल बेटे की शादी करो, सब समझ जाओ। किसी को मालूम नहीं है। (मन ही बांधता है और मन ही खोलता है।) मन की नहीं पूछ रहा हूँ, तन वाली बताओ। मन वाली तो मुझे मालूम है। बिलकुल विकल्प नहीं करो। कोई रहस्य होना चाहिये इसमें।

बंध किन्ही निमित्तों से हो, बंध के काल में सब सहयोगी। ला तू कमा-कमा करके, सब खायेंगे मिलके। ज्ञानी! कितना ही बंध कर लेना मिल-मिलके, जब छोड़ना पड़ेगा तो

स्वयं ही छोड़ना पड़ेगा। जिस दिन गांठ बांधी गई थी, तो सब लोग मंगलाचरण कर रहे थे। जब खुलने का समय आया, तो लोग उसमें हँसने वाले भी खड़े थे। खोलो, कौन कितनी जल्दी खोल लेता है? बोलो-बात साँची है कि नहीं? उसी दिन आपको मालूम चल जाना चाहिये था कि बंधन के समय संगीत कर रहे थे, गाना गा रहे थे और जब खुलने का समय आया, तो हँसने खड़े हैं। सब देख रहे हैं कि कौन पहले खोलता है।

मुमुक्षुओ! बंधन के काल में सब मुस्कराने वाले मिलेंगे, पर छूटने के लिये एकांत में तुझे ही जाना पड़ेगा। जो बन्धन होता है, छूटने के लिये ही होता है। इसलिये आज से रोना बंद, हँसना बंद। क्योंकि बंधन है, इसका मतलब ही छूटना है। बिलकुल विकल्प मत करना। बंधा ही गया था, बंधा ही आया है। वह आया ही इसलिये था। बंध शब्द से आया था। वो छूटने के लिये ही आया था। कोई सोमवार को, कोई मंगलवार को, पर जाना सबको है। सात दिन के अन्दर-अन्दर जाना सबको है। भले ही आपको सुनने में अच्छा नहीं लग रहा, पर होना ऐसा ही है। 'जो है, सो है'।

क्यों! घर के लोग यहाँ आने को मना तो नहीं करते हैं? अरे! कोई कहने लगे कि वैराग्य हो गया, तो फिर मेरा क्या होगा? ज्ञानी! कुछ नहीं, जो होता है वही होगा। एक विषय याद कर लो, फिर आगे चलते हैं। तू बिलकुल स्वतंत्र हो जाये, तब भी परतंत्र है। इसको जितनी चिन्ता अपनी नहीं है, अब बेटे की भी नहीं है, नाती की होने लगी है बेचारे को। पर एक सूत्र याद कर लो भैया। ये जितने युवा बैठे हैं, वे बूढ़े बनने के पहले ही चिंता में बूढ़े हो गये हैं। और तुम युवा में ही चिंता छोड़ देना तो आनन्द का जीवन जीना।

सूत्र समझो। पानी जड़ है। जब पानी बहता है, मार्ग में कितनी ही रुकावट मिल जाये, तब भी अपना मार्ग खोज लेता है। जब जड़ पानी बहता है, तो अपना मार्ग खोजकर निकल जाता है। ऐसे ही चेतन तुम्हारी संतानें, जब तुम नहीं होगे, कितनी ही रुकावटें आयेंगी, वे भी अपना मार्ग निकाल लेंगे। इसलिये तुम चिन्ता करना छोड़ दो। जब पानी को मार्ग मिलता है, तब प्राणी को भी मार्ग मिलेगा। इसलिये आज से चिन्ता समाप्त करो, कि अर्हन्त का क्या होगा, वर्द्धमान का क्या होगा?

ज्ञानी! आज से चिन्ता करना छोड़ दो, चिन्तन करना प्रारम्भ करो। ज्ञानधारा में जाओ। आचार्य कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं कि ज्ञान जो है, वह पाँचों इन्द्रियों को वश में कराता है। कैसे कराता है? उसकी व्याख्या करते हैं। ये नेत्र का विषय है। सर्वाधिक भोग कौन कराता है? नेत्र। सर्वाधिक भोगी कोई इन्द्रिय है तो नेत्र। हर वस्तु के उपभोग के पहले दर्शन।

आँखें ठीक करो अगर आँख ठीक रखना चाहते हो तो। समझ गये? अधिकृत भोग कितना भोगा है और अनधिकृत भोग कितना भोगा है? हल्ला करके एक को, पर देखा कितने को है? उसका प्रमाणपत्र क्या है? आस्रव होगा कि नहीं होगा? बंध होगा कि नहीं होगा? भैया! सच बोलना, जिनवाणी की सभा में तुम झूठ बोल नहीं सकते। यदि झूठ बोले, तो फिर पता नहीं क्या होगा? निधत्ति-निकाचित कर्म का बंध हो जायेगा यदि आपने गलत बोल दिया तो।

भैया! सागमण्डी में साग लेने गया कि नहीं? गये न? रोज जाते हो। भैया! बुरा मत मानियो। अगर मान जाओ तो अच्छी। सत्य बताना, किनते पैसों का खरीदके लाते हो? और कितने ठेलों को देखते हो? कोई बहुत बड़ी बात नहीं पूछ रहा हूँ, छोटी-सी बात है। पैसे कितनों के दिये थे और खरीदे कितने फल थे? भो ज्ञानी! तू करणानुयोग को जानता है, तो कर्मसिद्धांत से पूछ लेना। कितने फलों को निहारा था? कितने फलों को सूँघा था? क्या रसना-इन्द्रिय से भोगा है? उतने पैसे देकर आया है? शेष इन्द्रिय से भोगा, उतना पैसा देकर तू नहीं आया है।

'क्या बिना देखे ले लें?' तो कर्म भी कह रहा है कि तू देख, मैं भी तो तुझे देख रहा हूँ। देख -देख, जितना देखना है देख, उतना मैं भी तो देख रहा हूँ। अहो! पकड़ा गया न भैया?

भैया सागमण्डी गया और बीच में बेटा मिल गया। कहता है, पिता जी! आपकी वृद्ध अवस्था है, इसलिये मैं लेकर आता हूँ। और उसने उनका थैला छीन लिया। और जो पैसे थे, वो भी ले गया। उसने अच्छा किया न? पिता जी को नहीं जाने दिया। और जैसे ही उस दुकानदार ने एक किलो के पचास रूपये माँगे, उसने पचास ही दे दिये और सुन्दर फल लेके, घर में आकर रख दिये। पर इस ज्ञानी को घर आयी सामग्री (फल) का स्वाद नहीं दिख रहा है। सबसे पहले पूछता है कि कितने की लेके आया है? क्या भाव आये हैं? भाव देखे, भाव नहीं देखे।

फलों के भाव में निज के भाव भूल गया और इसका उपयोग कुंजड़े की दुकान पर चला गया। और बेटे से कहता है- बेटे! यदि मैं जाता तो 45 के लेकर आता। कल से घर बैठना, मैं जाऊँगा। बेटा ज्ञानी था। उसने पिता जी की बात को तटस्थ भाव से सुन लिया। बोला, जाने दो। ये व्रती हैं, इनको जाने दो। लेकिन कल मैं इनके व्रत का व्याख्यान करूँगा। ऐसा सोच लिया बेटे ने। ईर्ष्या से नहीं, साम्यभाव से। पिता जी दूसरे दिन जाते हैं। जब जीव तीर्थंकर अर्हन्त के पादमूल में सुबह का समय निकालने वाला था, कभी पिता जी को इतना नहीं झुका होगा, उतना कुंजड़े की दुकान पर कमर टेड़ी किये खड़ा था। और उस समय ही

ज्ञानी यूँ कह रहा था। उसने वो ही फल खरीदे, जो कल बेटा लेकर गया था। और कहता है कि पचास नहीं दूँगा, पैंतालीस दूँगा। और जैसे-तैसे दोनों में समझौता हुआ, उनंचास रुपये में फल लेके आ गया। और घर आकर मुस्काराता है, ले बेटा! एक बचाकर लाया हूँ। बेटा मुस्कराता है, वाह! अज्ञानी! बैठ जा। अब सुन मेरे उपदेश। बोले- तू मुझे अज्ञानी बोल रहा है। बचाकर लाये हो, इसलिये अज्ञानी हो। बेटा बोला- पहले भोजन कर लो, फिर बताऊँगा। तब तक आप ठण्डे हो जाओगे, तब अच्छे से समझ में आयेगा। पिता-पुत्र ने भोजन किया, पर पिता सामायिक भूल गया। बोला-बेटा! सामायिक बाद में करूँगा, विकल्प रहेगा, पहले तू बता दे।

हे जनक! 'समयसार' ग्रन्थ का अध्ययन करने वाले, आप, समय को भूल गये। जब कुंजड़े की दुकान पर खड़े थे आप और घिघया रहे थे, तू उज्ज्वल कुल का धनपति पुरुष, ऐसी घिघयाहट को जब लोग देख रहे होंगे, उस समय लोग क्या सोच रहे होंगे? देखो- भैया एक रुपया के पीछे किच-किच कर रहा है। सो एक तो आपने हमारी इज्जत नष्ट कर दी। मेरी पूरी इज्जत डुबा दी आपने। बोले-क्यों बेटा? जब आप एक रूपया का मोल-भाव कर रहे थे, मेरा मित्र भी वहीं साग ले रहा था। उसने आकर मुझे बताया कि तुम पिताजी को भेजते हो, वो ऐसा-ऐसा कर रहे थे। सो एक तो आपने मेरे मित्रों के बीच में पूरी धुलवा दी। तो अब पिता जी थोड़े ढीले पड़े। फिर, पिता जी! सुनो, मैंने आपके फोटो जड़वा-जड़वा कर, देखो कैसे सुन्दर लगाये हैं? देखो, बैठककक्ष में लगे हैं। पर वहाँ पर एक कैमरामेन था, उसने आपका फोटू खींच लिया है। वो फोटू पेपर में गया है, शाम को देख लेना। उड़ती और ताजी खबर क्या हुई थी? आज की ताजा खबर में, कुंजड़े की दुकान पर, आप ही दिखोगे। अब तो बेचारा पानी होना शुरू हो गया।

बुरा तो नहीं लग रहा? (नहीं, अच्छा लग रहा। बात हमारे अकेले की थोड़े-ही है।) अब क्या हुआ? अब चिन्ता मत करना, अभी बहुत है।

ये तो जीव की परिणति की व्याख्या है। अब क्या हुआ? अभी बेटा सब ऊपरी-ऊपरी बातें बता रहा था। ऊपरी बातों में ढीला पड़ने लगा, जब अंदर की बतायेगा तब क्या होगा? अभी तो मित्र की बताई, पेपर की बताई है।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

अन्तरात्मा ज्ञानामृत का पान करे

सर्वद्वंद्वं परित्यज्य, निभृतेनान्तरात्मना।
ज्ञानामृतं सदा पेयं, चित्ताह्लादनमुत्तमम्।।12।।

अन्तरात्मा सम्यग्दृष्टि को निश्चिन्त होकर, सर्व सांसारिक उपाधियों का त्याग कर चित्त को आनन्दकारक उत्तम (श्रेष्ठ) आत्मध्यान से उत्पन्न ज्ञानामृत का पान करना चाहिए।

।। देशना ।।

अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेश की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी, मनीषियो! जगत्कल्याणी है।

यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में आत्मा के ध्रुव अखण्ड, धारावाहिक, चैतन्य धारा की व्याख्या कर रहे हैं। जिससे जिसकी पहचान है, उस पहचान को ही नहीं पहचान पाना, ये महान भूल है। यदि किसी का व्यापार किसी की पहचान से चलना प्रारम्भ हो गया हो, अपने व्यापार की पहचान के जो साधन थे, उनको नष्ट करने में आपको कष्ट होता है। आश्चर्य है कि किसी की दुकान आप के नाम से प्रसिद्ध हो रही है तो भी आप उसे मिटाना पसंद नहीं करते हो।

ज्ञानियो! अनात्मभूत पहचान को तुम मिटाना पसन्द नहीं कर रहे हो। जो तेरी पहचान है ही नहीं, उसे अपनी पहचान बनाये बैठा है और जो तेरी पहचान है, उसको मिटाये बैठा है। इससे बड़ी अज्ञानता क्या होगी? ज्ञानियो! गाँव तेरी पहचान नहीं है। उसका नाम है चैतन्य ज्ञानघन भगवान-आत्मा। वो ज्ञान-दर्शनस्वभावी है। ज्ञान तेरी पहचान है। उस पहचान को भूल रहा है। पहचाननहार को ही भूल रहा है। आपकी पहचान क्या है? आत्मभूत लक्षण क्या है? ज्ञान-दर्शन है। नीला, पीला, गोरा, काला, साँवला ये ज्ञानियो! पानी की पहचान नहीं है। शीतलता पानी की पहचान है। अग्नि कितनी रंग- बिरंगी दिख रही है। वह रंग-बिरंगी अग्नि की पहचान नहीं है। ऊष्णता अग्नि की पहचान है।

वैसे ही मुमुक्षुओ! यह देह है। मैं गोरा हूँ, साँवला हूँ, काला हूँ, ज्ञानियो! ये आपकी आत्मा की पहचान नहीं है। यह देहाश्रित है। जो वर्ण है, वह आत्मा का धर्म नहीं है। यदि वर्ण आत्मा का धर्म हो गया, तो इस पर्याय में तू गोरा हो गया, अगली पर्याय में तू काला हो गया। और एक ही भव में लोग गोरे-काले देखे जाते हैं।

शीतकाल में आपके शरीर का वर्ण थोड़ा गोरा दिखने लगता है, और ग्रीष्मकाल में वे ही सांवले-से दिखते हैं। तो ज्ञानियो! जब काले होंगे तो दूसरे होंगे, गोरे होंगे तो दूसरे होंगे। तत्त्व जो है, शाश्वत है। जो शाश्वत है, वह तत्त्व है। तत्त्व तो दोनों शाश्वत हैं। तत्त्व की अशाश्वतता नहीं है। फिर अशाश्वत शब्द क्यों? तत्त्व तो प्रत्येक शाश्वत है। पुद्गल भी शाश्वत है, जीव भी शाश्वत है। फिर अशाश्वत शब्द क्यों?

पर की मिश्रधारा अशाश्वत है। थोड़ा ध्यान देकर सुनोगे तो समझ में आयेगा। प्रत्येक द्रव्य शाश्वत है। वस्तु उत्पन्न होती नहीं, वस्तु नष्ट होती नहीं। जो नष्ट होता है, जो उत्पन्न होता है, वह वस्तु होती ही नहीं है। जो उत्पाद-व्यय हो रहा है, वह स्वभावभूत भी है, विभावभूत भी है। दो द्रव्यों की मिश्रधारा, ये विभावभूत है। और एक द्रव्य की एकत्व धारा, ये स्वभाव-भूत है। जो स्वभावभूत है, वह त्रैकालिक है। जो विभावभूत है, वह तात्कालिक है। और जो विभावभूत मिश्रधारा तात्कालिक हो रही है, अपने-अपने स्वभाव में वो भी त्रैकालिक है।

हल्दी है, चूना है। दोनों हैं। न आप हल्दी के कर्ता हो, न आप चूने के कर्ता हो। ये अज्ञानियों की धारा है कि मैंनें अमुक वस्तु को निर्मित किया है। हल्दी को उठाकरके चूने में डालने के कर्ता तो हो सकते हो, चूने को उठाकरके हल्दी में डालने के कर्ता तो हो सकते हो। निक्षेपण के कर्ता हो, प्रयोग के कर्ता हो, लेकिन वस्तु के कर्ता नहीं हो। प्रयोक्ता हो, कर्ता नहीं हो।

विश्व में जितने वैज्ञानिक हुये हैं, हो रहे हैं, होंगे, एक भी वैज्ञानिक किसी भी वस्तु का कर्ता होता ही नहीं है। वैज्ञानिक प्रयोक्ता मात्र होता है। इसलिये उनकी जो प्रयोगशाला है, उन पर 'प्रयोगशाला' ही लिखा होता है, 'कर्ताशाला' नहीं लिखा होता। लिखा सत्य है। प्रयोगशाला, न कि कर्ताशाला है। कौन-सा रूप है जो चूनेरूप परिवर्तित हुआ है?

हल्दी-चूना तो ज्ञानी! प्रकृति की वस्तु थी। उसको आपने मिला दिया है। ये नवीन पर्याय झलक रही है। नवीन पर्याय की दृष्टि से नवीन है। दो वस्तु के मिलने से नवीन वर्ण तैयार हुआ है, इसलिये आपको नवीन दिखता है। परन्तु वस्तुत्व को देखोगे, तो वह प्राचीन है। मैं मनुष्य हूँ। वर्तमान में इस कुल में हूँ, इत्यादि जो पर्याय है, वे वर्तमान की, मिश्रधारा का परिणमन है। लेकिन जो देह है, उसके परमाणु भी त्रैकालिक हैं और मेरी आत्मा है, वह भी त्रैकालिक है।

किसी मृतक पुरुष की चमड़ी छुल जाये, तो क्या करोगे? स्नान करोगे न? कितनी बार करोगे? वर्तमान पर्याय की प्रत्यासत्ति की अपेक्षा से वह पर की चमड़ी है, पर वो शरीर

का ढांचा अशुभ हो गया, इसलिये आप इस ढांचे को शुभ करने के लिये स्नान कर रहे हो। ठीक है। व्यवहारधर्म विवक्षा है, लोकधर्म विवक्षा है। लेकिन यहाँ जो तुम सुन रहे हो, वह वस्तुव्यवस्था है। तीन धाराओं पर आपको चर्चा करना है। व्यवहार विवक्षा, लोकधर्म विवक्षा, (पुण्यधर्म विवक्षा) और वस्तुव्यवस्था। जो आपको किसी के शरीर का ढांचा पड़ा दिखाई दे रहा था, उसको देखकरके नाक सिकोड़ कर जा रहे थे, पर तुझे पुनः भोगने को मिलेंगे।

वर्गणायें 23 हैं। 23 प्रकार की वर्गणाओं में मात्र 5 वर्गणा ही ग्राही हैं। उन 5 वर्गणायें की जो संख्या है, वह न अधिक होगी, न कम होगी। वह तो जितनी है, उतनी ही रहेगी। और विश्व में जितने प्राणी हैं, वे तो जितने हैं,उतने ही रहेंगे। स्थानान्तरण होता रहेगा, पर्यायान्तरण होता रहेगा। न वस्तु कमेगी, न वस्तु बढ़ेगी। त्रैकालिक सिांत है। वस्तु उत्पन्न भी हुई नहीं है, नष्ट भी नहीं होगी। पर्याय का उत्पन्न होना, पर्याय का नष्ट होना, यही वस्तु का उत्पाद-व्यय है। और उस उत्पाद-व्यय की धारा को न समझने के कारण अज्ञानी रोता-बिलखता है और अज्ञानी मुस्कराता है।

एक रो रहा है, दूसरा हँस रहा है और ज्ञानी मध्यस्थ है। उसे समझ में आ रहा है कि जो नष्ट हुआ है, वो भी नष्ट नहीं है और जो उत्पन्न हुआ है, वो भी उत्पन्न नहीं है। वो तो 'जो है, सो है'। दीप बुझ गया, नष्ट हुआ कि उत्पन्न हुआ? प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव। संसार में जीते-जीते इतना समय व्यतीत हो गया। ज्ञानी! यदि नष्ट हुआ है, तो उत्पन्न भी हुआ है। उत्पन्न हुआ है, तो नष्ट भी हुआ है।

मिट्टी का पिण्ड मिटे बिना घट बनेगा कैसे? और घट बने बिना पिण्ड मिटेगा कैसे? बिना नष्ट हुए उत्पन्न हुआ कैसे? बिना उत्पन्न हुये नष्ट हुआ कैसे? कितनों को रुलाया? कितनों को हँसाया? पर ज्ञानी तो 'जो है, सो है'।

अज्ञानी मेरे उत्पन्न होने पर मुस्करा रहे, अज्ञानी मेरे नष्ट होने पर रो रहे। पर मैं तो यूँ कह रहा था कि ये तो पागलों की भीड़ है। मैं न तो उत्पन्न होनेवालों का हूँ, न नष्ट होने वालों का हूँ। मैं तो उत्पाद-व्यय-ध्रुव स्वभावी हूँ। मैं किसका हूँ? इस अद्भुत बात को समझो। ये ज्ञानधारा है, ज्ञानधारा।

जिसको रोना हो सो रोओ, जिसको हँसना हो तो हँसो। जिस माँ के आँगन से छूट कर आया हूँ, वो माँ रो रही होगी और जिस माँ के आंगन में जन्म ले लिया है, वह मुस्करा रही है। परन्तु दोनों पागल हैं।

जो रो रही है, यदि मैं उसका होता, तो छोड़के क्यों आया? जो मुस्करा रही है, मैं उसका होता, तो आया क्यों? किसी दूसरे के यहाँ से आया हूँ। और तुझे मालूम होना चाहिये कि

जहाँ से उसको छोड़के आ सकता हूँ, तुझे भी छोड़के जाऊँगा। तो तू क्यों मुस्करा रही है? मैं तो किसी का नहीं हूँ। मैं तो अपने निजस्वभाव का ही हूँ। निजनाथ हूँ, परनाथ नहीं हूँ।

राग रो रहा है, राग हँस रहा है। वो ज्ञानी मुस्करा रहा है। मालूम क्यों मुस्करा रहा है? बेटे के घर आया है। इधर ही रहते हो भैया? नहीं रहते हो। एक कालेज पड़ता है रास्ते में जब विहार हो रहा था, ऐसे मुस्करा-मुस्कराके कह रहा था, महाराज! ये हमारे लड़का का कालेज है। हमने कही, ज्ञानी! जब लड़का ही तेरा नहीं है, तो लड़के का कालेज तेरा कब से हो गया? भैया! ये व्यवहार नहीं है, लोकव्यवहार है। जो व्यवहार है, वो तो वस्तुस्वभाव की व्याख्या करता है।

सद्भूत व्यवहारनय ही निश्चयनय है। ज्ञानियो! जो .शु सद्भूत व्यवहारनय है, वह .शु निश्चयनय है। जो असद्भूत अशु-.शु व्यवहारनय है, वह अशु निश्चयनय है। अन्तर इतना है कि निश्चय भेदकथन नहीं करता, अभेदकथन करता है। और व्यवहार भेदकथन करता है। दीप नष्ट हुआ, कि बुझा, कि उत्पन्न हुआ? हे मुमुक्षु! जब तू इतना बढ़िया जानता है, तो 'समयसार' की क्लास में क्यों नहीं बैठता?

ज्ञानी! ये पुद्गल के टुकड़े तो कहीं भी मिल जायेंगे, पर वस्तुस्वरूप सब जगह नहीं मिलता है। द्रव्यदृष्टि से न नष्ट हुआ, न उत्पन्न हुआ। पर पर्याय दृष्टि से जिस क्षण नष्ट हुआ है, उस क्षण उत्पन्न भी हुआ है और जिस क्षण उत्पन्न हुआ है, उसी क्षण नष्ट भी हुआ। यदि नष्ट को देखेगा, तो रोयेगा और उत्पत्ति को देखेगा, तो मुस्करायेगा और द्रव्य को देखेगा तो न रोयेगा, न मुस्करायेगा। वो क्या करेगा? 'जो है, सो है'।

तत्त्व में भी आनन्द है। अभी तक तो आप समझते थे कि जब तक सवैया, सोरठा और चुटकुले न सुनायें, तब तक आनन्द नहीं आयेगा। यहाँ तो लोग समयसार में भी मुस्करा रहे हैं। बताओ, भैया! दीपक बुझा, कि नष्ट हुआ? नष्ट हुआ, कि उत्पन्न हुआ? जब ज्योति नष्ट हुई भी, तो राख उत्पन्न हुई थी। ज्ञानियो! वस्तु नष्ट नहीं हुई है, बदली हुई है। ऊर्जा का नाश नहीं होता।

जगत् में कोई भी द्रव्य नया उत्पन्न होता नहीं, कोई भी द्रव्य पुराना नष्ट होता नहीं, पर्याय का परिणमन होता है। जो परिणमन है, उसे ही उत्पन्न और नष्ट मानते हैं। परिणमन को यदि नहीं स्वीकारोगे, तो विश्वास रखना, वर्तमान की पर्याय में तुम मर जाओगे। स्वीकार किये बिना ज्ञानियो! आप जी नहीं पाओगे। आज ही चले जाओगे।

वस्तु परिणमन कर रही है, रागी आनन्द लूट रहा है। गेंहूँ ने परिणमन किया तो आटा बन गया। आटे ने परिणमन किया, तो रोटी बन गयी। और रागी भक्षण करके मुस्करा रहा

है। पर दाना कह रहा है कि तू कुछ नहीं कर रहा है। मैं पेट में जाकर पुनःपरिणमन करूँगा और मल बन जाऊँगा। मेरे में ताकत है कि मैं तेरे अन्दर रह नहीं पाऊँगा, बाहर आ जाऊँगा। और फिर एक दिन आयेगा, फिर दाना बनूँगा, फिर रोटी बनूँगा, फिर तू मुझे ही खायेगा।

जो भोजन किया था, वो ही तो बाहर मल बनके निकलता है। वो ही खेत में खाद बनता है। वो ही खाद बनके पुनः दाने के रूप में स्फुटित होता है। और वो ही दाना थाली में सजकर आता है। नया क्या तुमने भोगा? इसलिये आज से खाने के समय मुस्कराना बंद करो। बस, ये कहो कि जीना पड़ता है, इसलिये खाना पड़ता है। यदि जीवन-मरण समाप्त हो जाये, तो खाना भी समाप्त हो जाये।

मैं मुनि इसलिये बना हूँ कि ये खाना कब समाप्त हो जाये। 'अनशन स्वरूपोऽहम्।' भोजन करना आत्मा का धर्म नहीं है। ज़ु धर्म नहीं है, विभाव-भाव है। जिसको भोजन से उदासी आ जाये, जिसको भोजन से वैराग्य आ जाये, उसे सारे जगत से वैराग्य हो जायेगा। भोजन जिसका छूट गया, विश्वास रखो, संसार उसका छूट गया। चींटी को कोई काम नहीं होता, फिर भी दिन भर घूमती रहती है। किसके पीछे? पशु-पक्षियों को दिनभर क्या काम रहता है? भोजन।

जितने पापाचार हो रहे हैं, मात्र भोजन। भोजन न हो, तो धातु की व़ृ शरीर में नहीं होगी, तो वासना भी नहीं होगी। जितना गरिष्ठ खाओगे, उतना क्लिष्ट, गरिष्ठ परिणाम होंगे। भोजन करेगा गरिष्ठ, तो विषयों की पुष्टि के लिये स्त्री भी चाहिये उसको। दूसरा पाप खड़ा हो गया। भोजन करता है, सो भोजन के लिये द्रव्य चाहिये, सो परिग्रह खड़ा हो गया। भोजन जब ईमानदारी से नहीं मिलता, तो चोरी भी करता है। अगला पाप हो गया। भोजन के लिये जो धन कमाता है, उसमें झूठ बोलता है। ईमानदारी का कितना आता है और असत्य का कितना आता है?

जब स्वयं का पेट भर जाता है, तो पर के पेटों का राग सताता है। ये पेट की गर्मी ही सारे जगत के पाप करा रही है। इसलिये जैनसाधना में सबसे पहले उपवास रख दिया है। दीक्षा लेना है तो पहले उसी दिन उपवास करना होगा। इस पेट को ठण्डा करिये आप पहले। लोग समझ नहीं रहे हैं साधना को। दीक्षा जिस दिन हो रही है, उस दिन केशलुंचन भी करो, उपवास भी करो।

क्या बात है? पहले पेट की गर्मी ठण्डी करो। जब पेट की गर्मी ठण्डी हो जायेगी, तो जो जोश भरा था गर्मी का, वह शान्त होगा, तभी होगी साधना की अनुभूति। अभी जो

पेट भरकर साधना की अनुभूति ले रहे हो, वह साता की अनुभूति ले रहे हो, साधना की नहीं। ये साता की अनुभूति है, साधना की अनुभूति नहीं है। जब साधना की अनुभूति हो जायेगी, तब पेट भी भरता रहेगा और साधना भी होगी। और जब साधना की अनुभूति होगी तो आहार की अपेक्षा से उपवास में ज्यादा आनन्द लूटेगा।

कर्म, नोकर्म का प्रभाव पड़ता कि नहीं? यदि भोजन का प्रभाव भावों पर नहीं पड़ता है, (आप भोजन की बात कर रहे हो) तो मिर्च खाते ही आँखों में आँसू क्यों आते हैं? अद्भुत शक्ति है उसके अन्दर। आँख में आँसू, नाक में पानी बहना प्रारम्भ हो गया। लाल मिर्च खाई, दोनों नाले शुरू हो गये। नोकर्म ने प्रभाव छोड़ा है। और नोकर्म का प्रभाव चैतन्य पर पड़ा है। सिसकियाँ चैतन्य भर रहा है। पर ये है कितना रागी? आँख भी बह रही है, नाक भी बह रही है, फिर भी मिर्च खाना नहीं छोड़ता। आँख व नाक दोनों बह रहे हैं, फिर भी मिर्च खाना नहीं छोड़ रहा है। ऐसा क्यों? धन्य हो। जानता भी है, फिर भी क्यों? कितनी सुन्दर भाषा बोल रहा? 'विभाव परिणमन।' ऐसा भी क्यों?

जितनी सुन्दर भाषा है, ये ज्ञानियों ने सब अपने पास रख ली हैं। हे! मुमुक्षुओ! सुंदर भाषा हो या न हो, सुंदर भाव बन जाये, तो सुन्दर भाषा की भी आवश्यकता नहीं है। दीप बुझा, उत्पन्न हुआ, कि नष्ट हुआ? यही रसायनशास्त्र है। और विानों को चाहिये कि इन वर्तमान के युवाओं को धर्म की शैली वस्तुस्वभावभूत समझायें। इनको सब समझ में आता है।

'पंचास्तिकाय' ग्रन्थ का आलम्बन लेकर किसी भी विषय का कथन करोगे तो हर युवा को समझ में आ जायेगा। दिगम्बर जैन परम्परा में ही नहीं,सम्पूर्ण जैन वाङ्मय में, दिगम्बर, श्वेताम्बर, स्थानक, समैया जितने भी जैनदर्शन के गुट हैं, इन सम्पूर्ण गुटों में 'पंचास्तिकाय' ग्रंथ को नहीं जाना, तो विश्वास रखना, 'समयसार' के रहस्य को नहीं समझा। वो तो आत्मा की ध्रुव सत्ता को मात्र कहनेवाला ग्रंथ है। शुात्मा की अवस्था को बतानेवाला ग्रंथ है। परन्तु वस्तुस्वभाव की जो रासायनिक प्रक्रिया है, उसको कहनेवाला कोई ग्रंथ है, वो 'पंचास्तिकाय' ग्रंथ है।

'पंचास्तिकाय' ग्रंथ का स्वाध्याय कर लिया जिस युवा ने, एक बार, वस्तुतत्त्व को तार्किक दृष्टि से, रासायनिक दृष्टि से कैसे कथन करना पड़ता है? सब सीख जायेगा। परन्तु समझानेवाला विवेकी होना चाहिये। जितना श्रम 'समयसार' में लगता है, उससे कई गुना श्रम आपको 'पंचास्तिकाय' में चाहिये। और 'पंचास्तिकाय' जिसने समझ लिया है, उसे 'प्रवचन सार' समझने में देर नहीं लगेगी। 'प्रवचनसार' समझने के बाद 'नियमसार' भी समझ लेगा।

फिर उसको 'समयसार' समझना चाहिये। 'पंचास्तिकाय' के बाद 'प्रवचनसार' फिर 'नियम सार' फिर 'समयसार' इस क्रम से जानेगा तो जाननहार को भी जान लेगा। परन्तु भ्रमित नहीं हो पायेगा।

दीप बुझा, नष्ट हुआ, उत्पन्न हुआ। नष्ट हुआ ज्योति के अभाव की अपेक्षा से। उत्पन्न हुआ राख की उत्पत्ति की अपेक्षा से। वस्तु वही है ध्रुवतत्त्व की अपेक्षा से। ये ज्ञानधारा है। और ज्ञानधारा में लीन हुआ जीव मुस्कराता भी नहीं है, रोता भी नहीं है। यथार्थ मानना भैया! जितना जगत में कष्ट है, सम्पूर्ण कष्ट अज्ञानता के कारण है। आप लोग कोई भी हेतु लगाते रहना, लेकिन मूल हेतु जो है, उसका नाम अज्ञानता है। यदि आप का पेन गुम गया, यथार्थ में पेन कहीं नहीं गुमा, पेन को कोई कष्ट नहीं है, आप जान नहीं पा रहे हैं कि पेन कहाँ रखा है? वो अज्ञान मिट जाये, भले ही तुझे न मिले, पर पेन अमुख ले गया, अब खोजने का कष्ट समाप्त हुआ कि नहीं? अब ये होगा कि उससे पेन कैसे निकाल पाये। ये बात तो रहेगी, लेकिन 'पेन गुमा' ये शब्द समाप्त हो गया। अब तो 'उठा ले गया' शब्द प्रारम्भ हो गया।

पेन का कष्ट था क्या? अज्ञानता में कष्ट था। विश्व में जो-जो कष्ट हैं, इन्द्रियसुखों के पीछे भी हो रहा है, सो अज्ञान छाया है। जैसे-जैसे ज्ञान बढ़ता जायेगा, कष्ट न्यून होता जायेगा। इसलिये ज्ञानियों के चेहरे दमकते दिखते हैं। क्योंकि अज्ञानमय जो दुःख था, वह निकल चुका है। ज्ञान का आनन्द ले रहा है। साधुपुरुषों को आपने देखा? उन लोगों के चेहरे थोड़े बदले-बदले लगते हैं। विद्वानों के चेहरे देखे? इनके चेहरे बदले दिखते हैं। और जो-जो कष्ट में है, वह अज्ञान में ही है।

यदि घर में किसी इष्ट का वियोग हो जाये, तो कुछ दिन बुरा लगता है। जब वही जीव अपने ही चिन्तवन से सोच लेता है कि ये तो सब सहज है। कोई दुःख मिटाने नहीं आता, दुःख मिट ही जाता है। विश्वास रखना, इष्ट के वियोग में, घर के दरवाजे पर, जो लोग बैठने भी आते हैं, वे दुःख बटाने नहीं आते हैं। उनसे दुःख बटता भी नहीं है। वे दुःख देने ही आते हैं। जिसके इष्ट का वियोग हुआ है, वो तो बेचारा भूल रहा था। लेकिन तुम फिर से आ गये, फिर याद दिला गये। कम-से-कम एक मीटिंग कर लो, एक निश्चित दिन कर लो, उसी दिन सब आ जाया करो, रोज-रोज मत आया करो। थोड़ा हल्का हुआ, आप फिर याद दिलाने आ गये। अब कुछ तो ऐसे होते हैं कि न रोयें तो कोई क्या कहे? इसलिये ढोंग में रोना पड़ता है। क्या ऐसा नहीं है? ऐसा ही है। तो सब सोच लो, अपने जाने के बाद भी ऐसा ही होगा। इसलिये 'कोऊ काहू को होऊत नईयाँ'।

याद करो जब स्कूल में पढ़ते थे। इन्द्रिरा गांधी की मृत्यु हुई। भैया। इतने बच्चे मुस्कराये कि चलो तीन-चार दिन की छुट्टी तो मिली। देखो अज्ञानता की महिमा। बालक मुस्कराते हैं। और जब लंबी छुटिटयाँ न मिले तो मालूम क्या कहते थे बच्चे? कोई नेता नहीं मर रहा क्या?

ये तो आप मुस्करा रहे हो, मैं बहुत अच्छे से कह रहा हूँ। जो माता-पिता हैं, अपने बच्चों के साथ व्यवस्थित सम्यक् व्यवहार करना। यदि आपने ज्यादा खींचा-खांची की, तो उनके भाव भी आपके प्रति ऐसे ही होते हैं, कि कब ऊपर जाये और कब मैं स्वतंत्र होऊँ? ज्यादा डांटा-डाटी के दिन गये। अब कुछ नहीं करना, अब तो माला फेरना सीधे से। किसी को डांटना मत। इतिहास साक्षी है कि ऐसे भी सम्राट हुये हैं, जिन्होने पिता को नष्ट करके गद्दी सम्हाली है। और दूर क्यों जाते हो? राजा श्रेणिक को ही देखो। उनके ही बेटे कुणिक ने कैदखाने में डाल दिया था और स्वयं राज्य किया था। इसलिये पिताओ! सुखमय जीवन, अंतिम श्वास सुख में जीना चाहते हो, तो बेटा यूँ कहे कि मुझे अलग कर दो, उसके पहले उसे अलग कर देना। बेटा के मुख से न निकले, उसके पहले ही बेटा से ये कहना कि मैं तुझे अलग कर रहा हूँ। उससे कहना कि मैं तुझे व्यवस्थित कर रहा हूँ। शब्द अच्छा प्रयोग कर लेना। अब मैं स्वतंत्र हूँ। 'अलग करना' शब्द प्रयोग नहीं करना, नहीं तो वो कहेगा कि इनने मुझे अलग कर दिया। बेटा! तेरे में हुनर है, क्षमता है, तू स्वतंत्र काम कर, ये तेरे लिये स्वतंत्र भवन दिया। फिर वो आपको पूर्व के दिनों में मिठाइयाँ खिलायेगा बुलाकरके। लेकिन यदि लड़करके अलग हुआ, तो तेरा नाम नहीं लेगा, पड़ौसी को बुला लेगा।

ज्ञानधारा ही सुख है। यदि आपको मेरी बात समझ में नहीं आ रही हो तो विद्यार्थियों से पूछो। जब आप पढ़ाई करते हो, जिस समय विषय समझ में नहीं आता है, उस समय मस्तिष्क कैसा होता है? उस समय दुनियाँ में क्या दिखता है? सब अंधकारमय। और जिस बालक को विषय समझ में आने लगता है, उसके चेहरे की मुस्कराहट ही अलग होती है। दुःख किसमें था? वस्तु में, कि व्यक्ति में, कि अज्ञानता में? बार-बार आचार्यमहाराज ज्ञान की महिमा क्यों गा रहे हैं?

भाई के शरीर को लिये 6 माह तक घूमते रहे। जब भेदविज्ञान जगा, तो अहो! ये मैंने क्या किया? और जब भेदविज्ञान का अभाव था, तो देखो ये सारे उपक्रम करके दिखा दिये। बालू-रेत भी पेल दिया, पानी भी मथ दिया। सब कहते कि ये क्या कर रहे हो? बालू में से तेल निकलता है क्या? मृतक शरीर को भोजन होता है क्या? वो कहते थे कि तेरा पिता मरा, भाई मरा, तू मरा। और अपने भाई को लेकर चल देते थे। लेकिन जब कषाय की अवधि

पूरी हुई, अज्ञानता का नाश हुआ, तो अहो! मैं क्षायिक सम्यग्दृष्टि, तद्भव मोक्षगामी। परन्तु मोहेन संवृतं ज्ञानं, स्वभावं लभते न हि। (इष्टोपदेश)

जब मोह से अच्छादित ज्ञान होता है, तो किसी को विवेक होता ही नहीं है। तद्भव मोक्षगामी श्रीराम 6 माह तक लक्ष्मण जी के शरीर को लिये घूमते रहे। ज्ञानी! आप कौन-से खेत की मूली हो? परन्तु आज से ही ध्यान रखना, कोई इधर का जीव ऊपर जाये, पहले आप आकर जाने की विधि का ज्ञान कर लेना।

दीपक जला है, तो नियत है कि बुझेगा। जन्म लिया है, तो नियत है कि मरेगा। ये सत्य है कि नहीं? अर्हन्त नाम सत्य है, राम नाम सत्य है। ओ हो हो- ये सुना रहा है असत्य को। जब सत्य था, तो सुनाने नहीं आया। जब सत्य चला गया, असत्य बचा है, उसको तू सत्य सुना रहा है। तो मैं ठीक कर रहा हूँ न? सत्य को सत्य सुना रहा हूँ और तुम लोग मरने के बाद सुनाते हो। यदि तू सत्य को ही सत्य सुना देता, तो समाधि करा देता।

ज्ञानधारा ही अखण्ड धारा है। इसलिये सारे जगत के विकल्प छोड़ दो और ज्ञान को ज्ञान से निहारना प्रारम्भ कर दो, तो सारे अज्ञान समाप्त हो जायेंगे। और अज्ञान समाप्त होते ही उसी क्षण दु:ख समाप्त हो जायेगा। पुनः कह रहे हैं आचार्यमहाराज-

सर्वद्वन्द्वं परित्यज्य, निभृतेनान्तरात्मना।
ज्ञानामृतं सदा पेयं, चित्ताह्लादनमुत्तमम्।।12 ।।

हे ज्ञानी! "सर्व द्वन्द्वं परित्यज्य", शान्त हो जाओ, सम्पूर्ण द्वन्द्वों को छोड़ दो। संसार में जितने विकल्प हैं, सब द्वन्द्व हैं और जहाँ दो हैं, दो का नाम ही द्वन्द्व है। भैया! एक का कितना ही बड़ा सिक्का तू जेब में डाल ले और कितना ही दौड़ना, कोई आवाज नहीं आयेगी लेकिन यदि पंजी-पंजी भी तूने दो डाल ली, तो खनकेगी-ही-खनकेगी। जहाँ दो होते हैं, वहाँ खनखन होती है और जहाँ एक होता है, वहाँ आनन्द होता है।

ज्ञानी! कर्म और आत्मा जब तक रहेगी, तब तक द्वन्द्व है। कर्म से आत्मा जब भिन्न हो जायेगी, तब आनन्द-ही-आनन्द है। याद करो भैया! जब तुम विद्यार्थी थे। उस समय जो आनन्द था, वैसा ही आज है क्या? किसने कहा था आपसे कि मत रखो उस आनन्द को? किसने कहा था कि आप दो होने चले जाओ? जबसे सब दो बने हैं, किनकी कहो? सब एक-से दिख रहे हैं। विश्वास मानना, जब से दो बने हैं, तब से ही द्वैत भाव आ गया।

इसलिये कुन्दकुन्द स्वामी ने स्पष्ट लिखा है, जो एकत्व-विभक्त एवं चिद्रूप आत्मा का स्वभाव है,वही लोक में सबसे सुन्दर है। जहाँ दो बने, वहाँ विसंवाद है। जहाँ बंध की

कथा है, वहाँ विसंवाद-ही-विसंवाद है। छोड़ नहीं पाओ आप लोग, इसका विकल्प मुझे नहीं है, कम-से-कम समझ जाओ और जीवन की अन्तिम श्वास तक ये निर्णय हो जाये कि आनन्द एकत्व में ही है। इसलिये महाराज कह रहे हैं "सर्वद्वन्द्वं परित्यज्य" सम्पूर्ण द्वन्द्वों को छोड़ दो।

मित्रो! जब आप थक जाते हो, कितने ही बड़े कुटुम्ब में रहो, तब भी अपने ही कक्ष में अकेला बैठना पसंद करते हो। मैं घर की बात कर रहा हूँ। कोई धर्म से नहीं, अपने गृहस्थी के कार्यों से थक जाते हो, तो कहते हो, कि थोड़े एकांत में बैठने दो मुझे। अहो! शरीर की थकान के लिये तुझे एकांत चाहिये। एकांत कक्ष में जाकर सो गया। बोला, थोड़ी थकान दूर करके आ रहा हूँ।

ज्ञानियो! संसार की थकान को दूर करने के लिए एकांत में आनन्द होता है। जब जगत की, संसारभ्रमण की थकान को दूर करना है, तो एकांत में ही बैठकर। एक में ही बैठोगे, तभी थकान को दूर कर पाओगे। इसलिये एकत्व-विभक्त स्वभाव है आत्मा का।

निश्चिंत होकरके संसार की उपाधियों का त्याग कर दो। भैया! राष्ट्रपति बनने की इच्छा चल रही है क्या? बनेगा क्या? त्याग है क्या? तो करोगे क्या? तो कर दो फिर। प्रधानमंत्री,चक्रवर्ती। अपने अध्यक्ष से पूछना -ये जब भी मंदिर जाता है, इसको भगवान बाद में दिखते हैं, सबसे पहले देखता है कि ये झाड़ू नहीं लगी मंदिर में। अहो! एक भक्त तो आकरके भगवान को देखकर चला गया। जब से ये अध्यक्ष बना है, सबसे पहले कचड़े के ही दर्शन दिखते हैं। तब भगवान दिखें, कोई जरूरी नहीं है। भैया! कम-से-कम पहले दर्शन कर लिया करो, फिर देखा करो कि क्या हुआ?

मंदिर में खड़े होकरके भगवान पर चिल्लाता है, कभी पुजारी पर चिल्लाता है। भैया! कम-से-कम तू इतने तनाव से तो मुक्त हो गया। सबसे बड़ा टेंशन क्या है? जब-जब कोई पद की बात होती है, तब-तब मन कहता है कि कोई पद हमें ही मिल जाये। अब वो तनावमुक्त हो गया। अब हमें लेना ही नहीं है, तुम्हें जो करना हो सो करो। देखा, भैया! एक जीव बहुत बड़े परिग्रह से बच गया।

जगत में सबसे बड़ा कोई परिग्रह है, उसका नाम 'पद' है। ज्ञानियो! सम्पत्ति तो राजा के पास, राजा के भैया के पास, माता-पिता के पास बराबर होती है, पर आनन्द तो आज्ञा का आता है। सबसे बड़ा कोई आनन्द है, तो मेरी आज्ञा चल रही है।

दुर्ग में एक भैया प्रोफेसर थे। उनका कार्यकाल पूरा हो गया तो शासन ने उनको रिटायर कर दिया, पेंशन देना शुरू कर दिया। पैसा भी मिल रहा है। वो बेचारा मेरे पास आया, बोला,

महाराज! मैं पागल हो रहा हूँ। क्यों? बोला– मैं शासन से कहता हूँ कि मुझे कोई वेतन नहीं चाहिये, मात्र काम करने दो मुझे। वो स्वीकार ही नहीं कर रहे हैं। मैंने पूछा कि तुम क्यों काम करना चाहते हो? तो वो हँसने लगा। बोला– बात ऐसी है कि मेरे आने पर जो खड़े हो जाते थे, सलूट मारते थे, वे सामने से गुजर जाते हैं, मुँह फेर कर भी नहीं देखते हैं कि कौन खड़ा है? इसकी ही तो चिन्ता है मुझे। पैसा तो मैं उलटा दे सकता हूँ शासन को। पैसों की जरूरत नहीं है। जो सम्मान था, वह नष्ट हो गया है। इसलिये मैं चाहता हूँ कि काम करूँ, तो सम्मान तो रहेगा।

हे अभागे! तुझे शासन ने मुक्त कर दिया, फिर भी तेरे राग ने मुक्त नहीं किया है। जो समय मिला है उसमें जिनवाणी का स्वाध्याय करो, आत्मा की आराधना करो। वो मात्र इसलिये पागल हो रहा था। उसको मैंने समझाया। जब तनिक बुद्धि पर चढ़ा, तब बोला, ठीक है, आज से स्वाध्याय करूँगा। हमने कहा, ज्ञानी! तू मुक्त हुआ है, कितना बड़ा पुण्य तेरे पास है? दौलतराम जी से पूछो, दुकान पर बैठे-बैठे जिनवाणी पढ़ते थे, लिखा करते थे। 'छहढाला' ग्रन्थ को दुकान पर बैठे-बैठे लिख दिया।

एक जीव वो हैं जो दुकान चलाते-चलाते भगवान को देखते हैं और एक वे अभागे जीव हैं, जो मंदिर में बैठकर दुकान को देखते हैं कि भैया! समय हो गया दुकान का। वो बार-बार घड़ी देख रहा है। ज्ञानी! कुछ वे लोग होते हैं जो घर में बैठकर तीर्थवंदना करते हैं और कुछ वे अभागे होते हैं जो तीर्थों में बैठकर घर की वंदना करते हैं। वे बन्ध कर रहे हैं, ठीक है? भैया! क्या सोच रहे हो?

पिताजी ने भाजीमण्डी जाने का त्याग कर दिया है। ध्यान रखना, उसके नियम का पालन करना। 'ज्ञानामृतं सदापेयं' इसलिये भैया! बहुत अच्छा है जो आप मौन रखते हो। उस मौन को बढ़ाना, घटाना मत। अन्तरात्मा का आनन्द लूटना चाहते हो तो आत्मध्यान में लीन होकरके 'ज्ञानामृतं सदापेयं'। क्या कह रहे हैं आचार्यमहाराज? जब सारे पेय समाप्त हो जायें, तो 'ज्ञानामृतं सदापेयं'। जगत में जितने पेय हैं, मौसमी मौसमी। आजकल आप उकाली पीते हो, कुछ समय बाद लस्सी पीने लग जाओगे। वे तो मौसमी पेय हैं। पर एक ऐसा पेय है जिसे मुनि भी पीता है, अर्हन्त भी पीता है,सि भी पीता है। 'ज्ञानामृतं सदापेयं' हर मौसम में पीता है।

ज्ञानी! कोई पूछे कि क्या ऐसा कोई पेय है, जिसे हर-मौसम में पिया जा सके? जिसे विद्वानों से लेकर सिों तक पीयें, वो कौन-सा पेय है? इसलिये भैया! आज से ये पानी-वानी, दूध। कम-से-कम ये चाय पीना तो बंद कर दो। बहुत से ऐसे ज्ञानी हैं, बोले, महाराज! आज

से मैं बीड़ी का त्याग करता हूँ। मालूम चला कि ज्ञानी सिगरेट पी रहा था। भैया! ऐसे भी जगत में जीव हैं, बोले, टीकमगढ़ में आलू नहीं खायेंगे, और ढोंगा में आकरके चाट को चाट रहे थे। इसलिये ढोंगियों का जीवन नहीं जीना, ढंग का जीवन जीना।

जो चिदानन्द है, चैतन्य आनन्द है, वही उत्तम आनन्द है, जो सम्पूर्ण उपाधियों से शून्य है।

क्या करूँ? भैया! सुन। बुरा तो नहीं लगेगा? लगे सो लग जान दो। आपने पद्म पुराण का स्वाध्याय किया है क्या कभी? फिर तो क्या बुरा लगेगा? ये तो साँची बात है। जब सेनापति सीता को छोड़ने गया था, तब क्या कह रहा था? हे देवि! धिक्कार हो मुझे, जो आप-जैसी सती को छोड़ने जंगल में आना पड़ा है। जैसा स्वामी कहता है, सेवक को वैसा करना पड़ता है। किंकर से कूकर श्रेष्ठ है, कम-से-कम पूँछ हिलाये स्वतंत्र तो झूमता है। और किंकर को जैसा स्वामी करवाता है, वैसा करना पड़ता है। क्या करूँ? कह रहा था कि महाराज! बहुत भावना आती है, पर क्या करूँ? पर कुछ नहीं करो, ज्ञानी! जो है, सो है।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"प्रमाद मत करो"

ज्ञानं नाम महारत्नं, यन्नप्राप्तं कदाचन।
संसारे भ्रमता भीमे, नानादुःखविधायिनि।। 13 ।।

अधुना तत्त्वया प्राप्तं, सम्यग्दर्शनसंयुतम्।
प्रमादं मा पुनः कार्षी–र्विषयास्वादलालसः।। 14 ।।

हे आत्मन्! अनेक प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक दु:खों से व्याप्त इस भयानक संसार में भ्रमण करते हुए तूने ज्ञानरूपी महारत्न को कभी प्राप्त नहीं किया। इस समय यदि किसी पुण्योदय से तुझे सम्यग्दर्शन सहित जो यह सम्यग्ज्ञान प्राप्त हुआ है, तो पंचेन्द्रिय–विषयों में लुब्ध होकर प्रमादी मत बन।

।। देशना।।

भव्य बन्धुओ! वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी, मनिषियो! जगत्कल्याणी है।

यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्औति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी 'सारसमुच्चय' जी में आत्मतत्त्व की गहराई में प्रवेश करते हुये परम सत्य की प्ररूपणा कर रहे हैं। ज्ञानी! जिसके माध्यम से सारे जगत को जाना जाता है, जिसके माध्यम से जगत को पहचाना जाता है, उस निज ज्ञान–गुण पर दृष्टिपात करो। जो भी मित्र है, तेरा वह ज्ञान है और शत्रु है तेरा, तो ज्ञान है। सारे जगत् के लोगों ने यूँ तो कहा कि ज्ञान मित्र है, पर ज्ञान को शत्रु क्यों कहा जा रहा है? विश्वास रखना, चाहे अणुव्रतों का पालन हो, चाहे महाव्रतों का पालन हो, ये ज्ञान के माध्यम से ही होता है।

ये अणुबम जो बना रहे हैं, वो ज्ञान के माध्यम से ही बना रहे हैं। संहार है तो ज्ञान से है और रक्षण है तो ज्ञान से है। ज्ञान का उपयोग क्या है? निज के ज्ञान की धारा के प्रवाह को निहारने की आवश्यकता है। एक किसान भी पानी को खेत में डालता है, पानी को खेत में डालते समय अनेक–अनेक छोटी–छोटी नहरें बना लेता है। खेत में पानी चल रहा है, बेचारा अपने हाथ में फावड़े को लिये है। शीत में ठिठुरता हुआ भी पानी में घूमता रहता है। क्या उद्देश्य है? कि कहीं नाली फूट न जाये। पानी बाहर चला गया तो पानी भी व्यर्थ जायेगा और मार्ग में कीचड़ भी होगी।

मुमुक्षु! ध्यान दो, आपने अपनी ज्ञान की धारा को प्रवाहीमान तो किया है, लेकिन कृषक–जैसे पानी को छोड़ने के उपरांत पानी को निहारता रहता है, कि पानी कहीं अन्यत्र न बह जाये, ऐसे ही तत्त्वज्ञानीजीव होता है। कितना ही क्षयोपशम प्राप्त कर ले, ज्ञान कितना ही विशाल हो जाये, पर उसको कृषक की भाँति अपने ही ज्ञान को निहारना चाहिये कि ये पानी चारित्र की क्यारी में जा रहा है कि विषयों की नाली में जा रहा है?

अशुभ की चरमसीमा भी होगी, तो ज्ञान से होगी और शुभ की चरमसीमा होगी, तो ज्ञान से होगी। ज्ञानियो! निगोदिया जीव कभी नरक नहीं जा सकता। एकेन्द्रिय जीव उसी पर्याय से नरक नहीं जा सकता क्योंकि उसके पास इतना ज्ञान नहीं है। सिंह क्रूरपरिणामी होता है। जिसका भोजन ही प्राणियों का कलेवर हो, ऐसा प्रतिदिन अनेक जीवों का घातक माँसभक्षी शेर भी सातवें नरक जाने की ताकत नहीं रखता।

सम्हलकर सुनना। शेर में इतनी ताकत नहीं है जो ताकत नारी में है। माताओ! ध्यान से सुनना। आप शेर को देखकर भयभीत होते हो, पर विश्वास रखना, शेर में वो ताकत नहीं है, जो आपके पास है। शेर पंजे से पर का घात करता है, मात्र पेट भरने के लिये। परन्तु हे नारी! तू परिणामों से घात करती है वासनाओं को भरने के लिये। छटवें नरक नारी जाती है। नारी की सीमा छटवें नरक तक है और मनुष्य की सीमा सातवें नरक तक है। शेर के पास इतना ज्ञान नहीं है। पेट भरने के बाद शान्त बैठता है। पर मुमुक्षु! तुम्हारा पेट भरने के बाद तू शान्त नहीं बैठता है। विश्वास मानना, शेर भोजन करने के बाद गुफा में जाकर बैठ जाये शान्ति से, परन्तु मनुष्य भोजन कर ले, तो भी घर में शान्ति से नहीं बैठता है, वरन् दूसरों के घर को मिटाने का विचार करता है।

गाय देखी? भोजन करने के उपरान्त एक वृक्ष की छाया में बैठकर जुगाली करती है। फिर उसको कोई तनाव नहीं है। आप भोजन करने के उपरान्त क्या करते हो? तिर्यंच भी भोजन करके शान्त बैठ जाता है, पर मनुष्य भोजन करने के उपरान्त, जितने भी अशुभ–से–अशुभ परिणाम कर सकता है, भोजन करने के उपरान्त करता है। जैसे ही शक्ति ने शरीर में प्रवेश किया, उसने अनर्थ करना प्रारम्भ किया। आज समझ में आता है कि क्या कारण है? लोग भी जो भोजन कर रहे हैं, वह कालिया नाग के मुख में गया दूध है।

हे नाग! ये मधुर दुग्ध तेरे मुख में जाते ही विष बन रहा है और योगी के मुख में जाते ही रत्नत्रय धर्म की साधना के साथ–साथ जिनवाणी का पान कराने के लिये पानक बन रहा

है। एक भोजन कर रहा है, उस भोजन की शक्ति से अनर्थ करने को बैठा है और एक योगी भोजन कर रहा है, उससे साधना करने बैठा है। वस्त्र को पानी से धो लेते हैं, ऐसे ही गृहस्थी में हुये पापों के लिये श्रावक मुनि को दान देके धो लेते हैं।

गृहकर्मणापिनिचितं, कर्मविमार्ष्टि खलु गृह विमुक्तानाम्।
अतिथीनां प्रतिपूजा, रुधिरमलं धावते वारि।।र.श्रा.।। 114 ।।

आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार' में लिखा है कि जैसे पानी से वस्त्र धुलता है, ऐसे ही गृहस्थी के पाप पञ्चपरमेष्ठी की आराधना से और निर्ग्रन्थों को दान से धुलता है।

ज्ञानी! विकल्प मत करो, वो भी भटकता भगवान् है। आप उसको भगा रहे हो, आप समझो, उसको कहीं जातिस्मरण हो गया हो, तो अपनी-अपनी बैठने की व्यवस्था बनाई आपने। तीर्थंकर के समवसरण में स्वतंत्र व्यवस्था होती है उसकी। व्यवस्था तो बनाई नहीं उसकी, भगा रहे हो। जो-जो जी रहे हैं, ये पानी से जी रहे हैं। एकेन्द्रिय से लेकर पञ्चेन्द्रिय तक के जीव सबको पानी चाहिये। एकेन्द्रिय से लेकर सिभगवान तक सब ज्ञान की धारा में हैं। पानी की बूँद से दुग्ध की बूँद। वह पानी की बूँद, जो गन्ने के खेत में जाये तो मधुर रस हो रही है। पुरुष पी रहा है, तो बनती है सप्त धातु। गाय पी रही है तो दुग्ध बन रहा है।

हे ज्ञानी! जैसे पानी की धार का परिणमन, जैसा पात्र है, वैसा वस्तु का परिमणन है। ऐसे ही, जैसे तेरे परिणाम हैं, वैसा तेरे ज्ञान का परिणमन है। जो-जो आप कर रहे हो, वह सब ज्ञान से कर रहे हो। अज्ञानी भी अपने आप को अज्ञानी कह रहा है, वह भी अज्ञानी ज्ञान से कह रहा है। भले ही कोई कहे कि मैंने संयम धारण नहीं किया, ये भी तेरे ज्ञान की धारा बोल रही है। आज तक किसी भी जीव ने अज्ञानता में पाप किया ही नहीं है। अब सँभलके सुनना ज्ञानी! आज तक आपने एक भी पाप अज्ञानता में नहीं किया। भैया! तू व्यापार करने गया था। 5 रू0 की वस्तु को तू 50 रू0 में बेच रहा था। ये अज्ञानता में कर रहा था कि ज्ञान से कर रहा था? वो अज्ञान होता तो 5 रू0 की वस्तु को 50 रू0 में क्यों बेचता? वो बु आई कहाँ से?

जिनके पास जितना ज्ञान हो, वो उतना ही ज्ञान कर पाते हैं। एक हृष्ट-पुष्ट पुरुष, मात्र थैली लटकाये भीख माँग रहा है। उसके पास इतना क्षयोपशम नहीं है, तभी तो घर-घर में अनादर को प्राप्त हो रहा है। वो भी अपना व्यापार करता और दान देता है, ये जीवन में ध्यान

रखना। शरीर की सुन्दरता को, शरीर के हृष्ट-पुष्ट को मत देखना। शरीर सुन्दर है, कुल सुन्दर है, पर पुण्य सुन्दर नहीं है, तो कोई सुन्दर नहीं है।

श्रीमान हो, धीमान हो, बलवान हो, ये सब असफल हो जाते हैं, यदि ज्ञानी पुण्यवान! नहीं है तो। धीमान, श्रीमान और बलवान तभी चलता है जब साथ में पुण्यवान होता है। लंकेश से पूछना। वह धीमान था, बलवान था, श्रीमान भी था, लेकिन जिस दिन उसका पुण्य क्षीण हो गया था, वह परास्त हो गया था। जब तक पुण्य था, इन्द्र-जैसे सम्राट से भी अपने घर में झाड़ू लगवाता था। इन्द्र नाम के राजा को जीतकर रावण अपने महल में उससे झाड़ू लगवाता था। इसलिये ध्यान रखना। निज श्री पर मत इतराना, न धी पर इतराना। श्री भी साथ नहीं देती, धी भी साथ नहीं देती। भैया! ऐसे ज्ञानीजीव मिलेंगे, दो दिन पहले जिनके श्रीमुख से हजारों-हजारों श्लोक निकला करते थे और तीसरे दिन बेचारा कोमा में चला गया। उस ध ी ने क्या किया? इसलिए ब्रु के बल पर भी कभी अहम् मत करना। कब विलीन हो जाये, निश्चित नहीं है। और धीमानों की तो बात ही नहीं करना। कब समय पलट जाये? इसलिये ध्यान रखना, श्री की और धी की इन दोनों की अहमता को छोड़कर निहारना अपने पुण्य को। पुण्य की प्राप्ति मिलती श्री जी से ही है। जब सारा जगत् आप को छोड़ देगा, विश्वास रखना, तब वीतराग धर्म आपका साथ देगा। माँ भी बेटों को छोड़ देती है। पिता भी पुत्र को धक्का मार देता है। भैया भी निहारता नहीं है। मेरे मित्रो! जब अशुभ के दिन आयें, तो किसी के घर में मत जाना। शरीर स्वस्थ है, तो दीवाल पर हाथ लगाओ, सहारा दे देगी। और हाथ में ही घाव है, दीवाल पर हाथ लगाओगे, हाथ दुःख जायेगा। जो सहारा देने वाली दीवाल थी, घाव होने पर पीड़ा ही देगी। पुण्य स्वस्थ है, तो सारे जगत की दीवारें सहयोगी बनती हैं। यदि पुण्य के ऊपर फोड़े हो गये, तो सारे जगत की दीवारें घाव करायेंगी, दुःखायेंगी। जब दुःख के दिन आयें, भैया! किसी के भी घर मत जाना। भरे घड़े में दुनियाँ सिक्का डालती है। यात्रा को निकलता हो, और सामने कोई घट भरे दिख जाये, तो भैया! तू भी अपनी जेब से निकाल कर सिक्का डाल देगा। और कहीं खाली घट दिख जाये तो? गाली ही देगा, औरकुछ नहीं करेगा। पुण्य का घट भरा है तो दुनियाँ सिक्का छोड़ती है और पुण्य का घड़ा खाली हो गया, तो दुनियाँ मुख मोड़ती है। किस पर विश्वास कर रहे हो? जो आगे-पीछे रहते हैं, उन पर भी विश्वास नहीं करना। सगा भैया, राजनीति की दृष्टि से यदि बात करो तो विभीषण ने अच्छा किया, परन्तु लोक-नीति की दृष्टि से विभीषण! आपने अच्छा नहीं किया।

लोकनीति और भाई का प्रेम तो ये कहता कि जैसा लंकेश कर रहा है वैसा आप तो, कम-से-कम उसके जैसा न करते, पर उसके साथ धोखा तो नहीं करना चाहिये था। इतिहास साक्षी है। इससे बड़ा कोई उदाहरण आपको नहीं मिलेगा, कि हे लंकेश! जब आप विद्या को सि करने गये थे, तो कुम्भकरण, विभीषण, रावण तीनों एकसाथ विद्या सि करने बैठे थे। तीनों भाइयों ने विद्या सि की। तीनों हर काम में आगे रहे।

सत्तू वि होदि मित्तो, मित्तो वि य जायदे तहा सत्तू।
कम्म-विवाग-वसादो, एसो संसार-सब्भावो ।। 57।। का. अ.।।

शत्रु भी मित्र हो जाते हैं, जब पुण्य प्रबल होता है। विभीषण राम का मित्र नहीं, शत्रु था। लेकिन जब राम का पुण्य प्रबल था, तब वो भी मित्र हो गया। रावण का विभीषण शत्रु नहीं था, मित्र था, वो शत्रु हो गया। इसलिये किसी को मत सम्हालके रखना। यदि सम्हाल सको, तो मात्र पुण्य को सम्हालके रखना।

'सबके दिन एकसे नहीं होते।' किसी की रक्षा करना है, तो मात्र अपने पुण्य की। और पुण्य की रक्षा कराने वाला कोई है, तो उसका नाम है- ज्ञान।

भूमि उर्वरा है, बीज अच्छे आपने डाले हैं, खाद भी आपके पास पर्याप्त है, लेकिन पानी नहीं है, तो इन सबका क्या होगा? फसल का क्या होगा? पुण्य की धारा भी ज्ञान से हरी-भरी होती है। जिसका ज्ञान सम्यक् नहीं है, उसका पुण्य भी क्षीण हो जायेगा। क्योंकि सम्यक्-ज्ञान के अभाव में विपरीत परिणमन करेगा और ज्ञानियो! उस ज्ञान को भिन्न स्थान पर ले जायेगा, तो चारित्र की फसल सूखेगी। जिसकी चारित्र की फसल सूख रही है, उसके पुण्य के फल तो स्वयमेव नष्ट हो ही जायेंगे। युवाओ! संडाश में बैठकर गुटका कोई खा रहा है, वो ज्ञान से खा रहा है, कि अज्ञान से खा रहा है? सबसे सुरक्षित स्थान है, कोई नहीं देखेगा, यहीं पर बैठकर खा लो। पर तुझे मालूम होना चाहिए था कि तू स्वयं देख रहा है कि नहीं देख रहा? तुझे मालूम होना चाहिये कि, केवली के ज्ञान में दिख रहा था कि नहीं दिख रहा था? ज्ञानी! छिपके गुटका तो खाके आ गया, दाँत और छिपाकर आ जाता। हे ज्ञानी! जब केंसर का फोड़ा होगा, वो दिखाई देगा कि नहीं देगा?

जब तुम्हारा ज्ञान माया-कषाय के साथ चला जाता है, तब ये तेरा ज्ञान तुझे पशु बनाता है। जब ज्ञान तेरा क्रोध-कषाय के साथ हो लेता है, तब वो तुझे नरक भेजता है। विश्वास रखना, जो वर्तमान के परिणाम हैं, वे तेरे साँचे हैं, वो भविष्य की ईंट बनने के साँचे हैं। जैसा साँचा होगा, वैसी ईंट निकलेगी। जैसे परिणाम तुम्हारे होंगे, भविष्य की पर्याय तुम्हारी वैसी बनेगी।

भगवान् के हाथ में किसी का भूत नहीं, भविष्य नहीं और भगवान् के हाथ में किसी का वर्तमान भी नहीं। 'स्वतंत्रः कर्त्ताः।' भैया! जगत में कितने सारे लोग होंगे जो वर्तमान की ही पर्याय में करोड़ों पर बैठा करते थे, वे अब गरीबी के दिन भोग रहे हैं। आज भी ऐसे लोग होंगे जो गरीबी के दिन भोगते थे, वे आज अमीरी पर बैठे हुये हैं। ज्ञानी! ये कुछ नहीं है। ये ज्ञान की धारा का विपर्यास है।

जिसने अपने ज्ञान को सप्त-व्यसन में लगाया है, उसका पुण्य क्षीण हुआ है। अज्ञान में किसी ने पाप किया ही नहीं। वो तो एक सुन्दर शब्द आपको मिल गया है अपनी बात को छुपाने के लिये। धीरे से कह देते हो कि महाराज जी! अज्ञानता में हो गया। भैया! तूने अज्ञानता में क्या किया? घोड़े पर अज्ञानता में बैठकर गया था क्या? भैया से हिस्सा माँग रहे थे, अज्ञानता में माँग रहे थे क्या?

भैया! तेरे जीवन में कितने क्लेश ऐसे आये होंगे, माँ बेटे के साथ भी झगड़ा हुआ है। पिता-पुत्र कठघरे में खड़े थे। ऐसे क्लेश भी आपके सामने आये हैं। सगे मित्रों के साथ विसंवाद हुआ है। ये क्लेश किसने कराये हैं? ज्ञान का विपर्यास। ये पूरी रोड सूखी दिख रही है। भैया! रोड गीली कब होगी? यहाँ कीचड़ कब होगी? जब बारिस होगी। जब पानी गिरेगा, कीचड़ होगी। तो तेरा पैर गीला होगा कि नहीं उसमें? भैया! कीचड़ धोओगे किससे?

जलेन जनितं पङ्कं, जलेन परिशुद्ध्यति।
चित्तेन जनितं पापं, चित्तेनैव शुद्ध्यति।।

जब भी कीचड़ होती है, पैर छपते हैं, तो पानी से और जब भी कीचड़ धुलेगी, तो पानी से। जो भी पाप होते हैं, वे प्रज्ञा से होते हैं और जो पाप धुलेंगे, वो भी प्रज्ञा से। बन्ध भी हुआ है, तो ज्ञान से, चित्त से और बन्ध छूटेगा भी तो चित्त से। अब तुम रोओ मत, कि मैं इतना पाप तो कर ही चुका। अरे ज्ञानी! जिस मन से तूने पाप किये हैं, उसी मन से तू पुण्य भी कर सकता है। वे अज्ञानी लोग हैं, जो पाप स्वयं करते हैं और क्षमा भगवान् से मांगते हैं। भैया! बच्चे के गाल पर चाँटा मार दिया तूने और हमारे पास आकर कहता है कि महाराज जी! क्षमा कर दो, मैं उसको मार कर आ गया हूँ। अरे ज्ञानी! अज्ञानी! मुझे दर्द हुआ कि उसको हुआ है? यदि तुझे क्षमा माँगना है तो उसी के पैर छुओ जाकरके। ये तो वो ही हो गया कि किसी भी जीव का बध कर दो और किसी नदी/तालाब में स्नान करके आ जाओ, तो पाप धुल जायेंगे क्या?

पाप कर रहे हो आप और भगवान् के चरणों में क्षमा माँगने गये हो। भगवान् से तेरा कभी बैर हुआ ही नहीं है। क्षमा किससे माँगना चाहिये? हे माँ! सासू जी से लड़कर आयी

हो और भगवान् जी को 10 पुंज ज्यादा चढ़ा रही है–'हे प्रभू! आज तो हमसे पाप हो गया, एक श्रीफल और चढ़ाये देती हूँ।' पर हे माँ! विश्वास रखना, एक नहीं तू करोड़ चढ़ा देना, जब तक तू जाकरके उस जीव से क्षमा नहीं माँगेगी, तब तक क्षमा होती नहीं है।

झगड़ा हुआ हो मित्र से और क्षमा मेरे से माँगने आ गया है। कहता है, महाराज जी! क्षमा कर दो, मैंने अपने मित्र से झगड़ा कर लिया । ज्ञानी! जब तुझे ऐसा भाव आया है कि मुझे क्षमा माँगना चहिये, बहुत अच्छा हुआ कि तू मेरे पास आया। पर अब भैया! ऐसा करो, जिससे झगड़ा हुआ है, उससे क्षमा माँग सकते हो। यदि उससे क्षमा माँगने के परिणाम नहीं हैं, तो ज्ञानी! ध्यान रखो, ढंग का धर्म नहीं है, ढोंग चल रहा है।

ज्ञानी! ऐसा कोई पाप नहीं है कि मिट्टी छपने से, पानी से धुल जाये। तन का मैल तो पानी धो पायेगा, पर मन का मैल पानी नहीं धो पायेगा। मन के मैल को धोना है तो जिनवाणी का प्रयोग करना पड़ेगा। तन के मैल के लिये तो पानी है, पर मन के मैल के लिये जिनवाणी है। मन का मैल तभी धुलेगा, जिससे तूने झगड़ा किया है उसके पास जाओ।

ये वो संस्कृति नहीं कि पाप कहीं करो, किसी के साथ करो और नदी में स्नान करके धुल जाये। किसी के गाल पर चाँटा मारके आओ और भगवान् के सामने सिचक्र विधान करा दो। यदि ये धारणा आपकी है, तो कहीं–न–कहीं आप भ्रमित हो। भैया! एक सिचक्र विधान में कितना खर्च आ सकता है? 2 लाख रु० का खर्च करके तू सिचक्र विधान करा देगा, यदि किसी की हिंसा करके आया है, तो विश्वास रखना, तब भी पाप से छूट नहीं पायेगा।

इतनी ताकत जिनवाणी में है। जो 2 लाख के विधान से पाप नहीं छुड़ा पाओगे, वो 2 मिनट में पाप छुड़ा सकते हैं। 2 लाख के विधान के बाद भैया! पता है आपको वो क्या बोलेगा? कि देखो मैंने विधान कर दिया और पूरी समाज को जेवन करा दिया। अरे मुमुक्षु! तुम उस हत्यारे के घर में भोजन करने जा रहे हो तो उसके पाप को आपने और बढ़ावा दिया। ज्ञानी! उसने हिंसा भी की है। घर में बहू, उसका घात कर दिया और फिर धीरे से पंचायत बिठाल करके सिचक्र विधान भी करा दिया, और विधान कराने के उपरान्त सबको खिला भी दिया। अब वो मुस्करा रहा है, कि देखो, मैं कितना ज्ञानी हूँ? उस हिंसक के घर में तुम भोजन भी करके आ गये। उसने दूसरे का मार्ग खोल दिया, बोले किसी का भी घात कर दो और पण्डित जी को बुलाकरके 2 लाख का विधान कराके और 1 लाख का जेवन कराके, पाप मुक्त हो जाओ और समाज की माला भी पहनने को मिलेगी।

ज्ञानी! ये जैनदर्शन की व्यवस्था नहीं है, धर्म की व्यवस्था तो लोगों ने भंग कर दी है। विधान कराने का निषेध मत समझना इसमें। गम्भीर विषय पर चर्चा कर रहे हैं आप। क्योंकि वर्तमान में भूत का पापानुबन्धी पुण्य ऐसा रखा हुआ है कि इस युग में लोगों के पास पैसा बहुत बढ़ रहा है। लेकिन पैसों को देखकर किसी से प्रभावित हो मत जाना, क्योंकि विदेशियों के पास भी पैसा है, परन्तु उनकी थाली में सुबह क्या होता है, वो भी देखना पहले।

ये ध्यान रखना! जो भी राजनेता हैं, वो सम्हलके सुनना। किसी व्यति के पद को देखकर, श्री को देखकर, स्त्री को देखकर, उसकी विभूति को देखकर कभी भी प्रभावित मत होना। क्यों नहीं होना? सीता का हरण किया रावण ने। अशोक वाटिका में बैठी है सीता। हनुमान सीता को सूचना देने पहुँचे। 'वाल्मीकि रामायण' में लिखा हुआ है। उस समय उन्होंने मुद्रिका दिखाई, तो सीता ने कहा, नहीं, ये मेरे स्वामी की पहचान नहीं है। क्यों? अंगूठी तो चुराकर के भी लाई जा सकती है। अंगूठी तो दूसरी बनवाई जा सकती है। ये मेरे स्वामी राम का परिचय नहीं है। आप तो ये बताओ, कि मेरे स्वामी का चाल-चलन कैसा है? वे खाते क्या हैं? तब हनुमान ने कहा कि-श्री राम न माँस सूंघते, न मदिरा पीवते। राम तो भात सेवते हैं, राम तो चावल खाते हैं। 'बराबर, मेरे स्वामी का यही परिचय है।' जिसका आचरण पवित्र है, ज्ञानी! उसी से प्रभावित होना। श्री व स्त्री से कभी प्रभावित नहीं होना, क्योंकि भारत की भूमि ने धन की वन्दना नहीं की है वरन् भारत की भूमि ने धर्म की वन्दना की है।

वैभव को देखकर कभी प्रभावित नहीं होना। छले जाओगे नहीं-तो। माँ! इस युग में सीता से बड़ा कोई निस्पृही जीव नहीं हुआ। जिससे कहा गया था कि स्वर्णपुरी लंका की महारानी का पद लेलो, मन्दोदरी आपकी चरणों की दासी बनके रहेगी। रावण क्या कह रहा था सीता से? हे सीते! तुम मुझे स्वीकार कर लो, आप लंका की पट्-महिषी पद पर अधिष्ठित हो जाओ। सीता ने एक शब्द बोला था, याद है आपको? हे लंकेश 'कुशीलस्य वैभवं केवलं मलम्। साधुजनस्य शीलस्य दरिद्रतापि भूषणम्।' हे लंकेश! कुशील का वैभव तो पुण्य का मल है, परन्तु शीलवंत की दरिद्रता भी आभूषण है। आपकी श्री से प्रभावित नहीं होती हूँ। मेरा शील मेरे पास है। श्री किस काम की? रावण को हाथ जोड़ना पड़ गये।

अहंकार में अवश्य डूबा था, पर विद्वान् था। भीतर से कहता था कि मैंने ठीक नहीं किया। भैया! तुम कितना ही कषाय के वश चिल्ला लो, पर भीतर भाव जो होता है, वो ही होता है। कषायी व्यक्ति भी जब भीतर शान्ति से बैठता है, तो कहता है कि मैंने अच्छा नहीं किया। भीतर जो बोलता है, उसे सुनना सीख लो और जो भीतर का निर्णय लेता है, उसे मानना स्वीकार

कर लो तो आपको जगत् में कोई निर्णायक बनाना नहीं पड़ेगा, किसी का सहयोग नहीं लेना पड़ेगा। जो-जो गिर रहे हैं, उनका भीतर का सत्य ही उपदेश देता है। लेकिन तेरी कषाय मानने ही नहीं दे रही है, इसलिये तू गिर रहा है।

अब मेरा माता-पिता से कहना है। तुम बड़े, कि मन बड़ा? मन बड़ा है। जो अपने मन की नहीं मान रहा है, वो तेरी क्या मानेगा? इसलिये नहीं-मानने वाले के पीछे मत पड़ो। तेरा मन जो मान रहा है, उसे करो। अशुभ करने वाले के पीछे मत पड़ो।

अब यहाँ विभीषण की प्रशंसा करना कि हे विभीषण! आपने अच्छा किया, कि भैया का मन नहीं मान रहा था तो आप उसके मन में पड़करके क्यों पिसते? तुमने अच्छा किया कि तुमने श्रीराम के चरणों में आश्रय ले लिया। ऐसे ही ज्ञानियो! सभी से मेरा कहना है, कि अपने परिवार को समझाने की चेष्ठा तो करना और नहीं माने तो निर्ग्रन्थ मुनि के पास जाकर मुनि बनकरके बैठ जाना, लेकिन दो बेटों के मध्य में पिसना मत।

भरत-बाहुबली के मंत्री/सेनापति बड़े समझदार लोग थे। हे भगवान्! सारे विश्व में यदि किसी को सेनापति/मंत्री मिलें, तो भरत-बाहुबली जैसे मिलें। उन दोनों का तो कुछ बिगड़ने वाला था नहीं। और दोनों.यु करने खड़े हो गये। तब मंत्रियों ने सलाह दी, स्वामी! आप दोनों चरमशरीरी हो, अतः आपका कुछ जाने वाला नहीं है। बहुत अच्छा होगा कि ये प्रजा बेचारी व्यर्थ में क्यों पिसे? सेना क्यों नष्ट हो? आपको अपना बल ही तो देखना है। दोनों आपस में निपट लो। ज्ञानी! न किसी का घात हुआ। दोनों के अहंकार टकरा गये। जब दो पत्थर टकराते हैं तो चिंगारी उत्पन्न होती है और दो अहंकार टकराते हैं तो कषाय उत्पन्न होती है। यही कारण था, जब देखा कि जलयु, दृष्टियु और मल्लयु तीनों में भरत हार गये, सो अपना-सा मुँह लेकर खड़े हो गये।

भरत को बाहुबली ने उठा लिया। अब देखो भीतर की बात 'भैया हैं। बड़े भैया हैं।' कषाय ठण्डी पड़ी तो अब भैया दिखने लगा। 'भैया हैं, जमीन पर कैसे पटकूँ? इसलिये पटकना नहीं है।' खड़ा कर दिया। बाहुबली सोच रहे हैं कि भैया को पटको नहीं। उनकी कषाय मंद पड़ गई। सत्य है, एक जोर आता है कषाय का। भैया! कोई गुस्सा करे, उसे गुस्सा हो ही जाने देना। विश्वास रखना, वो ठण्डा हो जायेगा। जितना तापमान होगा, पारा उतना ही तो ऊपर चढ़ेगा। इसके बाद क्या होगा? नीचे आना ही है। बस, भैया! चिन्ता मत करो। जैसे थर्मामीटर के पारे को आप शान्ति से देखते हो, ऐसे ही कोई गुस्सा भी करे, तो उससे कहना- 'ज्ञाता-दृष्टा स्वरूपोऽहम्'

कोई आपके सामने गुस्सा करे, तो आप धीरे से ध्यान लगाने बैठ जाना 'ज्ञाता-दृष्टा स्वरूपोऽहम्'। वो इतना सुनेगा तो और गुस्सा करेगा। फिर कहना 'ज्ञाता-दृष्टा स्वरूपोऽहम्।' मालूम पहले वो आप पर गुस्सा/क्रोध कर रहा था, अब स्वयं पर करेगा। 'ज्ञाता-दृष्टा स्वरूपोऽहम्' और मालूम क्या बोलेगा? कि 'मैं पागल हूँ क्या? मैं गुस्सा कर रहा हूँ, तब भी तू उत्तर नहीं दे रहा है।' तो वह स्वयं पर गुस्सा करेगा और जैसे ही पारा ठण्डा हुआ, तो शान्त हो गया।

अब उधर भरत का पारा भड़क गया, भाई ने भाई पर चक्र चला दिया। क्यों? भरतेश! क्षायिक सम्यक्त्व कहाँ चला गया? भरतेश! ज्येष्ठत्वपना कहाँ चला गया? भरतेश! विवेक कहाँ खो गया? चक्र कभी कुटुम्ब पर नहीं चलता। धन्य हो जड़ चक्ररत्न, उसने अपनी मर्यादा नहीं तोड़ी और क्षायिक सम्यक्-दृष्टि भरत ने अपनी मर्यादा तोड़ दी। आज भरत भी भगवान् बन गये, बाहुबली भी भगवान् बन गये, पर आज भी भाई-भाई लड़ने का कलंक दोनों नहीं मिटा पाये। मेरे भैया! ऐसा ही आप करना चाहते हो क्या? सत्य बताना, कितने हैं ऐसे लोग जो अपने भैया से कभी नहीं लड़ेंगे?

माँ! आप घर में जाकर आज लड़ोगी क्या? मैं बहुत अच्छे से कह सकता हूँ। मेरे भैया! यदि बेटा नहीं रहा, तो तू बेटों को तो उत्पन्न करने की सामर्थ्य रखता है। दूसरा पुत्र उत्पन्न कर लेगा। पर भैया नहीं रहा, तो तेरे में कोई ताकत नहीं है कि तू भाई को जन्म दे सके। इसलिये मेरे भैया! इतना ध्यान रखना, अपने ज्ञान से कह देना-हे ज्ञान! तू कीचड़ मत कर, कीचड़ को धोने का काम कर। भैया! कुछ भी हो जाये, भूखे सो जाना, भीख माँग लेना, लेकिन जमीन के पीछे भैया से लड़ने मत जाना और भैया लड़ने भी आये, तो पता कर लेना कि क्या चाहिये उसे? आप पहले ही सूचना भेज देना, कि ले लो आप। विश्वास रखना, इतना धैर्य तुम्हारे अन्दर आ गया, तो भैया को भी सम्यक् सोचना पड़ेगा और आपके भीतर भी शौचधर्म का जन्म हो जायेगा। आपको मालूम होना चाहिये कि वो भी तुम्हारी ही माँ का बेटा है। वो कभी-न-कभी ऋजु होगा और आपकी बात को स्वीकार करके आपसे क्षमा माँगने आयेगा। वो न भी आये, तो आपको मालूम होना चाहिये कि जब बेटा शत्रु के रूप में आ सकता है, तो भैया भी शत्रु के रूप में आ सकता है। तब भी तू आनन्द में जीवन जीना, कि बहुत अच्छा हुआ, मेरी अज्ञानता में शत्रु आता, तो मैं विवेकहीन हो जाता। आज मेरे ज्ञान में शत्रु आया है, तो मैं क्षमा माँगता हूँ। हे मेरे भैया! पिछली पर्याय में जो मैंने किया था, उसकी मैं वर्तमान में क्षमा माँगता हूँ।

जब बेटा गलती कर दे किसी के यहाँ जाके, तो पिता खड़ा हो जाता है कि भैया! हम अपने लड़का की तरफ से क्षमा माँग रहे हैं आपसे। ज्ञानी! हमने देखा है ऐसा, तुमने नहीं देखा क्या? यदि क्षमा मांग ले, तो हाथ ही जुड़े और यदि क्षमा नहीं मांगें, तो मेरा बेटा ही चला जाये। तो क्या करते आप? जब अपने पुत्र की गलती पर हाथ जोड़ सकते हो, तो तुम्हारा भाई तुम्हारे सामने शत्रु रूप में भी क्यों न आये, तुम हाथ जोड़ लेना, कहना, भैया! पर के परिणामों पर जब हम क्षमा मांग सकते हैं, तो मेरी वर्तमान की पर्याय ने तो कुछ किया नहीं है। जो मेरी भूत की पर्याय ने बन्ध किया था, सो वर्तमान की पर्याय भोग रही है। इसको मैं भविष्य में नहीं भुगतना चाहता हूँ। इसलिये आप क्षमा कर दो। जो सुख भोग रहे हैं, वो भूत का भोग रहे हैं। जो दुःख भोग रहे हैं, वो भूत का भोग रहे हैं। हे भूतो! सुनो जरा ध्यान से। तुम लोग हँसने लगते हो, जब हम कुछ कहते हैं। भैया! मालूम इन लोगों का क्या लगता है? कि पता नहीं महाराज क्या बोल देते हैं? थोड़ी देर बाद इनकी समझ में आता है।

भैया! यहाँ तेरा कोई है क्या? नहीं है, महाराज। भैया! अगर ये आपको भोजन को ले जाये, तो इनके भोजन का ग्रास लेना और मुख में रख लेना, जीभ पर सीधा और दाँत नहीं हिलाना। फिर बताना कि स्वाद कैसा आ रहा है? भैया! भोजन में तो स्वाद होता है न? और वो मुमुक्षु कह रहा है कि कोई स्वाद नहीं। आज समझ में आया है कि स्वाद किसमें है? जीभ पर रखा है, तब भी स्वाद नहीं आ रहा है।

अरे ज्ञानियो! जैसे मुख में रखा भोजन स्वाद नहीं देता है, ऐसे ही शीघ्र सुना आनन्द नहीं देता। जब तू जीभ चलाता है, दाँत हिलाता है और ग्रास को चबाता है, तो स्वाद आना प्रारम्भ होता है। ऐसे ही सुनने के बाद, तू सोचना प्रारम्भ करता है, तब समझ में आता है कि महाराज ने क्या बोला था। अन्यथा पता नहीं महाराज ने क्या बोल दिया?

भैया! जैसे यहाँ शान्त बैठे रहते हो, वैसे ही घर में बैठने लग जाओ, तो सबके घर स्वर्ग बन जायें। हजारों लोग बैठ जायें, तब भी लोग शांत बैठे हैं। कोई बोलता भी नहीं है। क्यों, आप लोगों को हम अच्छे नहीं लगते क्या? तुम आपस में तो बतियाते हो, मैं बोलना शुरू करूँ तो आप लोग कुछ कहते ही नहीं हैं। कुछ तो है। अब क्या है? जो है, सो है।

'ज्ञानं नाम महारत्नं।' ज्ञानियो! ज्ञान महारत्न है। इसका सही उपयोग करो। रत्न यदि स्वर्ण में जड़ जाये तो कहाँ जायेगा? मस्तक पर लगेगा। और किसी ने उसी रत्न को नूपुरों में लगवाया, विछियों में, तो कहाँ जायेगा? अब तुम्हें क्या समझायें? सब तो समझा दिया।

ऐसे ही ज्ञानियो! ज्ञान यदि चारित्र में लगा, तो तू सिालय में तिलक बनके चमकेगा और यदि तूने ज्ञान को असंयम में लगा दिया, तो पैरों के बिछियों में चमकेगा। ये ज्ञान है। 'रत्न न प्राप्तं कदाचन' जिसने कभी भी प्राप्त नहीं किया, 'संसारे भ्रमता भीमे' ये जीव भयंकर संसार में भटकता है, 'नाना दुःख विधायिनि' अनेक प्रकार के दुःख को प्राप्त होता है। 'अधुना तत्त्वया प्राप्तं' आज तुझे जो प्राप्त हुआ है। युवाओ! आज आपको सम्यक्-ज्ञान प्राप्त हो रहा है, तत्त्वज्ञान प्राप्त हो रहा है। हे भैया! जैसे तुम पैसा कमाके लाते हो, उसके भाग कर लेते हो।

आज का युवा बहुत समझदार है। वो तुरन्त बैंक में डालता है कुछ-न-कुछ भविष्य के लिये। ऐसे ही जो तुम्हारी बुि चल रही है, उसे पूरी विषय-कषाय में मत लगा देना, कुछ सुरक्षित भी रखना, बचत बैंक में डाल देना।

'सम्यक्-दर्शन संयुतं' सम्यक्-दर्शन से युक्त जो सम्यक्-ज्ञान है, उसमें प्रमाद मत करो। 'पुनः कार्षीर्विषयास्वाद-लालसः' इस ज्ञानरूप महारत्न की प्राप्ति करके, विषयसुख की लालसा में इसे नष्ट मत करो। इसको सुरक्षित कर दो।

भैया! सत्य बताना, कैसा लग रहा आपको? यथार्थ मान कर चलना, जो आनन्द ज्ञान में है, वो आनन्द जगत् में कहीं नहीं है। जितने श्रावक यहाँ बैठे हैं, न किसी की इच्छा से बैठे हैं, न पुरस्कार के लिये, न कोई संगीत सुनने आया है यहाँ पर, न कोई अपना तिलक लगवाने आया है। यही कारण है कि बेचारे जहाँ बैठे, बैठे ही हैं। जहाँ खड़े, वहाँ खड़े ही हैं। तब वहाँ लगता है कि हे वर्द्धमान! जब श्रेणिक जैसे लोग सुना करते होंगे, उस समय की अनुभूति कैसी होती होगी? बिल्कुल ठीक कहते हैं।

भरतेश चट्टान पर बैठा भमक-भमक कर रो रहा था। प्रभू का निर्वाण हो गया। सौधर्म इन्द्र पूछता है 'हे चक्रेश! तू क्यों रुदन कर रहा है? क्या प्रभू का निर्वाण तुझे अच्छा नहीं लगा?' हे सौधर्म इन्द्र! कौन कहता है भगवान का निर्वाण अच्छा नहीं लगा? मुझे भगवान के मोक्ष जाने का दुःख नहीं। आप ये भी मत सोचो कि मेरे पिता का मोक्ष हो गया है, इसलिये भी नहीं रो रहा हूँ। 'तो क्यों रो रहे हो?' भरतेश कहता है 'हे सौधर्मेन्द्र! मैं स्वयं तो केवली बन लूँगा, लेकिन तीर्थंकर केवली की वाणी सुनने को नहीं मिलेगी। वो अर्हन्त की वाणी सुनने के राग में मेरे आँख से आँसू टपक रहे हैं। जब भी मन में कोई प्रश्न होता था, मैं दौड़े-दौड़े चला आता था, हे नाथ! ये कैसा है? भगवान् की वाणी सुनने को नहीं मिलेगी।' जब तक पञ्चमकाल की आँख खुली है, छटवें काल की आँख नहीं खुल पाये, तब तक भीतर की आँख खोल लेना। भरतक्षेत्र में पञ्चमकाल की अंतिम श्वास तक ये जिनवाणी सुनने को

मिलेगी। छटवाँ काल आते ही भरतक्षेत्र में जिनवाणी सुनाना, सुनानेवाले, सुननेवाले बंद हो जायेंगे। इसलिये आज पुनः घर-घर में जाना और सबसे कह देना। हे ज्ञानी! सारे जगत की बातें तो हर काल में सुनने को मिलेगी, लेकिन इस युग में, पञ्चमकाल में, मात्र जब तक पञ्चमकाल की अंतिम श्वास है, तभी तक जिनवाणी भरतक्षेत्र में सुनने को मिलेगी। छटवें काल में तो एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को कच्चा खायेगा। छटवाँ काल जब आयेगा तब आयेगा, उसके लक्षण तो वैसे ही दिखने लग गये हैं।

'आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

आत्मा ही सतत् रक्षणीय है।

आत्मानं सततं रक्षेज्ज्ञान – ध्यानतपो – बलैः।
प्रमादिनोऽस्य जीवस्य, शीलरत्नं विलुम्पते ।। 15 ।।

निरंतर ज्ञान, ध्यान एवं तपोबल के द्वारा आत्मा की रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि प्रमादी जीव का शीलरत्न (चारित्र) नष्ट हो जाता है।

।। देशना।।

अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है।

यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी 'सारसमुच्चय' जी ग्रन्थ में जीव के भूतार्थ स्वरूप का बोध कराते हुये समझा रहे हैं।

ज्ञानी! जगत् में जो कुछ शत्रु–मित्र भाव है, वह स्वउपादान है। निमित्त पर है। पर ही पर में परिणमन कर रहा है। स्व का परिणामी पर नहीं है। जिसने आपको अशुभ वचन बोले हैं, उसका मुख स्वतंत्र है, उसके भाव स्वतंत्र हैं, उसके भव स्वतंत्र हैं। उसने आप–भूत होकर अशुभ बोला ही नहीं है, आत्मलीन होकर अशुभ बोला ही नहीं। आपके ज्ञान का हरण नहीं किया उसने, आपके दर्शन का हरण नहीं किया, आपके चारित्र का भी हरण नहीं किया उसने। जिस पुरुष ने आपको पशु बोला है, उसके भाव स्वतंत्र हैं। उसका द्रव्य, गुण, पर्याय स्वतंत्र है। मनोवर्गणायें, वचन वर्गणायें, काय वर्गणायें उसकी आप से स्वतंत्र हैं। उस पुरुष की मनोवर्गणायें आपभूत नहीं। वचन वर्गणायें, काय वर्गणायें भी आप–भूत नहीं हैं। उसके कर्म–नोकर्म स्वतंत्र हैं। उसका भावकर्म भी स्वतंत्र है।

जिसने गाली दी है, उसने मेरे वचनबल को नहीं छीना, कायबल को भी नहीं छीना, मनोबल को भी नहीं छीना है। मतिश्रुत–ज्ञानावरणी कर्म के क्षयोपशम को भी नहीं छीना है। योगी की तत्त्व धारा, चिन्तन धारा, उस पर लक्ष्य करो कि क्या चिन्तन चल रहा है अशुभ करने वाले के प्रति भी, अशुभ बोलने वाले के प्रति भी, अशुभ सोचने वाले के प्रति भी? मेरा कोई शत्रु है, मेरा कोई मित्र है, वह मेरा स्वउपादान है।

स्वउपादान विभाव में जाता है, तो मेरा शत्रु बन जाता है। स्वउपादान स्वभाव में जाता है, तो मेरा मित्र बन जाता है। गाली दी किसी ने, भैया! तेरा चेहरा बिगड़ रहा है। ये जो तेरा

चेहरा बिगड़ रहा है, आप अपने परिणामों को ही प्रभावित किये हो, पुरुष तो दूर खड़ा है। योगभूत परिणामों की रक्षा कैसे करोगे? साधुस्वभाव की रक्षा कैसे करोगे? ज्ञानियो! निहारना ध्यान से।

हे त्यागियो! आपके त्यागी-भेष की रक्षा तो समाज करा रही है। आपको भोजन दे रही है, आपको रहने को भवन दे रही है, ओहो! जितनी व्यवस्थायें अपने पुत्रों को नहीं दे पाती है, उतनी व्यवस्थायें समाज त्यागियों को दे रही है। अपने बेटों को रूखा-सूखा खिला देगा एक श्रावक, लेकिन साधु घर में आता है, तो कुछ विशेष ही बनाता है। इस पर लक्ष्य करो।

घर के पाहुने को सुन्दर भोजन तो कराया जाता है, परन्तु सुन्दर.श्रा नहीं दी जाती है। पर साधु को भोजन ही नहीं कराया जाता है,.श्रा भी दी जाती है। मधुर भोजन तो किसी को भी कराया जाता है, परन्तु मधुर आस्था के साथ मधुर आहार किसी को नहीं कराया जाता है। एकमात्र दिगम्बर मुनि, त्यागी-व्रतियों को कराया जाता है। विषय को बहुत गम्भीरता में समझना।

हे साधक! तेरे तन की रक्षा के लिये पूरी समाज खड़ी हुयी है, एकजुट। रात्रि के 10 बजे रहे थे, मैं तो कमरे में माला फेर रहा था और ये युवा कमरे के बाहर एक-एक छेद को बन्द कर रहे थे, खिड़की पैक कर रहे थे। शीत की बाधा मेरे गुरु को न लग जाये, सो ये युवा एक-एक छेद बन्द कर रहे थे। मौसम की ठण्डी से ये युवा नहीं बचा पायेंगे, हे योगी! तुझे ही बचके रहना पड़ेगा।

परिणामों की जो शीतल धारा बह रही है अशुभ की, परिणामों में जो ऊष्ण धारा बह रही है अशुभ की, उसकी खिड़की कोई दूसरा बंद नहीं करेगा, उसकी खिड़की स्वयं तुझे ही बंद करनी पड़ेगी। तन की सेवा के लिये समाज है तन असुरक्षित नहीं होने देंगे। यदि वर्तमान में साधु विहार भी कर रहा है। उस समय योगी को निहारना है।

हे ज्ञानी! देह की व्यवस्था के लिये दुनिया बाहर दिखेगी लेकिन भावों की व्यवस्था भगवान् भी नहीं करायेंगे। भावों की व्यवस्था तुझे ही करनी पड़ेगी, स्वयं ही करनी पड़ेगी। अर्हन्तदेव ने तुझे मार्ग बताया है। अर्हन्तदेव ने दिग्दर्शन दिया है। पर अर्हन्तदेव किसी के साथ चलते नहीं हैं। भगवान् ने मार्ग दिखाया है, मार्ग बताया है, पर मार्ग पर चलते नहीं हैं। वो मार्गातीत हो चुके हैं।

मोक्षमार्ग भगवान् के लिये नहीं है। भगवान् के तो मोक्षमार्ग का भी अभाव हो चुका है। भव्यत्व-गुण का अभाव हो चुका है। सिों के भव्यत्व गुण का भी अभाव हो चुका है। भगवान् के तो मोक्षमार्ग पर चलने का भी अभाव हो चुका है। अर्हन्तदेव भी (स्नातक मुनि) भावमोक्ष की दृष्टि से, उनका भी मोक्षमार्ग का भी अभाव हो चुका है। द्रव्यमोक्ष की दृष्टि से अभी मोक्षमार्ग अवशेष है। सर्वज्ञ, श्री जिनदेव मोक्षमार्ग में विराज करके, मुझे तत्त्व का उपदेश तो दे रहे हैं कि हे ज्ञानी! तेरा परिणमन ऐसा होना चाहिए लेकिन उस परिणमन के परिणामी बनकर वे नहीं आयेंगे, उस परिणमन का परिणामी तुझे ही बनना होगा।

भावों की रक्षा कौन करेगा? श्रावको! जब भी किसी योगी को चर्या कराते हो, जब भी वन्दना करते हो, तो हे ज्ञानी! कभी भक्त बन जाया करो, तो कभी जनक-जननी भी बन जाया करो। जैसे माँ-बेटे को पुचकार-पुचकार कर भोजन कराती है और साथ में इतना हल्की मुस्कराहट की आवाज में डाँट भी देती है, बेटे! अब बस। भोजन कर लिया, अब पढ़ाई करो।

ऐसे ही श्रावको! आपने निर्ग्रन्थों को चर्या करायी है। अब भक्ति की डाँट कैसी है? अब सुनो। हे स्वामी! धन्य, मेरे अहोभाग्य है कि मैंने आपको, उत्तम पात्र को अपने हाथ से ग्रास दिया है। हे नाथ! अब मेरा कर्तव्य पूरा हो गया। अब मेरा धान्य आपकी साधना का साधन बने। आप सामायिक करो, स्वाध्याय करो। जैसे माँ ने खिला-पिलाकर बोल दिया था कि हे बेटे! पढ़ाई करो, ऐसे-ही कुन्दकुन्द स्वामी जी ने 'रयणसार' जी में लिखा है, कि श्रावक साधु के लिये उस माँ के समान होता है, जिस माँ के गर्भ में शिशु है। गर्भवती माँ अपने उदरस्थ शिशु का कितना ध्यान रखती है? एक-एक कदम सम्हालकर चलती है। स्वयं का भोजन भी विवेक से करती है कि कहीं मेरे उदरस्थ बेटे को कष्ट न हो जाये। ऐसे ही श्रावक योगियों का उतना ही ख्याल रखते हैं कि कहीं मेरे जिनवाणी के लाल को कष्ट न हो जाये। ये तो शरीर का ध्यान है। पर जैसे श्रावक साधु के शरीर का ध्यान रखते हैं, ऐसे ही ज्ञानी! योगी परिणामों में अशुभ की शीत न लग जाये। उन परिणामों को कैसे सम्हालेंगे?

गाली देने वाला भिन्न है। युवाओ! ये विषय स्वयं पर भी लागू करना। आप तुरन्त लड़ने को खड़े हो जाते और चार मित्रों को बुला लाये-'कौन हैं? आओ, मेरे से बात करो।' अरे ज्ञानी! जितने में तूने स्वयं के परिणाम खराब किये और दूसरे के परिणाम खराब किये, इतने में तू मित्रता कर लेता, तो झगड़ा होता ही क्यों? समझो ध्यान से। विषय की गम्भीरता देखो। भैया! पत्थर की बात पत्थर से करना, ये तो दुनियाँ ने सिखाया है। पत्थर मारने वाले को भी आशीर्वाद देना, ये जिनदेव ने सिखाया है। ईंट का जवाब पत्थर से देना, ये हमारे अर्हन्त

का उपदेश नहीं है। ईंट का उत्तर पत्थर से देना, ये निर्ग्रन्थ का भी धर्म नहीं है। ईंट/पत्थर फेंकने वाले को भी आशीष देना, ये दिगम्बर का धर्म है। तूने ईंट मारी है, पत्थर मारा है, ये ज्ञानी! तेरे अविवेक की देन है, तब भी मैं तुझे आशीर्वाद दूँगा।

जिसे तूने पत्थर मारा, अग्नि लगाई थी, सिगड़ी जलाई थी, उसी के चरणों में तुझे सम्यग्दर्शन भी होता है। जो श्यालनी शरीर को भख रही थी, वो ही श्यालनी सम्यक् को प्राप्त हो गई। जिस कपिल ने गुरुदत्त स्वामी पर उपसर्ग किया था, गुरुदत्त स्वामी को कैवल्य हुआ, वही कपिल गुरुदत्त स्वामी के चरणों में सम्यक् को प्राप्त हो गया। जिस श्रेणिक ने यशोधर मुनि के ऊपर मृतक नाग छोड़ा था, वही श्रेणिक राजा उन्हीं मुनिराज यशोधर के चरणों में सम्यक् को प्राप्त हुआ था। यदि मुनिराज कुपित हो जाते, तो सम्यक् को प्राप्त होता क्या? कि कषायों को प्राप्त होता? भैया! सुन, तेरे हाथ में मिट्टी छपी हुई है और नल की टोंटी खोलेगा, तो नल तुझे क्या देगा? भले ही तू कितनी मिट्टी छपाये रखना और नल की टोंटी को भी मार देना, टोंटी गंदी भी हो जाये, लेकिन तब भी पानी निकलेगा हाथ साफ करने के लिये। बस, जैसे नल की टोंटी, पानी का घट, कितना ही मल छपा देना उसके ऊपर, फिर भी वह तुझे हाथ धोने को ही पानी देगा, पीने को तो पानी देगा ही, ऐसे ही निर्ग्रन्थ तपोधन वे ही कहलाते हैं, दुनियाँ पत्थर भी फेंके, तब भी वे उन्हें साम्यभाव का पानी देते हैं। ये निर्ग्रन्थों का धर्म है। इस निर्ग्रन्थों के धर्म को निर्ग्रन्थ का धर्म रहने देना। अपने आवेश में आकरके निर्ग्रन्थों को सलाह कभी मत देना।

हे महाराज! उन्होंने आपके बारे में ऐसा कह दिया है, आपको उत्तर देना चाहिये। नहीं ज्ञानी! मटके के ऊपर कितनी ही गंदगी फेंको, वह पानी ही देता है, पत्थर कभी नहीं मारता किसी को। ऐसे ही वीतराग तपोधन, कालिये नाग जिनके गले में डाला गया हो, तब भी चेलिनी ने नमस्कार किया, श्रेणिक ने नमस्कार किया, फिर भी आशीर्वाद बराबर दोनों को दिया।

दिगम्बरत्व की रक्षा तभी सम्भव है, जब दिगम्बर मुनि के परिणामों की रक्षा होती रहे। यदि दिगम्बर योगी के परिणामों की रक्षा तुम नहीं करा सके, तो ज्ञानी! भेष दिखेगा, दिगम्बरत्व नष्ट हो जायेगा। जब भी किसी योगी पर उपसर्ग आये, उनके उपसर्ग को दूर करने तो चले जाना, पर उनके भावों पर उपसर्ग मत करना। जिसने पत्थर फेंककर मार दिया है, उसने शरीर पर उपसर्ग किया है। और तूने जाकर पूछ लिया कि महाराज! बताओ तो वह कौन आदमी था? आपको बताना ही पड़ेगा। स्वामी! बताओ? यदि आपने उनसे बलात् पूछने की चेष्ठा की है, तो आपने उनके भावों पर उपसर्ग किया है।

पूछकर क्या करोगे? सामनेवाले को फाँसी पर चढ़वाओगे क्या? हे ज्ञानी! मुनिधर्म कहाँ बचा? जिस जीव को कभी मुनि बनने के परिणाम हों, आज की बात को बड़े ध्यान से सुनना। विवेक से सुनना, ये मोक्षमार्ग है। इसमें से सूत्र मत लगाना, कि किसी के उपद्रव को सहना हिंसा है। ये व्यवहार की बातें हैं, लोक की बातें हैं।

बाहर का पुरुष जो भी कष्ट देगा, वह शरीर को ही दे पायेगा। लेकिन भीतर कोई कष्ट देने वाला है, वह बाहर का पुरुष नहीं है, वह तेरे भीतर का पुरुष स्वयं की आत्मा है, वही कष्ट देती है। यदि किसी ने आपको अशुभ वचन का प्रयोग किया है और आप उसको भीतर नहीं ले जाना चाहते हो, तो स्वयं आप भीतर लेकर जा रहे हो, तभी कष्ट आपको अनुभव में आयेगा।

मेरा मित्र मेरा उपादान है। मेरा शत्रु मेरा उपादान है। उपादान मैंने पवित्र रखा है तो बाहर का शत्रु मेरा कुछ नहीं कर पायेगा। उपादान मैंने विऔत किया है, तो बाहर का मित्र कुछ नहीं कर पायेगा। समझ में आ रहा है? अशुभ बोलने वाला तेरे से भिन्न है। भिन्न को देखकरके आप विकल्प क्यों कर रहे हो? उपादान दृष्टि। स्वभाव को उज्जवल रखना है, तो उपादान को ही सम्हालना पड़ेगा। परिणामों को पवित्र रखना है, तो उपादान को ही सम्हालना पड़ेगा। निमित्तों को सम्हालने जाओगे, लेकिन निमित्त नहीं सम्हाल पाओगे, ज्ञानी! उपादान को ही सम्हालना होगा।

और हे ज्ञानी! जब तू गाली सुनकर कुपित नहीं हो रहा है, तो वह तेरे लिये निमित्त होकर भी निमित्त नहीं था। और पर की गाली सुनकरके तू खेद को प्राप्त हो रहा, तो तूने अपने उपादान के लिये उसको निमित्त बनाया है। निहारो तटस्थ भाव से। ज्ञानी! जिस दृष्टि की व्याख्या है, उसको पकड़ना है। अभी हम उनको मुनि बनाकर बोल रहे हैं। तीर्थंकरप्रऔति के लिये सोलहकारण भावना निमित्त है।

ज्ञानी! जिसे तू निमित्त कह रहा है, वह उपादान ही है। किंचित् भी हिलना नहीं, कठिन हो रहा है, तो हो जाने दो। विषय स्पष्ट हो जाये तो अनेक भवों की कालिमा नष्ट हो जायेगी। आपने बढ़िया प्रश्न किया। भैया! इनका प्रश्न सुनो। इनके मन में भाव आया, कि उपादान को सँभाल लीजिये, निमित्तों पर मत जाइये, क्योंकि निमित्तों का नाश तुम नहीं कर पाओगे, उपादान ही सम्हाल पाओगे। क्यों? टीकमगढ़ में तूफान आया, बेटा दौड़ कर आया, बोला, माँ! बहुत तूफान आ रहा है। तो हे माँ! तू तूफान को बन्द करने छत पर जायेगी, कि अपने चूल्हे को ढक देगी? क्यों माँ! घर बचाना है, तो जो आग जल रही थी, उस पर राख रख दो, चूल्हे को ढक दो। तेरी ताकत चूल्हे को ढकने की ही है, तू तूफान को बन्द नहीं कर पायेगी।

हे ज्ञानियो! बाहर के अनन्तानंत निमित्त हैं। उन निमित्तों को नष्ट करने के लिए जाओगे क्या? जो निमित्तों का नाश करके योगी बनना चाहता है, तो उससे बड़ा हिंसक जगत् में कोई दूसरा नहीं होगा। क्योंकि आपके मन में भाव आया, कि मैं मुनि बनूँ, उसकी पत्नी कहती है कि आपको मुनि बनने का शौक था, तो मुझे लेने क्यों गये? तो इसके मन में भाव आ गया कि ये ऊपर चली जाती तो मैं मुनि बन जाता। हे अभागे! एक पञ्चेन्द्रिय जीव को मारने के तू भाव कर रहा है, परिणाम कर रहा है। तू वैरागी है, तो घर से धीरे से निकल जा। उसके भाग्य में जो होगा, सो होगा। और तू यों कहे कि मेरी पत्नि मेरे निमित्त से रोयेगी, तो हे ज्ञानी! वो तेरे निमित्त से नहीं रो रही है, वो अपने राग के निमित्त से रो रही है। तू उसके राग का निमित्त अवश्य है, पर तू उसका निमित्त नहीं है। यदि वो रोते-रोते ऊपर भी चली गयी, तब भी तू हिंसक नहीं होगा। क्योंकि वो तेरे कारण ऊपर नहीं गई, वो अपने राग के कारण ऊपर गयी है।

पर के दु:खी होने से मेरे में कर्म बंधने लग गये, तो मैं तो कभी अहिंसक ही नहीं हो पाऊँगा। पर के सुखी होने से मेरे भी कर्म बंधने लग गये, तो मैं तो कभी कर्मातीत नहीं हो पाऊँगा। जिस नगर में जाता हूँ, उस नगर के लोग मुस्कराते हैं और जहाँ से विहार करते हैं,वहाँ के लोग रोते हैं। तब मुझे तो रोज कषाय का बंध होगा? ज्ञानी! किसी के सुखी होने से बंध नहीं होता, किसी के दु:खी होने से बन्ध नहीं होता है। निमित्तों को बन्ध होने लग गया तो ज्ञानी! मेरे उपादान का क्या होगा?

मालूम आप लोग क्या सुन रहे हो? बता दूँ क्या सुन रहे हो? भैया! 'सारसमुच्चय' अवश्य चल रहा है, पर जो सम्प्रति में चर्चा चल रही है, वह 'अष्टसहस्री' ग्रन्थ की चर्चा चल रही है। 'देवागम स्तोत्र' की चर्चा चल रही है।

जिससे मैं सुखी होऊँ, जो मेरे से सुखी हो, उसे शुभाशुभ बंध हो, तो ध्यान दो, अचेतन को भी शुभाशुभ का बंध होगा। जिसके निमित्त से मुझे कष्ट होता है, उसे कर्म का बंध होगा कि नहीं? हे ज्ञानी! मुझे कष्ट होता है जिसके निमित्त से, यदि उसे बंध होने लग गया, तो मुझे काँटा चुभता है, कष्ट होता है, तो काँटे को भी बंध होना चाहिये और जिससे मुझे सुख होता है, उसे पुण्यबंध होना चाहिये। दूध पीता हूँ, लड्डू खाता हूँ, पेड़ा खाता हूँ, उस समय लड्डू-पेड़े को पुण्य बंध होना चाहिये। इसलिये एकांत से, जिन निमित्तों से तुम्हें कष्ट होता है, उन्हें बंध हो, यह कोई नियम नहीं है।

यदि भैया दीक्षा आज ले लेता है, उसकी पत्नी को यथार्थ में कष्ट होगा, क्योंकि मेरा पति चला गया है। इसकी माँ को भी कष्ट होगा, इसके पिता को भी कष्ट होगा कि मेरा

कमाऊँती पूत चला गया है। लेकिन, भैया! विश्वास रखना, ये परिवार वाले कितने ही रोते रहें, तब भी तुझे कर्म का बंध नहीं होगा। क्योंकि आप उसको कष्ट देने के लिये मुनि नहीं बन रहे हो, अपने कर्म-नाश के लिये मुनि बन रहे हो। यह लक्ष्य बताइये। यदि कर्म-नाश के लिये मुनि बन रहे हो, तब तो तुझे कर्म का बंध नहीं होगा। लेकिन पिता को दु:खी करने के लिये मुनि बन रहे हो, तो नियम से तू बंधक ही होगा।

यदि कोई यूँ कहे, महाराज! 15 दिन हो गये, आप मेरे यहाँ आहार लेने नहीं पधारे, हम लोग कितने कष्ट में हैं? आपको बिल्कुल दया नहीं है। क्या आपको बंध नहीं होगा? हे ज्ञानियो! विश्वास रखो, किंचित भी बंध नहीं होगा। क्योंकि मैं आपको दु:ख देने के लिये नहीं आ पा रहा हूँ, ऐसा नहीं है। ज्ञानी! एक साधु एक दिन में एक घर में जायेगा, हजारों घर में कैसे पहुँचेगा? आप जो दु:खी हो रहे हो, मालूम हमारे आने या न आने से दु:खी नहीं हो रहे हो, अपनी लोभ-कषाय से दु:खी हो रहे हो। तुम सब शुभ भोजन करो और लोभ-कषाय को छोड़ दो, तो दु:खी क्यों होगे? बोले, मैं तो भोजन करवाता हूँ, मैं उपवास नहीं करता हूँ। साधु आ जायेगा, तो आहार दूँगा, अन्यथा अनुमोदना तो कर ही रहा हूँ। (जैनदर्शन की हर क्रिया को समझने के लिये न्याय का ज्ञान होना अनिवार्य है।) और स्वयं को कष्ट देने से स्वयं को कष्ट होगा कि नहीं होगा? एक-एक विषय को स्पष्ट करो। माताओ! ध्यान दो। ये ऐसे विषय हैं, आप चिन्तन भी करोगे तो कहोगे कि समझ में नहीं आये। इन युवाओं से पूछो, ठण्डी लग रही कि नहीं? ये बेचारों की पहली साल है, और ये ठिठुर रहे हैं, फिर भी मुस्करा रहे हैं। क्यों? ज्ञानियो! और ये श्रावक बाल खींचे तो इनको फोड़ा हो जाये। ओ बाप रे! क्या हो गया? और ये योगी अपने हाथ से खींच रहे हैं, इनको कष्ट हो रहा कि नहीं? यथार्थ बोलिये। ज्ञानियो! जो यों कर रहा है कि कष्ट नहीं हो रहा है, वह घोर अज्ञानी है। बाल खींचे और कष्ट न हो? अब सुनिये, आगे हम सब समझते हैं। यदि कष्ट नहीं होता तो, हम सब जड़ हो गये क्या? अचेतन हो गये क्या? संवेदना होगी कि नहीं होगी?

हे ज्ञानी! कष्ट होने से बंध नहीं होता, पीड़ा होने से बंध नहीं होता, दु:ख होने से बंध नहीं होता, दु:खी होने से बन्ध होता है। कष्ट होने से बंध होने लग गया, तो आपको मैंने देखा है, एक दिन 12 बजे रहे थे और पंचकल्याणक में देर हो रही थी, गर्मी के मौसम में हपा रहे थे। बोले, 'महाराज! विलात देर हो गयी, पानी नहीं मिला अभी तक।' कष्ट तो हो रहा था, फिर भी मुस्करा रहा था। मुस्करा क्यों रहा था? मैं अर्हन्त की प्रतिज्ञा करा रहा हूँ, जब तक मैं पूरा नहीं कर लूँगा, तब तक पानी भी नहीं पीऊँगा। दीक्षाकल्याणक के दिन

इसने उपवास कर लिया। पूरी मेहनत करते रहे। मैंने कहा–'पण्डित जी! भोजन?' बोले, 3 दिन से नहीं किया। मैंने तनिक गर्म होकरके ऊपरी–ऊपरी कहा, 'अरे! नहीं करवाना प्रतिष्ठा। पहले भोजन करके आओ।'

जिस दिन आप उपवास करते हो, उस दिन भोजन के समय पर भोजन की याद आती कि नहीं आती? सच–सच बताना, झूठी बातें नहीं बोलना यहाँ पर। क्योंकि झूठे वैरागी पसन्द नहीं मुझे यहाँ पर। जो लोग ये कहते कि हमें तो इच्छा ही नहीं रहती, ये असत्य है। जब तुम्हें इच्छा नहीं रहती, तो तुम्हारा उपवास भी नहीं है। ज्ञानी! आज समझो धर्म को। इच्छा नहीं है, तो तुम्हारा उपवास भी नहीं है। तुमको बादी है बादी। एक दिन अच्छा मस्त खाया होगा, इसलिये इच्छा नहीं हो रही है। अजीर्ण को ठीक करने के लिये उपवास किया तूने।

जिसने 250 ग्राम बादाम का हलुवा खाया हो, दूसरे दिन क्या खायेगा? अब भोजन की इच्छा हो, और असातावेदनीय ही उदीरणा चल रही हो, तब भी भोजन का त्याग किया है। इच्छा होने पर भी इच्छा का त्याग करके, दमन करके बैठा है। इच्छा दमन का नाम उपवास है।

यदि इन्द्रिय–निरोध नहीं, तो संयम किस बात का? भली वो नहीं है। जिस ओर हवा चल रही है, उसी ओर साईकिल चला रहा है और कह रहा कि मैं कितनी रफ्तार से साइकिल चला लेता हूँ। ज्ञानी! उल्टी चलाके दिखा पहले, तब कहलाया तू भुजबली। 80 वर्ष का हो गया, सारी इन्द्रियाँ शिथिल हो गयीं और कहता है कि महाराज श्री! मैंने चना चबाने का त्याग कर दिया है। अरे ज्ञानी! सत्तू खाने का त्याग कहाँ किया तूने?

भैया! ध्रुव सत्य समझना। संयम के मार्ग पर आने के बाद भी जो भेद–विज्ञान नहीं समझ पाये और भीतर में कषाय में भरे बैठे रहे, ऊपर से कहते हैं कि हमें कौन इच्छा होती अब? नहीं, इसका नाम संयम नहीं है।

इच्छा के आने पर भी इच्छित कार्य नहीं करना, इसका नाम संयम है। नहीं तो मैं तुमसे पूछ लेता हूँ, अपने युवा तो बहुत सारे हैं युवको! टीकमगढ़ में ऐसा कौन–सा समझदार, विवेकी, ज्ञानी बालक है जो खड़ी गाड़ी में भी ब्रेक लगाता है? आगम की भाषा तो अब समझ में आयेगी। हे ज्ञानी! जब भी ब्रेक लगाये जाते हैं, जब अच्छी मस्त रफ्तार में गाड़ी चल रही हो, तभी बीच में कोई आवश्यकता पड़े तो ब्रेक लगाये जाते हैं। ऐसे ही युवावस्था की रफ्तार चल रही हो, और विषय–कषायों की तीव्रता चल रही हो, ऐसे काल में ब्रेक लगा देना, इसका नाम ही संयम है।

जयवंत हों तीर्थंकर महावीर स्वामी। 30 वर्ष की भरी जवानी में राज्य-पद छोड़ कर चले गये। इसलिये इच्छा के होने पर इच्छित कार्य नहीं करना, इसका नाम संयम है।

ज्ञानी! जिन निमित्तों से कष्ट होता है, यदि उन निमित्तों को बंध होता है, तो अचेतन को बंध होगा। जिन निमित्तों से सुख होता है तो उन निमित्तों को बंध होगा। तो ज्ञानी! दूध-दही, घी-मलाई, इनसे आपके सुख होता तो इनको भी बंध होगा? यदि स्वयं को कष्ट देने से बंध होता है, तो वीतरागी मुनियों को भी बंध होगा, क्योंकि वे स्वयं ही 'कायक्लेश' नाम का तप करते हैं। और कायक्लेश का तात्पर्य होता है कष्ट देना।

ये शीत की बाधा सहन कर रहे कि नहीं? देखो, आप लोग कितने सारे वस्त्र धारण किये हो? भैया! देखो, इनमें.वृ साधु भी हैं, युवा साधु भी हैं। सब अपने बैठे हैं। जिसका योग में उपयोग है, वह योगी नहीं। जिसका उपयोग में उपयोग है, उसका नाम योगी है। योग को सम्हाला जाता है, उपयोग को लगाया जाता है। योग सम्हाल भी लिया और उपयोग नहीं लगा, तो बगुला बक्रवृत्ति। अहो! उज्जवल वर्ण गरीब गति एक टांग मुख ध्यान, लगत भगत-बत्, निपट कपट की खान।

वो बगुला तालाब में बैठा होता है। एक टांग से भी खड़ा हो जाता है। सफेद वर्ण है उसका। ऐसे ध्यान कर रहा है, जैसे कोई योगी हो। और जैसे ही नीचे मछली आई, पकड़ लिया। ऐसे ही हे ज्ञानियो! मायाचारी, वक्रवृत्ति की साधना मत करना, बाहर में साधु दिखे और भीतर में स्वादु।

भैया! बंध, मोक्ष किसमें है? इसका निर्णय कैसे करें?

विशुसिंक्लेशाङ्गं चेत् स्वपरस्थं सुखासुखम्।
पुण्यपापास्रवो युक्तौ न चेद्वयर्थस्तवार्हतः ।। 95 आ.मी.।।

भैया! पुण्य-पाप बंध का कारण नहीं है। पुण्योदय में भी आप बैठे हो, उससे भी बंध नहीं होता। पापोदय में बैठे हो, उससे बंध नहीं हुआ। इस सभा में कोई दुःखी है, अभी-अभी। कोई है, इसका तात्पर्य क्या हुआ? साता का उदय चल रहा है आपका, कोई बंध हुआ? किसी जीव को तीव्र पीड़ा शरीर में चल रही है, पापोदय है कि नहीं? उसको बंध होगा? कोई बंध नहीं। यदि पुण्योदय से बंध हुआ, तो प्रवल पुण्यात्मा जीव, जो समवसरण में बैठा है अर्हन्त, उसको साता-ही-साता का उदय चल रहा है क्या? असाता का भी है थोड़ा। 'एकादश जिने'।(2/11।। त.सू)। ग्यारह परीषह जिनके होते हैं, और परीषह असाता में होते हैं, साता में नहीं होते। साता के उदय से पुण्यास्रव, ऐसी व्याख्या कर मत देना। यदि साता

के उदय से पुण्यास्रव होता हो और असाता के उदय से पापास्रव होता हो, तो मालूम क्या होगा?

जिस समय रावण इन्द्रियसुख भोग रहा था, उस समय उसके साता का उदय था कि असाता का? साता का। तो उसको पुण्य उदय होगा कि पापोदय? पुण्यास्रव होगा कि पापास्रव? हे ज्ञानियो! साता के भोग में लिप्त हुआ प्राणी तीव्र असाता का आस्रव करता है। और असाता के भोग में भी समता रखता है तो तीव्र साता का आस्रव करता है।

समन्तभद्र स्वामी कह रहे हैं कि साता भी बंध का कारण नहीं, असाता भी बंध का कारण नहीं। तो बंध का कारण क्या है? आस्रव का कारण क्या?

'विशुद्धि संक्लेशाङ्गं चेत्।' अशुभ कर्म के काल में भी विशुद्धि है तो मोक्ष ही होगा। और शुभोदय के काल में भी संक्शलेता है तो अशुभ का ही आस्रव होगा। अपने आप को बहुत बड़ा त्यागी, व्रती, सम्राट घोषित करे, इस बात में फूले मत समाना कि अब तो मेरा कुछ नहीं होगा। आप तो भूत के परिणाम भोग रहे हो। वर्तमान के परिणाम क्या हैं, ये भविष्य बतायेगा। किसान कितना ही छुप कर बीज बोये, कुछ दिन रुक जाओ, जब खेत में बालें आयें, तो अपने-आप सबकुछ मालूम चल जायेगा, कि क्या बोया था?

कोई भी साधक कितनी ही साधना कर रहा हो अथवा न भी कर रहा हो, टेंशन अपने को लेने का नहीं। जिस दिन समाधि का दिन आयेगा, उस दिन मैं सब समझ जाऊँगा कि आपकी साधना क्या थी? जिस जीव ने अशुभ बंध कर लिया है, वह जीवन भर तो धर्म करेगा, परन्तु मृत्यु के समय में धर्म से शून्य हो जायेगा और आयुबंध में अच्छे प्रशस्त परिणाम किये हैं तो वो मृत्यु का समय आयेगा तब पापकार्य छोड़ देगा और धर्म में लग जायेगा। ये नियम है।

समाधि का दिन बताता है कि जीवन क्या था? कभी-कभी वृक्ष सुन्दर दिखते हैं, पर फसल अच्छी नहीं आती। ऐसा होता है कि नहीं? होता है। ऐसे ही साधना का वृक्ष तो बड़ा सुन्दर लग रहा था, पर भीतर घुन लग चुका था। गेंहूँ का दाना बहुत सुन्दर लगता है, खोखला दाना भी चमकता है, पर सुन्दर दाना मत देखो, चमक मत देखो, वजन को देखो। आज दुनियाँ चमक को देख रही है, वजन को नहीं देख रही है। दाने में वजन कितना बचा है? चमक तो बराबर बची है, वजन गया है। यानि कहीं-न-कहीं कीड़ा लगा हुआ है। मुमुक्षुओ! उपादान सम्हालो। मैं बार-बार कह रहा हूँ, उपादान सम्हालो। हाँ, शुभ में गतिबंध बांध लिया, तब भी जीवन में अशुभ हो जाता है। अब इस जीव ने आयुबंध शुभ में किया था और बीच में

अशुभ में चला गया और मरने का समय आते–आते पुनः धर्म में आ जायेगा। नियम से आयेगा। हाँ–हाँ, लोग यही कहेंगे कि कैसा आदमी है? लेकिन हमें लोगों को नहीं देखना है, हमें आगम को देखना है। लोग अशुभ को भी नहीं पकड़ पाते हैं और न शुभ को पकड़ पाते हैं। लोगों की आँखें सत्य कभी पकड़ना नहीं जानती हैं। ये जो भी देखेगा, अपनी क्षमता से देखेगा। जरूरी नहीं कि सत्य देख लिया। आप जो देख रहे हो, चाहे साधु को देखो, चाहे असाधु को, आप जो भी देख रहे हो, पर्याय का धर्म देख पाते हो, परिणामों का धर्म नहीं देख पाते हो।

हे ज्ञानियो! तुम जो भी धर्म की परीक्षा कर रहे हो, धर्मात्मा की परीक्षा कर रहे हो, तुम सब पर्याय के धर्म की परीक्षा कर पाओगे, परिणामों के धर्म की परीक्षा नहीं कर पाओगे। सब पर्याय के धर्म को देख रहे हो। आप मुझे प्रतिष्ठाचार्य दिख रहे हो, कहाँ से जानूँ कि आप प्रतिष्ठाचार्य हो? लाल पगड़ी बंध रही है, अच्छा ऊँचा आदमी बैठा है, धोती–दुपट्टा पहने हुये है। हाँ, प्रतिष्ठाचार्य है। ऐसे ही दूसरे को बिठाल दो पगड़ी पहनाके, मैं तो उसे भी कहूँगा प्रतिष्ठाचार्य। क्योंकि भेष तो है। पर हे ज्ञानी! बोध तभी होगा, जब तू क्रिया कराते मिलेगा।

लोक में जितना धर्म दिख रहा है, वह पर्यायों का धर्म दिख रहा है। परिणामों का ध र्म तो वही जानता है, जो करता है। कभी–कभी अशुभ करते दिख जाये, तब भी अशुभ नहीं होता है। और जो इस विषय को नहीं जानते, उन लोगों ने धर्म का नाश कर दिया। कोई व्यक्ति स्वाध्याय करता है, और ये पढ़ा था, कि दिगम्बर तपोधन वनस्पति का स्पर्श भी नहीं करते और उसके ऊपर भी नहीं चलते, दूर होकर चलते हैं। ऐसे भावलिंगी वीतरागी तपोधन की वंदना हो। पर एक मुनिराज विहार करते आ रहे थे। ये आगवानी करने पहुँचा। क्योंकि शास्त्र पढ़कर, गद्गद् भाव से गया था। पर आगम पढ़ा था अनुभवशून्य होके। मुनिराज आ रहे थे। क्या विचित्र घटना घटी? भैया! कभी–कभी आप गाड़ी तो चलाते हो, सामने–सामने कई बार बैल आ जाता है, तो उसको बचाने के चक्कर में स्वयं तुम गिर जाते हो। ऐसा होता कि नहीं? और कभी–कभी ऐसा होता है कि एक को बचाने के चक्कर में दूसरे को ठोकर लग जाती है। कई ऐसे भी जीव होते हैं, जो दूसरे को लगने पर चल जाते हैं और कई स्वयं उठाकर ले जाते हैं और उपचार कराते हैं।

ये पढ़कर गया कि वनस्पति पर पैर नहीं रखते। अब हुआ ये कि जहाँ मुनिराज विहार करके आ रहे थे और ये आगवानी करने गया था। अचानक जैसे ही उनने पैर रखा और पैर

के सामने उचक कर झींगुर आ गया और जैसे ही झींगुर आया और पैर उठ गया, फिसल कर पैर घास पर आ गया। इसने पीछे से मुँह मोड़ा और घर की ओर आ गया और हल्ला कर दिया, ये मुनिराज सच्चे नहीं हैं। क्यों? वो तो घास पर पैर रखे थे।

हे ज्ञानी! तूने आँखों से तो देख लिया था कि घास पर पैर रख गया, भावों को और देख लेता, तो शायद उनको भगवान् मान कर वहीं नमोऽस्तु करता। चार-इन्द्रिय जीव की रक्षा में एक-इन्द्रिय पर पैर पड़ गया। उसकी तो रक्षा उन्होंने की ही, और घास पर जो पैर पड़ा था, उसका भी प्रायश्चित्त किया।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

नरक-पतन के कारण

शीलरत्नं हतं यस्य, मोहध्वान्तमुपेयुषः।
नाना-दुःख-शताकीर्णे, नरके पतनं ध्रुवम्।। 16 ।।

मोहरूप अन्धकार से ग्रसित, जिस प्राणी का चारित्ररूपी रत्न नष्ट हो गया, निश्चय से उसका अनेक दुःखों से व्याप्त नरक में पतन होगा।

स्वस्थ शरीर ही तप का साधन है।

यावत्स्वास्थ्यं शरीरस्य, यावच्चेन्द्रियसम्पदः।
तावद्युक्तं तपः कर्त्तुं, व्रार्क्ये केवलं श्रमः ।। 17 ।।

जब तक शरीर की स्वस्थता (नीरोगता) है, इन्द्रियाँ अपने विषयों को ग्रहण करने में समर्थ हैं, तब तक तपश्चरण करना उपयुक्त है, अन्यथा बुढ़ापे में केवल खेद होगा।

।। देशना।।

अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है।

यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी 'सारसमुच्चय' जी ग्रन्थ में जीव की भवितव्यता को उद्घाटित करने की विद्या की प्ररूपणा कर रहे हैं।

सारे जगत में पुरुषार्थ अनन्त हैं, लेकिन हे पुरुष! पुरुषार्थ तेरा सफल तभी होगा, जब भवितव्यता पवित्र है। यदि भवितव्यता पवित्र नहीं है, तब पुरुषार्थ कोटि-कोटि हो जायेंगे, लेकिन पुरुष के कार्य की सिद्धि सम्भव नहीं है। कर्त्तृत्वपने की दृष्टि से मात्र अहम् कर पाओगे, कि मैंने सबकुछ किया। हाँ, आपने सबकुछ तो किया, पर भाग्य पवित्र नहीं था, इसलिए पुरुषार्थ सहकारी नहीं बन सका। पुरुषार्थ उन्हीं का सफल है, जिनका भाग्य प्रबल है। इसलिये मुमुक्षुओ! जगत के पुरुषार्थ करने के साथ-साथ अपने भाग्य की भी सुरक्षा करना अनिवार्य है।

पुण्य तुम्हारा प्रबल नहीं है, तो वर्तमान का पुरुषार्थ सहकारी नहीं होता है। यदि पुण्य प्रबल है, तो किंचित पुरुषार्थ भी आपका कार्य कर देता है। और पुण्य की जो शक्ति है, वह धर्मपुरुषार्थ से होती है। कर्म पुरुषार्थ में, अर्थ पुरुषार्थ में, काम पुरुषार्थ में वे ही असफल हो रहे हैं, जिनके पास धर्म पुरुषार्थ नहीं है। धर्म पुरुषार्थ एक ऐसा पुरुषार्थ है जो सम्पूर्ण

पुरुषार्थों को सि करता है। मोक्ष पुरुषार्थ की सि किराने वाला कोई है, तो उसका नाम धर्म पुरुषार्थ है।

कार्य सि के लिये कितनी शक्ति का व्यय आपने किया है। उस पुरुषार्थ को, उस शक्ति को कार्य सि में न करके कर्म के उपशमन में कर देता तो कार्य की सि स्वयमेव हो जाती है। जितना कार्य किया नहीं, जितना कार्य का पुरुषार्थ नहीं किया, उतना आपने कार्य का चिन्तवन किया है। और ज्ञानी! चिन्तवन नहीं किया, चिन्ता ही की है।

चिन्तवन नहीं किया। चिन्तवन किया होता तो तटस्थ होकर बैठ जाता। जब अशुभ के दिन आयें तो हाथ-पर-हाथ रखकर बैठ जाना अन्यथा आप जहाँ भी हाथ लगाओगे, असफलता ही मिलेगी। बहुत अच्छा होगा यदि आपको मालूम चल जाये कि आपको घाटा लगना प्रारम्भ हो गया है। बस, इतना अच्छा हो जाये, कि व्यापार करना बन्द कर देना। हाथ पर हाथ रख कर बैठ जाना। कम-से-कम जो घर में है, वो ही तो जायेगा। नहीं तो तू व्यापार करेगा, सो सिर पर ऋण और चढ़ जायेगा।

हाथ पर हाथ रखकर, बैठकर करेंगे क्या? कुछ नहीं करना। जैसे हाथ पर हाथ रखे तुम्हारा अर्हन्त बैठा है, जैसे हाथ पर हाथ रखकर तुम्हारा निर्ग्रन्थ बैठता है, वैसे ही हाथ पर हाथ रखकर बैठ जाओगे, विश्वास रखना, उस दिन से दुनियाँ तुम्हारे हाथों में देना प्रारम्भ कर देती है।

भीख उनको माँगना पड़ती है, जो हाथ फैलाकर जाते हैं। जो हाथ पर हाथ रखकर बैठ जाते हैं, उनको भीख नहीं माँगना पड़ती है। दुनियाँ उनको नमोऽस्तु-नमोऽस्तु बोलती है। दुनियाँ के लोग, भोजन का समय आता है, तो यूँ कटोरा करते हैं। चाहे कितना ही उच्च श्रेणी का साधु होगा, उसे माँगना ही पड़ता है। पर जैनयोगी जो है, मुद्रा लगाकर जाते हैं, हाथ फैलाकर नहीं जाते हैं।

हाथ पर हाथ रखना, ये मुद्रा है, सिंहवृत्ति है। कटोरा वे फैलाते हैं, भीख उनको माँगना पड़ती है, जिनके पास धन नहीं होता है। धनवान् को भीख कहाँ माँगना पड़ती है? जो धनहीन होता है, उसको भीख माँगना पड़ती है। जिसके हाथ में कुछ नहीं बचता, उसको भीख माँगने जाना पड़ता है। पर जिसके हाथ में रत्नत्रय धर्म होता है, वह भीख माँगने नहीं जाता, हाथ पर हाथ रखे रहता है।

शील-रत्न सम्हालो, धर्म-रत्न सम्हालो। अशुभ दिन आये तो भीख माँगने मत जाना। अशुभ दिन आये, तो किसी के घर पर भी मत जाना। हाथ पर हाथ रखकर बैठ जाना। अशुभ

क्यों आया? जो पुण्य था, वह भोग चुका, तो उदय पाप का आना ही था। जो पाप का उदय है, वही तो गरीबी है। वही धनहीनता है।

जो पाप का उदय है, वही रोग है, अपयश है। जितने अशुभ दिखाई दे रहे हैं, सब पाप का उदय है। भूतपूजक के पास जाओगे, तो वह कहेगा कि व्यन्तर लग गया। वैद्य के पास जाओगे, तो वह कहेगा कि अमुक रोग हो गया। परन्तु ज्ञानी! माँ जिनवाणी के पास जायेगा, तो बेटे! कुछ नहीं है। इन सबका नियोग कर्म का उदय है। बहुत सारे लोग वहाँ तो लगाते हैं जहाँ से लग गई है, पर वहाँ नहीं लगाते जहाँ लगी है।

भैया! एक पुरुष को ठोकर लग गई, तो वह वैद्य के पास पहुँचा। वैद्य ने औषधि दे दी। बोले, जहाँ लगी है वहाँ साफ करके लगा देना। उसने क्या किया? औषधि ले गया और जिस पत्थर पर ठोकर लगी थी, उसने पत्थर को साफ किया और औषधि लगा दी, क्योंकि उसने सुन लिया था कि जहाँ लगी है वहाँ लगा लेना। आठ दिन में उसके घाव में कीड़े पड़ गये। पुनः पहुँचता है। बोले– डाक्टर साहब! आपने फीस भी ली है और औषधि के पैसे भी लिये हैं, लेकिन मेरे पैर की हालत तो खराब हो रही है। बोले– भैया! क्या किया तुमने? बोले, आपने कहा था कि जहाँ लगा है, वहाँ लगा लेना। इसलिये हमने बहुत अच्छे से साफ किया है और औषधि को लगा दिया। बोले, ज्ञानी! दोष तेरा नहीं था। ये तेरी ब्रुकिा दोष है कि पुण्य क्षीण होता है, तब ब्रुभी काम नहीं करती। विश्वास मानना।

'प्रक्षीण पुण्यं विनश्यति विचारणम्' जिसके पुण्य क्षीण हो जाते हैं, उसके सद् विचार भी नष्ट होना प्रारम्भ हो जाते हैं। ब्रुभी पुण्यात्मा की चलती है। क्षीण पुण्य वाले की ब्रुभी काम नहीं करती। जब रावण का पुण्य क्षीण हुआ था, तो सेना ही नष्ट नहीं हुई, उसकी ब्रुही नष्ट हुई थी पहले। क्या मन्दोदरी ने नहीं समझाया था?

भो स्वामी! आपके 18 हजार रानियाँ, फिर हर कर क्यों पर की स्त्री को लाये हो? ये रावण की ब्रुकिी क्षीणता थी। जीवन में रोटी खाने को न मिले तो पानी पीकर सो जाना, लेकिन जिस यश को कमा कर रखा है, उसे मत खो देना। और पानी भी पीने को न मिले, तो भी महामंत्र का जाप करके अन्तिम श्वास भर लेना, लेकिन भो ज्ञानी! ऐसा कदम मत उठाना, जिससे यश का नाश हो।

संयम की रक्षा तभी हो सकती है, जब यश की रक्षा का भान हो। अपने कुल की, वंश की, जाति की, देश की, राष्ट्र की, संयम की रक्षा वही कर पायेगा, जिसको अपने यश पर ध्यान होगा। युवाओ! 24 घण्टे अपने लज्जा गुण पर ध्यान रखना। जब तक नारी में लज्जा

है, तब तक तुम्हारे कुल की सुरक्षा है। और नारी की लज्जा गई, तो तुम्हारे कुल का विनाश हुआ। साधु की लज्जा गई, तो जिनशासन की हँसी हुई। इसलिये लज्जा का अभाव नहीं होना चाहिये।

क्या कारण है कि जैन मुनि आहार को भी जाता है तो मौन से जाता है। आपकी कुलीनता का ज्ञान तब होता है, जब आप बफर में भोजन करने जाते हो। वहाँ सब निहारते हैं।

नवागढ़ में पंचकल्याणक चल रहा था। पण्डाल से बहुत दूरी पर एक मृतक गाय पड़ी हुई थी। उपदेश को जाते थे तो उस ही क्षेत्र से जाता था संघ। उस मृत गाय के चारों ओर कौए भी थे, .गि भी थे, स्वान भी थे। वे प्राणी मृतक गाय के शरीर को, कोई इधर से खींच रहा था, कोई उधर से खींच रहा था। मैं सोच रहा था कि जो शरीर में था, वो भी भगवान्-आत्मा था। जो शरीर को चीथ-चीथ कर खा रहे हैं, वो भी भगवान्-आत्मा हैं। पर पर्याय की प्रत्यासत्ति, पर्याय का परिणमन देखो, जिस पर्याय में पहुँचता है, उसकी परिणति कैसी हो जाती है? इस पर निहारो। ज्ञानियो! आप मनुष्यपर्याय में हो, तनिक विवेक से जीना सीखो। स्वान, .गि, कौए अलग-अलग खींच रहे थे। ये कौन से जीव थे? जिस शरीर से गंध आ रही थी, वहाँ से निकलनेवाले नाक बन्द कर रहे थे। एक को सड़ान आ रही है, तो नाक बंद कर रहा है और एक उसको मुख से भोजन बनाकर खा रहा है।

जिन जीवों ने देह के अशुभ अंगों में तीव्र राग किया है, वे जीव सड़ी देह को खाने वाले ऐसे कीड़े और ऐसे जानवर होते हैं। हे ज्ञानियो! जैसे उन जीवों को कोई विवेक नहीं था। वे कौन-से जीव थे? जिन्होंने रात्रि में, बफर में जैसे निशाचर बनके इधर से प्लेट खींची, उधर से प्लेट खींची, वे ही तिर्यञ्चों के कलेवर खाने वाले जीव बनते हैं।

अब आप को जैसा लगे, वैसा करना। ज्ञानी! जो है, सो है। तिर्यंञ्च के सड़े शरीर को खाने के परिणाम जिन-जिनके हों, वे रात्रि में बड़े मजे से, मस्ती में भोजन किया करो। जिन को किसी मनुष्य के, किसी तिर्यञ्च के, सड़े कलेवर खाने की इच्छा न हो, तो ज्ञानी! आज से, अभी से रात्रि-भोजन खाना छोड़ देना। तुम्हारी कुलीनता का ज्ञान उसी दिन होता है। उज्जवल कुल में जन्म लेकरके, तीर्थंकर जिनेन्द्रदेव की मुद्रा को प्राप्त किया है। नहीं तो सिर पर टोकनी ढोता हुआ जीव, कुछ अशुभ कर्म करके फिर ऐसे स्वान और .गि जैसा परिणमन होता है। और जो जीव रात्रिभोजन कराते हैं, वे तो नरक में धकेलने वाले महापापी, नारकी

हैं। असुर हैं। बुरा तो नहीं लग रहा? और फिर हजारों लोगों को पत्र देकर बुला रहा है। और वह यह सूचना दे रहा है, कि आओ और खा कर जाओ और चले जाओ नीचे। भैया! मुझे नहीं था मालूम, नहीं तो मैं ऐसा बोलता ही नहीं।

जनक ने सीता का स्वयंवर रचा था। अनेक क्षत्री आये। सभी ने धनुष को उठाने की चेष्ठा तो की, पर कोई उठा नहीं सका। जनक जी के नयनों से अश्रुपात होने लगा, अहो! मुझे नहीं था मालूम कि ये पृथ्वी क्षत्रियों से विहीन हो चुकी है, नहीं–तो मैं ये स्वयंवर क्यों रचाता? अपनी पुत्री को कुँवारी ही छोड़ देता। आज हुआ क्या ये? तब श्रीराम खड़े हो गये और श्री जनक के बहते आँसू को पोंछकर धनुष उठाकर, उसे तोड़ दिया। क्या टीकमगढ़ में ऐसा कोई क्षत्री नहीं है कि महाराज! आज से मैं रात्रि में भोजन न कराऊँगा और करने की अनुमोदना नहीं करूँगा और न स्वयं करूँगा। जिन–जिन युवाओं ने खड़े होकर त्यागा है, यही है उनके द्वारा धर्म की प्रभावना। पर ये ध्यान रखना, ऐसा नियम मत करना कि टीकमगढ़ में मात्र। जब बाहर जायेंगे तो नियम का और–अच्छे–से पालन करना।

ज्ञानी! ढोल बजाकर, नारे लगाकर तुम कितनी प्रभावना करोगे? जब शाम को आप ट्रेन में चल रहे थे और टिफिन खोला, तो अपने आप कोई कहेगा कि ये जैन है। और जैनधर्म की प्रभावना आपने कर दी। कोई मेहमान भी आये, तो सुबह सम्मान कर देना, और रात्री में आये तो भूखे ही सो जाओ। बोले, क्यों? आपको मालूम होना चाहिए था, कि ये वो कुल है जिस कुल में शाम को जिनवाणी का वाचन होता है, निशाचर–वृत्ति नहीं होती है। ये वो कुल है जिसमें अर्हन्त का अभिषेक होता है, निर्ग्रन्थ को दान दिया जाता है और जिनवाणी का पान किया जाता है।

ज्ञानी! दिन में भोजन–पान कर लेना और रात्री में भूख भी लगे तो माँ जिनवाणी के आँचल का पान कर लेना। भैया! क्या तू बैण्ड बजा कर प्रभावना करेगा?

तीर्थंकर महावीर का शासन ऐसे ही चलेगा और विश्वास रखना, साढ़े 18 हजार वर्ष तक जिनशासन ऐसे ही जयवन्त रहने वाला है। देखो, भैया! कोई तिर्यञ्च बनना पसंद नहीं करता। जिसने 1 वर्ष का रात्रिभोजन त्याग कर दिया, उसको 6 माह के उपवास का फल मिलता है। कोई महिमार्मंडित नहीं किया जा रहा है। यथार्थ है, यथार्थ।

ज्ञानी! चतुर्थकाल में एक गाली थी। गुणमाला से लक्ष्मण ने कहा–हे प्रिये! मैं अपने राज्य की ओर जा रहा हूँ, आप तब तक यहीं निवास करना, जब तक मैं स्थाई नहीं हो जाऊँ। गुणमाला बोली, 'क्या भरोसा आपका कि आप मुझे लेने आयेंगे कि नहीं आयेंगे? मैं आपके

साथ चलूँगी', तो लक्ष्मण जी कहने लगे–'हे देवि! मैं आपको लेने नहीं आऊँ, तो मुझे वो पाप लगे, जो रात्रिभोजन करनेवाले को लगे।' अब आप कल्पना करो कौन–सा पाप लगता है?

विदेह–क्षेत्र में तीर्थंकर के केवलज्ञान में भी झलक रहा होगा कि अहो! ये टीकमगढ़ के जीवों ने निशाचर वृत्ति का प्रत्याख्यान कर दिया। और स्वर्ग में बैठे देवगण भी मुस्करा रहे होंगे कि भरतक्षेत्र में पंचमकाल में आज भी ऐसे जीव हैं जो निशाचर बनना पसंद नहीं करते।

ज्ञान की आराधना चल रही है। ज्ञान की आराधना चारित्र के लिये की जाती है। जब उस तिर्यञ्च को खाते तिर्यञ्चों को देखा, अहो! ये क्या है? कभी ये जीव सिद्धशिला पर सि बनकर बैठेगा, लेकिन आज भविष्य के सि का दृश्य क्या दिखाई दे रहा है?

कभी सिशिला पर सि बनके बैठेगा जीव, कभी समवसरण में अथवा गंधकुटी में अर्हन्त बनके बैठेगा जीव, कभी पीछी–कमण्डल धारण करके निर्ग्रन्थ बनकर बैठेगा जीव, तो ज्ञानी! हम नमस्कार करेंगे उस जीव को। आज देखो उस जीव की दशा। अशुभ करते हुये जीव की उज्जवल पर्याय को भी देखा करो। ये देखो क्या हो रहा है? जब सिंह को पंजा मारते देखा मुनिराज ने, उन बीतरागी निर्ग्रन्थ युगल मुनियों ने निहारा और मुख से निकल पड़ा–अहो भावी भगवान्! ये तुम जो कर रहे हो,ये क्या कर रहे हो? 'अहिंसा का नाद करने वाला, हिंसा का परिणाम कैसा?' इतनी वाणी सुनी पंजा हट गया और नयनों में पश्चाताप के आँसू ने सम्यग्दर्शन प्रकट कर दिया।

जब सिंह की पर्याय में श्रावक हो सकता है, तो फिर किसी जीव को हीन मत देखो,हीन मत समझो। किसी जीव को हेय मत देखो, हेय मत समझो। घात करते समय भी उपदेश देने वाले मिल गये।

आचार्य महाराज ने कल एक सूत्र दिया था। 'शीलरत्नं हतं यस्य, मोहध्वान्तमुपेयुषः। नाना दुःखशताकीर्णे, नरके पतनं ध्रुवम्।। 16 ।।' जिसने अपने शील का घात कर दिया है, उसका नियम से ध्रुव नरक पतन है। शील के लिये लोगों ने एक ध्येय लगाके रखा है यानि शील की रक्षा में मात्र ब्रह्मचर्य को लेकर चलेंगे। अभी आपको शील का बोध नहीं है। इतना मात्र शील नहीं है। अब्रह्म का सेवन मात्र कुशील नहीं है।

कम्ममसुहं कुसीलं सुहकम्मं चावि जाणह सुसीलं।
कह तं होदि सुसीलं जं संसारं पवेसेदि।। 145।। स.सा.।।

जितने प्रकार का अशुभ कर्म है, वह सभी कुशील ही है। और ज्ञानियो! तुमने तन से जितना कुशील का सेवन नहीं किया है, उतना मन से किया है। दुर्गति होगी कि नहीं होगी? जितने पागल हो रहे हैं, अशुभ कर्म से हो रहे हैं। जितने उन्मत्त हो रहे हैं, अशुभ कर्म से हो रहे हैं। ज्ञानियो! जगत् को खुश करने का विचार छोड़ दो। अपने चित्त को खुश करना चाहते हो, तो शुभ कर्म करना प्रारम्भ कर दो। भैया! विश्वास रखना, लाखों-करोड़ों द्रव्य तुम्हारे हाथ में आ जाये, तो वो खुशी और अर्हन्त का अभिषेक करता श्रावक, वो खुशी, और निर्ग्रन्थ के हाथ पर ग्रास रखने में वो खुशी, और तेरे हाथ से यदि मुनि पड़ग जाये, उस समय तेरे आनन्द की अनुभूति क्या होगी?

यदि आपको गरीबी में होकरके भी बहुमूल्य आनन्द लूटना हो तो निर्ग्रन्थ मुनि को पड़गाहने खड़े हो जाना और जिस जीव के सामने निर्ग्रन्थ तपोधन खड़े हो जायें, उस जीव से पूछना कि भैया! तुझे क्या मिला? तो वह कहेगा कि भैया! तू चक्रवर्ती की सम्पत्ति ले जा, लेकिन मैं मुनिराज को अपने यहाँ से जाने नहीं दूँगा।

श्री के राग के आनन्द भिन्न हैं और स्त्री के राग के आनन्द भिन्न हैं और ज्ञानी! श्रीजिन की अनुभूति के आनन्द भिन्न हैं। और ये सारा आनन्द जो लूट रहा है, आत्मा है। आत्मा का आनन्द आत्मा ही ले रहा है। जिन जीवों ने कभी निर्ग्रन्थ का पड़गाहन नहीं किया, योगी के हाथ पर ग्रास नहीं रखा, उसको क्या मालूम कि आनन्द कैसा है? वह तो बन्ध्या स्त्री के तुल्य है। उसे क्या मालूम कि बेटे को खिलाने पर क्या आनन्द आता है। जब माँ की गोदी में बालक खेलता है, उस आनन्द की अनुभूति माँ जानती है। और फिर जिसके आँगन में निर्ग्रन्थ तपोधन यथाजात-स्वरूप में आ जायें, तो उस माँ के आँगन की अनुभूति माँ ही जानती है।

बुन्देलखण्ड की उस माँ से पूछना, जिसका पति भी चल बसा हो, बेटा भी न हो। उस माँ से पूछना, माँ! तू जीवन में कभी खुश हो पायेगी क्या? ज्ञानी! उस माँ की आँखों में आनन्द के आँसू उस दिन आते हैं, जब उसके आँगन में निर्ग्रन्थ मुनि पधारते हैं। पति को भूल जाती है, बेटे को भूल जाती है, लेकिन योगी की वंदना करके अपने भाग्य की सराहना करती है। अपना दुर्भाग्य नहीं मानती है।

अहो आश्चर्य! बेटा! तू तो अपनी माँ से कहता है कि माँ! एक लड्डू और दे दो न। तुझे गिड़गिड़ाना पड़ता है। गाय के सामने कोई किसान घास लेकर आये, उस समय गाय का चेहरा देखने लायक होता है। ऐसे प्रीति से देखती है, और निहार रही है, कि कब ये सामने

डाल दे और मैं खाना शुरू करूँ। ऐसे ही पति देखता है कि कब बेटे की माँ आ रही है, कब मेरी थाली में डाल रही है। बेचारा ऐसे भोले बनकर बैठा है।

एक जीव को निहारना पड़ता है कि कब आये और कब मैं शुरू करूँ? और यहाँ माँ घिघया रही कि महाराज! लड्डू और लेलो। कितना अन्तर है? अशुभ कर्म का सेवन करने वाले को माँगना पड़ता है और जो शुभ कर्म में लवलीन होते हैं, उनको माँगना नहीं पड़ता, उनकी अंजुली में मिलता है। तुम लोगों को क्यों हम लोगों से ईर्ष्या नहीं होती? कभी-कभी तो ईर्ष्या कर लिया करो हम लोगों से। बोले 'क्या, महाराज! एक भी हाथ से कुछ करते नहीं हो और दोनों हाथों से मस्ती से खाते हो। आप ही खाना जानते हो क्या? हम नहीं खा सकते क्या? हम भी आ रहे हैं।' एक दिन सोच तो लो, कि आज तो हमें दोनों हाथों से ही खाना है। और खाना है तो बस, मुनिराज बनना ही पड़ेगा। परन्तु कपड़े पहने-पहने नहीं। कुन्दकुन्द स्वामी का आदेश है

सुत्तत्थपयविणट्ठो, मिच्छादिट्ठी हु सो मुणेयव्वो।
खेडेवि ण कायव्वं, पाणिपत्तं सचेलस्स।। 7 सुत्त पाहुड।।

वस्त्रधारी को खेल-खेल में भी हाथ में भोजन नहीं करना चाहिये। जो वस्त्रधारी खेल-खेल में भी हाथ में भोजन करता है, वह जिनमुद्रा की अवहेलना करता है। श्रावकों को कभी भी हाथ में भोजन करने का आदेश नहीं है आगम में, जैसी मुद्रा लेकर मुनिराज करते हैं।

यदि आज आप जायें घर में और तेरी देवी डाँटने लग जाये, तो धीरे से कहना-हे देवि! 'कम्मम सुहं कुसीलं।' मै तो जैसा हूँ, सो ठीक है। तू क्यों अपनी भाषावर्गणा को विकृत कर रही है? मैं क्या करके आया हूँ, पता नहीं है। पर तू तो सामने कुशील कर रही है। ऐसा मत कर। पिता भी गाली देने लग जाये, डाँटने लग जाय, तो धीरे से कहना, हे तात! 'कम्मम सुहं कुसीलं।' ये उपदेश ही मात्र यहाँ सुनना नहीं है आपको। आज नियम है, नियम। जितने बार तेरी देवी तुझे डाँटे, उतनी बार तुझे कहना है-'कम्मम सुहं कुसीलं।' बोलोगे? पक्का? इसका मतलब है कि डाँट खाता है। देखा, कैसे पता किया जाता है? ये है न्याय की विद्या। नहीं-तो यूँ कहता, महाराज! हमें डाँट पड़ती नहीं है, तो मैं क्यों कहूँगा?

देख लो भैया! यदि मुनिराज बन गया होता, तो भक्तिपूर्वक आहार मिलता। पर अब कमा-कमा कर ला रहा है और डाँट-डाँट ही मिलती है घर पर। क्या है तुम लोगों का जीवन? कभी-कभी मुझे बहुत दया आती है। जितने युवक बैठे हैं, इनके जैसा बनना हो तो इनसे मिल लेना। फिर हमसे मिल लेना। कोई जीवन है यह? जब-जब ये एकांत में बैठते हैं, तो मन

में यही सोचता है कि पता नहीं, करूँ तो क्या करूँ? साँप के मुख में छछुन्दर हो जाती है। सुना आप लोगों ने? वह बाहर भी नहीं निकल पा रहा है, अन्दर भी नहीं जा पा रहा है। ये दशा है इन रागियों की। एक ज्ञानी तो कल कह रहा था, महाराज! आप देर से क्यों मिले हो? अरे! अभी क्या देर हो गई? अच्छा है। पहले तू मुनि बनता तो अकेले बन जाता, अब तेरे साथ देवी भी आर्यिका बन जायेगी। जयवन्त हों भगवान् नेमिनाथ स्वामी। भैया! सोच लो। कुछ नहीं है।

श्रीमद् राजचन्द्र से किसी ने व्यापार किया। जवाहरात का व्यापार था। जब चर्चा की तो बाजार के भाव गिरे हुये थे। जैसे ही उन्होंने खरीदा, भाव बढ़ गये। अब क्या करें? वह व्यापारी रसीद लेकर पहुँच गया, पर उसके हाथ काँप रहे थे, चेहरा उदास था। बोले, भाई! बात क्या है? कुछ नहीं। राजचन्द्र जी को मालूम चल गया था, कि जो है सो इस कागज में है। उन्होंने पर्चा हाथ में लेकरके दो टुकड़े कर दिये। यह कहता है कि आपने ये क्या किया? बोले–सुन, मैं वर्द्धमान महावीर का भक्त हूँ। मैं दूध पीता हूँ, किसी का खून नहीं पीता हूँ। इस शरीर के कारण ही तेरे भाव खराब हो रहे थे। इसलिये व्यापार समाप्त, अब तेरा माल तेरे पास।

कभी–कभी जीव को ये मालूम होता है कि अमुख वस्तु मुझे कभी नहीं मिलेगी, तब भी उसके पास ताकत नहीं कि मैं इसका त्याग कर दूँ। विश्वास रखना, जिस जीव के तीव्र चारित्रमोहनीय कर्म की प्रकृति काम कर रही है, वो जीव रात्रिभोजन के त्याग का भी भाव नहीं कर पाता। क्यों? नियम से इसके नरकायु का बन्ध हो चुका है। और जिसके नरकायु का बन्ध हो चुका है, वह पाप करे या न करे, लेकिन पाप का त्याग नहीं कर पायेगा। ये अपने हृदय की डायरी पर नोट कर लेना और जीवन भर याद रखना। जिस जीव के अशुभायु का बन्ध हो चुका है, वह वस्तु का सेवन करे या न करे, लेकिन ब्रुपूर्वक त्याग नहीं कर पायेगा। ऐसे बहुत से स्थान हैं, उनमें पहला स्थान तो यही है कि दिगम्बर मुनि को जबरदस्ती देकर मत आ जाना। अंतरंग नापना कि वास्तव में भाव हो रहे कि नहीं हो रहे हैं। सिर को पकड़ करके किसी के पैरों पर तो रखा जा सकता है, परन्तु सिर पकड़ करके .श्रा को नहीं रखा जा सकता है। ये विषय अंतरंग की .श्रा का चल रहा। नहीं तो सोच लो कि आज ही दे आ रहे और अपन बच जायेंगे नरक से। ज्ञानी! ऐसे तो नहीं बच रहे। अपने भावों से पूछना, अन्दर गद्गद् भाव आ रहा कि नहीं आ रहा है?

संयम लेने के परिणाम और सयंमी की सेवा के परिणाम उसी जीव को होते हैं, जिसने अशुभ आयु का बन्ध नहीं किया। भइया! नरक–पतन से बचना। आचार्यमहाराज कह रहे

हैं। इस जीव ने पूरी पर्याय को निकाल दिया, अब परिपूर्ण स्वतंत्र हो गये हैं। जब स्वतंत्र हुये, ज्ञानी! पिंजड़े का पक्षी हो गया। जो पक्षी लंबे समय तक पिंजड़े में रह लेता है, वह उड़ना भूल जाता है। उसकी उड़ने की शक्ति क्षीण हो चुकी है। और जब उड़ने की शक्ति क्षीण हो गई, तो तूने पिंजड़ा खोल दिया। अब पिंजड़े से तो खुल गया, लेकिन उड़ने की सामर्थ्य तो नष्ट हो गई। हे ज्ञानी! जब तू स्वतंत्र हुआ, तो इन्द्रियाँ शिथिल हो गई। अब तू मुनि बनेगा भी तो करेगा क्या? हे पिंजड़े के पक्षी! इस बात को आचार्यभगवन् (सत्रहवें श्लोक में).वृों से कह रहे हैं। पर हे.वृो। आप कोई विकल्प नहीं करना। कोई बात नहीं है, इस पर्याय में भूल हो गई, हो जाने दो, लेकिन अगली पर्याय की तैयारी करना। अगली पर्याय जब भी मिलेगी, आठ वर्ष होते ही दिगम्बर मुनि बन जाऊँगा, ऐसे भाव करो।

यावत्स्वास्थ्यं शरीरस्य, यावच्चेन्द्रिय सम्पदः।
तावद्युक्तं तपःकर्त्तुं, व्रांक्ये केवलं श्रमः।। 17 ।। सा.स।।

भैया! पुष्प खिल रहे थे, सो तू कण्ठहार बनाके पहन रहा था, कानों पर रख रहा था। सुन्दर फल थे, सो मुख में रख रहा था। सड़े फूल प्रभू चरणों में, सड़े फल प्रभू चरणों में। चमकती काया थी, सो विषयों की बलि ही चढ़ा दी और खड़ा है शरीर प्रभू चरणों में। अरे ज्ञानी! तू क्या कर रहा है?

काश! चमकते चेहरे जब थे, तो आप निर्ग्रन्थ मुनि बनते। इन युवाओं (मुनिराजों) को देखो। जिस नगर से निकल जाते हैं, तो लोग सोच में पड़ जाते हैं कि अहो! धन्य हो। क्या इनके माता-पिता नहीं थे? क्या घर में खाने को नहीं था? ज्ञानी! सबकुछ था, लेकिन घर में 'शिव-सुख' नहीं था, इसलिये घर से निकल पड़े।

घर में सबकुछ मिल सकता है। यथार्थ मानिये। जितने अच्छे से स्वतंत्र होकर घर में पीने को, खाने को मिलता, यहाँ मिलता क्या? 'पराधीन मुनिवर की चर्या, पर-घर जायें, माँगत कछु नाहीं।' आपके घर आपने थाली दिखाई, महाराज! ये-ये। उनने कहा, भैया! ये लौकी हटा दो। तुमने गिलकी उठा दी। अब वे क्या यह कहेंगे हाथ पकड़ कर, कि नहीं-नहीं, इसे छोड़ दो, इसको उठाओ? ऐसा करेंगे क्या? यूँ किया उन्होंने, भैया! आज तो महाराज का नीरस है, हटा दो सब। अब बेचारे क्या करें? रोयें कि मुस्करायें? वहाँ देखें-अलंघ्य-शक्तिर्भवितव्यतेयं। दैवस्य कुटिला गतिः।

ज्ञानी! मन करके गये थे कि चलो आज आहार करके आयेंगे, लेकिन कोई-और बोला कि भैया! ये हटा दो, आज महाराज जी का त्याग है। अब वे बेचारे सोच रहे कि अब करें

तो क्या करें? उस समय परिणाम देखो, क्या बनते हैं? और साथ में कह रहा है कि मिर्ची लाओ, लाल मिर्ची। देखके वैसे ही तो आँसू टपकने लगते हैं। अब भैया! ऐसे काल में क्या करोगे? कुछ नहीं है, तो क्या उठके भाग आओगे? बोले, इधर कुछ भी हमारे लायक नहीं है, चलो, भग चलो इधर से।

नहीं, ज्ञानी! उस समय साम्य-रस का पान करेंगे। भोजन का पान तो अनन्त बार किया है। आज मौका मिला है 'साम्य-रस' का। सोमरस नहीं, साम्यरस का पान करेंगे। अरे! पञ्चमकाल के जीव हैं। नहीं-तो कहने लगें सोमरस (मदिरा) का पान करेंगे।

सुनो, दिगम्बर मुनि सोमरस नहीं पीते, अमृत रस पीते हैं, यानि 'चित् चैतन्य रसायन स्वरूपोऽहम्।" चेतना रस का ही पान करते हैं। ध्रुव सत्य है, इस देहपिण्ड को चलाने के लिये तुम्हारे घर जाना पड़ता है, पर आत्मा का भोजन तो 'चित् चैतन्य-रस स्वरूपोऽहम्।' ध्रुव सत्य है कि जब जिनवाणी के रस का पान होता है, तो पुद्गल के टुकड़ों का कोई भान नहीं होता।

देखो, भैया! तुम दुःखी मत होना। आप लोग तो इतने भाग्यवान हो कि जीवन को जिनवाणी में लगाया है और अन्तिम समय भी जिनवाणी सुनने को मिल रही है। विश्वास रखना, पुण्यक्षेत्र में जन्म लेना पुण्यात्मा को ही मिलता है। ऐसे भूमि पर लोग तरसते हैं कि कब मुनिराज आयें? लेकिन यहाँ टीकमगढ़ में तो एक मुनिराज का विहार होता, दूसरे आ जाते और दूसरे का विहार होता, तीसरे आ जाते।

विशेषता इस बात की है, कि आ जायें, सो अच्छी बात है, लेकिन आने के बाद उनसे लेने के भाव हो जायें, ये बड़े पुण्य की बात है। धन्य हैं वे जीव, जो ये सोच रहे कि रागियों के बीच तो अनन्त बार रहे, वैरागियों के साथ 5 मिनिट भी बैठ गये, तो जीवन धन्य हो गया। जब योगी मुख से बोले, तो प्रवचन सुन ही लेना और जब मुख से न बोलते हों, तब और प्रवचन सुनना।

मूर्त्तमिव मोक्षमार्गमवाग्विसर्गं वपुषा निरूपयन्तं।। सर्वार्थसिद्धि टीका-1।।

जिनका शरीर ही मोक्षमार्ग का उपदेश देता है। यथार्थ में साधु ध्यान में हों, सामायिक में बैठे हों, और कहीं दिख जायें, उस समय गद्गद् भाव आता है। क्यों? चक्रवर्ती, नारायण आदि के वैभव को देखकरके निदान-बंध हो जाता कि नहीं हो जाता है?

निदान-बन्ध दो प्रकार का है। प्रशस्त निदान-बन्ध, अप्रशस्त निदान बन्ध। 'भगवती आराधना' में 'मरणकण्डिका' में अप्रशस्त निदान का निषेध किया है, प्रशस्त निदान का निषेध नहीं है। हे जीव! जब कोई वीतरागी तपोधन सामायिक में मिले और मेरा तो सोच है कि

आपको कोई दिगम्बर मुनि का चित्र भी छापना हो तो हँसते-खिलखिलाते, मुस्कराते, आधा फोटो कभी मत छापना। आचार्यपरमेष्ठी चेतन जिनबिम्ब हैं। ये साधु-परमेष्ठी चेतन जिनबिम्ब है। अचेतन जिनबिम्ब को तो आप निहारते हो, पर इनसे बात भी कर लेते हो, आहार भी देते हो। हे ज्ञानी! निर्ग्रन्थ योगी को देखकर सम्यक्-दर्शन प्राप्त होता है। कोई ऐक्टर नहीं हैं ये लोग। अभिनेता नहीं, नेता नहीं, जो तुम हँसते-खिलखिलाते चित्र लगा रहे हो। इनके साम्य-सौम्य चित्र होना चाहिये। जिस तस्वीर को देखकरके भीतर की तस्वीर तेरी बदलने लग जाये, ऐसा फोटो साधु का टँगना चाहिये।

कोई नाना मुद्रा नहीं। अनन्त मुद्राओं का नाश करने के लिये तो जिनमुद्रा धारण की है। अब अनन्त मुद्रा धारण कराना है क्या आपको?

हर श्रावक के रसोईघर में दिगम्बर मुनि की तस्वीर होनी चाहिये। बैठक रूम में नहीं, रसोई घर में होना चाहिये। जब अभागा, राक्षस बनके खाने जाये, तो सोचें 'मुनि को भोजन देय, फिर करे अहारे।' कम-से-कम, भोजन करने के पहले जिनमुद्रा दिखाई दे जाये तो याद आयेगी कि ये मेरा वो कुल है जहाँ पहले मुनि को आहार दिये जाते हैं, फिर स्वयं का भोजन करना पड़ता है।

'सोमदेव सूरि' ने तो यहाँ तक लिख दिया है कि जो श्रावक साधु को भोजन देने के पहले ही भोजन कर लेता है, वह निशाचर है। वे दिन कहाँ चले गये, जब नगर में साधु नहीं होते थे, तो हमारे बुजुर्ग माता-पिता समय टाल कर भोजन करते थे? भैया! ढाईद्वीप में जितने वीतरागी निर्ग्रन्थ तपोधन हैं, उन सबकी चर्या हो जाये, फिर अपन भोजन करेंगे। सत्यता ये है, टीकमगढ़ में जितने त्यागी/प्रतिमाधारी हैं, हमारी बात मान लें, तो टीकमगढ़ का अहोभाग्य हो जाये। आप लोग शु भोजन तो करते ही हो, सो आपके घर में रोज चौका लगते हैं। भवन के नीचे पड़गाहन किये बिना भोजन मत करना। भले ही दो मिनट के लिये, लोटा लेकर नीचे आओ, पड़गाहन करो, साधु हो तो ठीक है, नहीं हो तो ठीक है।

चक्रवर्ती भरतेश पड़गाहन कर रहा था कि नहीं कर रहा था? और कभी ऐसा भी होता है कि महाराज आयें और आप लोग घूमें कि चौका लगा लो। जहाँ ये त्यागी-व्रती खड़े होंगे, निर्दोष चर्या का पालन होगा साधु का, और बिना रागद्वेष के साधु को आहार दे रहा होगा।

देखो, तीन कम नौ कोटि मुनि आहार नहीं लेते। आहार तो मात्र छटवें गुणस्थानवर्ती ही लेते हैं। तो जितने छट्टे गुणस्थानवर्ती योगी होंगे, उन सभी योगियों के आहार देने का पुण्य तुझे मिलेगा। और मात्र भरतक्षेत्र के नहीं, पूरे ढाईद्वीप में मुनि होंगे, सबकी अनुमोदना करने

को मिले। और ऐसे समय में यदि आयुबंध हो गया, तो विश्वास रखो, नियम से उच्च आयु, उच्च गति का ही बन्ध होगा।

यावत्स्वास्थ्यं शरीरस्य, यावच्चेन्द्रियसम्पदः।
तावद्युक्तं तपः कर्त्तुं, व्रांक्ये केवलं श्रमः ।। 17 ।।

'यावत् स्वास्थ्यं शरीरस्य', जब तक शरीर स्वस्थ है। 'यावच्चेन्द्रिय सम्पदः' और जब तक इन्द्रियों की सम्पदा है, 'तावत् युक्तं तपः कर्त्तुं' तब तक तपस्या कर लो। 'व्रांक्ये केवलं श्रमः' बूढ़े हो जायेंगे, तो मात्र श्रम बचेगा। जब शरीर ही साथ नहीं देगा, तो साधना क्या होगी? और जो युवावस्था में साधना कर लेता है, उसकी शरीर-वृावस्था में भी साधना चलती है, क्योंकि शरीर.वृ होता है, भावना.वृ नहीं होती है। साधना से शरीर नहीं टूटता, शक्ति बढ़ती है। वासनाओं से शरीर टूटता है।

जिसने वासनाओं को वश में कर लिया है, उनका निज में वास होना प्रारम्भ हो चुका है। और जो निज में वास कर लेगा, उसका शिव में वास नियम से होगा।

अपने घर जाओ और घर जाकर मुख में ग्रास तब रखना, जब अनुमोदना कर लेना कि ढाई द्वीप में जितने निर्ग्रन्थ तपोधनों के आहार हो रहे हों, हे भगवान्! निर्दोष चर्या हो जाये। फिर तुम भोजन कर लेना।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

पण्डित कौन ?

शु तपसि सद्वीर्यं, ज्ञानं कर्म-परिक्षये।
उपयोगिधनं पात्रे, यस्य याति स पण्डितः।। 18 ।।

जिनका सच्चा पुरुषार्थ शु आत्मज्ञानपूर्वक तप में, ज्ञान कर्मों का क्षय करने में और उपयोगी धन सत्पात्रों में लगता है, वही पण्डित है।

।। देशना।।

बन्धुओ! अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है।

यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी अन्तस् तत्त्व की गवेषणा करते हुये समझा रहे हैं। हे मुमुक्षुओ! शरीर स्वस्थ है, चित्त स्वस्थ है, चारित्र स्वस्थ है, उसकी मुट्ठी में मोक्ष तत्त्व है।

शरीर को स्वस्थ रखने के लिये, शरीर के स्वास्थ्य की आवश्यकता नहीं है। साधना को स्वस्थ रखने के लिये शरीर की स्वस्थता भी आवश्यक है। साधना भी करो, तो साधन की सुरक्षा करते हुये साधना करो, जिससे साध्य की सि सम्भव हो सके। तपस्या करना भी विज्ञान है, भोजन करना भी विज्ञान है, भोजन कराना भी विज्ञान है।

दाता के गुणों में 'विवेक' नाम का भी एक गुण होता है। पात्रदान के काल में इतना विवेक होना चाहिये कि किस द्रव्य से कफ की वृ होती है, किस द्रव्य से पित्त की वृ होती है और किस द्रव्य से वात की वृ होती है? दाता को इतना ज्ञानी होना चाहिये। जिस द्रव्य के माध्यम से तीनों द्रव्यों का साम्यभाव हो, ऐसा द्रव्य साधु को दें। जिस द्रव्य के माध्यम से यदि वैषम्य होता है, तो विषमता में रोग की वृ होगी और रोग की वृ में सामायिक करने बैठे और मुख में कफ आ गया, बाहर निकालने जायेंगे, उतना समय सामायिक का भंग होगा कि नहीं?

हे दाता! तेरे विवेक की कमी के कारण पात्र अस्वस्थ हो गया। आपने आहार भी दिया, अन्तराय भी दिया। आहार दिया तो पेट भर दिया, लेकिन साधना में अन्तराय हुआ है। जैसे दाता के अन्दर विवेक नाम का गुण है, विज्ञान नाम का गुण है, ऐसे ही साधक को भी स्वयं में विवेक नाम का गुण होना चाहिये।

भैया! घृत खाने से बुद्धि बढ़ती है और शरीर में तेज आता है, ऐसा तुझे ज्ञात हो चुका था। किसी के घर में भोजन करने पहुंचा। उस भवन में घृत की अधिकता थी और तूने विचार कर लिया कि आज मौका है। आज ही तेज बढ़ा लेगा, आज ही बुद्धि बढ़ा लेगा क्या? हे ज्ञानी! औषधि का भी सेवन पथ्य से होता है। और घृत एक औषधि है। नेत्रों की ज्योति मंद हो रही हो तो पैर के तलवे में घृत की मालिश करने से नेत्रों की ज्योति की वृद्धि होती है। जीर्ण-ज्वर को भी शमन करने में सहकारी हो सकता है और ज्वर बढ़ाने में भी सहकारी हो सकता है।

ज्वर वाले को घृत का पान नहीं करना पड़ता है। 'पूज्यपाद स्वामी' बहुत बड़े आयुर्वेदाचार्य थे। उन्होंनें स्पष्ट लिखा है। यहाँ पर कुछ लोग पैसा इकट्ठा करके सुखी होना चाहते हैं, पर ध्यान रखना, पैसा अर्जित करने से सुखी हुआ करते होते तो जगत् में पैसेवाले का चेहरा कभी उदास नहीं दिखना चाहिये। ज्ञानी! पैसे से सुख नहीं होता है। सुख तो साता से होता है। साता का उदय नहीं, तो पैसा क्या करेगा? जो पैसा अर्जित करके सुखी होना चाहते हैं, वे ऐसे ही जैसे 105 डिग्री बुखार चढ़ा हो और वो घी पीकर अपने आप को स्वस्थ करना चाहता है। ऐसे ही पैसे को इकट्ठा कर व्यक्ति सुख प्राप्त करना चाहता है।

आत्मसुख धन में नहीं है। संसार का सुख भी चाहिये तो धन छोड़ना ही पड़ता है। भैया! तुझे एक सेवफल खाना है, तो दुकान पर जाकर, फल लेकर, कुछ देकर आयेगा, कि फल ऐसे ही मिल जायेगा? क्या देकर आयेगा? पैसा। धन छोड़े बिना संसार का सुख नहीं मिलता, फिर मोक्ष का सुख कहाँ से मिल सकता है? बिना धन छोड़े एक सेवफल खाने को नहीं मिलता, ज्ञानी! तो धन को लिये-लिये मोक्षफल कहाँ से मिलेगा?

बिना छोड़े सुख होता नहीं है। भैया! जोड़ने से तू जी नहीं पायेगा। बिना जोड़े लम्बे समय तक जी सकता है, पर जोड़करके तू जी नहीं सकता है। ज्ञानी! 10 दिन के उपवास कर सकता है, पर 10 दिन तक मल को धारण करके बता। जिसे तू ग्रहण करता है, उसे सुबह छोड़ना ही पड़ता है। बिना छोड़े जीवन चल नहीं सकता है। ओ हो! पहले पेट भरने के लिये धन नष्ट किया, अब पेट खाली करने के लिये धन नष्ट कर रहा है। कैसा जीव है?

जो पुरुष द्रव्य से सुख चाहता है, वह पुरुष ज्वरवाले पुरुष को घी पिलाकर स्वस्थ करना चाहता है। भोजन औषधि है, भोजन करना विज्ञान है। कितना द्रव्य, कब लेना और किस समय लेना, ये सीमा होना चाहिये। तो वही द्रव्य औषधि का काम करेगा। पर आपको

ज्ञात होना चाहिये, कि तिल में से तेल निकलता है, लेकिन जब भी तिल से तेल निकलेगा, पानी से गीला किये बिना तिल से तेल निकालोगे कैसे? कोल्हू के पास तिल ले जाते हो तो पहले उसको पानी से गीला करते हो। बिना पानी के तिल से तेल निकल पाता नहीं ऐसे-ही ज्ञानियो! भोजन का रस भी तब बनता है, जब उस में तेरी प्रसन्नता का नीर मिला होता है। यदि पुरुष का चित्त प्रसन्न नहीं है, तो जो भोजन अमृत बनने वाला था, वह भोजन विषरूप में प्रवृत्त होगा।

एक वक्ता, एक वाहन चालक, इन दोनों को नशे में नहीं होना चाहिये। बस चला रहा है, तू तो अकेला है, पर तेरे पीछे कितने और हैं? तू विवेकहीन होकर चलायेगा, तो कितनों का और जीवन चला जायेगा? जैसे चालक की विवेकहीनता से अनेक जीवों के प्राण जाने का निश्चित समझना चाहिये, ऐसे ही ज्ञानियो! वक्ता विवेकहीन बोलेगा, तो जितने सुननेवाले हैं, उन सब के .श्रागुण के प्राण चले जायेंगे। इसलिए वक्ता मद्यपायी नहीं होना चाहिये। आप यूँ कह सकते हैं, 'महाराजश्री! जिनवाणी की गद्दी पर बैठनेवाला मद्यपायी कैसा?' ज्ञानी! क्या आपको आगम का बोध है, आगम का ज्ञान है? मद्य एक प्रकार का नहीं होता है, मद्य अनंत प्रकार का होता है। मदिरा एक प्रकार की नहीं, अनंत प्रकार की है। जो बाटल की मदिरा है, वो तो एक निश्चित समय तक नशा देती है, लेकिन काम, क्रोध, मान, माया, लोभ?

जो काम है, क्रोध है, मान है, मायाचारी है, परिग्रह संज्ञा है, ये मदिरा के नजदीक है। तूने बाटल की मदिरा नहीं पी, लेकिन क्रोध की मदिरा में बैठा हुआ था। उस समय तू भाषण करेगा, वक्तव्य देगा, तो यद्वा-तद्वा बोलेगा। ज्ञानी! जैसे बन्दर का लाल चेहरा है, चंचली, ऐसे ही क्रोधी का चेहरा लाल और चंचलभूत होता है। कषाय आ रही हो, उस समय में उपदेश का समय क्यों नहीं हो जाये, उससे यह कह देना, 'भैया! आज मैं प्रवचन नहीं कर पाऊँगा।' तो लोग पूछेंगे, क्यों? तो मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं है। तो आप यूँ कहेंगे, कि महाराज जी! आप मुझे झूठ बोलना सिखा रहे हो। नहीं, मैं परम-सत्य सिखा रहा हूँ आपको। स्वास्थ्य ठीक नहीं है, ऐसा ही बोलना।

ज्ञानी! तन स्वस्थ है, मन स्वस्थ नहीं है। मन स्वस्थ हुये बिना तू प्रवचन करने जायेगा तो नियम से तू सिांत के विरु कथन करेगा। 'धवला' जी में स्पष्ट निषेध है। जब तुम्हारे मन में तीव्र हर्ष हो, तीव्र विषाद हो, गरिष्ठ भोजन किये हो, अशु भोजन हुआ हो, यहाँ तक कि रात्रि में खोटा स्वप्न आ गया हो, तब भी आपको सिांतशास्त्र का उपदेश करने की आज्ञा नहीं है। क्यों? जैसे मद्यपायी विवेकहीन होकरके कुछ से कुछ समझ लेता है, ऐसे

ही काषायिक भाव से युक्त प्राणी तत्त्व की कुछ से कुछ विवेचना करेगा। लोग तुमसे जिनवाणी सुनने आये हैं और आप अपनी कषाय निकालोगे, उससे जिनशासन की महान् क्षति होगी। ये आवाज नगर के चौराहे-चौराहे पर जा रही है और आपने उस भाषा का उपयोग यहाँ किया है। कुछ लोग यहाँ नहीं आ पा रहे हैं, वे भी अपने कान पवित्र कर रहे हैं। यदि वे आपकी कषाय सुनेंगे, तो क्या कहेंगे?

मैं तो जिनवाणी सुनने इसलिये आया था जिससे मेरे अशुभ परिणाम पवित्र हों। लेकिन यहाँ सभा में ही मुझे कषाय दिखाई दे रही है, अब मैं कहाँ परिणाम पवित्र करने जाऊँगा? ज्ञानी! पता नहीं किसको रोष बढ़ जाये? पता नहीं कौन जीव किसके ऊपर घात कर दे? तुम्हारा उपदेश घातक हो गया तो ये तत्त्वोपदेश नहीं बचा। किंचित् भी काषायिक भाव हो, उस दिन उपदेश के लिये विराम दे देना, दूसरे विद्वानों को भेज देना।

साधु के मन में विकल्प आ रहा हो, तो दूसरे साधु को प्रवचन करा देना, स्वयं नहीं करने का। उपदेश तो चित्त की प्रसन्नता में होते हैं। चित्त प्रसन्न होगा, तो आपके हृदय से जिनवाणी स्फुटित होगी। और विषादि परिणामी जीव भी सुन रहे होंगे, उनका विषाद समाप्त हो जायेगा। इसलिये आवेश में तत्त्वोपदेश नहीं। और तत्त्वोपदेश की भाषा तत्त्वोपदेशभूत होना चाहिये। ग्रामीण/गमारू, चकार-मकार की भाषा का प्रयोग तत्त्वोपदेश में किंचित् भी स्वीकार नहीं किया। तत्त्व की प्ररूपणा जो है, उसमें धारा स्फुटित होना चाहिये।

हे ज्ञानी! आप मार्ग से चलकर आये हो, अतः श्रांति होगी आपके शरीर में। कुछ समय के लिये विश्रांति ले लीजिये। अभी-अभी चलकर आया है, थोड़ा बैठ भी नहीं सका, अतः थोड़ा बैठ जा। ओहो! कितना अन्तर आ गया? इसी प्रकार से प्राकृत भाषा जनसामान्य की भाषा थी। प्राकृत भाषा को प्रयोग करने की शैली है। जैसा हृदय होता है, वैसा भाषा का प्रयोग होता है। जैसा भाव होता है, वैसा भाषा का प्रयोग होता है।

भैया! आपके हाथ में लेखिनी है। विद्वान् हैं, पत्रकार हैं। जब यह भक्ति से भरा होता है किसी योगी के प्रति, तब इसकी लेखिनी से अमृत टपकता है। कहीं कुपित भाव से लिखने बैठ जायेगा, तो वही हाथ होता है, वही विद्वान् होता है, वही बुद्धि होती है, लेकिन विष टपकता है।

परिणमदि जेण दव्वं, तक्कालं तम्मय त्ति पण्णत्तं।
तम्हा धम्म परिणदो, आदा धम्मो मुणेयव्वो।। 8 ।। प्र.सा.।।

ये ज्ञानी! दर्पण वही है, फ्रेम वही है, काँच वही है, पर काला व्यक्ति आयेगा दर्पण के सामने तो उसका चित्र कैसा दिखाई देगा? और गोरा हो तो? दर्पण का क्या दोष? जैसा विम्ब होगा, वैसा प्रतिविम्ब होता है। जैसी परिणति होती है, जीव के व्यवहार की गति वैसी होती है। जब प्रेम होता है तो आप भाई को कितनी मधुर भाषा से बुलाते हो? और जब द्वेष हो जाता है, तो कैसे बुलाते हो? जैसी व्यवहार की गति और परिणति होगी, वैसी भविष्य की तेरी जीवन की गति होगी।

लेखक असंख्यात-गुणश्रेणी कर्म की निर्जरा करता है और लेखक तीव्र कर्म का बंध करता है। 'समाधितंत्र अनुशीलन' जब मैं लिख रहा था, पूरे 'गोम्टेश' का विहार हो गया और लेखन चलता रहा। कभी विहार की थकान महसूस नहीं हुई। कितना गूढ़मयी है वो? जगत के वेदान्त, उपनिषद, समयसार आदि के गूढ़मयी रहस्य को समझना है तो 'समाधितंत्र' पढ़ना।

जब लिखते हैं, तब पूरा विषय झलकता है। तत्त्व की व्याख्या के काल में, तत्त्व के लेखन के काल में जो विशुद्धि बनती है, मैं उस विशुद्धि को सामायिक से कम नहीं समझता हूँ। लिखता वही है, जो लख रहा है। लिखा तो दिखता है, पर लखने वाला लिखता है। लखा स्वयं जाता है।

आचार्य कुन्दकुन्द की वाणी इतनी मधुर क्यों? उस जीव ने पूर्व में लखा है, और लखने के बाद लिखा है। कितना गहरा लिखा है? जिसने गहरा लखा है, वही गहरा लिख सकता है। जिसने गहरा लखा नहीं है, वह गहरा लिख नहीं सकता और गहरा कह नहीं सकता। जिसने प्रसूति की नहीं, वो माँ प्रसूति की पीड़ा का व्याख्यान करे, तो उसके व्याख्यान पर चहरे की मुद्रा बता देगी कि यह पीड़ाविहीन व्याख्यान कर रही है। जो पीड़ा सहन कर व्याख्यान करेगी, तो उसके शरीर के हाव-भाव व सिसकियाँ प्रकट कर देगी कि इसने पीड़ा को सहन किया है।

मुख का बेटा और पेट के बेटे में महान अंतर होता है। मुख के बेटे अनेक होते हैं। वो तो स्वार्थ निकालने के लिए उनको बेटा कह दिया जाता है। पर पेट के बेटे कुछ ही होते हैं। किसी से भी प्रेम से कह देते हो 'बेटा', पर उस बेटे को हिस्सा नहीं देते हो आप।

भैया! भावों की परीक्षा तब होती है, जब कोई पिता अपने भतीजे के साथ अपने बेटे को लड्डू खिलाये। कितना भी साम्यभावी जीवा होगा, भीतर का मन कहेगा कि अन्तर है।

व्यवहार दृष्टि से व्याख्या करूँ तो यों कहना कि आज के युवा मुनि न बन पाये, तो विशेष विकल्प नहीं। गृहस्थ भी बनना चाहे, तो उनको ये समझाकर रखना, बेटा! धर्म का, वंश का, जाति का राग जो होता है, वह कभी-न-कभी टकराता है। आप बूढ़े भी हो जाओगे, तो पति-पत्नी में झगड़ा नहीं होगा। तुम विजातीय विवाह करके आओगे, उसको मात्र वासना का सम्बन्ध था, धर्म का सम्बन्ध नहीं था, जाति का सम्बन्ध नहीं था। वासना की उम्र होती है। जब उसकी वासना नष्ट हो जायेगी, वो पत्नी तुझे छोड़कर भाग जायेगी। यदि धर्म का संबंध होगा, तो हम दोनों धर्मात्मा हैं, धर्म को कैसे छोड़ सकते हैं? मुख का बेटा, पेट का बेटा, राजा श्रेणिक के सामने एक बहुत बड़ा प्रकरण आया। एक पुरुष की दो पत्नियाँ थीं। पति का वियोग हो गया। दो में से एक का पुत्र था, दूसरी के कोई सन्तान नहीं हुई। पति के वियोग के बाद अब दोनों को मात्र इकलौता बेटा दिख रहा था। दोनों लड़ने लगी, कि बेटा मेरा, बेटा मेरा। माँ! बुरा नहीं मानना, प्रकृति ने आपको बहुत बड़ा अस्त्र दिया है। उस अस्त्र के बल पर ही तुम जी पा रही हो। इन बेचारों के हाथ-पाँव टूटे हैं तो उसी अस्त्र से टूटे हैं। कोई जरा-सी बात हुई, आँसू टपका दिये। बस, आदमी पिघला, बहा और गिरा। सही बात है न माँ?

विश्वास मानो माँ! बहुत बड़ा अस्त्र है आपके पास। पर समझदारों के लिये आपका अस्त्र काम में नहीं आता। नासमझ ही आपके अस्त्र से प्रभावित होते हैं। भैया! जीवन में ध्यान रखना, कुछ पुरुष ऐसे भी होते हैं, जो शीघ्र रोये। इनसे बचके रहना। जितनी जल्दी आदमी रोता है, उतनी जल्दी वो क्रोधित भी होता है। भावुकतावश। कोई गम्भीर कार्य उनसे ले पाना बहुत कठिन है। पता नहीं कब मचल जायें?

जिसका पुत्र नहीं था, वह इतने हाव-भाव प्रकट कर रही थी। अंत में श्रेणिक परास्त हो गया, वह कोई निर्णय नहीं कर पाया कि मैं किसको पुत्र दूँ? अभय कुमार की युक्ति काम कर गई। अभय कुमार बोले-पिता जी! इसका निर्णय मैं कल दूँगा। बड़ा विवेकी पुरुष था अभय कुमार। दूसरे दिन दोनों मातायें राज्यसभा में उपस्थित हुई। पूरी सभा लगी हुई थी कि बेटा किसका? जिसका पुत्र था, वह भी कह रही कि बेटा मेरा ही है। जिसका पुत्र नहीं था वह भी कह रही कि बेटा मेरा है। अभय कुमार ने कहा- आप दोनों का ही बेटा है न? बोलीं-हाँ। अभय कुमार बोला-कोई बात नहीं है। जब आप लोग नहीं स्वीकार कर रही हो, तो मैं इसके 2 विभाग करता हूँ। एक-एक भाग आप दोनों को देता हूँ। अभय कुमार कोई विभाग नहीं कर रहा था, फिर भी एक चमचमाती तलवार मँगा ली और बेटे को लिटा दिया। अब राज्याज्ञा थी तो वहाँ बेटे की चलती क्या? वह लेट गया बालक। क्या दशा होगी? जैसे

ही नंगी तलवार लेकरके सैनिक से कहा इसके दो विभाग कर दो, सोचा कि पुनः एक बार पूछ लेता हूँ इन माताओं से कि बेटा किसका है? तो जिसका बेटा था, क्या कहती है? 'हे राजन्! इसी का बेटा है, इसको दे दो आप, लेकिन दो भाग मत करो, क्योंकि जीवित रहेगा तो देखती रहूँगी। यदि चला गया, तो न मेरा बचेगा और न इसका बचेगा। निर्णय हो गया। जो यूँ कह रही थी कि करदो-करदो दो भाग, अभय कुमार समझ गया, कि जन्म देने वाली माँ कभी लाल के टुकड़े नहीं कराती है। ये सांची माँ है जो यह कहती है कि इसी को दे दो।

पेट का बेटा और कण्ठ का बेटा। जो जैनकुल में जन्मा होगा, वह जिनवाणी में .श्रा रखता होगा। निर्ग्रन्थ गुरुओं पर और अर्हन्त पर .श्रा रखेगा, विश्वास रखना, वह कभी भी अपने आपको धर्म से विपरीत नहीं ले जायेगा। लेकिन जो बाहर से आयेगा, कहीं-न-कहीं उसके अन्दर गाँठ रहेगी और तत्त्व के विपरीत वह कथन कर देगा, क्योंकि उसे तो मात्र अपना जीवन जीना है, आपके तत्त्व से उसे कोई प्रयोजन नहीं है। और जिसके अंतरंग में है, कि मेरे कुल का, वंश का धर्म दिगम्बर है, जो परम्परा से दिगम्बर है, उसकी रक्षा मात्र दिगम्बर ही कर पायेगा, कपड़ेधारी कर नहीं पायेगा। वो कहीं-न-कहीं कपड़े में ही .शुोपयोग बना देगा। मुमुक्षु! वस्तुस्वरूप समझो।

चित्त स्वस्थ है, तो ही तत्त्वोपदेश करने बैठना। जब तक तत्त्व का ज्ञान नहीं है, ज्ञाता नहीं हो, तब तक वक्ता बनने के भाव मत लाना जीवन में। जिस विषय के ज्ञाता नहीं हो, उस विषय के वक्ता मत बनके बैठ जाना।

ज्ञाता बने बिना जो वक्ता बन जाते हैं, वे स्व-पर के बैरी हो जाते हैं। स्वयं मिथ्यात्व में डूबेंगे और दूसरों को डुबा देंगे। वाहनचालक और वक्ता, इन दोनों को मद से रहित होना चाहिये।

हे ज्ञानी! भोजन के समय, भजन के समय, प्रवचन के समय चित्त प्रसन्न होना चाहिये। क्यों कह रहा हूँ? ध्यान दो। अशुभ चित्त होगा, तो प्रवचन आपका दूषित हो जायेगा। और भजन क्यों कह रहा हूँ? सामायिक करने बैठे, .शु एकांत मिल गया तुझे। जीव बनता है तो एकांत में बनता है, जीव बिगड़ता है तो एकांत में बिगड़ता है। मित्रो! जब भी जीवन का विकास होगा, तो एकांत में होगा और जब भी ह्रास होगा, तो एकांत में होगा। आत्मा का ध्यान भी एकांत में लगता है, अशुभ करने के लिये व्यक्ति एकांत खोजता है।

जब तुम सामायिक करने या भजन करने जा रहे हो, आगम वचन है कि 48 मिनट की सामायिक कर रहे हो तो 48 मिनट पहले बाकी लोगों से चर्चा करनी बंद कर देना चाहिये।

आप कोई पीरियड पढ़ाते हो, तो एक पीरियड पढ़ाने के बाद थोड़ा विश्राम/विराम लेना चाहिये। जो आप पढ़ाके आये हो, उसको पहले आप खाली करो, फिर दूसरा पीरियड पढ़ाइये। यदि एक अध्यापक दो विषय पढ़ाता है, तो यहाँ का वहाँ करेगा, वहाँ का यहाँ करेगा। ऋण में धन मिलायेगा तो बल्ब फ्यूज हो जायेगा। भैया! यही हो रहा है आज समाज में। इन वक्ताओं को इतना समय ही नहीं मिलता और हर विषय में अपनी पकड़ बनाना चाहते हैं, तो परिणाम ये मिलता है कि निश्चय का तार व्यवहार में और व्यवहार का तार निश्चय में। ज्ञानी! दोनों जोड़ दिये ऋण-धन मिलाकरके, तो समाज में फाल्ट हो रहा है।

जब निश्चयधारा निश्चयधारा है और व्यवहारधारा व्यवहारधारा है, तो इन दोनों धाराओं को बराबर लगाइये, तब बल्व जलेगा। होल्डर में भी दो डोरियाँ जाती हैं, मालूम है तुझे। और इतनी दूरी/अन्तर रहता है कि एक दूसरे को स्पर्शित न होने पाये। इसी दृष्टि से कहा है कि व्यवहारदृष्टि और निश्चयदृष्टि में इतना अंतर होना चाहिये। व्यवहार का व्यवहार विषय बनाओ, निश्चय का निश्चय विषय बनाओ, लेकिन दोनों का ध्येय प्रकाश होना चाहिए। आत्म-प्रकाश, चिद् ज्योति।

तो जब सामायिक करने आप गये थे, एकांत मिला न? और किसी ने आपके कान में कुछ कह दिया कि अमुख व्यक्ति आपके बारे में ऐसा बोल रहा था। उसने तो आप को आग लगा दी है। एक घण्टे तू जहाँ निजानुभव करने वाला था, परमेष्ठी की आराधना करने वाला था, वहाँ परपुरुष की आराधना में लग गया।

हे श्रावको! योगियों के मित्र बनके रहना, योगियों के शत्रु बनके मत रहना। मैं उसे मित्र नहीं मानता हूँ, जो मेरे सामने मेरी प्रशंसा करे और दूसरों की निंदा करे। भैया! अपन को एक बहुत बड़ी विद्या सीखना है। यदि आज मैं आपके सामने दूसरे की निंदा कर रहा हूँ आपको खुश करने के लिये, तो विश्वास मानना, जब तू मेरे पीछे हो जायेगा तो तेरी भी निंदा करेंगे, क्योंकि उसकी तो आदत में आ चुका है। ज्ञानी! आप योगी के मित्र बनके रहना। यदि आपने योगी के कान में तत्त्व के विपरीत बात डाल दी और जीव का मस्तिष्क उसी-उसी में चला गया, तो आपने उस जीव के मुनिपने का घात कर दिया।

'उत्तर पुराण' में गुणभद्र स्वामी ने एक कथा लिखी है। राजा श्रेणिक तीर्थंकर भगवान् के समवसरण में जा रहा था। मार्ग में मुनिराज ध्यान में लीन दिखे। श्रैणिक ने उन मुनिराज को देखकर गद्गद् भाव से उन मुनिराज को नमस्कार किया। अहो! धन्य हो इनके धैर्य को, धन्य हो उनके ध्यान को। पर वो ध्यान किसका चल रहा था? एकदम कड़े बैठे हुये थे,

भृकुटियाँ चढ़ी हुई थीं। वरधर्म नाम ही हो गया। श्रेणिक वर्द्धमान स्वामी के समवसरण में प्रश्न करता है–हे भन्ते! इतना उत्कृष्ट ध्यान कर रहे हैं मुनिराज, उनका क्या परिणमन होगा?

'श्रेणिक'! नाम लेना कोई नई परम्परा नहीं है। नहीं तो लोगों के मन में प्रश्न आ जाये कि महाराज नाम क्यों ले रहे हैं? अरे! तुमको मालूम होना चाहिये था कि तीर्थंकर महावीर की वाणी में भी श्रैणिक का नाम खिरा था। परमात्मा की वाणी में खिरा, हे श्रैणिक! इस समय मुनिराज का गुणस्थान गिर रहा है। जब तुम मुनिराज को सम्बोधोगे, तब उनका गिरता हुआ गुणस्थान चढ़ेगा, शीघ्र ही क्षपकश्रेणी चढ़कर केवलज्ञान को प्राप्त करेंगे।

कोई मुनि के बारे में ही मुनि की ही निंदा क्यों कर रहा हो, वह कुछ भी मुनि को जाकर नहीं सुनाने का। तुम्हें सगे भाई का प्रेम अच्छा लगता है कि नहीं? यदि भाई भाई को गाली भी दे रहा हो और यदि आपको उसका प्रेम अच्छा लगता है, तो क्या बोलना? छोटे भैया से बोलना–भैया! तुम्हारे बड़े भैया तो इतने अच्छे हैं। वे हम से कह रहे थे कि हमें अपने छोटे भैया के लिये ये मकान देना है। जबकि उसी मकान पर झगड़ा हो रहा था। और बड़े भैया से कह देना कि आपका छोटा भैया कह रहा था, कि जैसे बड़े भैया चाहें वो हमें स्वीकार है। ज्ञानी! आपकी भाषा ने दोनों की प्रीति बढ़वा दी। और तुम ऐसे निकले, जैसे वो गीदड़ था।

भैया! एक सेठ था व्यापारी। बैलगाड़ी पर व्यापार करता था। उसके बैल का पैर टूट गया तो उसने छोड़ दिया बैल को। अब इतना पैसे वाला तो था ही, दूसरा बैल खरीद लिया उसने। उस बैल को जंगल में छोड़ आया। हरी घास चरता और झरनों का शीतल पानी पीता। वह मस्त हो गया। एक दिन पानी पी रहा था, उसी समय शेर आया। एक तट पर सिंह जा रहा था, दूसरी ओर बैल। जब बैल ने अपनी आवाज की, तो शेर घबरा गया। क्या जंगल में मेरे से बड़ा कोई सम्राट आ गया? वहां एक गीदड़ था, उसने देख लिया और उस शेर से जाकर कहता है–स्वामी! आप बिना पानी पिये क्यों लौट गये वापस? तो शेर कहता है कि भैया! पता नहीं कौन–सा जानवर मेरे से ज्यादा शक्तिमान है? गीदड़ कहता है कि आप चाहो तो मैं आपकी मित्रता करा सकता हूँ। शेर ने गीदड़ ने मित्रता करा दी। शेर की और बैल की मित्रता हो गई। उसको मंत्री बना दिया। जब दोनों की मित्रता हुई, तो शेर ने बैल को भोजन–व्यवस्था सौंप दी। और जब बैल को भोजन व्यवस्था सौंपी तो, शु शाकाहारी जीव, उसने पूरी व्यवस्था बदल दी। सबको बोल दिया– कोई भी माँस सेवन नहीं करेगा। गीदड़ बोला–मैंने ही तो उपद्रव कर लिया। ऐसा समझौता कराया कि मेरे भोजन के लाले पड़ रहे अब।

भैया! सुनो–जो पुरुष किसी के बारे में उसके पीछे आलोचना करे, उसके लिये वट्टकेर स्वामी ने 'मूलाचार' जी में लिखा है 'पिष्ट माँस भुज्जी'। हे ज्ञानी! क्यों तू पीठ का माँस खा रहा है? सारे अभक्ष्य छोड़ देना सरल है, शुद्ध भोजन करना सरल है, पर पीठ के माँस को छोड़ पाना बहुत कठिन है। बड़ा से बड़ा महाव्रती बन जाये व्यक्ति, फिर भी पीठ का माँस खा बैठता है। क्या हुआ? सुन लेना, भैया! करना मत ऐसा। अपने स्वार्थ के वश कोई क्या नहीं कर सकता है? इसलिये सम्हलके रहना। कौन, कब, किसको दगा दे जाय, कोई निश्चित नहीं है। जीवन में कोई महापाप है तो विश्वासघात करना है। कभी भी विश्वासघात नहीं करना।

क्या किया? उसने सोचा कि इन दोनों को लड़ा दो, तब काम बनेगा। सिंह के पास पहुँचा, बोला, महाराज! आपने जिसको अपने–सम किया और मंत्री पद पर अधिष्ठित किया, श्री को देखकर कौन नहीं इतराता? वो आपका राज्य छीनने के प्रयत्न में है। शेर कहता है–नहीं, वह तो ऋषभदेव का चिएँ है। वृषभ शान्त प्राणी है। वह ऐसा नहीं कर सकता है। गीदड़ बोला, महाराज! अभी आपको मालूम नहीं है। भूखा पुरुष क्या नहीं कर लेता? लोभी पुरुष क्या नहीं कर लेता? ऐसी भाषा का प्रयोग किया उसने। सिंह बोला, कैसे जानूँ? गीदड़ बोला–जब अपने पैरों से जमीन खोद रहा हो, नाक–नथूड़े फड़क रहा हो, आप समझ लेना कि वह आप पर आक्रमण करने वाला है।

उधर बैल के पास गया, बोला–क्षमा करना। आप तो सीधे–सादे हो, परन्तु पंजे वाले पर क्या विश्वास? नाखून वालों पर क्या विश्वास? आज बनराज आपका शिकार करके अपने उदर की पूर्ति करना चाहते हैं। वह बोला– ऐसा नहीं हो सकता है। विश्वासघात कैसे? बोला–मानिये। जब रक्त नयन हो, भृकुटियाँ खिंच रही हों और अपने पंजों से जमीन कुरेद रहा हो, तो आप समझ लेना कि मेरे ऊपर आक्रमण होने वाला है।

दोनों को भिड़ा दिया, दोनों के परिणाम भर दिये। अतः दोनों जब एक–दूसरे से मिले तो सिंह रक्त–नयन मिला और बैल सींग से जमीन कुरेद रहा था। बैल बेचारा कहाँ बचने वाला था? सिंह ने पंजा मार दिया, उसके प्राण–पखेरू उड़ गये। क्यों, भैया! गीदड़ ने अच्छा किया? नहीं किया। तो हे ज्ञानियो! इस गीदड़वृत्ति का आलम्बन जीवन में कभी मत लेना। ये पिष्ट–मांस–भुज्जी है।

किसी का भला नहीं कर पाओ तो विकल्प मत करना, पर बुरे करने के भाव मत लाना। सामायिक के काल में साम्यभाव रखना, अशुभ सुनके सामायिक करने मत बैठ जाना।

हुआ क्या उन मुनिराज का? वह सम्राट थे पहले के। इसलिये दीक्षा के उपरान्त गृहनगर से दूर ही रहना चाहिये। विशेष करके पञ्चम काल में। इतना धैर्य नहीं है, इतनी क्षमता नहीं है जीव के पास कि इतनी जल्दी राग को सम्हाल पाये।

गृह नगर अकेले तो पहुँचना ही नहीं चाहिये। यदि वहाँ जाकरके कहीं राग उमड़ पड़ा, तो वह राग कहीं श्रावक को प्रकट दिख गया, तो जिनशासन की हँसी होगी। लोग ये कहेंगे कि देखो रागी हैं महाराज। क्यों? पूछ रहे थे कि लड़का कैसे हैं? घर में क्या हो रहा है? हे स्वामी! जब तुमने ये सबकुछ छोड़ दिया है, अब घर में कुछ हो भी जायेगा, तो तुम संचालन करने जाओगे क्या? अब घर का संचालन मत कर, निज घर का संचालन कर।

जहाँ स्त्रियों का विचरण हो, पशुओं का विचरण हो, व्यायामशाला हो, मदिरालय हो, वेश्यालय हो, ज्ञानियो! तमेरे का घर हो, सुनार का घर हो, ऐसे स्थान पर दिगम्बर साधुओं को नहीं ठहरना चाहिये। स्वर्णकार का घर होगा, वहाँ ठुकाई-पिटाई सुनाई पड़ेगी तो सामायिक में विघ्न होगा। व्यायामशाला होगी तो वहाँ य़ोाओं की भुजायें फड़कती दिखाई देंगी। अथवा आजकल तो बहुत सारे यंत्र आने लगे हैं, उनकी आवाज खनकेगी। मदिरालय समझते हैं? ऐसे स्थान पर नहीं ठहरने का। इसके साथ-साथ चौराहे पर भी साधु को नहीं बैठना चाहिये। जहाँ से चारों ओर से लोगों का गमनागमन हो, ऐसे स्थान पर भी साधु को नहीं ठहरना चाहिये। कौन-सा पुरुष, कैसी बात कर रहा है?

जो वरधर्म नाम के मुनिराज थे, एक चौराहे के स्थान पर बैठे हुये थे। अपने ध्यान में लवलीन थे। हे मित्रो! मैं क्यों बार-बार कह रहा हूँ आपसे? साधु के मित्र बनना, शत्रु मत बनना। साधुओं के प्रति सेवा की ज्यादा भाषा बोलना भी उनकी शत्रुता है। उनका स्वास्थ्य खराब है तो उपचार करो। ये मत कहना कि हाँ-हाँ, कितनी पीड़ा शरीर में हो गई? ये तो शरीर को छोड़कर आत्मस्थ हो रहे थे, तूने ऐसा कहके शरीर में और रख दिया। महाराज दुबले हो गये। अरे ज्ञानी! महाराज को तो पहले ही मालूम था। दो बगीचे हैं।

यज्जीवस्योपकाराय, तद्देहस्यापकारकम्।
यद्देहस्योपकाराय, तज्जीवस्यापकारकम्।। 19।। इष्टोपदेश।।

तपस्या करेगा, तो शरीर तो कमजोर होगा। यदि शरीर बनायेगा, तो तपस्या कमजोर होगी। अब बता क्या करना तुझे? शरीर देखना था, तो सबको मालूम था कि कपड़े उतारेगा तो ठण्डी लगेगी ही। और शरीर की ठण्डी बचायेगा तो मुनि बचेगा क्या? कम्बल ओढ़ना

पड़ेगा फिर। और कम्बल दिगम्बरों में चलता नहीं है। जीव का उपकार चाहता है तो देह का शरीर का अपकार होगा। और आत्मा का उपकार करना चाहता है तो शरीर का अपकार होगा।

चौराहे पर बैठे थे। वहाँ से, मार्ग से पथिक आ रहे थे। एक ने महाराज को पहचान लिया। अरे! ये तो अपने सम्राट हैं। मुनिराज बन गये हैं। दूसरा कहता है–भैया! ये तो अच्छा हुआ कि ये महाराज बन गये। लेकिन, इनका बेटा था। (भैया! दुनियाँ की बातें सुनकर आना, पर मुझे मत बताना।) जैसा संचालन इन्होंने किया है राज्य का, वैसा संचालन बेटा नहीं कर पाया और शत्रु राजा ने बेटे को पराजित करके अपना सेवक बना लिया है। ये शब्द महाराज के कान में चले गये। ज्ञानी! जो राग दबा था, नष्ट नहीं हुआ था, वह प्रगट हो गया।

पञ्चम काल की आत्माओ! राख आ रही थी कण्डे पर। कुछ न करते तो वह अपने आप शान्त हो जाती। राख आते–आते अग्नि नष्ट हो जाती। लेकिन राख आयी, आपने फूंक दी, तो अग्नि और भड़कती है। हे पञ्चम काल के श्रावको! मुनियों पर करुणा करना। ये राख आ रही है इनके ऊपर और आपने आकर यहाँ–वहाँ की बातें की, यानि कहीं राख आपने फूँक दी, तो.....?

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

पुण्यात्मा कौन ?

गूरुशुश्रूषया जन्म, चित्तं सद्-ध्यान -चिन्तया।
श्रुतं यस्य समे याति, विनियोगं स पुण्यभाक्।। 19 ।।

जिसका जन्म गुरुजनों की सेवा करने में, मन यथार्थ आत्मध्यान में और श्रुतज्ञान समताभाव में काम आता है, वही पुण्यात्मा है।

।। देशना।।

अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है।

यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी 'सारसमुच्चय' ग्रन्थराज में तत्त्व की गहराइयों से युक्त होकर, उस सत् स्वरूप की प्ररूपणा कर रहे हैं, जिस सत् की सत्ता को यह जीव आज तक समझ नहीं सका। वस्तु की प्राप्ति जो है, उसका पुण्ययोग भिन्न है। उस वस्तु की प्राप्ति का उपभोग कर पाना, उसका पुण्ययोग भिन्न है। द्रव्य का मिलना लाभान्तराय कर्म का क्षयोपशम है। परन्तु द्रव्य की प्राप्ति का उपभोग कर पाना, ये भोगान्तराय कर्म का क्षयोपशम है।

एक जीव ने बहुत दान दिये। द्रव्य के दान दिये, सो द्रव्य तो बहुत मिला, लेकिन जीवन में कभी गुरु की सेवा नहीं की, सो भोग करने को नहीं मिला। कोटि-कोटि द्रव्य के दान दिये, परन्तु मन में कभी ऐसे भाव नहीं आये कि किसी निर्ग्रन्थ मुनि के हाथ पर ग्रास रख दूँ। किसी भूखे प्राणी को भोजन करा दूँ। ऐसे परिणाम नहीं हुये। उसे ज्ञात था कि यदि द्रव्य दूँगा, तो लोक में लोग मुझे अलग से पहचानेंगे, पर साधु आहार करके चला गया, वह तो उसी दिन की बात रहेगी। ऐसा विचार करके उसने अन्य स्थानों पर धर्मशाला आदि बहुत बनवाये, पर निर्ग्रन्थ योगी के हाथ पर ग्रास रखने के परिणाम नहीं कर पाया। इसका परिणाम यह हुआ कि उसको द्रव्य तो बहुत मिला, पर भोग करने के लिये द्रव्य नहीं मिला। मात्र देख लो, सम्पत्ति सामने है, वैभव सामने है।

ओ ज्ञानी! ऐसा रोग हो गया कि आज वह उसका सेवन नहीं कर सके। आचार्यमहाराज आज इसी बात की व्याख्या कर रहे हैं। ज्ञानियो! पुण्य एक प्रकार का नहीं होता है। जितने प्रकार का उपयोग है, उतने प्रकार के पुण्यास्रव का बंध यदि किया होगा, तभी आपको प्राप्त होंगे। और जितने प्रकार के कर्मास्रव विपरीत किये हैं, तो आपका बेटा भी आकरके आपकी थाली खींचकर ले जायेगा।

कभी चिंतवन ही नहीं किया था कि हमने अन्तराय भी डाला है। धन्य है उन निर्ग्रन्थ तपोधनों को, जो मार्ग में चलते-चलते भी, यदि चिड़िया चुग रही थी दानें, तो उनने अपने कदमों को धीमे कर लिया था, क्योंकि मेरे नियोग से उन चिड़ियों को भय होगा और उस भय से युक्त होकरके उड़ जायेगी तो इनके भोजन में विघ्न होगा। ऐसा चिन्तवन करके धीमे-धीमे चलना प्रारम्भ कर दिया। और आप दौड़कर जा रहे थे, तो उनके भोजन में अन्तराय पड़ा था। और आप चिन्तवन कर रहे थे, कि मैंने तो जीवन में किसी के अन्तराय डाला ही नहीं था। पर तुम बिना विवेक के जो जा रहे थे, उससे उन जीवों को अन्तराय पड़ा था। वो अन्तराय तुम्हारे भोजन में आना प्रारम्भ हो चुका है। घर में आपने नौकरों को रखा था, पशुओं को रखा था, उनको समय पर भोजन-पानी नहीं दिया था। आप सोच रहे थे कि ये तो मेरे अधीनस्थ हैं। लेकिन ज्ञानियो! वे आपके पूर्व के पुण्य के अधीनस्थ तो थे, परन्तु तुम्हारे भविष्य के कर्म के अधीनस्थ नहीं हैं। भैया! यहाँ यह भूल चल रही है जीव की। जिसको आपने पैसों से रखा हो, उसको आप अपना अधीनस्थ मानते हो कि वह मेरा है। ऐसा विचार करके उससे आप कार्य भी ले रहे हो। आपकी धर्मपत्नी क्यों न हो, यदि उसको भी आप समय पर भोजन देने के लिये किसी कारणवश भी मना कर रहे हो, तो कर्म कहेगा, ज्ञानी! पर्याय का सम्बन्ध है, जीव का कोई सम्बन्ध नहीं है। कर्म का और तेरा कोई सम्बन्ध नहीं है, वो तो आके बंधेंगे और फल भी वैसा ही देंगे, जैसा शत्रु के साथ तुमने विघ्न किया होगा। ज्ञानी! ऐसा ही है। कितने सारे कर्म का आस्रव-बन्ध आपने आत्मीयपने में किया है? उनको अपना मानता रहा, पर विश्वास रखो, बेटा भोजन करना चाहता था, पिता के कहने पर उठकर चला तो गया है, पर मन में विकार आया उसके कि समय पर भोजन भी करने नहीं देते।

एक क्षण का विकल्प उसके अन्दर संस्कार डालेगा, कि ये मेरे भोजन में विघ्न कर रहे। और कहीं आपने ये अधिक समय तक किया तो बेटा सोचता है कि पिता जी से अब अलग होना अच्छा है। ये तो ऐसा प्रतिदिन करेंगे। इसलिये वह आप से भिन्न हो गया, कषाय अन्दर में बांधकर रख ली। ज्ञानी! भविष्य की पर्याय में वही कुणिक जैसा बेटा बनकर आ जाता है। कंस जैसा बेटा बनके आ जाता है। इसलिए एक-एक पल पर सम्हलने की आवश्यकता है।

पर्याय का सम्बन्ध स्वीकारो। पर्याय के संबंध को जीव का संबंध मत स्वीकारो। और वो भी पर्याय का संबंध तेरा नहीं है। ये तेरे राग में तेरे राग का सम्बन्ध है। किसी के सड़े-गले मॉंसपिण्ड, चर्म, हड्डियों से मुक्त देह को कौन अपना मानना स्वीकार कर सकता है? राग में राग का सम्बन्ध है और राग का सम्बन्धी तुझे पर की पर्याय में लिप्त किये हुये है। भीतर

प्रवेश करके सुनना, क्योंकि ये बाहर का विषय नहीं है। पर की वासना के कारण तू पर की चमड़ी को निहार रहा है। यदि तेरे में वासनाओं का वास नहीं होता, तो हे ज्ञानी। तू चमड़ी को न निहारता, तू चर्म में बैठी भगवान–आत्मा को निहारता।

क्या देखा हमने? चर्म के पिण्ड को देखा है। जो तुझे देखकरके तुझे धर्मात्मा मान रहा था, कभी–कभी ऐसे .श्रा टूटती है तेरे द्वारा दूसरे जीव की। एक युवा अर्हन्त की वन्दना कर रहा था। उसकी वन्दना को देखकरके दूसरा युवा कहता है कि बहुत धर्मात्मा जीव है। कोई कन्या ने देखा, वो भी सोचती है कि ऐसी युवावस्था में धर्म में लीन है। और ज्ञानी! तू दर्शन करके जैसे ही बाहर निकला, तेरे मन में ये भाव आ गये कि ये मेरा मित्र बन जाये, या यह मेरी पत्नि बन जाये।

हे ज्ञानी! वह तो तेरे लिये सम्मान का तिलक लेके गयी थी, इसलिये कि तू बनने वाला भगवान् है लेकिन तूने अपने राग की बात को किसी प्रकार से कह दिया, तो उसी क्षण उसके हृदय में जो .श्रा गुण था तेरे प्रति, वह टूक–टूक हो गया। राग के पास में भले ही फँसा हो, परन्तु जो धर्म का संबंध था, वह विच्छेद हो गया। इसे कहेंगे रसायन की क्रिया। दिगम्बर जैनधर्म में किंचित भी तत्त्व के बाहर चर्चा नहीं है। देश में जितने ग्रन्थ हैं, जितने ग्रन्थकर्त्ता हुये हैं विभिन्न दर्शनों के, सभी का अध्ययन करने के बाद जब चित्त रुकता है, तो मात्र दिगम्बराचार्यो के पास आ जाता है।

कहीं भाषा का, कहीं व्याकरण का सौष्ठव है, परन्तु भावों की विशुद्धिका सौष्ठव तो दिखाई देता ही नहीं। कोई भाषा की प्रधानता में, तो कोई व्याकरण में, तो कोई तर्कों में शुष्क जीवन जी रहा है। लेकिन हमारे वीतरागी आचार्यों ने तर्कागम, शाब्दागम, परमागम में ऐसा भाव भर दिया है कि एक शब्द सुनते ही, एक शब्द पढ़ते ही अंतरंग में वो संवेग भाव प्रवाहित होने लगता है। ऐसे ही अर्हन्त की देशना सुनते ही तुरन्त भावों की विशुद्धि उद्भूत होती है।

हे ज्ञानी! तुझे धर्मात्मा के रूप में देखा जा रहा था और तूने जैसे ही विकारी भावों से दूसरे को निहारा, उसका मन कहेगा, ओ! जिसे मैं धर्मात्मा समझ रहा था, वह तो विषयों की खान है। वह तो इंसान भी नहीं बचा। भोगवृत्ति/अशुभप्रवृत्ति है दुर्गति की हेतु। कोई नारकी तुझे हाथ पकड़ कर बुलाने नहीं आयेगा, विश्वास रखो। यहाँ तो लोग आपको बुलाकर श्री फल चढ़वा रहे हैं, तिलक लगा रहे हैं। कोई भगा भी देता है। यहाँ तो सबकुछ देखने को मिलता है। परन्तु नरक का नारकी आज तक किसी को यह कहने नहीं आया कि आप मेरे साथ चलो। किसी नारकी ने आपका हाथ नहीं पकड़ा। किसी पशु ने आपका हाथ नहीं पकड़ा कि आपको पशु बनना पड़ेगा।

पशु किसी को जनक नहीं बनाता, पशु किसी को जननी नहीं बनाता। यदि किसी को नारकी या पशु बनाने वाला कोई है, वह तेरी वृत्ति है। बहुत दिन हो गये दूसरों को दोष देते-देते। कहता है कि पत्नि रोकती नहीं, तो मैं मुनि बन जाता। रोका किसने है? आज बन जा। भीतर की कमजोरी को तू अपती कमजोरी स्वीकार नहीं करना चाह रहा है, इसलिये पत्नि को दोष दे रहा है। सत्य को कम-से-कम बोलना ही सीख लो, स्वीकार करना सीख लो। ये तो मायाचारी हो गई। एक तो स्वयं की निजी कमजोरी और दोष पत्नि को दे रहा है। कम-से-कम मायाचारी तो मत करो।

कोई भी निमित्त कभी उपादान को प्रभावित नहीं करते। उपादान प्रभावित होना चाहता है तो निमित्त बन जाते हैं। कोई भी निमित्त किसी को प्रभावित करने नहीं आते। उपादान प्रभावित होता है, तो निमित्त कार्यकारी हो जाते हैं। आज तक किसी भी व्यक्ति को बर्तन में रखी हुई मूँगफली ने जुकाम किया, खांसी की? आप तो खाद्यभूत पदार्थों की बात कर रहे हो, मैं तो कहता हूँ कि हाथ में रखा जहर किसी को मार नहीं सकता है। मुठ्ठी का जहर मृत्यु का कारण नहीं होता है। मृत्यु भी होती है, तो तू ब़ुपिूर्वक मुख में रखता है, तब तेरी मृत्यु होती है जहर से।

ऐसे ही जगत में जितने विषय हैं, चाहे कषायभूत हों, चाहे पुण्यभूत हों, चाहे पापभूत हों, कोई भी निमित्तभूत द्रव्य किसी को निमित्त होता ही नहीं है। ज्ञानी! निमित्त तभी बनता है, जब उपादान प्रभावित होता है। आज तो स्वीकार करना ही पड़ेगा। बिना स्वीकार किये पञ्चम काल तक आ गये हो और यदि आज भी स्वीकार नहीं किया, तो छटवां काल कह रहा है कि बेटा! आओ, हम तैयार हैं।

हे ज्ञानी! तेरे विशु परिणाम नहीं होते तो विशुसागर क्या कर सकते थे? निमित्त तभी बना है, जब उपादान प्रबल था। इस नगर में लाखों लोग रहते हैं, बहुत धर्मात्मा रहते हैं, लेकिन सभी क्यों नहीं आ पाये हैं? जिनका उपादान प्रबल था, उनके लिये विशुसागर निमित्त हैं। जिनका उपादान प्रबल नहीं है, उनके लिये निमित्त नहीं हैं।

तुम पुराण हो कि नहीं? मैं सनातन हूँ, मैं पुराण हूँ। मेरा आदि नहीं, अन्त नहीं, मध्य नहीं है। मैं तो त्रैकालिक हूँ। जब मैं त्रैकालिक हूँ, पञ्चम काल में आया हूँ, तो विशुसागर से भी बोल देना, महाराज! तुम इतने पुण्यात्मा तो हो, कि पञ्चम काल में मुनिराज बन गये, पर इतना पुण्य तुम्हारा नहीं था कि महावीर स्वामी के सामने होते हुये भी तुम उनके साथ निर्वाण को चले जाते? यहाँ क्यों आना पड़ता काले काल में? और क्यों प्रवचन करना पड़ते?

.शुात्म-स्वरूप में लवलीन होकरके अपने चिद्स्वरूप में लीन होते। क्यों इधर-उधर भटकते फिरते? (तुम तो हमको अर्हन्त बनाने आये हो) ठीक है। ये भक्ति की भाषा बोल रही है। (आपको तो मोक्ष जाना ही है, हमें भी लेके चले जाओ) ये तो ज्ञानी! ऐसे बोल रहा है, जैसे अपने घर की बात है।

भैया! एक गिलसिया रखी है, उसमें पानी रखा है। ढार दो भगवान् के ऊपर। भैया! कितना सरल है आपने बोल दिया? ऐसे ही भैया! ये पिच्छि है, कमण्डलु है, उतार दो कपड़े और बैठ जाओ हाथ पे हाथ रखके। कुछ नहीं करना, यही तो मोक्षमार्ग है। पर चौबीसियाँ, अनन्तानन्त हमने देखी हैं, आपने भी देखी हैं। क्या करूँ? निमित्त प्रभावित होता है। चूने में हल्दी मिल जाये तो रंग बदल जाता है। पर बदलता तभी है, जब मिल जायेंगे।

एक साधकतम् करण है, साधक है। साधन तो अनंतबार मिलते हैं और अनंतबार मिले हैंऋ पर साधकतम् तभी बनता है, जिससे कार्य की स़िद्धि निश्चित होती है। 'साधकतं करणम्' 'जैनेन्द्र व्याकरण' का सूत्र है। और इस सूत्र को आचार्य अभिनवयतिभूषण जी महाराज ने 'न्याय दीपिका' में बड़े विशालरूप में स्वीकार किया है। तब तक निमित्त 'निमित्त' नहीं है, जब तक उपादान कार्यभूत नहीं हो रहा है। जिस निमित्त से शीघ्र ही उपादान कार्यभूत होता है, वही उसके लिये 'साधकतं करणम्' होता है। निमित्त को दो भागों में विभाजित कर दो।

एक अन्तरंग निमित्त होता है, एक बहिरंग निमित्त होता है। बहिरंग निमित्त अनन्त बार मिल भी जाये, लेकिन अंतरंग निमित्त नहीं मिलता है, तो बहिरंग निमित्त कार्यकारी नहीं होता है। जो बहिरंग निमित्त है, वह तेरे उपादान की योग्यता ही है।

तदेतन्मूलहेतोः स्यात्कारणं सहकारकम्।

यद्बाह्यं देशकालादिः तपश्च बहिरङ्गकम् ।। 15 स्व. सं.।।

ये भी मान कर मत बैठ जाना सर्वथा कि जब उपादान आयेगा तो कार्य होगा। उपादान कहीं से आता नहीं है, उपादान तो होता है। ये तत्क्षण की योग्यता, तत्क्षण की पर्याय। आज किसी एक अजैन बन्धु का समाचार आया था, महाराज से कहो कि हम भी सुनते हैं। तनिक सरल कर दो। बहुत ऊपर से चला जाता है कभी-कभी। लेकिन क्या करूँ? यहाँ पर ऊपर-ऊपर के विद्वान् तो हैं उच्च कोटि के। आपने इनके ऊपर बहुत अनुकम्पा कर दी है। श्रैणिक का प्रश्न न होता, तो ज्ञानी! आज हमारे पास द्वादशांग वाणी भी न होती। ऐसे ही निमित्त मिल गया। मैं तो बहुत सरल बोलने वाला था। अब सरल नहीं बोल रहा भैया! वो तो निमित्त, उपादान शुरू हो ही गया।

यदि केवली के कैवल्य में योग्यता न होती, तो गौतम स्वामी क्या करते? इसलिये आपको ये कहना चाहिये मुमुक्षु!

योग्योपादानयोगेन, दृषदः स्वर्णता मता।

द्रव्यादिस्वादि संपत्तावात्मनोऽप्यात्मता मता ।। 2 इष्टोपदेश।।

योग्य निमित्त, योग्य उपादान। जब इन दोनों का सहयोग होता है, तभी कार्य की सिद्धि होती है। योग्य उपादान की योग्यता से, योग्य निमित्त के मिलने से ही कार्य की सिद्धि होगी। इसलिये निमित्त, उपादान बराबर होने पर भी हे ज्ञानी! तू मुस्करा मत। नहीं तो कहता, महाराज जी! बेटे की माँ न होती तो मैं भी बालब्रह्मचारी होता। अरे मुमुक्षु! तू पहले ही बालब्रह्मचारी हो लेता, तो बेटे की माँ तेरे घर क्यों आती? वो तेरे बेटे को जन्म देने में निमित्त तभी बनी, जब तेरे अंतरंग का उपादान विकृत हुआ। अंतरंग का उपादान विकृत न होता, तो बेटा घर में नहीं आता और तू महामुनिराज होता।

निश्चयमिह भूतार्थं व्यवहारं वर्णयन्त्यभूतार्थम्।

भूतार्थबोधविमुखः प्रायः सर्वोऽपि संसारः ।। 5 पु.सि.।।

कोई निश्चय को भूतार्थ कहता है, कोई व्यवहार को भूतार्थ कहता हैऋ पर ज्ञानियो! 'भूतार्थ-बोध-विमुखः' भूतार्थ बोध से विमुख प्रायः सभी संसारी जीव हैं। ज्ञानी! तू उपादान मात्र को लेकर बैठ जायेगा, तो उपादान लंगड़ा हो जायेगा। निमित्त मात्र को लेकर बैठ जायेगा, यदि निमित्त मात्र कार्य करने लग गया, तो निमित्त बचा कहाँ? वह तो उपादान ही हो जायेगा।

माँ! चौकी रोटी बनती है, कि बेलन रोटी बनता है, कि चौकी-बेलन से रोटी बनती है? रोटी कौन बनता है? जो रोटी बनता है, वह न चौकी होती है, न बेलन होता है। वह तो आटा होता है। उपादान जो है, वह कार्यभूत होता है और निमित्त जो है, वह उपादान नहीं हो गया। निमित्त, निमित्त तो है, पर उपादान नहीं। उपादान के बिना निमित्त कुछ करता नहीं है और निमित्त के बिना उपादान कार्यभूत परिणत होता नहीं।

एकेनाकर्षन्ती श्लथयन्ती वस्तुतत्त्वमितरेण।

अन्तेन जयति जैनीनीतिर्मन्थाननेत्रमिव गोपी ।। 225 पु.सि.।।

एक को खींचो, दूसरे को छोड़ो, ऐसा नहीं है। एक को ढीला करो, दूसरे को खींचो। छोड़ो मत दोनों को। सोचो, समझो, लोगों ने अर्थ उलटे किये हैं। इन विद्वानों ने क्या अर्थ कर दिया है? कि एक को छोड़ो, दूसरे को पकड़ो। तो चला लो, कैसे चल रही है मथानी?

एक ने निश्चय को छोड़ दिया, तो हे व्यवहारियो! प्रश्न है, कि व्यवहार करने का उद्देश्य क्या है तुम्हारा? व्यवहार में लिप्त होना, कि परमार्थ की प्राप्ति? निर्ग्रन्थ मुनि बन गया, सप्तम प्रतिमाधारी, अष्टम प्रतिमाधारी, ग्यारह प्रतिमा धारण कर लिये, तब भी इनकी ध्रुव आत्मा पर दृष्टि नहीं है, तो आपका प्रतिमा धारण करने का उद्देश्य क्या था?और ज्ञानियो! ध्रुव आत्मा पर दृष्टि नहीं है, उसकी प्राप्ति का उपाय तुम्हारे पास नहीं है, तो प्राप्त कैसे करोगे? ज्ञानी! तू रहस्य नहीं समझ रहा है। जब मथनी से मक्खन निकल आयेगा, तो अपने आप उठाकर रख दिया जायेगा। इससे आपको मालूम होना चाहिये, कि ये हमारे वर्तमान के युवा म्यूजियम में मथानी देखने जायें और चूल्हे देखने जायें, क्योंकि अब तुम्हारे घर में बचे ही नहीं हैं। भैया! ये जो हाथ हिला रहे हैं, आगे-पीछे तो हो रहा है, कौन-से हाथ का अभाव है इससे? सद्भाव तो दोनों अवस्थाओं में है। अभाव तो है ही नहीं। प्रधानता तथा गौणता का अर्थ अभाव नहीं समझना, अमुख्यता समझना।

एकेनाकर्षन्ती श्लथयन्ती वस्तुतत्त्वमितरेण।
अन्तेन जयति जैनीनीतिर्मन्थाननेत्रमिव गोपी।।पु. सि. 225 ।।

एक को शिथिल कीजिए, दूसरे को खीचिये। एक को छोड़िये, दूसरे को खींचिये। ज्ञानी! छोड़ने का अर्थ त्यागना नहीं है, ढीला करना है। जब निश्चय की प्रधानता हो,तो व्यवहार को ढीला कर देना और जब व्यवहार की प्रधानता हो, तो निश्चय को ढीला कर देना। परन्तु छोड़ना मत।

जब गोपिका एक हाथ को आगे और दूसरे हाथ को पीछे करती है, तब मथानी घूमती है। आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी ने 'पुरुषार्थ-सिद्धि-उपाय' ग्रंथ में किसी सेठ को नहीं बुलाया, गोपिका को बुलाया है। जैसे गोपिका रस्सियाँ (नोतिन) छोड़ती नहीं। पहले को खींचती, तो दूसरे को ढीला करती है और दूसरे को खींचती, तो पहले को ढीला करती है। अब यहाँ कहना आचार्य उमास्वामी की भाषा में 'अर्पिताऽनर्पित सिद्धेः'। (5/32 त.सू.)। अर्पित यानी प्रधान, अनर्पित यानी गौण, लेकिन अभाव दोनों का नहीं।

जैसे एक रस्सी को ढीला किया, दूसरी को खींचा, परन्तु कार्य चल रहा था। ध्यान दो, दायें हाथ की रस्सी खींचने पर कार्य हो रहा था, कि बायें हाथ की रस्सी खींचने पर कार्य हो रहा था? मुमुक्षुओं को (मुमुक्षुओं से तात्पर्य ज्ञानी जीवों को) ये मालूम होना चाहिये कि जब दायीं रस्सी खिंच रही थी, तब भी कार्य हो रहा था और बायीं रस्सी खींच रही थी, तब भी कार्य हो रहा था। जब यह जीव निश्चय चारित्र का पालन करता है, तब भी परमार्थ की

सिद्धि होती है और जब व्यवहार चारित्र का पालन करता है, तब भी परमार्थ की सिद्धि होती है।

एक कार्य की सिद्धि के लिये अनेक कारण चाहिये। योग्य द्रव्य, क्षेत्र,काल, भाव, तपस्या हो, तब कहीं ये जीव परमात्मा बनेगा। आप में शक्ति तो त्रैकालिक है, पर त्रैकालिक शक्ति जो है वह परमात्मा नहीं बनती है। तत्क्षण की योग्यता परमात्मा बनती है। त्रैकालिक शक्ति परमात्मपने को प्राप्त नहीं होती। त्रैकालिक शक्ति विद्यमान रहती है, परन्तु वही बनता है, जो तत्क्षण की योग्यता है। तत्क्षण की योग्यता से तात्पर्य क्या है?

जिस दिन कन्या जन्म लेती है, उस दिन कन्या स्त्री होती, कि नहीं होती? अभी तो वह स्त्री नहीं, कन्या है। हे ज्ञानी! बालकन्या, बालकन्या तो है, पर स्त्रीवेद की अपेक्षा से वह स्त्री ही है, लेकिन स्त्री नहीं है। कोई पुरुष उस कन्या को माँ नहीं बोलता, पत्नी नहीं बोलता। त्रैकालिक योग्यता और तत्क्षण की योग्यता। त्रैकालिक योग्यता में स्त्री अवश्य है, पर तत्क्षण की पर्याय में वो स्त्रीधर्म प्रकट हुआ नहीं है। वेद की दृष्टि से स्त्री है। वह स्त्री कब कहलायेगी? माँ कब कहलायेगी? जब बेटे को जन्म देगी। इसी प्रकार से हे ज्ञानी! उपादान जो है, निगोदिया में भी है, नारकी में भी है, तिर्यञ्चों में भी हैऋ लेकिन उपादान प्रकट जब होगा, तत्क्षण की योग्यता होगी। मनुष्यायु मिलना चाहिये और भरत क्षेत्र या विदेह चाहिये। और विदेह नहीं है, भरत है, तो उसमें चौथा काल भी चाहिये।

द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव इन सभी निमित्तों की उपस्थिति होने पर और तदरूप ज्ञानी! तेरी परिणति भी चाहिये। यदि उपादान निमित्त मिल जाये और योग्यता नहीं है, तो वे निमित्त भी निमित्त नहीं हैं। क्योंकि आपको अनन्त बार चौथे काल मिले हैं। अनन्त बार आप मनुष्य बने हैं। अनन्त बार केवली भगवान् मिले हैं। निमित्त अनन्त बार मिले हैं, पर हे ज्ञानी! तेरे उपादान की योग्यता नहीं थी। उभय दृष्टि। व्यवहाराभासी से ऐसा कहना और निश्चयाभासी मिले तो उससे यूँ कहना, हे ज्ञानी! निगोदिया में भी भगवान् होने की योग्यता है, पर तू क्यों नहीं बन सका? क्योंकि उत्तम संहनन मनुष्यपर्याय के बिना होता नहीं। उत्तम संहनन तिर्यञ्चों में नहीं होता है, वे महाव्रती नहीं बन सकते। जब मनुष्य उत्तम संहनन को प्राप्त करेगा, तो उत्औष्ट ध्यान उत्तम संहनन में ही होता है और उत्औष्ट ध्यान के सद्भाव में ही निर्वाण होता है। बहिरंग साधनायें कितनी ही घनघोर कर लें, तब भी निर्वाण नहीं मिलेगा, स्वर्ग ही मिलेगा। और पञ्चम काल की दृष्टि से कथन करोगे तो पञ्चम काल में उत्औष्ट ध्यान होता ही नहीं है। अब यूँ कहो कि पञ्चम काल में निर्विकल्प ध्यान होता कि नहीं होता है? उत्औष्ट ध्यान

शुक्लध्यान है। धर्म्यध्यान होता है, वह सविकल्प, निर्विकल्प भूत होता है। पर हे मुमुक्षुओ! सरागावस्था में निर्विकल्प ध्यान नहीं होता है, वीतरागावस्था में निर्विकल्प ध्यान होता है। उन मुनियों के होता है जो जगत् की संस्थाओं से निज की संस्था को दूर रखते हैं।

निर्विकल्प ध्यान उसी मुनि को सम्भव है, जो जगत् की ईंट-चूने की संस्था से आत्मा की संस्था को भिन्न रखते हैं। वे ही कर पायेंगे। क्योंकि आचार्यमहाराज ने स्पष्ट निर्देश कर दिया। मुनि शब्द का प्रयोग किया, निर्ग्रन्थ शब्द का प्रयोग किया, लेकिन क्या कहा साथ में?

निर्विकल्पं तु यद्ध्यानं, अप्रमत्त यतीशनाम्।
बाह्यव्यापारविमुक्तानां, निर्ग्रंथजिनलिङ्गिनामु भावसंग्रह।।

जो बाह्य व्यापार से विमुक्त है, रहित है, ऐसे निर्ग्रन्थ जिनलिंगी मुनि के ही सम्भव है। यदि तुम मुनि भी बन गये और सोचे कि अपने नगर में एक संस्था खोलेंगे और चलायेंगे, हे ज्ञानी! तूने स्थानान्तरण किया है, तूने कुछ अन्य नहीं किया। ये वस्त्र अच्छे नहीं लग रहे थे, सो दिगम्बर भेष धारण कर लिया हैऋ लेकिन राग का अभाव नहीं किया, राग को परिवर्तित किया है। उन मुनि को भी निर्विकल्प ध्यान नहीं है। निर्विकल्प ध्यान के लिये वेद-वेदक भाव का भी अभाव करना पड़ता है।

हे मुमुक्षु! जब भी कमल खिलेगा तो सरोवर में ही खिलेगा। पर हर सरोवर में कमल नहीं खिलता। कीचड़ से युक्त सरोवर में कमल नहीं खिलता। अगाध पानी में कमल खिलता है। और कीचड़ हो गई, पत्ते पर पड़ गई, तो कमल सड़ जायेगा। कीचड़ में जड़ अवश्य है, पानी में कमल अवश्य है, पर कमल पानी के ऊपर ही होता है। ऐसे ही। हे मुमुक्षु! निर्ग्रन्थ योगी समाज में ही रहता है, देश में ही रहता है, राष्ट्र में ही रहता है, लेकिन सामाजिक बनके नहीं रहता है। वह निजानुभूति में लीन होता है। समाज में रहना कोई पाप नहीं है। रहना ही होगा। पर सामाजिक बनके रहना अच्छी बात नहीं है।आपके लिये नहीं कह रहा हूँ, मैं अपने लिये कह रहा हूँ। अपने लिये सोचो तो बहुत अच्छा है। हाँ, शत्रुता समाप्त हो जायेगी। 'राज समाज महा अघ कारन, बैर बढ़ावनहारा।' सुखमय जीवन जी रहा था और जिस दिन आगे बढ़ा तो कोई-न-कोई शत्रु बन ही जाता है।

हे ज्ञानी! मोक्षमार्ग पर बढ़ना है, तो कुछ निमित्तों से बचना, कुछ निमित्तों में लगना, परन्तु ध्रुव सत्य है कि उपादान प्रबल होना चाहिये। नहीं, भैया! इस बात को भूल जाओ। आज से भूल जाओ। इसलिये भूल जाओ कि लड्डू कभी नहीं कहता कि आओ, भैया! मुझे खा जाओ। पर तेरी अनादि की भूल चली आ रही है। उठाकर स्वयं खाता है। ज्ञानी! आपने

लड्डू को भोजन के रूप में क्यों देखा, पुद्गल द्रव्य क्यों नहीं देखा? यदि आप ऐसा मानते हो, जो अभी कह रहे हैं, कि रावण का कोई दोष नहीं है, सब दोष सीता का है। भैया! आपकी धारणा ऐसी चल रही है कि निमित्त कर्त्ता है तो रावण को कोई दोष नहीं देना चाहिये। सीता न होती, तो रावण के परिणाम क्यों होते? ज्ञानियो! अनर्थ फैल जायेगा। व्यभिचार फैल जायेगा सारे विश्व में। कुछ भी कर डालो और कह दो कि निमित्त ऐसा मिल गया, सो ऐसा हो गया। निमित्ताधीन मिथ्यादृष्टि। मनमानी करते चलो और धीरे से कह दो, मेरा क्या दोष? निमित्त मिल गया तो ऐसा हो गया। संयम नाम की वस्तु क्या होगी? उससे कहना, हे ज्ञानी! तू निमित्त को क्यों दोष दे रहा है? लंकेश! तू विभाव -भाव न करता, तूने सीता में नारी को क्यों देखा? तूने सीता में भगवान् को क्यों नहीं देखा? ये निमित्ताधीन दृष्टि का विपर्यास कर दिया उस जीव ने। अब चलिये, 'उपादानाधीन दृष्टि।' बोले-महाराज! मैं क्या करूँ? मेरे भावों की ऐसी योग्यता थी, सो मेरे से ऐसा पाप हो गया। हे अज्ञानी! भावों की योग्यता थी, वो भाव किये किसने? तेरा पुरुषार्थ कहाँ गया ?

भाव जो है वह भावों के ऊपर नहीं है। भावों को बनाने वाला पुरुषार्थी भगवान्-आत्मा बैठा है। इसलिये पुरुषार्थ करके अशुभ से भी बचा जा सकता है और शुभ से भी बचा जा सकता है और पुरुषार्थ करके शु बना जाता है। हे मुमुक्षुओ! ध्यान दो, जहाँ लोग यों कह रहे थे कि मैं कुछ भी नहीं करता, जैसा प्रभू कर रहा है, वैसा हो रहा है, तो जैनियों ने एक शब्द सीख लिया था जो 'करणानुयोग' के ज्ञाता थे कि मैं कुछ नहीं करताऋ जैसा कर्म का उदय होता है, वैसा ही होता है। यदि ऐसा मानते हो तो घोर मिथ्यादृष्टि।

पत्ता भी हिलेगा, तो प्रभू की इच्छा से। भैया आप लोग कहोगे कि महाराज! बिना कर्म-उदय के कुछ नहीं होता हैऋ जो कुछ होता है, कर्मोदय से होता है। इसलिये मैं कर भी क्या सकता हूँ? ईश्वरवादी। यदि एकांत से कथन कर रहा है, तो कर्मवादी मिथ्यादृष्टि है। ये मैं नहीं, आचार्य कुन्दकुन्द देव बोल रहे हैं।

अहो! मैं तो अकर्तृत्व-स्वभावी हूँ। वेद तो वेद है। वेद एक कर्म है । पुरुषवेद भी एक कर्म है, स्त्रीवेद भी एक कर्म है। मैंने कुछ किया नहीं। कर्म ने कर्म में वेदन किया है। स्त्रीवेद के उदय ने पुरुष को सेवा है। पुरुषवेद कर्म के उदय ने स्त्री का सेवन किया है। मैं तो कर्म से भिन्न हूँ। जो कुछ हो रहा है, ईश्वर की औपा से हो रहा है। यज्ञ में हवन हो रहा है, तो ईश्वर कर रहा है। उत्पन्न हो रहे हैं, तो ईश्वर करा रहा है। हे अज्ञानी मिथ्यादृष्टि जैन! तू यह कहता है कि मैं कुछ करता नहीं हूँ। यदि भोग भोग रहा है तो कर्म भोग रहा है। नरक भेज रहा तो कर्म भेज रहा है। तो कर्म क्यों नहीं चला जाता?

तूने किसी के गाल पर खींच कर चांटा मार दिया और कहता है कि सुन, इसमें मेरा कोई दोष नहीं है, तेरे कर्म का उदय आया तो तेरे गाल पर घल गया। (कर्मसिांत के अनुसार तो सही है।) बिल्कुल सही नहीं है। कर्मसिांत के अनुसार यदि सही हो गया तो दसकरण परिणाम तुम्हारे व्यर्थ चले जायेंगे। अपकर्ष होता है कि नहीं? उत्कर्ष, उदीरणा, संक्रमण होता है कि नहीं? ये कहाँ चला जायेगा ज्ञानी?

भैया! वो यह कह रहा है कि कर्मसिांत से यही सत्य है। बिना कर्मउदय के कुछ होता ही नहीं है। कर्मउदय पर कार्य करना ही पड़ता है। हे ज्ञानी! विद्वानो! सुनो ध्यान से। इस विषय को समझ लिया तो बड़ा उपकार हो जायेगा अनन्त जीवों का। यदि तू यह कहता है कि महाराजश्री! कर्मउदय होता है तो उसे भोगना पड़ता है।

ज्ञानी! तेरे बेटे की माँ थी, तब तूने ब्रह्मचर्य लिया था कि उसके मरने के बाद लिया था? कोई एक जीव जिसने मुनिव्रत धारण किया है, उनके वेदकर्म का अभाव हो गया क्या? (नहीं हुआ) और वेदकर्म का उदय तो नौवें गुणस्थान तक चलता है। ज्ञानी! कर्म के अभाव का नाम संयम नहीं है। कर्म के उदय के अभाव का नाम भी संयम नहीं है। कर्म के उदय होने पर कर्म नहीं करना, इसका नाम संयम है। यदि कर्म के उदय से कार्य करना ही पड़ता होता, तो संयम नाम की कोई वस्तु ही नहीं होती।

कर्म के उदय को भी मेरा पुरुषार्थ यूँ नकार देता है। कर्म के उदय से ही सम्पत्ति मिलती है। चक्रवर्ती का प्रबल पुण्य का उदय होता है, तब चक्रवर्ती पद मिलता है। लेकिन वो भी एक क्षणमात्र में चक्रवर्ती पद छोड़ करके निर्ग्रन्थ मुनि बन जाता है। कर्म को भी हम टाल सकते हैं। कर्म का भोगना कोई निश्चित नहीं है। बन्ध किया, तो उदय में आयेगा, लेकिन भोगना या नहीं भोगना, ये मेरे कर्म का काम नहीं है, ये मेरे परिणामों का काम है। कर्मोदय क्या करेगा?

हे कर्म! तू आ सकता है, सामने खड़ा हो सकता है, पर मेरा कुछ बिगाड़ नहीं सकता है। हाथ में लड्डू आ सकता है, माँ दे सकती है लेकिन खाना या न खाना ये माँ का काम नहीं है, ये मेरे भावों का काम है।

भैया! साता से कह देना, हे साता! और लाभान्तराय कर्म से कह देना–हे लाभान्तराय कर्म! तू वस्तु दिला सकता है, तू सुख दिला सकता है, लेकिन भोगना या नहीं भोगना, ये तेरा काम नहीं है, ये मेरा काम है। ये उपादान है। भैया! किसी के गाल पर चांटा मारना मत। ये कब कहना कि तेरे कर्म का उदय है? जब तेरे गाल पर कोई मारे, तो उससे लड़ने मत जाना। फिर यहाँ कहना कि मेरे कर्म का उदय है। लेकिन दूसरे को मार देना और कहना

कि तेरे कर्म का उदय है, तो वो वही होगा कि जीवों को बलि की वेदी पर चढा देना और कहना कि प्रभू की इच्छा से ही तो सबकुछ होता है। ज्ञानी! ऐसे तो अनर्थ कर दोगे। कर्माधीन मिथ्यादृष्टि।

जीवन में निर्ग्रन्थ मुनि बनके, दीक्षा लेते ही श्रुत में लीन हो जाना चाहिये साधु को। श्रुत में लीन होगा, वही तत्त्व को पहचान पायेगा अन्यथा मुनि बनकरके भी जीवन मिथ्यात्व में ही चला जायेगा। कर्मप्रकृति को तो पढ़ो, पर कर्म को प्रऔति मत बनाओ। कर्म की प्रऔति तो कर्म की प्रऔति है और आत्मा की प्रऔति ही आत्मा की प्रऔति है। मैं ध्रुव शु हूँ। 'स्वतंत्रतः कर्त्ताः।' आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

जिसने ध्रुव का आनन्द ले लिया है, अब कहाँ पर के आनन्द में जायेगा? ध्रुव सत्य है कि आप लोग मेरे परम उपकारी हो। पूरी समाज मेरे लिये उपकारी है, क्योंकि ये सुनने आती है। आपका विषय आप जानो। आप तो मुझे मौका देते हो। तत्त्व की अनुभूति का आनंद लूटता हूँ मैं तो यहाँ बैठकर। यहाँ की गलियों में अजैन बालक भी कहने लगे हैं–'जो है, सो है।'

अब लगता है कि देखो यहाँ भगवान् की अनुपम, अलौकिक दृष्टि तो देखो। हे वर्द्धमान! जब तुम्हारी परोक्ष वाणी में इतना आनंद है, तब प्रत्यक्ष में आपके आनंद का क्या होता होगा? हे श्रेणिक! तूने जो आनंद लूटा है, वो महावीर भी नहीं लूट पाये। बाहुवली स्वामी विराजे पपौरा जी में। शान्तिनाथ स्वामी विराजे आहार जी में। भैया! बनाओ–बनाओ। ये बने–बनाये भगवान् हैं। पर बनाते समय ध्यान रखना कि हम कब बन जायें?

जिनने इन तीर्थंकरों की स्थापना की है, धन्य हैं वे श्रावक। एक विशाल प्रतिमा को देखकर कितने जीवों को मन में आया कि जय हो वर्द्धमान महावीर स्वामी। एक क्षण को ऐसे भाव आ गये और उस जीव का मिथ्यात्व विगलित हो गया, तो कितने जीवों को सम्यक्त्व का निमित्त बनेंगे? लेकिन उन्हीं को, जिनका उपादान होगा।

भैया! आप ध्यान रखना, कर्म काम तो करता है, पर कर्म का मैं नौकर नहीं हूँ, मैं अपने अनुसार चलता हूँ।

ज्ञानियो! इस कारिका में मन, वचन, काय की महिमा का वर्णन किया है।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

शूरवीर का लक्षण

छित्वा स्नेहमयान् पाशान्, भित्वा मोहमहार्गलाम्।
सच्चारित्रसमायुक्तः शूरो मोक्षपथे स्थितः ।। 20 ।।

स्नेहमयी पाशों को छेद कर, मोहरूपी महान् अर्गला को तोड़कर, सम्यक्चारित्र से युक्त शूरवीर ही मोक्षमार्ग में स्थित है।

॥ देशना ॥

अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनिषियो! जगत्कल्याणी है।

यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में द्रव्य की शुद्ध सत्ता के साथ अशुद्ध सत्ता की व्याख्या भी कर रहे हैं। जब तक वस्तु की अशुद्धता का बोध नहीं होगा, तब तक वस्तु को शुद्ध करने का पुरुषार्थ नहीं होगा। जब तक वस्तु की शुद्ध सत्ता का बोध नहीं होगा तो अशुद्धता हटाने का पुरुषार्थ होगा ही क्यों?

अशुद्ध सत्ता में शुद्ध सत्ता का दर्शन जो कर लेता है, वही जीव अशुद्धता को हटाने का पुरुषार्थ करता है। जीव को ये बोध नहीं है कि मेरी आत्मा ध्रुव शक्ति से समन्वित है, प्रभुत्व-शक्ति-सम्पन्न है। प्रभुत्व शक्ति आत्मा की है। जगत् में ऐसा कोई जीवद्रव्य नहीं है, जो प्रभुत्व शक्ति से शून्य हो। लेकिन प्रभुत्व शक्ति की त्रैकालिकता को लोग समझ नहीं पाये और जिसे हमने प्रभुत्व शक्ति कहा था कि प्राणी-प्राणी में प्रभुत्व शक्ति है, उसे लोगों ने ईश्वर अंश में ग्रहण कर लिया।

प्रभुत्व शक्ति त्रैकालिक है। वह शक्तिभूत शक्ति है। वह किसी की अंशभूत नहीं है। वह शुभपरिणामभूत है। मैं परमात्मा की आराधना अवश्य करता हूँ, परमात्मा की वन्दना अवश्य करता हूँ, पर परमात्मा बनने के लिये करता हूँ, परमात्मा से मिलने के लिये नहीं करता हूँ। ज्ञानी! मिला जाता है अनुचर बनके। आराधक अनुचर नहीं होता है। आराधक भक्त होता है। मित्रों से मिलने जाया जाता है, परमात्मा से मिलने नहीं जाया जाता है। परमात्मा के चरणों में भक्ति करने के लिये जाया जाता है। भक्ति तो भगवान् से भगवत्ता माँगने के लिये नहीं करना पड़ती है, अपनी अशुद्ध परिणति के नाश के लिये करना पड़ती है। भगवान् भगवत्ता नहीं प्रदान करेंगे, भगवत्ता मेरे अंदर त्रैकालिक विद्यमान है। उस त्रैकालिक भगवत्ता को प्रकट

कराने की जो योग्यता है, वह मेरे अंदर ही है। परन्तु बहिरंग निमित्तों के माध्यम से हम परिणामों की विशुद्धि को प्राप्त हों, यानि कषाय की मंदता के लिये परमेष्ठी की आराधना है। कषाय की भद्रता के लिये परमेष्ठी की आराधना है। परमेष्ठी से परमात्मा की भीख माँगने के लिये नहीं जाते हैं। हम परमेष्ठी के चरणों में अपने परिणामों की विशुद्धि मात्र के लिये जाते हैं। शुद्ध सत्ता को भी पहिचानिये, अशुद्ध सत्ता को भी पहिचानिये। प्रभुत्व-शक्ति-सम्पन्न हूँ मैं। आत्मा की 47 शक्तियों में एक प्रभुत्व-शक्ति है। कहाँ भूल गया था मैं अपनी प्रभुत्व शक्ति को? जब अपनी प्रभुत्व शक्ति को पहचान लेता है, फिर उसको उद्घाटित करने का पुरुषार्थ करता है।

प्रभुत्व शक्ति को उद्घाटित करने का जो पुरुषार्थ है, वही चारित्र है। चारित्र वही है, जिससे प्रभुत्वशक्ति प्रकट होती है। प्रभुत्वशक्ति जिससे प्रकट नहीं हो सके, वह चारित्र 'चारित्र' ही नहीं है। इसलिये मिथ्यादृष्टि अभव्य प्राणी का द्रव्यसंयम होने पर भी असंयम ही कहा जाता है। इतना प्रबल संयम उसके पास है कि ग्रैवेयक की यात्रा कर लेता है, लेकिन मोक्ष की यात्रा नहीं कर पा रहा है, क्योंकि मिथ्यात्व के साथ हुआ संयम भी असंयम ही है।

मिथ्यात्व गुणस्थान में कौन- सा संयम होता है? होता है, ज्ञानियो! होता है। असंयम नाम का संयम होता है। उस संयम की संज्ञा 'संयम' नहीं है, असंयम है। और असंयमी को मोक्ष होता नहीं। सम्यक्त्व भी प्रकट हो जायेगा, लेकिन मोक्ष तभी जा पायेगा जब संयम स्वीकार करेगा। असंयम में मोक्ष होता नहीं। असंयमी का मोक्षमार्ग भी प्रारम्भ हुआ नहीं।

सम्यग्दृष्टि जीव को जो मोक्षमार्गी कहा जाता है, वह उपचार मोक्षमार्ग है। चतुर्थगुणस्थानवर्ती जीव मोक्षमार्गी हैं, लेकिन उसको उपचार मोक्षमार्गी कहा है, क्योंकि मोक्षमार्ग जो है, "सम्यक् दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः"।(11 त. सू.)। सम्यक् दर्शन-ज्ञान-चारित्र की जहाँ एकता है, उसका नाम मोक्षमार्ग है। अभी चतुर्थगुणस्थानवर्ती जीव को सम्यक्त्वज्ञान तो प्रगट हुआ है, लेकिन चारित्र उदित नहीं हुआ है। चारित्र उदित न होने के कारण उसे उपचार मोक्षमार्गी कहा है। फिर भी मोक्षमार्गी है।

"मुख्याभावे सति प्रयोजने निमित्ते चोपचारः प्रवर्तते" ।। 212 आ.प.।।

जहाँ मुख्य का अभाव होता है, प्रयोजन की दृष्टि से उपचार का कथन होता है। पर इतना विशेष ध्यान रखना कि मुख्य के अभाव में उपचार नहीं होता और मुख्य में उपचार नहीं होता है। कोई महावीर नाम का पुरुष विशेष था, तभी भगवान् महावीर की प्रतिमा है।

यदि महावीर नाम का पुरुष न होता, तो महावीर की कोई मूर्ति न होती। मुख्य के अभाव में उपचार लगता है, परन्तु मुख्य का अवस्तुभूत अभाव नहीं होता।

तत्काल में, तत्समय में अभाव है। 'अस्मिन् प्रदेशे घटं नास्ति।' इस प्रदेश में घट नहीं है। इसका तात्पर्य है कि घट का अभाव भी नहीं है। घट का सदभाव तो है, पर इस प्रदेश में अभाव है। लेकिन सम्पूर्ण प्रदेशों में अभाव है क्या? वर्तमान में सर्वज्ञ का अभाव है भारत की भूमि पर । इसका तात्पर्य है कि कभी-न-कभी भारत में सदभाव भी था। ज्ञानियो! प्रतिमा प्रतिमावान नहीं होता, परन्तु बिना प्रतिमावान के प्रतिमा होती नहीं है। सर्वज्ञ अवश्य होना चाहिये, तभी तो सर्वज्ञ की वाणी है। इसलिये सद में भी असद को देखो, असद में भी सद को देखो। ध्रुवसत्य समझने का पुरुषार्थ करो।

जो सद् में असद् को नहीं देख पाता और असद में सद को नहीं देख रहा, वह पुरुषार्थ किसका करेगा? क्या नेत्रों से, बीज में, फल दिखाई दे रहे हैं? जो चाक्षुष है, वह है ही। और जो चाक्षुष नहीं हो रहा है, वह अभावभूत ही है क्या? अचाक्षुष भी वस्तु है। जो चाक्षुष है, वह सद्भूत है और जो अचाक्षुष है, वह भी सदभूत है। अचाक्षुष को असद कह दोगे, तो आपकी आत्मा भी अचाक्षुष है, वो असद हो जायेगी। शुद्ध पुदगल परमाणु अचाक्षुष है, वह असद हो जायेगा। इसलिये जो-जो नेत्रों से दिखता है, वही वस्तु हो, कोई नियम नहीं है। जो नेत्रों से नहीं भी दिखता है, वो भी वस्तु है।

सत्ता सव्वपयत्था, सविस्सरूवा अणंतपज्जाया।
भंगुप्पादधुवत्ता, सप्पडिवक्खा हवदि एक्का ।। 8 पंचा.।।

मूर्तिक द्रव्य मुख्यरूप से एक ही है। उसका नाम पुदगल है, जो चाक्षुष है। जीवद्रव्य स्यात मूर्तिक, स्यात अमूर्तिक है। बन्धदृष्टि से मूर्तिक है, निर्बन्धदृष्टि से अमूर्तिक है। जो जीव आपको दिख रहे हैं, उन जीवों की पर्याय दृष्टिगोचर हो रही हैं। जीवद्रव्य आपने कहाँ देखा?

ज्ञानियो! आपने स्वयं के जीवद्रव्य को भी नहीं देखा, तो तुम पर के जीव द्रव्य को क्या देखोगे? अपना जीव देखा आपने? किसने देखा अपना जीव? तू दर्पण लगा कर कहे, कि मैं अपनी आँखों से देख लेता हूँ। ज्ञानी! जो तू दर्पण लगाके देखेगा, वहाँ तू शरीर देखेगा। पुद्गल में पुदगल ही झलकता है। पुदगल ने आज तक जीव को देखा ही नहीं। दर्पण में देख रहा था, मुस्करा रहा था। हे ध्रुव अज्ञानी-ज्ञानी! तू पुदगल में पुद्गल को ही निहार कर मुस्करा रहा था, परन्तु पूर्ण ज्ञानानन्दस्वभावी भगवान-आत्मा का रस चख ही नहीं पा रहा था। कितने आयु के निषेक, पुदगल ने, पुगदल में, पुदगल को देखने में नष्ट कर दिये हैं?

मैं युवा हूँ, वृद्ध हूँ, शिशु हूँ, ये सारी अवस्थायें जो चल रही थी, असमानजाति पर्याय की थी। विभाव-व्यंजन पर्याय की थी। और विभाव-व्यंजन पर्याय में इतने लवलीन हो गये, कि निज स्वभाव द्रव्य-व्यंजन पर्याय को निहार ही नहीं रहा है। हे ज्ञानी! असद में सद को देखना, ये द्रव्यदृष्टि है। वर्तमान में, ज्ञानियो! आप मनुष्य के रूप में हो। मनुष्यपर्याय में सिद्धपर्याय नहीं दिख रही आपको। क्या वर्तमान में द्रव्य तेरा सिद्ध नहीं है? द्रव्यदृष्टि से है, पर्यायदृष्टि से नहीं है। द्रव्यत्व से मेरा द्रव्य जो है, पर-पुदगल-भूत आज तक हुआ ही नहीं है। इसलिये शुद्ध ही है। लेकिन कर्मबन्ध से बंधा है, इसलिये अशुद्ध है।

वर्तमान की पर्याय में भविष्य की पर्याय असदभूत है, अभावभूत है। मैं इस समय मनुष्य तो हूँ, देव नहीं हूँ। देवायु का बंध कर चुका है जीव, तो इस पर्याय में देवत्वपना तो नहीं है, पर इसमें देवत्वपना आयेगा कि नहीं? असद में भी सद है, सद में भी असद है। ज्ञानियो! ये जो देव हैं, मनुष्य देव बन चुका था। जो देव है, वह सद् में भी असद है। ये भविष्य में मनुष्य था, कि भूत में मनुष्य था? जो भूत में मनुष्य था, वही देव बना है। वर्तमान की सत्ता में भूत की सत्ता का अभाव है। यदि वर्तमान के सद में असद नहीं कहोगे, तो भूत की पर्याय का बोध नहीं होगा।

भैया! भूत की पर्याय की जो व्याख्या चल रही है, वो सदभूत है कि असदभूत है? असदभूत नहीं है, सदभूत ही है। सदभूत न हुई होती, तो वर्तमान में असद किसका? वर्तमान की दृष्टि से असद है, पर भूत ही दृष्टि से असद नहीं है। वर्तमान में असद है। यदि आप ऐसा नहीं मानोगे, तो भगवान महावीर सिद्ध हुये हैं, जो सिद्धालय में बैठे हैं, वो कौन हैं? महावीर स्वामी हैं, वो तो सिद्धभगवान हैं। वर्तमान की सिद्धपर्याय में भूत के महावीरपने का असद है, परन्तु महावीर का असद नहीं है। तू इन विषयों को नहीं समझ रहा, मैं तो कभी सोचता हूँ कि ओ! इतना महानतम, कठोर तप सारा लोक शी-शी कर रहा है, रजाइयों में घुसा हुआ है, लेकिन ये वीतरागी निर्ग्रन्थ तपोधन निर्वस्त्र बैठे हुये हैं। इतनी कठोर साधना का उद्देश्य क्या है? इन योगियों ने, इन निर्ग्रन्थों ने भवन छोड़े हैं, भगिनी व माँ छोड़ी है और शरीर से भी ममत्व छोड़करके इतना सहन कर रहे हैं। इसका उद्देश्य क्या है? क्या अलक्ष्य है? अलक्ष्यभूत तो चींटी भी नहीं चलता, फिर अलक्ष्यभूत निर्ग्रन्थ क्यों गमन कर रहे हैं?

चींटी भी कुछ खाने के लिये चलती है। इसका लक्ष्य है। यदि निर्ग्रन्थों के पास मूल लक्ष्य नहीं है, तो इनको चींटी की उपमा नहीं दे पाऊँगा। अलक्ष्यभूत परिणति नहीं होना चाहिये, लक्ष्यभूत परिणति होना चाहिये। मुमुक्षु लक्ष्यविहीन आके बैठा है, तो उद्देश्य क्या है? अर्थ

क्या? प्रयोजन क्या? लक्ष्य होना चाहिये। आपको मेरी भाषा कठिन लग रही है। विषय कठिन हो रहा है, लेकिन ध्रुव सत्य है कि इस विषय को जाने बिना, मुनि बनने का उद्देश्य क्या है?

सद में असद की खोज करो। पर्यायदृष्टि से सद में असद होता है। अवस्तु, वस्तुभूत से कभी असद नहीं होती। पर्यायदृष्टि से दुग्ध में घृत का असद है, पर घी द्रव्यत्व की दृष्टि से दुग्ध में घृतपने का असद है क्या? अब समझ में आयेगा। दुग्ध में घृत का द्रव्यदृष्टि से असदपना है क्या? (द्रव्यदृष्टि से नहीं है।) हे ज्ञानी! तेरी वर्तमान की आत्मा में ही सिद्धपर्याय का असद् नहीं है, सद ही है द्रव्यत्व की दृष्टि से, लेकिन पर्याय का असद ही है। आँख से देखेगा, दूध में ऊंगली भी घुमायेगा, तो घी नहीं मिलेगा; पर पुरुषार्थ करेगा, तो उस बहते दूध में ही जमा घी मिलेगा। ऐसे ही वर्तमान की इस अशुद्ध पर्याय में ही शुद्ध पर्याय विराजी है। और तू पुरुषार्थ करेगा, उसका नाम संयम है। और वह संयम तब प्रकटित होगा जब मोह को विगलित करेगा। क्या बहुत कठिन है मार्ग? नहीं, ज्ञानी; अत्यन्त सरल है मार्ग।

जैसे तू घर में संतुष्ट होके रहता है, वैसे ही जो चारित्र में संतुष्ट होके रह पायेगा, वही साधुपने का आन्नद लूट पायेगा। अपने घर में किंचित भी विषाद में आकर रहने लग जाओ, तो यह सुन्दर भवन तुझे काटने लग जायेगा।

जगत के प्रत्येक द्रव्य का आनन्द तभी आता है, जब अंतरंग में संतुष्टि होती है। कुछ लोगों को तो अपनी पर्याय में भी संतुष्टि नहीं है। जिसके मन में भाव आये कि मैं आत्महत्या कर लूँ, जिसके मन में भाव आये कि मैं जहर की पुड़िया खा लूँ, नदी में कूद जाऊँ, ये घोर अज्ञानी जीव हैं। इनको अपनी पर्याय से स्वयं में ही संतुष्टि नहीं है। यह एक बहुत बड़ी तपस्या है कि स्वयं के जीवन से संतुष्ट रह पाना। संयम की बात नहीं कर रहा हूँ, मैं जीवपन की बात कर रहा हूँ। जिस रूप में तुम रह पा रहे हो, उस रूप में संतुष्ट रह पाना, ये भी तपस्या है।

मंद कषाय व भद्र परिणामों में ही आप शांति का जीवन जी पायेंगे। मंद कषाय व भद्र परिणाम नहीं हैं, तो वर्तमान की पर्याय का भी नाश करने के परिणाम करोगे। जो 'संतुष्टि' शब्द है, इस पर ध्यान दो। पुरुषार्थ करने का निषेध नहीं है यहाँ। पुरुषार्थ किया, सो मुनिराज बन गये। अब मुनिराज बनके यूँ भाव आने लग गये कि मैं धोखे में तो नहीं आ गया? मैं भावुकता में तो नहीं आ गया? कहीं किसी साधु को देखकर तो नहीं आ गया? कैसे देखकर के? अरे! मैंने देखा। एक बार मैं भिलाई से चातुर्मास करके दुर्ग की ओर विहार कर रहा था। उस समय इतनी भीड़ थी, कि कहीं तारतम्य नहीं टूटा। एक युवा मेरे बगल में आया, धीरे से कहा-महाराजश्री! हम आपके साथ चलना चाहते हैं। मैंने कहा, क्यों? बोला, यही

आनन्द है। मैंने धीरे से पूछा, भैया! तू कौन-से आनन्द में डूब रहा है? महाराज! देखो, आप जिस गली में निकलते हो, उस गली में जहाँ जाओ, वहाँ भीड़ दिखती है। बहुत दिन से देख रहा हूँ। इसलिये आपके साथ चलना चाहते हैं। हे साधको! कोई भी जीव आये, साधक को न हाँ बोलना, न मना करना। तटस्थ होकर उसकी बात सुनना। मना करोगे, तो हो सकता है वह यूँ कहेगा कि मेरे भाव थे, आपने गिरा दिये। और हाँ कहोगे, तो यूँ कहेगा, कि मैं तो विचार ही कर रहा था, आपने तो मुझे बलात् बुला लिया है। ज्ञानी! ये पञ्चम काल है।

आचार्यश्री विरागसागर जी महाज्ञानी जीव हैं। उनने हमें ऐसे-ही दीक्षा नहीं दे दी। भैया! कहना पड़ेगा, कि आचार्यमहाराज ने विद्या देने में किंचित् भी कृपणता का व्यवहार नहीं किया। उन्होंने मुझे ज्ञान देने में किंचित् भी कृपणता का व्यवहार नहीं किया। वो विषय अलग है, कि जितनी मुझमें क्षमता थी, उतनी ही ले पाया। ऐसा ही नहीं कि मुझे ही, सबको। जितने उनके शिष्य हैं सभी को उनने ज्ञान दिया।

उस जीव से मैंने कुछ नहीं कहा। और क्या हुआ? वह पोटली बांधकर मेरे साथ चल भी दिया। राजनाँदगाँव तक चलके आये भैया। धीरे-धीरे भीड़ छँट गई। जब भीड़ छंटी और राजनांदगाँव में प्रवेश हुआ, तो पुनः भीड़ आ गई। तो उसको और-अच्छा लगा कि यहाँ पर तो और भीड़ है। आगवानी के बाद जब सब लोग अपने-अपने घर चले गये और माहौल ठण्डा हुआ थोड़ा, जब कोई नहीं दिखा उसको, तो कहने लगा, महाराज! कुछ समझ में नहीं आ रहा है। ज्ञानी! क्यों? क्या हो गया? बोला, आपके साथ ऐसी भीड़ हर समय रहती क्या? मैंने कहा, ज्ञानी! सुन। कभी ऐसा होता है कि मुझे अपना कमण्डलु स्वयं पकड़ने का सौभाग्य नहीं मिलता और कभी ऐसा भी दिन आता है, कि मेरा कमण्डलु पकड़नेवाला सौभाग्यशाली नहीं मिलता है। मुमुक्षु! 'सबके दिन एकसे नहीं होते।'

एक दिन ऐसा भी आया था कि हम दो कमण्डलु लेके चले थे। अब क्या करें? संघस्थ साधु का स्वास्थ्य बिगड़ने लगा और लोग नहीं थे इतने। तो मैंने अपना भी कमण्डलु लिया और उनका भी लिया। फिर पिच्छी कहाँ थी? पिच्छी बगल में थी।

बस, पुण्य सत्य नहीं है, पाप सत्य नहीं है, ज्ञान का भाव सत्य है। पुण्य की सत्ता सत्य नहीं है, त्रैकालिक नहीं रहती है। पाप की सत्ता भी त्रैकालिक नहीं रहती है। लेकिन पुण्य-पाप को देखनेवाले की सत्ता त्रैकालिक रहती है। उसका नाम ज्ञायकस्वभाव है। चारित्र की व्याख्या करो तो ज्ञायकभाव से करो। और किसी को लड़ाई-झगड़े की बात करना, तो वो भी ज्ञायकभाव से करो, वेद-वेदक भाव से करो। वो ज्ञानी तीसरे दिन अपने घर चला गया। वो

क्या देख रहा था? उसने सद में सद को नहीं देखा। और वह जिस सत्य में सत्य देख रहा था, वह विपरीत था।

चाहे वन में हो, चाहे भवन में हो, चाहे आसन पर हो, चाहे भूमि पर हो, निज चैतन्य की भूमि से च्युत नहीं होना चाहिये। ये मुमुक्षु का धर्म है। जो असद देख रहा है सद् में और जो असद नहीं देख रहा सद में, वह कभी मोह से शून्य हो नहीं सकता है। वह कभी निर्मोही नहीं हो सकता। कभी वीतरागी नहीं हो सकता। विषय वही है, कहने की शैली भिन्न है।

भैया! निर्मोह कारण है और वीतरागता कार्य है। लोई कारण है, रोटी कार्य है। पहले लोई बनाइये, फिर रोटी बनेगी। तथोत्पत्ति अतथोत्पत्ति। निर्मोही होगा तो वीतरागी होगा, 'तथोत्पत्ति'। निर्मोही नहीं होगा तो वीतरागी भी नहीं होगा, 'अतथोत्पत्ति'।

मुमुक्षुओ! आपके बीच में इतने विद्वान हैं। आपके जनक-जननी हैं। भैया! इनको देखना, इन बेचारों का जीवनभर सम्मान करना। वृद्धों के सम्मान में कमी मत कर देना। इन बेचारों को कुछ नहीं चाहिये। दो रोटी तो अच्छे से पचती नहीं है। इनको जितनी रोटी की भूख नहीं होती है, उतनी सम्मान की होती है। इनके परिणाम संक्लेशित मत होने देना। माताओ! भले एक माला 'णमोकार' की कम फेर लेना, लेकिन सास या बहू चिल्लाये तो मौन ले लेना और उस समय माला फेर लेना।

आप लोग समझ नहीं रहे हो, इन ढोंगी धर्मात्माओं से मुझे बहुत अच्छा नहीं लगता है। घण्टों-घण्टों पूजा-पाठ करेंगे और घर में तनक-सी हो जाये, तो ये बर्तन फेकेंगे। ये ढोंगी लोग हैं, पक्के ढोंगी। धर्म का मर्म नहीं जानते, मात्र रूढ़ी में पूजा करने चले आते हैं। अरे! वस्त्र बदल कर तीनलोक के नाथ के चरणों में आये हो। भगवान् के पास वस्त्र बदल कर आना पड़ता है और भगवान् के पास से भाव बदल कर जाना पड़ता है। भैया! सुनाई पड़ रहा है कि नहीं? कैसे सुनाई पड़े? कान पर तो टोपा ढँका है। इतनी ठण्ड लग रही है। ये बेचारे को तो देखो, कुछ भी नहीं पहने और कैसे बैठे हैं?

सद में असद को देखते रहना। आँखों के आँसुओं से निज की रक्षा करना। नयनों को गीले करने की भावना न हो तो, सद में असद को देखना प्रारम्भ कर दीजिये। परिणामों को शोक-कषाय से युक्त न करना हो तो, हे ज्ञानियो! आज से ही सद में असद देखना प्रारम्भ कर दो। जो भैया यहाँ बैठा हुआ है, ऐसा भी दिन आयेगा कि इसकी सत्ता यहाँ नहीं मिलेगी। पर्याय दृष्टि में। विशुद्धसागर जिसका नाम रखा आचार्य श्री विरागसागर जी ने, वो भी नहीं मिलेगा। विश्वास रखना, जिसने मेरा नाम रखा है, वो भी नहीं मिलेगा। उनका नाम जिसने रखा है, वो चला ही गया है।

भक्ति की भाषा में सत् को खो देना, ये अच्छी बात नहीं है। भक्ति भीतर का विषय है और सत् भी भीतर का ही विषय है। भैया! समझ में आ रहा है? आज दर्पण जरूर देख लेना। जितने यहाँ बैठे हैं, सभी देख लेना। मात्र मुनिगण न देखें। सुनो-सुनो। एक दिन गुरु महाराज ने कहा 'नट का खेल मत देखना।' वहाँ एक नटनी नृत्य कर रही थी, वहाँ रुक गये। तभी वहाँ से गुरुमहाराज निकल पड़े और बोले, बेटा! ये क्या कर रहे हो? स्वामी! आपने ये कहा था कि नट का खेल नहीं देखना। आपने ये कब कहा था कि नटनी का नृत्य भी नहीं देखना? ऐसे भोले शिष्य थे आदिनाथ के। इसलिये तीर्थंकर ऋषभदेव और तीर्थंकर महावीर स्वामी के शिष्यों को पूरा प्रतिक्रमण करने का आदेश है। इनको किंचित भी प्रतिक्रमण छोड़ने का आदेश नहीं है। महावीर के शिष्य वक्रपरिमाणी हैं और आदिनाथ के शिष्य अत्यन्त भद्रपरिणामी थे। भद्रता में, सीधेपन में और वक्रता में निर्दोष संयम का पालन नहीं होता है। सहज परिणामों की विशुद्धि से संयम पलता है। तीर्थंकर अजितनाथ से लेकर पार्श्वनाथ स्वामी तक के शिष्यों को उतना ही प्रतिक्रमण करना पड़ता था, जितना दोष लगता था। परन्तु दो तीर्थंकरों के शिष्यों को पूरा प्रतिक्रमण करने का आदेश है। ये मैं 'प्रतिक्रमणत्रयी' ग्रन्थ से बोल रहा हूँ।

आचार्यश्री के शिष्यों को क्या आदेश है? अहो ज्ञानी! जो महावीर के शिष्यों को है, वही आदेश है। अत्यन्त भद्रता में व्यक्ति बह जाता है। मोक्षमार्ग सरलता का मार्ग है, पागलपन का मार्ग नहीं है। मंदबुद्धि को दिगम्बर जैनाम्नाय में दीक्षा देने का पूर्ण निषेध है। जब कॉलेज का चपरासी बनाने के लिये मंदबुद्धि नहीं चलता, तो तीनलोक के नाथ की पिच्छी को पकड़ने वाला मंदबुद्धि कैसा? भद्रपरिणामी होना चाहिये, मंदबुद्धि नहीं होना चाहिये। यदि मंदबुद्धि में विवेकशून्य काम कर देगा, तो जिनमुद्रा ही हँसी होगी।

फिर क्या किया? एक और महात्मा मिल गये। बोले, बेटे! पर की वस्तु को उठाना नहीं। गिरी वस्तु को नहीं उठाना। सो गुरुजी के पास हीरे-मोती जवाहरात थे। उनकी थैली फट गई और वे नीचे गिर गये और शिष्य नीचे देखता चला आ रहा था, थैले से टपक रहे थे मोती और उसने उठाये नहीं। बोले-स्वामी! मैने तो देखा था, पर आपने ही कहा था कि गिरी वस्तु नहीं उठाना। अरे ज्ञानी! सुन, अपनी तो उठा लिया कर, पर की मत उठाना। ठीक, स्वामी! ऐसा ही करूँगा। आगे विहार किया गुरुदेव ने। घोड़े पर बैठकर चल दिये महात्मा जी दिगम्बर मुनि नहीं थे, ध्यान रखना। और घोड़े ने जैसे ही लीद करना शुरू किया, शिष्य ने अपनी झोली फैला दी। बोले, ज्ञानी! क्या कर रहा है? स्वामी! आपने कहा था कि अपनी

वस्तु मत छोड़ना। सो घोड़ा भी तो अपना है। ऐसे-ऐसे लोग जगत् में आ गये तो ये कल्याण करेंगे क्या? इतना विवेक तो होना चाहिये।

आँखें गीली हों, तो राग मानो। उस राग को धोने के लिये प्रायश्चित्त करो, तपस्या करो। चाहे वे खुशी की गीली हों या दु:ख की गीली हों, बिना राग के गीली होती ही नहीं हैं। पर इतना ध्यान रखना। अब खुशी किस बात की है? परमेष्ठी के प्रति राग की खुशी है,वो तो प्रशस्त राग है और निज के परिवार को खुश किया आपने, तो वह अशुभ ही राग है।

हे वर्द्धमान! मुझे कैवल्य क्यों नहीं हो रहा है? हे गौतम! तुम्हें अभी महावीर में राग है। और जब तक महावीर के राग में रहेगा, तब तक तुम्हें कैवल्य होने वाला नहीं है। जब महावीर के राग ने गौतम को केवली नहीं होने दिया, तो ज्ञानियो! रागियों का राग तुम्हें भगवान् कैसे बनने देगा? इसलिए राग से हटकर उस वैराग्य रूपी सम्पत्ति को प्राप्त करो।

'**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।**' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

मोह का महात्म्य।

अहो मोहस्य माहात्म्यं, विद्वांसो येऽपि मानवाः।
मुह्यन्ते तेऽपि संसारे, कामार्थ-रति-तत्पराः।।21 ।।

बड़े खेद की बात है, मोह का महात्म्य देखो कि जिसमें ज्ञानीपुरुष भी काम और ६ ानैषणा में लीन होकर सांसारिक पदार्थों में मोहित हो जाते हैं।

।। देशना।।

अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है।

यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी 'सारसमुच्चय' ग्रन्थ में अन्तस्थ के तत्त्वों में अवगाहन करते हुये, आत्म-उत्थान की उस परमपावन शैली का उपदेश दे रहे हैं। भो ज्ञानी! जिस क्षण नदी के पूर में बड़े-बड़े हाथी बह गये, जिस सागर की धारा में गज-जैसे महान जीव बह गये, उस नदी के वेग में इन श्रावक और मूषकों का सुरक्षित रह पाना कहाँ तक सम्भव है?

मोह की बाढ़ बहुत तीव्र है। बड़े-बड़े धुरन्धर जीव नहीं सम्हाल पाये अपने आप को। विद्वान् लोग भी मोह के वश हुये और कामादिक भाव को प्राप्त हुये। विद्वान् लोग भी अपने आप को नहीं सम्हाल पाये। जो मस्तिष्क का ज्ञान है, वो भिन्न है। स्वानुभूति का जो ज्ञान है, वह भिन्न है। 'विद्वांसो मानवाः'' विद्वान् मानव भी मोह को प्राप्त हुये। 'अहो मोहस्य माहात्म्यं,' अहो! मोह का महात्म्य ''तेऽपि संसारे कामार्थ'' वे भी संसार में काम व अर्थ की रति में तत्पर हो गये।

मस्तिष्क का बोध, अनुभूति का बोध।

अन्यथा वेदपाण्डित्यं, शास्त्रपाण्डित्यमन्यथा।
अन्यथा परमं तत्त्वं लोकाः क्लिश्यन्ति चान्यथा।। प.प्र. (टीका)।।

वेदों का पाण्डित्य भिन्न है, शास्त्रों का पाण्डित्य भिन्न है और आत्मा का पाण्डित्य भिन्न है। ज्ञानियो! आत्मा का पाण्डित्य, शास्त्रों का पाण्डित्य और वेद-पुराणों का पाण्डित्य, इनमें विवेक लगाने की आवश्यकता है। विवेक से तात्पर्य है भेद। जो ज्ञान तर्कभूत मात्र चल रहा है, जो ज्ञान श्रुतभूत मात्र चल रहा है, जो ज्ञान वाचस्पतिभूत मात्र हो रहा है, वह जो द्रव्यश्रुत बन रहा है, वह प्रज्ञा को प्रशस्त तो कर रहा है, पर अनुभूति की ओर नहीं जा रहा

है। राग-द्वेष, मोह, अध्यवसाय भाव को न्यून नहीं कर रहा है। यश प्रदान करायेगा, ख्याति प्रदान करायेगा, जनसामान्य में विद्वान् कहलायेगा, लेकिन स्वयं में विद्वान् नहीं बन जायेगा। स्वयं में जो विद्वान् बनता है, उसकी धारा जो है, पुष्प की बोंड़ी के समान है। पुष्प में जो बोंड़ी है, उस बोंड़ी के अन्दर घनत्व है। जितनी गंध है, वो बोंड़ी के अन्दर है। बोंड़ी के अन्दर घनत्वभूत जो सुगन्ध है, वही सुगन्ध पुष्प के विकसित होने पर चारों ओर प्रवाहमान हो जाती है, गलियों को महका देती है। प्रासादों को, नगरों को महकाने की क्षमता है उस एक बोंड़ी के अन्दर।

ज्ञानियो! जो जीव अपने ज्ञान को, पुष्प की बोंड़ी के समान, घनत्वरूप में संग्रहीत किये है, वही ज्ञान जब चारित्रभूत परिणत होकरके कैवल्य को धारण करता है, तो सारे ब्रह्माण्ड में उसकी सुगन्ध को फैला देता है। त्रयलोक में वह ज्ञान प्रवाहीमान होता है। ज्ञानी! भैंस का दूध भैंस को पिलाया? ज्ञान को ज्ञान में लवलीन कर लेना, वह ज्ञान भिन्न है और ज्ञान को ज्ञानियों के बीच में कह देना, वह ज्ञान भिन्न है। आँखों के सामने ज्ञान जाये, वो भिन्न है। आत्मा के सामने ज्ञान जाये, वो भिन्न है। ज्ञान ही चारित्र है, ज्ञान ही सम्यक्त्व है। ज्ञान में ज्ञान का आचरण जो है, वही चारित्र है। ज्ञान में ज्ञान की प्रतीति जो है, वही सम्यक्त्व है। ज्ञान में ज्ञान का जो वेदन है,वही ज्ञान है।

अभेद ज्ञान, अभेद सम्यक्त्व, अभेद चारित्र। ये ज्ञान की अखण्डता है। ये ग्रहीत-ग्राही है। ये धारावाहिक है। मेरे ज्ञान में, मेरे प्राण में, मेरा ही प्रमेय, प्रवाहमान है। मेरे ज्ञान में, मेरा ही ज्ञेय, मेरे प्रमाण में, मेरा ही प्रमेय, प्रवृत्तिभूत है। उसका नाम धारावाहिक है। मेरे ज्ञान में परप्रमेय का आना, अन्तराय आना यानि ज्ञान भंग हो गया, धारा टूट गई। विषयों की प्रवृत्ति तभी जायेगी, जब तेरे ज्ञान में परज्ञेय प्रवेश करेगा। नारी को देखना पर ज्ञेय है। नर को देखना परज्ञेय है। पुत्र को निहारना परज्ञेय है।

अहो ज्ञानियो! निज ज्ञान की शक्ति को पर में लगाना, इसका नाम व्यभिचार है। कामादि में वृत्ति जा रही है, वो तेरा ज्ञान कीचड़ का काम कर गया। वो ही पानी पातालतोड़ कूप से निकल रहा है। एक जीव उस नीर को लेकरके श्री जिनेन्द्र के सिर पर ढार रहा है, गंधोदक बनके आ रहा है। जो जीव अपने ज्ञान को चारित्र में ले जा रहा है, वह अपने ज्ञान को गंधोदक की धार बना रहा है। जो ज्ञान विषयों में ले जा रहा है, वह मल का धोवन कर रहा है। इसलिये परभाव की दृष्टि से परवस्तु विषयों में तू जायेगा तो उस दृष्टि से न तुझे सम्यग्दर्शन है, न समयग्ज्ञान है और न ही सम्यग्चारित्र है।

परिणमदि जेण दव्वं, तक्कालं तम्मय त्ति पण्णत्तं।।
तम्हा धम्मपरिणदो, आदा धम्मो मुणेयव्वो ।। 8 प्र.सा.।।

जिस समय तेरा ज्ञान विषय कषायों पर है, उस क्षण में तेरी आत्मा न सम्यक्त्व है, न चारित्र है, न ज्ञान है।

निहारो, निज प्रमेय में निहारो। कर्मसिांत से तू कथन करेगा, तो 7 प्रकृतियों की क्षपणा से क्षायिक सम्यक्त्व होगा। निमित्त की दृष्टि से कथन करेगा, तो केवली/श्रुतकेवली का पादमूल चाहिये, तब क्षायिक सम्यक्त्व प्रकट होगा। लेकिन जब आत्मा की बात करेगा, तो वीतराग सम्यक्त्व ही क्षायिक सम्यक्त्व है। क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव को अकलंक स्वामी ने 'राजवार्तिक' ग्रन्थ में वीतराग सम्यक्त्व कहा है। '

वीतराग सम्यक्त्व यानि क्षायिक सम्यक्त्व। जिसने 7 प्रकृतियों का अभाव कर दिया है। अनंतानुबंधी कषाय का, मिथ्यात्व का जहाँ अभाव हो चुका है। और ये वीतराग सम्यक्त्व, क्षायिक की दृष्टि से, चतुर्थ गुणस्थान से भी प्रकट हो जाता है। यदि चारित्र की अपेक्षा से वीतराग संज्ञा लगाआगे, तो आठवें गुणस्थान से लगाना और मोह के उपशम से वीतराग संज्ञा लगाओगे तो ग्यारहवें गुणस्थान से लगाना और मोह के क्षय से वीतराग संज्ञा लगाआगे तो बारहवें गुणस्थान से लगाना।

अहो ज्ञानियो! धन्य हो उस जीव की दशा को, जिसने गृहस्थी में रहकर भी वीतराग संज्ञा प्राप्त कर ली है। हे सम्यक्त्व! जयवन्त हो। 96 हजार महारानियों के साथ निवास करने वाला जीव वीतराग को प्राप्त हो रहा हो। छः खण्ड पर स्वामित्व करने वाला 'वीतराग' संज्ञा को प्राप्त हो रहा है।

आपको अपनी निधि का ज्ञान नहीं है। भैया! किसी तीर्थ में तू जाता है। कहीं मैनेजर आदि के माध्यम से ज्ञात हो जाये कि 'सिवर कूट' में, विशाल नर्मदा के तट पर, जिनमंदिर बने हुये हैं और मक्सी पार्श्वनाथ में तीर्थंकर पार्श्वनाथ स्वामी विराजमान हैं। आपने जिनालय में दर्शन किये और अर्हन्त की प्रतिमा पर उत्कीर्ण प्रशस्ति को पढ़ा, तो उसमें टीकमगढ़ लिखा हुआ था। जैसे ही तूने देखा, तेरे मन में पानी भर आया, कि देखो मेरे गाँव के भगवान् प्रतिष्ठित हैं।

हे ज्ञानी! तीर्थभूमि में आपके वंशजों द्वारा स्थापित प्रतिमा को देखकरके आपका मन गद्–गद् होने लगा कि मेरे वंशज कितने धर्मात्मा थे। भैया! विश्वास मानना, संतान तेरा नाम नहीं बचा पायेगी। नाम के लिये भी कुछ करना है, तो सनातन धर्म की रक्षा में लग जाना।

जिनप्रतिमाओं को स्थापित कर देना। आज चामुण्डराय नहीं दिख रहे हैं, सेठ पाहिल नहीं दिख रहा है, उसकी संतान नहीं दिख रही है, वंश नहीं दिख रहा है, पर श्री जिनालय दिख रहे हैं। प्रत्येक श्रावक को जिनशासन को, नमोऽस्तु शासन को सुरक्षित करना है, तो अपने जीवन की अंतिम श्वासों तक एक विशाल जिनप्रतिमा स्थापित करके जाना है। ये मत सोचना कि पूजा कौन करेगा? पाड़ाशाह ने स्थापित किये, भूमिस्थ हो गये, तब भी शांतिनाथ स्वामी निकलके आ गये कि नहीं आ गये?

जिन तीर्थंकर के प्रबल पुण्य के नियोग से नरक के नारकी को भी शान्ति मिलती है। तुम भगवान् की पूजा की चिंता नहीं करना। तुमको अपनी आत्मा पूज्य बनाना है, इसलिये आप प्रतिमा स्थापित कराके जाना। पूजा करनेवाले बहुत मिल जायेंगे।

जिनदेव, जिनप्रतिमा होगी तो पुजारी अपने आप बनेंगे। आप तो स्थापित करो। और कोई यूँ कहे कि विशुसागर महाराज प्रतिमा की बात करते हैं, अन्य सामाजिक कार्यों की बात क्यों नहीं करते हैं? आपको ये मालूम नहीं है। जिस दिन रहस्य मालूम चल जायेगा, तो ऐसा आप भी कहोगे।

मुमुक्षु! यदि बेटे के शरीर में कोई रोग हो जाये और यहाँ उपचार नहीं होता है, तो दौड़ कर ग्वालियर/नागपुर जायेगा और वहाँ पर भी उपचार न हो तो बम्बई जायेगा। और बम्बई में न हो तो विदेश जाने को तैयार हो जायेगा। अब अपनी रक्षा के परिणाम तो जीवों में अनंत काल से हैं और अनन्त काल तक रहे आयेंगे और हर जगह दौड़ लेगा। शरीर की रक्षा के लिये हर सम्प्रदाय हर दर्शन और भारत के सम्पूर्ण शासन लगे हुये है। लेकिन, अहो जैनियो! अर्हन्त शासन की रक्षा के लिये तो मात्र मुट्ठी भर तुम जैनी हो। संसार के ज्ञान के विद्यालयों की जो बात है, उसके लिये तो हर जगह का हर व्यक्ति लगा हुआ है, लेकिन स्याद्वाद शासन की विद्या के लिये आप मुट्ठी भर हो। यदि आप और श्रमण लोग ही बाहरी ज्ञान में लवलीन हो गये, तो स्याद्वाद का ज्ञान तो शून्य कर दिया, न्यायशास्त्र तो छुपा कर रख दिया, उनकी तो वाचना करा नहीं रहे हैं और बाहर दुनियाँ के अधिकारी बनाओ, ये बनाओ, वो बनाओ, इनमें लिप्त होगये। ज्ञानी! इनसे तुम्हारे धर्म का कुछ नहीं हो रहा है। मात्र भोगवृत्ति की वृद्धि है। यदि आपको धर्म की रक्षा करना है, तो स्याद्वाद विद्यालय खोलो। जबकि जो विद्यालय वर्णी जी खुला गये थे, उनको मिटाकर कान्वेन्ट खोल दिये हैं। जो अपना विद्यालय है, उसमें 'मेरी भावना' तो गूँजना ही चाहिये। इतना ही नहीं कर सके तो हमने क्या किया जैनदर्शन के लिये?

तीर्थंकर महावीर की प्रतिमा चांदनपुर में जमीन से निकली तो सारे विश्व में जब भी कोई महावीर को पहचानता है, चाँदनपुर के महावीर की फोटो देखकर महावीर स्वामी को पहचानता है। संस्कृति की रक्षा पुरातत्व और साहित्य इन दो से ही सम्भव है। समाज की रक्षा विद्वान् और साधु इन दो से सम्भव है। विद्वान् और साधु की रक्षा समाज से है। बस, स्वात्मा की रक्षा के लिये किसी की आवश्यकता नहीं है। स्वात्मा की रक्षा के लिये गृहीतग्राही, धारावाहिक निजानन्द की लीनता ही है।

विपर्यास ज्ञान में होता है। विद्वानो! चारित्र का विपर्यास सम्हाला जा सकता है। चारित्र के विपर्यास से कभी पथ नहीं बनते, आम्नाय नहीं बनती है, क्योंकि चारित्रहीन को कोई पूछता ही नहीं है तो बनेगा कैसे? चारित्रहीन से इतना भयभीत मत रहना, जितना ज्ञान की विपरीतता वालों से रहना। जिनके ज्ञान में विपर्यास आ जाता है और चारित्र बढ़िया होता है, तो उनका प्रभाव अच्छा होता है। ये ही सारे जगत् को भ्रमित कर देते हैं। क्रियाकाण्डी व्यक्ति से बहुत लोग नहीं जुड़ते। क्रियाकाण्डी के साथ जो भीड़ आयेगी, वो अज्ञानियों की आयेगी।

'आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

धर्मरूपी धन को हरण करने वाले चोर।

कामः क्रोधस्तथा लोभो, रागद्वेषश्च मत्सरः।
मदो माया तथा मोहः कन्दर्पो दर्प एव च॥ 22॥
एते हि रिपवो चौरा, धर्म-सर्वस्वहारिणः ।
एतैर्बभ्रम्यते जीवः, संसारे बहुदुःखदे॥ 23 ॥

काम, क्रोध, लोभ, राग-द्वेष, मात्सर्य, मद, माया, कामसेवन की इच्छा और अहंकार (दर्प), ये ही शत्रु, निश्चय से, धर्मरूपी सर्व धन को हरण करने वाले चोर हैं। इन्हीं के कारण यह प्राणी अतिदु:खदायक संसार में भ्रमण करता है।

॥ देशना॥

अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं।

तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है।

यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी 'सारसमुच्चय' में आत्मा के स्व-स्वरूप की व्याख्या करते हुये समझा रहे हैं। जो असद् गुण है, वह सद् है। जो सद्गुण है, वो भी सद् है। असद् गुणों की सत्ता को नहीं स्वीकारोगे, तो वो भी असत्य हो जायेगा। ज्ञानियो! अंदर में पहुँचकर समझने का प्रयास करना। मिथ्या सत्य है। यदि मिथ्या सत्य नहीं है, तो मिथ्यात्व की सत्ता क्या? ये मिथ्या है, ये सत्य है, मिथ्यात्व की सत्ता स्वीकार है। यदि मिथ्या सत्य नहीं होगा, तो अनादि से आत्मा संसार में किस गुण के साथ रह रही है? जीव सत्ता-विहीन कभी नहीं होता। जीव श्रद्धाविहीन कभी नहीं होता। श्रद्धा से रहित जीव रह ही नहीं सकता। श्रद्धा गुण है आत्मा का।

हे जीव! श्रद्धाभाव तेरे अंदर में त्रैकालिक है, परन्तु अंतर से होता है। जब तक सद्गुरु, सद् शास्त्र, सद् देव का आलम्बन नहीं लेता है, तब तक असद् गुरु, असद् शास्त्र, असद् देव के आलम्बन में लीन होता है। पर श्रद्धा के बिना रह नहीं रहा है। असद् पर जो श्रद्धान है, उसका नाम मिथ्या है। सद् पर जो श्रद्धान है, उसका नाम सम्यक् है। श्रद्धा तो है। श्रद्धा ही काम करती है। जितना गहरा मिथ्याज्ञान होता है, वही गहरा मिथ्याज्ञान, उतना गहरा सम्यक्-ज्ञान हो जाता है।

क्षयोपशम विराट है। सम्यक्पने को मिथ्यापने में बदलने में देर नहीं लगती है। ज्ञान की प्राप्ति का पुरुषार्थ भिन्न है और सम्यक् श्रद्धान की प्राप्ति का पुरुषार्थ भिन्न है। जिस जीव

ने 500 शिष्यों के गुरुपने को प्राप्ति किया हो। तर्क, छन्द, व्याकरण, न्याय, वेद-पुराणों का ज्ञाता हो, और 500 शिष्यों का गुरु हो। तुम उन इन्द्रभूति से पूछना- आप ज्ञानी थे। पहले ज्ञानी स्वीकारिये। वो जीव ज्ञानी था कि नहीं? ज्ञानी था। सम्यक्-ज्ञानी नहीं था। तत्त्व में भूल कहाँ कर लेते आप? सबको आप अभाव में डाल देते हो। जबकि अभाव में डालते रहोगे, तो आप-अपने विषय की सिद्धि नहीं कर पाओगे।

जो आपको दिख रहा है, वो वही है, तो दिखनेवाले का भी अभाव है। भित्ति का एक भाग दिखता है, दूसरा भाग दिखता क्या? 'भित्ति' शब्द संस्कृत का ही है। भित्ति के अपर भाग का अभाव नहीं है। पूर्व भाग दिख रहा है, इसका तात्पर्य है कि अपर भाग होना ही चाहिये। जिसका चेहरा है, उसका पृष्ठ भी है। जैनतत्त्व को जैनन्याय से समझिये आप। कठिन मान कर आप लोग छोड़ते गये हो। मेरा उद्देश्य आप को विद्वत्ता दिखाना नहीं है, आप विश्वास मानिये। वर्तमान की पीढ़ी ने जैनन्याय को समझना तो दूर है, जैन न्याय है भी कि नहीं है, इसे भी भूल गये हैं।

आप तो स्पष्ट लिखो जैन न्याय, जैन तत्त्वविद्या, तो लोगों को समझ में आये। जिसके बिना वस्तुस्वभाव की सिद्धि नहीं होती है, जिसके बिना वस्तुस्वभाव को सम्यक्रूपेण जाना नहीं जाता है, उस विद्या को विद्वान् लोग, आचार्यभगवान्, मुनिगण वर्तमान के चुटकुले के युग में सब छोड़ते चले जा रहे हैं।

प्रवचन युग चल रहा है, पर प्रवचन कहते किसे हैं, इसका पता नहीं है। हर दर्शन में प्रवचनों की बहुत भीड़ लगी हुई है। टी.वी. चैनलों पर आजकल बहुत प्रवचन चल रहे हैं। लेकिन हे ज्ञानी! प्रवचन की परिभाषा का बोध नहीं होगा, तो प्रवचन किस बात का? प्रवचन यानि शासन। जब तक प्रवचन नहीं होता, तब तक तीर्थंकर का शासन प्रारम्भ नहीं होता। भगवान् का जन्म तीर्थंकर का शासन नहीं होता। भगवान् का गर्भ, दीक्षा कल्याणक, केवलज्ञान कल्याणक भी तीर्थंकर का शासन नहीं होता। भगवान् का निर्वाण भी तीर्थंकर का शासन नहीं होता है। जिस दिन से भगवान् तीर्थंकर की दिव्यदेशना खिरना प्रारम्भ होती है, उस दिन से शासन प्रारम्भ होता है।

अहो! हम वीरशासन जयन्ति मनाते हैं। जैनियों का नववर्ष वीरशासन जयन्ति से है। वीर के जन्म से नहीं, वीर के गर्भ से नहीं, तप से नहीं, यहाँ तक कि कैवल्य से भी नहीं। निर्वाण तो बाद में होता है। ज्ञानियो! वीरशासन उस दिन से प्रारम्भ हुआ, जिस दिन से तीर्थंकर भगवान् की वाणी खिरी, दिव्यध्वनि खिरी है। वही प्रवचन है और प्रवचन जो है, उसका नाम शासन है।

जिस शासन में जिनशासन की महिमा न आये, तो वह प्रवचन नहीं, प्रवचनाभास है। किसी को गाली देना, किसी की आलोचना करना, किसी के प्रति अपशब्द का प्रयोग करना, ये प्रवचनकारों की भाषा नहीं है, ये अज्ञ प्राणियों की भाषा है, विज्ञों की भाषा नहीं होती है। जो विज्ञ पुरुष होता है, वह अर्हन्त के शासन की महिमा का गुणगान करता है। जिसके तत्त्वोपदेश को सुनकर मिथ्यादृष्टि जीव के भी जिनेन्द्र, जिनगुरु, निर्ग्रन्थ वाणी पर श्रद्धान बढ़ जाये, उसका नाम प्रवचन है। और जिस भाषा को सुनकर जीव का देव, शास्त्र, गुरु के प्रति श्रद्धा ही टूट जाये, वह प्रवचन नहीं, प्रवचनाभास है।

जब एक समय में सात राजू गमन करने की सामर्थ्य है, तो ये कौन-सा विज्ञ प्रयोग चल रहा है? एक समय में आहार लेने पर स्वर्ग तक ही जा पायेगा। जिस दिन लेना बन्द हो जायेगा, उस दिन सात राजू गमन करेगा। ततोऽन्यत्तदाभासम् (5/1 प.मु.सू.)। जो जैसा होना चाहिये, वैसा न होना, इसका नाम आभास है।

मुनि के जो गुण हैं, वो मुनि में होना चाहिये। यदि वे गुण मुनि में नहीं हैं, तो मुनित्वाभास। जो गुण विद्वानों में होना चाहिये, वे गुण विद्वानों में नहीं हैं, तो विद्वानाभास। जो गुण श्रावक में होना चाहिये, वे गुण श्रावक में नहीं हैं, तो श्रावकाभास। वस्तु नहीं है, तो आभास मात्र है। 'ततोऽन्यत्तदाभासम्।' ये और इस ग्रन्थ के ऊपर 'प्रमेय रत्नमाला' 'प्रमेय कण्डिका' 'प्रमेय कालिका' और 'न्याय दीपिका' महान ग्रन्थ हैं। यानि जैनन्याय के भरपूर ग्रन्थ अपने पास हैं। आवश्यकता है इन युवाओं को पढ़ने की।

गोष्ठी हुई इन्दौर में 'स्वरूप सम्बोधन' की जैनन्याय के ऊपर। सारे देश के विद्वान् आश्चर्यचकित थे। आचार्य विद्यानन्द जी महाराज के समाचार आये दिल्ली से कि विशुद्धसागर जी! आपने ये ही काम श्रेष्ठ किया है कि लुप्त हुई विद्या को प्रकट होने के लिये विद्वानों को प्रेरित किया है। 50 विद्वानों के मुख से निकल रहा था, महाराज! जिस विद्या को मैं भूल रहा हूँ, अब आवश्यकता है। आप हमारी क्लास ले लो। विद्वानों ने कहा क्लास लेलो।

आर्यिका ज्ञानमती, आचार्य विद्यानंद, आचार्य विद्यासागर इन लोगों ने 'अष्टसहस्री' पढ़ी है। जैसे बछड़ा अपनी माँ के आँचल से लग करके दूध निकाल लेता है, ऐसे ही गुरु के चरणों में बैठकर जब तक जीवन चल रहा है, इनसे रहस्यमयी विद्या सीखना चाहिये। जगत् की विद्यायें तो दुनियाँ में मिल जायेंगी, परन्तु ये गूढ विद्यायें ज्ञानी गुरु से ही मिल पायेंगी।

'लघीयस्त्रय' नाम का ग्रन्थ है और इस ग्रन्थ के कर्त्ता आचार्य भट्ट अकलंक स्वामी हैं। जब-जब जैनन्याय की चर्चा होती है, तो श्वेताम्बर आम्नाय को भी हाथ जोड़करके यूँ

कहना पड़ता है कि वे दिगम्बराचार्य अकलंक, समन्तभद्र, विद्यानन्द स्वामी जयवन्त हों जिनने जैनन्याय को प्रारम्भ किया, शुरूआत की है।

श्वेताम्बर आम्नाय में जैनन्याय नहीं था। अकलंक देव के ग्रंन्थों को लेकर उन्होंने अपनी विद्या को आगे बढ़ाया। जब भी जैनन्याय की चर्चा होती है, विद्यानन्द स्वामी की 'अष्ट सहस्री' गुंजायमान होती है। जैनन्याय के लिये भट्ट अकलंक स्वामी का युग चल गया। जो चिन्तन पूर्वाचार्यों के मस्तिष्क में नहीं आ पाये थे, वे चिन्तन आचार्य अकलंक स्वामी ने प्रदान किये हैं।

'सांव्यवहारिक' ये भट्ट अकलंक स्वामी की देन है। आत्मा को जड़ कहने की ताकत यदि किसी में है, तो वे आचार्य अकलंक स्वामी हैं। भैया! आत्मा चेतन है, कि अचेतन? मैं तो जानकर आपसे चेतन ही कहलवाना चाहता था। इससे रहस्य उद्घटित होगा। (दोनों है) कैसे दोनों है? भैया! चेतन है, परम्परागत तो यही है। आत्मा चेतन है, सम्पूर्ण सिद्धांतग्रन्थों में यही लिखा है; पर आत्मा अचेतन भी है, इस बात को कहने वाला कोई योगी हुआ है भारत की भूमि पर, उसका नाम है 'आचार्य अकलंक स्वामी'। और जब अकलंक स्वामी ने आत्मा को अचेतन कहा तो कोई यूँ नहीं कह सका कि क्यों कह दिया? तर्क और प्रमाण के साथ कहा है, ताकि तुम्हारा चिन्तवन् वहीं जाये।

भैया! जिस भूमि पर उपदेश चल रहा है, आपको मालूम होना चाहिये, कि इसके नीचे पानी भरा हुआ है। पर हे ज्ञानी! जब तुझे ग्रीष्मकाल में प्यास लगती है, और दौड़के आयेगा, तो भी तुझे पानी पीने को मिलेगा नहीं। पर भरा हुआ है लबालब। और भी खनिज हैं। पर जिसने नहीं खोदा, उसको पानी कहाँ मिला है? वो आपने खोदा नहीं है, इसका तात्पर्य क्या पानी का भूमि में अभाव है? आपकी दृष्टि नहीं गई। बुन्देलखण्ड की कहावत है 'काँख में लड़का, गाँव मे टेर।'

अभी-अभी कटनी के पास संगमरमर निकलने लगा है, चार-पाँच साल से। क्या पहले नहीं था? कहीं से भर गया क्या वहाँ पर संगमरमर? संगमरमर तो वहाँ पूर्व से ही था। लेकिन ज्ञान जिसको हुआ, बोले-भारत की खोज की । अहो आश्चर्य! जैसे भारत कोई डिबिया हो, सोने की पुड़िया हो, भारत कोई तनिक-सी वस्तु हो जो भारत की खोज की।

भैया! भारत की खोज किसने की? पुर्तगाल से चला वास्कोडिगामा, उसने भारत की खोज कर ली। अरे! जिस भूमि पर तीनलोक के नाथ तीर्थंकर हुये हों, जिस पृथ्वी पर नारायण, प्रतिनारायण, बलभद्र, चक्रवर्ती हुये हों, उस भूमि की खोज करने को चला वास्कोडिगामा? अरे! सीधा-सीधा बोल कि तू आज तक भारत आया नहीं था, इसलिये तू भारत आ गया

और तू कह रहा कि मैंनें भारत खोज लिया। अवस्तु की खोज होती है कि वस्तु की खोज होती है? अन्वेषण किसका? इसलिये जगत् में कोई भी किसी वस्तु को उत्पन्न करता ही नहीं है। और जो करता है, वह सत्य बोलता ही नहीं है।

वस्तु त्रैकालिक होती है। वस्तु की उत्पत्ति नहीं की जाती है। वस्तु का अन्वेषण किया जाता है। आपको मालूम नहीं था। सीधा-सीधा बोल-आप अज्ञानी थे, सो आपको ज्ञान हो गया है। भैया! भारत गुम गया था क्या जो खोजा गया है? इसलिये आजकल बड़ी-बड़ी सभाओं में अच्छे शब्द का प्रयोग होने लगा है। पहले लोग बच्चे गुम जाये सो बोलते थे 'लड़का गुम गया है। ये अपने बालक को ले जाओ', लेकिन 'सबके दिन एकसे नहीं होते।' देखो तो काला चेहरा चमकने लग गया। सत्यता ये है कि बालक गुम गया होता तो माइक में किसको बुलाया जा रहा है? बालक तो रो रहा है सामने। बोले-इसके माता-पिता गुम गये हैं, बालक तो हमारे हाथ में है। ध्रुव सत्य है, वस्तु का उत्पाद नहीं होता। जो परिणमनशीलता है, वह है पूर्व पर्याय का व्यय और नवीन पर्याय का उत्पाद। ध्रुव की उत्पत्ति नहीं होती है, पर ध्रुव में परिणमन होता है। वही उत्पाद-व्यय होता है।

जैनदर्शन सुनिये आप। वस्तु गुमी नहीं थी, वस्तु थी। आपको वस्तु का ज्ञान नहीं था। आपने वस्तु को जाना है। वैज्ञानिकों ने किसी भी द्रव्य का निर्माण नहीं किया। जो खोज कर रहा है, उस खोजनहारे का निर्माण नहीं होता है। ये सब वैज्ञानिक लोग हैं। भौतिक वैज्ञानिकों ने जड़ की खोज की है और वीतराग-वैज्ञानिकों ने चैतन्य भगवान्-आत्मा की खोज की है। भारत की भूमि ने यदि किसी को कुछ दिया है, सबसे बड़ी वस्तु दी है, तो आत्म-द्रव्य को बताया है। उसमें श्रमणसंस्कृति पूर्णता को प्राप्त है।

वस्तु को खोजा नहीं जाता, वस्तु होती है। अपने निज के ज्ञान को वृद्धिगत किया जाता है, तो आपको वस्तु का बोध हो जाता है। जो भगवान् नहीं थे, भगवान् थे, इसलिये भगवान् बने हैं। तो जो ये खोज है, वास्तविकता में जिसे तुम भूल गये हो, आपका ज्ञान है। अज्ञान का अभाव करके ज्ञान को उद्घाटित करना, यही खोज है। आपमें ज्ञान प्रवेश नहीं कर पा रहा है, इसलिये आपको गुमी लगती है। यदि आपका पेन कहीं गिर गया है, तो तुझे दु:ख इसलिये नहीं रहा है यदि मालूम चल जाये कि वहाँ पर गिरा है, तो तेरा दु:ख समाप्त हो जाता है।

दु:ख वस्तु में नहीं है, दु:ख व्यक्ति में नहीं है। दु:ख यदि कहीं है तो उसका नाम अज्ञानता है। इष्ट के वियोग में भी दु:ख हो रहा है, वो भी अज्ञानता में। अनिष्ट के संयोग में दु:ख

हो रहा है, वह भी अज्ञानता में। क्योंकि अज्ञानता ही कष्टदायी है। विषयों में सुख महसूस कर रहे हो, वो भी अज्ञानता है। विषयों की प्राप्ति नहीं हो रही है, इसलिये दु:खी हो रहे हो, वो भी अज्ञानता है। जिस दिन सत्य का बोध हो जाता है, उसी क्षण आनन्द प्राप्त हो जाता है।

खोज किसकी करें हम? व्यवहार में उसे खोजना कहा जाता है, गवेषणा कहा जाता है, अन्वेषण कहा जाता है। पर सत्यार्थ यह है कि अज्ञान का अभाव ही सबकुछ है। केवली भगवान् किस-किस को खोजते हैं?

यहाँ बैठा योगी ध्यान कर रहा था तो कुछ समझ में नहीं आ रहा था। जगत् के द्रव्य के बारे में सोचना पड़ रहा था। सम्मेदशिखर की वन्दना करना हो, तो वहाँ का ध्यान करो। विदेहक्षेत्र की वंदना करना हो तो, वहाँ का ध्यान करो। ऐरावत क्षेत्र के तीर्थंकरों के दर्शन में अर्हन्त की वन्दना करने के भाव को अज्ञान-भाव कह रहा हूँ। तुम झेल पाओगे क्या?

ज्ञानी! अर्हन्त की, पंचपरमेष्ठी की वन्दना का भाव अज्ञान-भाव है। जो अज्ञानी हुआ करते हैं, वे ही वन्दना के भाव करते हैं। जो महा अज्ञानी होते हैं, वे वन्दना का भाव ही नहीं करते। जो पूर्णज्ञानी होते हैं, उनके वन्दना के भाव का ही अभाव हो जाता है। क्षायोपशमिक भाव है। अब क्यों राग सताने लग गया? ज्ञानी! राग छोड़ो। मैं तो अज्ञानी कह रहा हूँ , अज्ञानी। जब तक क्षायिक ज्ञान नहीं है, तब तक तू ज्ञानी-अज्ञानी।

हे अल्पधी! अब ठीक है? ज्ञानियो! मैं तो आपको ज्ञानी कह रहा था, अब ठीक है? बड़ी समस्या है भैया। ये मुमुक्षु न ज्ञानी, न अज्ञानी सुनना चाह रहे हैं। भो अज्ञानी-ज्ञानियो अब तो स्वीकार है? जो वन्दना का अभाव चल रहा था, ये अज्ञानमयी भाव है। ज्ञानावरणी कर्म के उदय से नाना विकल्पात्मक ज्ञान होता है। उसके क्षयोपशम से किंचित ज्ञान प्रकट दिखाई देता है। लेकिन मुझे सीमन्धर स्वामी के दर्शन करने के भाव आ रहे हैं। क्यों आ रहे हैं ? क्योंकि मेरे सामने नहीं हैं। तीर्थभूमियों की भावना के भाव आ रहे हैं।

क्यों भटक रहे हो वन्दना के लिये? बंधक भाव बन्द कर दो, अबन्धक हो जाओ और बन्धनातीत हो जाओ। ज्ञानावरणी कर्म के बन्ध का अभाव कर दो, कैवल्य प्रकट कर दो, तो कहीं वन्दना की आवश्यकता नहीं। जो-जो वन्दनीय स्थान हैं, वे -वे तेरे ही ज्ञान में झलकेंगे। तू ही परम वन्दनीय हो जायेगा।

हे ज्ञानी! मेरे पीछे कौन है? पास में कौन है? दायीं ओर कौन? बायीं ओर कौन, पृष्ठ में कौन? हे ज्ञानी! मेरे पास इतना समय नहीं कि मैं इधर-उधर देखूँ। अब आप ऐसा करो

कि सभी कोणों पर दर्पण जमा दो। मैं तो मात्र सामने देखना चाहता हूँ। एक दर्पण पीछे लगाओ, उसके ठीक सामने एक दर्पण लगा दो। एक दायीं तरफ, एक बायीं तरफ लगाओ। चारों ओर आमने-सामने व्यवस्थित कर दो। चारों ओर का पदार्थ मेरी गर्दन को हिलाये बिना मुझे दिखाई देगा। ज्ञानी! जब कांच की स्वच्छता से सिर नहीं हिलता है, तब ज्ञान की स्वच्छता से सिर नहीं हिलाना पड़ता है। केवली के ज्ञान में त्रैलोक्यवर्ती, त्रिकालवर्ती, सम्पूर्ण द्रव्यों की गुण-पर्यायें युगपत् झलकती हैं। केवल ज्ञानी को किसी को देखने का भाव नहीं होता।

जब देखने के भाव का अभाव हो जाता है, तब सारा युग, सम्पूर्ण काल, सम्पूर्ण पदार्थ झलकते हैं कोई ऐसा ज्ञेय नहीं बचा, जो प्रभू के ज्ञान में नहीं आ रहा हो। ज्ञानी! अब उनको दु:ख किस बात का है? कौन उठा रहा है, कौन रख रहा है, सब ज्ञात है। दु:ख किस बात का? भैया! आपको कष्ट इस बात का है, कि आपको अपने पीछे के पुरुष को देखने के लिये सिर मोड़ना पड़ता है। अखण्ड रूप से कथन किया जाये, तो सुख 'ज्ञान' मात्र है, दु:ख 'अज्ञान' है।

जीव पाँच इंद्रियविषयों के सुख की अनुभूति जो ले रहा है, वह अज्ञान मात्र है। स्वयं की करतूती का बोध स्वयं होता तो तुझे स्वयं पर हँसी आती। जो बचपन में बचकानीपना किया है उसका चिन्तन करना एक बार। आज कोई बच्चा ऐसा करता दिख जाये तो तू डाँटता है। वो तुझे सोचना चाहिये कि मैं क्या था? ये जो सही होता तो आज पश्चात्ताप क्यों?

प्रवचन का बोध होना चाहिये, फिर प्रवचन होना चाहिये। ग्रन्थ में 3 प्रकरणों की व्याख्या है। (1) प्रमाण प्रवेश (2) लघीयस्त्रय प्रवेश (3) प्रवचन प्रवेश। आचार्यभगवन्त अकलंक स्वामी ने 3 प्रकरणों की व्याख्या की है। जब तक तुम्हारा प्रवचन में प्रवेश नहीं हुआ, तब प्रवचन किसका? किसके लिये?

जिसको नय-प्रमाण-निक्षेप का बोध है, निर्देश-स्वामित्व-साधनाधिकरण-स्थिति-विधानत:। (1/7 त. सू.) का बोध है, सत्संख्याक्षेत्र-स्पर्शन-कालान्तर-भावाल्प-बहुत्वैश्च। (1/8 त. सू.) का बोध है, वही प्रवचन करने का अधिकारी है। जिनको इनका बोध नहीं है, उनको प्रवचन का अधिकार नहीं है। चारों अनुयोग का ज्ञाता होना चाहिये। त्रिविध आगम (तर्कागम, शब्दागम, परमागम) के ज्ञाता यदि आप हो, तो फिर आप तत्त्वोपदेश करने बैठो। यदि ज्ञातापने से शून्य होगे, तो वक्ताओ! तुम प्रवचन यानि श्री जिनेन्द्र के शासन को नहीं कहोगे। बाहर के चुटकुले सुनाकरके श्रोताओं के हृदय की वंचना करोगे।

तो यहाँ क्या कहते है? मिथ्यात्व को सत्य स्वीकारिये, असत्य को सत्य स्वीकारिये। भित्ति का प्राग भाग है, तो पश्चात भाग भी होना चाहिये। हे ज्ञानियो! सम्यग्दर्शन है तो मिथ्यादर्शन अवश्य होना चाहिये। मिथ्यादर्शन का अभाव कर दोगे, तो सम्यग्दर्शन का प्रादुर्भाव किसके अभाव से होगा? मिथ्यात्व का अभाव होगा, तभी सम्यग्दर्शन का प्रादुर्भाव होगा। श्रद्धा एक वस्तु है। उस श्रद्धा के परिणमन में वही द्रव्य, कोई अलग से द्रव्य नहीं लेके आना। सम्यग्दृष्टि के लिये कोई अलग से द्रव्य नहीं आते, मिथ्यादृष्टि के लिये भी कोई अलग से द्रव्य नहीं आते।

ज्ञानी! तेरे बेटे की माँ और तेरी पत्नी अलग-अलग हैं, कि वही है? भैया! सच-सच बताना, जब तू बेटे की माँ के पास जाता है, तो तेरे भाव क्या होते हैं? और तेरी पत्नी के सामने तेरा बेटा आता है, तब भाव क्या होते हैं? और तेरी पत्नि के सामने उसका भैया आता है, तब उसके भाव क्या होते हैं? और तेरी पत्नि के सामने उसका पिता आता है, तब भाव क्या होते हैं? भैया! आपको मालूम होना चाहिये कि सम्यक् के उपकरण अलग नहीं हैं, मिथ्यात्व के उपकरण अलग नहीं हैं। बेटे के लिये जो माँ है, वही उसके पिता के लिये पत्नि है। जो अर्हन्त का बिम्ब सम्यग्दृष्टि का जिनदेव है, वही मिथ्यादृष्टि को कुदेव हो जाता है। जो जिनवाणी सम्यग्दृष्टि के लिये तत्त्वों की प्ररूपणा कर रही है, वही जिनवाणी मिथ्यादृष्टि के लिये मिथ्याभूत दिखती है। ऐसा नहीं है क्या?

भिन्न द्रव्यत्व नहीं है। जो कुछ परिणमन चल रहा है, छः द्रव्यों का है। चाहे सम्यक् की प्ररूपणा हो, वह छः द्रव्यों के अन्तर्गत है; चाहे मिथ्यात्व की प्ररूपणा हो, वह भी छः द्रव्यों के अन्तर्गत है। 363 मिथ्या मत भी छः द्रव्यों के ही अन्तर्गत हैं। भैया! तू किसके खेत के गेहूँ खाता है? क्षत्रिय के, वैश्य के, ब्राह्मण के, शूद्र के, किसके खेत के गेहूँ खाता है? अगर तुझसे कह दें कि ये शूद्र के घर के गेहूँ हैं, तो तुरन्त थाली फेंक कर भाग जायेगा। लेकिन, भैया! ये गेहूँ शूद्र के ही घर के नहीं, बैल के द्वारा लघुशंका मिले हुये भी हैं। फेंको, कहाँ फेंक रहे आप?

ज्ञानी! वे ही गेहूँ श्रावक के घर में आकर धुलकर, पीसकर रोटी बन गई, सो श्रावक के घर की रोटी बन गई। गेहूँ से पूछो कि बीज किसके हाथ से डाले गये थे? श्रावक के घर में संस्कारित वही शूद्र के घर में बन जाये सो अभी नहीं हुई, अभी बहुत कमी है।

जैसे गेहूँ का दाना बोने वाला चाहे शूद्र हो, चाहे ब्राह्मण, कोई भी हो। संस्कारित होकर जिसके घर में रोटी बन गई, उसके घर की बन गई और ज्ञानी! स्वाद भी वैसा आने लग

गया। इन माताओं से पूछो, सभी भाग्यवान नहीं हैं। भैया! कितने ही रूपया खर्च कर लें, लेकिन यदि बेटे की माँ से भोजन न बने, तो बेचारे के तो कर्म ही फूट गये, भाग्य फूट गये। और ऐसी भी माँ है, कितनी भी सूखा द्रव्य लेकर आये, वो अपनी बुद्धि के विवेक से इतना सुन्दर बनाती है, सूखे द्रव्य को भी इतने प्रेम से खिलाती है कि राजमहल का 56 प्रकार का व्यंजन खिला रही हो। भैया! ऐसे भी माँ के हाथ होते हैं।

भैया! सुनो, वक्ता की पहचान पहले कर लेना, तभी उसके वचन को स्वीकार करना। वक्ता ने जैसा घुमा दिया, वैसे ही हम घूम जाते हैं, फिर बाद में 'ओ-ये! क्या हो गया?'

वक्ता प्रमाणित है, तो वचन प्रमाणित हैं और वक्ता प्रमाणित नहीं है, तो वचन भी प्रमाणित नहीं हैं। इसलिये पहले आप्त की खोज करिये, फिर आगम की खोज करना। जिसको आप्त की खोज नहीं है, यदि वह आगम की खोज करने चला जायेगा, तो वह नियम से भ्रमित होगा।

मिथ्यात्व के लिये कोई वस्तु अलग से नहीं आती, सम्यक् के लिये कोई वस्तु अलग से नहीं आती। समन्तभद्रस्वामी कहेंगे, हे ज्ञानी! सुन, भावप्रमेय की अपेक्षा से मिथ्यात्व होता ही नहीं है। बाह्य प्रमेय की अपेक्षा ही मिथ्यात्व सम्यक् होता है। भैया! ये लेखनी है और आप चले कान खुजाने। भैया! कारण-कार्य विपर्यास क्यों कर रहा है? ये ज्ञान का, लिखने का उपकरण है, ये कान के मल को निकालने का उपकरण नहीं है। भगवान् की पूजा के लिये भैया! तूने बेन्चें रखी थी और दूसरा गया और बढ़िया टिक-टिक करके जय-जय नाथ परम गुरु होय। हे ज्ञानी! यदि टिकना है, तो घर से कोई सामग्री लेकर आ। ये मंदिर की बेन्चें तेरे टिकने की बेन्च नहीं है। कारण- कार्य विपर्यास। और दूसरा गया, उसने एक चम्मच-कटोरी उठाई और धड़ा-धम बजाना शुरू कर दिया और पूरे बर्तन ही फोड़ दिये। हे ज्ञानी! कारण-कार्य विपर्यास क्यों किया? तुझे शौक है तो मंजीरे लेकर बजा। तूने पूरे बर्तन फोड़ डाले, फूटे बर्तन से जो पूजन करेगा, वह दरिद्री हो जायेगा। तुझे घोर पाप का बन्ध हो जायेगा। इसलिये मंदिर में झांझ-मंजीरे तो रख देना, लेकिन ये कटोरियाँ और गिलसियाँ बजाना बन्द करो। काम बन जाये और भाव न बिगड़े। अब ये मातायें सिर खोलकर आती थीं रोज-रोज, हमने एक दिन ऐसे ही कही, सो सबके अपने आप सिर ढंक गये। देख लो जिनके अभी खुले थे, सो ढंकने लग गये।

आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी ने इतनी सुन्दर बात बताई है, कि ज्ञानी! किसी का उपकार करना हो तो युक्ति व आगम से करो। आगम का भी कथन करना हो, तो युक्ति से करो। युक्ति से रहित कार्य करोगे, तो ज्ञानी! वह बिचक कर भाग जायेगा, तुम्हारे पास ही नहीं आयेगा, तो तुम समझाओगे किसको ?

मैं किसी के मिथ्यात्व को मिथ्यात्व नहीं कह रहा हूँ, सम्यक् को सम्यक् नहीं कह रहा हूँ, वस्तुस्वभाव भावप्रमेय की अपेक्षा से। भैया! होता क्या है? जो विषय के विशेषज्ञ हों, उन्हें किसी को छउकाना नहीं चाहिये। यदि अपनी विद्या तुमको देना है, तो पहले नजदीक तो लाओ, जिससे पता चलेगा कि तुममें है क्या? भैया! कोई पण्डित जी आपके नगर में पधारे और पहले ही दिन धूम-धड़ाका कर दिया। भैया! आदमी सोचे कि अपनी क्यों धुवाने जायें वहाँ? हे भाई! विवेक से कथन करो, विवेक से बोलो, विवेक से खाओ, विवेक से सोओ, जिससे कर्मो का बन्ध नहीं होगा और तुम साधु भी बन जाओगे। 'आचारांग' का सूत्र है"

कधं चरे कधं चिट्ठे कधमासे कधं सये।
कधं भुंजेज्ज भासेज्ज कधं पावं ण बज्झदि ॥ मूलाचार ॥

कैसे चलें, कैसे खायें, कैसे जायें, कैसे बोलें, कैसे सोयें, कैसे बैठें, जिससे कर्म का बांध न हो?

जदं चरे जदं चिट्ठे जदमासे जदं सये।
जदं भुंजेज्ज भासेज्ज एवं पावं ण बज्झइ ॥ मूलाचार॥

यत्नपूर्वक खाओ, यत्नपूर्वक बोलो, यत्नपूर्वक जाओ, यत्नपूर्वक शयन करो, यत्नपूर्वक गमन करो, जिससे पाप का बन्ध न हो। यही तो मूलाचार हो गया पूरा। एक शब्द में उत्तर हो गया। बुन्देलखण्ड में कहने लगते हैं कि श्वान भी आता है तो वह भी पूँछ हिलाकर बैठता है। अब आप बैठ गये चटाई पर। अरे! जरा उठाकर तो देख लो कि कोई जीव तो नहीं है? मार्जन कर लो।

भैया! ये पुद्गलद्रव्य है। पेन को देखोगे तो भिन्न भाव है, द्रव्यत्व को देखोगे तो भिन्न भाव है। सम्बन्ध को देखोगे तो पत्नी, पुत्र नजर आते हैं। " तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् "। (1/2 त.सू.) जब जीवद्रव्य पर श्रद्धान करेगा, वह जीवतत्त्व कोई अलग है कि आपही लोगों में से एक है? तत्त्व सुनने का उद्देश्य यह है कि साम्यभाव आना चाहिये। अखण्डता का भाव आना चाहिये, कि खण्डता का भाव आना चाहिये?

भैया! आप कहते हैं कि मैं तो 'तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यक्' को मानता हूँ। भैया! आप पर श्रद्धा नहीं, इसलिये मैं आपको नहीं मानता हूँ। भैया! तू जिस श्रद्धान से सम्यक् कह रहा है, उसमें कोई दूसरा है कि नहीं? तो शब्द स्ववचन-बाधित हो गया। जब तू तत्त्वों पर श्रद्धा करता है तो भैया! इसकी आत्मा तत्त्व से भिन्न नहीं है। ये भी जीवतत्त्व है। इसलिये इसकी

अश्रद्धा के भाव मत लाइये। अनर्थ कहाँ हो रहा है? दिगम्बरत्व की प्राप्ति आकिंचन स्वरूप में लीन होने के लिये थी न? और मुझे उस दिगम्बरत्व पर ही राग आ गया। तत्त्वार्थ श्रद्धान प्राणि मात्र के प्रति एकता का भाव था, और आपने "तत्त्वार्थ श्रद्धानम् " शब्द को लेकरके परस्पर में भेद कर लिया।

अब मुझे समझ में आता है कि तीर्थंकर जैसे जीव को 10 भव निकल गये अर्हन्त बनने के लिये, ये 10 भव किसमें गये भैया? मात्र तत्त्व के सम्यक् समीचीन श्रद्धान की प्राप्ति के लिये, और तत्त्व के गहरे निर्णय के लिये। 10-10 भव निकल गये तीर्थंकर-जैसी आत्मा के लिये। परमसंयम की सिद्धि नहीं कर सके, समग्र चारित्र की सिद्धि नहीं कर सके। और जिस दिन समग्र चारित्र हो जायेगा, उस क्षण कैवल्य प्रकट हो जायेगा। निर्वाण हो गया।

जिसे आप जानते हो, उसे तो जानो, मानो, पर जितना तुम जान चुके हो, ऐसे-ही मान कर मत बैठ जाना, इसके आगे भी कुछ है। जितना मैं आपको कह पा रहा हूँ, वह बहुत कम है और जितना मैं जान पा रहा हूँ, वह भी बहुत कम है। जितना अर्हन्त जानते, उतना अर्हन्त कह नहीं पाये और जितना अर्हन्त कह गये, उसको गणधर झेल नहीं पाये और जितना गणधर ने झेला है, उतना गुन्थन नहीं हुआ। जितना गुन्थन हुआ, उतना आचार्यों के पास नहीं पहुंचा। जितना आचार्य जानते थे, उतना आचार्य भी नहीं लिख पाये; क्योंकि कथन नय से होता है और नय अंश को बोल पाता है।

ज्ञान प्रमाणभूत है और कथन? आप तो दिगम्बर मुनि का कमण्डलु देखा करो, उसमें सबकुछ भरा रहता है। बड़े मुख से भरा है, लबालब पानी भरा है। पर जब भी निकालता है, टोंटी से ही निकलता है। नय तो टोंटी है। उसमें तो जितना निकलता है, उतना ही निकलता है। आज से ध्यान रखना। माँ! मिथ्यादृष्टि के प्रति भी अशुभ भाव नहीं लाना। मिथ्या श्रद्धान से रक्षा करो अपनी। मिथ्यादृष्टि ही सम्यक् प्राप्त करेगा, वही सम्यग्दृष्टि बनेगा और वही जीव अर्हन्त/सिद्ध बनेगा। हे भगवान् ! यदि मारीचि नहीं होता तो, महावीर कौन बनता? कैसे महावीर जयवन्त होते? महावीर की वन्दना है,मारीचि की पर्याय की नहीं है। पर्यायदृष्टि है, प्रत्यासत्ति है।

ये ज्ञानी बोल रहा है, 'महाराज श्री! परिणाम चाहे शुभ हो, चाहे अशुभ हो, जीव तो वही है। वन्दना दोनों की करो।' भैया! ये जब ससुराल गया, इसकी सास बहुत समझदार थी। पूर्ण मुमुक्षु थी। ये बेचारा यहाँ से मीठे के पैकिट ले गया, फल भी ले गया और जाके रख दिया। वह तो खुश हो गई और रख लिया उसने सबकुछ। और भैया! जब इसकी विदाई

का समय आया, सो टीका उसने क्या किया? एक बिनोला (कपास, रूई का फल।) लाई और कहने लगी, बेटा! सुन, द्रव्यदृष्टि से जितने वस्त्र बनते हैं, सब इसी के अन्दर हैं। अब ये भी पण्डित था, तो उसकी द्रव्यदृष्टि पर दृष्टि चली गई, सो कुछ उत्तर नहीं दे पाया। लेकिन जैसे ही रास्ते में दो कदम चला और सोचा, अरे! ये तो ठग लिया देवी ने। क्या करूँ? नया नोट खर्च करके मैं गया था। अब घर में उसने अपनी बुद्धि दौड़ायी, बोले-कभी तो मौका पड़ेगा, देखता हूँ। और जैसे-ही साला आया, उसने आहार जी से गन्ना तुड़वाकर मंगाया, गेंहूँ के थाल भरके लाया और साले के सामने रखकर बोला-हे ज्ञानी! सुन, जितनी भी मिठाइयाँ होती हैं, सब इस गन्ने से बनती हैं। खाओ, स्वाद लो। बोला-जीजा जी! क्या बोल रहे हो? क्या हो गया आपको? बोले-जैसे तेरी माँ ने सिखाया है, वैसा ही कर रहा हूँ। बोले, क्यों? ज्ञानी! तुझे मालूम होना चाहिये कि मैं शुद्ध मावा की मिठाई और अच्छी गुणवत्ता के फल लेके गया था और तेरी माँ ने देख, ये बिनोला पकड़ा दिया।

हे मुमुक्षु! द्रव्यदृष्टि स्वाद नहीं देती, स्वाद तो पर्याय ही देगी जिसका जैसा परिणमन होगा। पूड़ी में पूड़ी का स्वाद और पराठे में पराठे का स्वाद आयेगा। यदि तू पर्याय को गौण कर देगा, तो सिद्धों का स्वाद संसार में आने लग जायेगा और संसार का स्वाद सिद्धों में आने लग जायेगा। ये संकर नाम का दोष हो जायेगा। जो जीव जिस पर्याय में होगा, उसी की अनुभूति आयेगी।

इसलिये ज्ञानियो! घर में घूमने वाले तिर्यञ्चों को अष्ट द्रव्य से पूजने मत लग जाना। वे पर्यायदृष्टि से तिर्यञ्च ही हैं। नहीं-तो भैया! तू कहेगा, हे देवी! मंदिर जाना बन्द कर। द्रव्यदृष्टि से तू भगवान्, मैं भगवान्। में तेरी आरती उतारता हूँ, तू मेरी आरती उतार। अपन दोनों भगवान् हैं।

ओ ज्ञानियो! द्रव्यदृष्टि को इसलिये जानना, जैसे गेहूँ से पूड़ी को जानकरके, उस की प्रक्रिया करके पूड़ी बना लेना। ऐसे ही वर्तमान की अशुद्ध पर्याय में भविष्य की शुद्ध पर्याय को जान करके, असत्य में सत्य की खोज करके, निज के भगवान् को प्रकट कर लेना। इसलिये द्रव्यानुयोग है।

जयवन्त हों आचार्य विरागसागर जी महाराज। वे इतनी मेहनत न करते होते, तो आज हम कहाँ से बता पाते? हे ज्ञानी! कटोरी के पानी को अपना कहते-कहते बहुत दिन निकल गये, पर कुए से पूछ कि पानी किसका है? रत्नाकर से रत्न लाकर घर में रख लिये और कहता है कि मेरे घर का रत्न है। पर मित्र से पूछो-रत्न किसका है?

जयवन्त हों आचार्य विरागसागर जी महाराज। जयवन्त हों वर्द्धमान स्वामी और जयवन्त हों गौतम स्वामी, जयवन्त हो वीतराग सनातन धर्म और नमोऽस्तु शासन।

भैया! आपको मालूम तो है कि आत्मा चेतन है। अकलंक स्वामी कह रहे हैं–

प्रमेयत्वादिभिर्धर्मैरचिदात्मा चिदात्मकः ।
ज्ञानदर्शनतस्तस्मात्, चेतनाचेतनात्मक : ।। 3 स्व.सं.।।

ज्ञानियो! आत्मा अनन्तधर्मात्मक है। अनन्तधर्मात्मक आत्मा में चेतन गुण दो ही हैं (1) ज्ञान (2) दर्शन। अब क्या आत्मा ज्ञानदर्शनस्वभावी मात्र है या कि अन्य धर्म भी उसमें हैं? मुमुक्षुओ! ज्ञान-दर्शन की अपेक्षा से आत्मा चेतन मात्र है। शेष गुणों की अपेक्षा से आत्मा अचेतन ही है। अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व ये गुण इसमें हैं कि नहीं?

भैया! आत्मा अस्तित्व गुण से युक्त है, तो वह चेतन नहीं, अचेतन है। सुख गुण अचेतन है, वीर्य गुण अचेतन है। इन गुणों की अपेक्षा से आत्मा अचेतन भी है। इसलिये स्यात् चेतन, स्यात् अचेतन। आत्मा चेतन-अचेतनात्मक है।

भैया! कुछ भी कहो, हम लोगों ने पुण्य तो किये हैं। पापी तो पाप करते हैं मुस्करा करके, लेकिन हम लोग तो अर्हन्त की वाणी सुन रहे हैं मुस्करा करके। जरूर कोई अर्हन्त बनेंगे। देर हो सकती है, अंधेर होता क्या?

भगवान् सीमन्धर स्वामी भी यदि सामान्य पुरुष होते और वे यहाँ आते, तो अपनी पीठ ठोक कर जाते। बोले-भैया! उधर रहकर हमारे यहाँ लोग आ रहे, सो अच्छी बात है। लेकिन यहाँ तो पञ्चम काल में धर्म का प्रत्यक्ष फल दिख नहीं रहा है, तब भी बिना प्रोफेसर के, बिना प्राचार्य के, बिना ग्रन्थ के कोई इतनी अच्छी पढ़ाई कर ले, पोजीशन बनाये, तो उसकी पीठ ठोकना चाहिये कि नहीं ठोकना चाहिये?

हमारे पास न केवली हैं, न श्रुतकेवली हैं, न अवधिज्ञानी हैं, न कोई देव आ रहे हैं, फिर भी हम लोग मुनि बने हैं, श्रावक बनके बैठे हैं, जो निश्चित ही पीठ ठोकने लायक हैं। जयवन्त हों आपके भाव। अभी देखो, साधु इतने से हैं, नमोऽस्तु-नमोऽस्तु गूँजेगी पूरी गलियों में। छोटे-बड़े बच्चे, हे महाराज! हे महाराज! भगवान् सीमन्धर स्वामी के कैवल्य में झलक रहा होगा—अहो! धन्य हों भरतक्षेत्र के श्रावक। ऐसे समय में आयुबंध हो गया, तो नियम से श्रेष्ठ ही बंध होगा, दुर्गति का बंध हो ही नहीं सकता। बन्ध से कह देना कि बन्द हो जा, यहाँ नहीं आने का।

जो जीव विपत्ति के काल में भी अपनी मुस्कराहट को नहीं भूलता है, उसके लिये विपत्तियाँ भी मुस्कराहट देखकर भाग जाती हैं, उसका कुछ नहीं कर पाती हैं। परेशान करना उसका धर्म है, मेरा नहीं। जो परेशान करने आया है, वो उसका परिणमन है। परेशान होना, या नहीं होना, ये मेरा धर्म है। पुण्य ने मुझे थाली भर भोजन करवाया था। चार-चार थाली भोजन दिखाते हैं श्रावक। तुमको सुनकर पानी आ जाये मुख में अभी। लेकिन नहीं लेना मुझको। पुण्य! ये तूने भेजा है, तेरा काम है। मुझे लेना कि नहीं लेना, ये मेरा काम है। पाप को भी हटा सकते हो, ये ताकत है हम में।

'**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।**' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

संसार-परिभ्रमण का कारण।

रागद्वेषमयो जीवः कामक्रोधवशे गतः।
लोभमोहमदाविष्टः संसारे संसरत्यसौ॥ 24 ॥

काम-क्रोध के वशीभूत हुआ यह रागी-द्वेषी प्राणी लोभ, मोह और अहंकार से आविष्ट हो संसार में भ्रमण करता है।

मोक्षगामी कौन

सम्यक्त्व-ज्ञान-सम्पन्नो, जैन-भक्तः जितेन्द्रियः।
लोभ-मोहमदैस्त्यक्तो, मोक्षभागी न संशयः।। 25 ।।

सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान से सम्पन्न, जिनेन्द्र भगवान् का भक्त, जितेन्द्रिय, लोभ, मोह और मद का त्याग करने वाला जीव मोक्षपद का भागी बनता है, इसमें कोई संशय नहीं है।

।। देशना।।

अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है।

यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी 'सारसमुच्चय' ग्रन्थ में जीवद्रव्य के सहज, असहज स्वरूप की व्याख्या कर रहे हैं। त्रैकालिक ध्रुव परमानन्द स्वरूप जो है, वह सहजस्वरूप है। विकारी भाव जो है, जीव का असहज स्वरूप है। रागादि जो परिणाम है, ये असहज भाव है। उस असहज भाव को सहज कह करके विषयों में लिप्त हो गये अज्ञानी प्राणी, कर्म के नोकर्म को भूल गये। वासना की वृत्ति को साधना मान बैठे और साधना की वृत्ति को भूल करके वासना की पुष्टि में 'सहज' शब्द का प्रयोग कर बैठे।

'सहज' शब्द का विपर्यास किया लोगों ने। हे ज्ञानी! जो पर-साक्षेप होता है, वह असहज ही होता है। जो पर-निरपेक्ष होता है, स्वसापेक्ष होता है, उसका नाम सहज है। जो पर-साक्षेप है, वह असहज है। जिसमें पर के प्रति जीव की वृत्ति हो, वो असहज है। जिसमें माँगने की वृत्ति हो, वह असहज है। जिसमें देने की वृत्ति हो, वह असहज है। जिसे लिया नहीं जाता, दिया नहीं जाता, जिसका विनाश नहीं होता, उत्पाद नहीं होता, जो ध्रुव होता है, उसका नाम 'सहज' है।

मैं क्या करूँ? भूख लगी तो अभक्ष्य खा लिया, सहज है। ज्ञानी! यदि भूख पर भोजन सहज हो गया तेरा, पिपासा पर पानी सहज हो गया तेरा, तो निर्नशा के भाव में, अबुध के भाव में भी अब्रह्म का सेवन तेरा 'सहज' हो जायेगा ये तो प्रकृति का परिणमन है, ज्ञानी! कौन-सी प्रकृति का धर्म कह दिया? ये प्रकृति का परिणमन नहीं है, ये तो दुर्गति के गमन का साधन है। जिसे आप 'सहज' कह करके स्वयं में भ्रमित हो रहे हो और पर को भ्रमित कर रहे हो, ये 'सहज' कैसा? सहजाधीन, कर्माधीन, ईश्वराधीन, पुद्गलाधीन ये एकांती परसमयी लोग हैं।

कर्माधीन कहता है कि मैं क्या करूँ? कर्म का विपाक आ गया, इससे मेरे से ऐसा हो गया। मैनें नहीं किया, ये तो कर्म की प्रकृति थी। पुद्गलाधीन कहता है कि ये पुद्गल का परिणमन चल रहा है, मेरा क्या दोष? इन्द्रियाँ पौद्गलिक हैं। इंद्रियों का विकार इन्द्रियों में आया है। हे मूढ़ धी! द्रव्येन्द्रियाँ पौद्गलिक हैं, भावेन्द्रियाँ पौद्गलिक नहीं। ये जीव का विभाव-भाव है। भावेन्द्रिय की प्रवृत्ति के बिना द्रव्येन्द्रियाँ कार्यकारी होती नहीं। जो द्रव्येन्द्रियों को दोष दे रहा है, वह अज्ञ प्राणी वस्तुस्वरूप से अनभिज्ञ है। इन्द्रियाँ करण हैं, इन्द्रियाँ कर्त्ता नहीं हैं, भोक्ता नहीं हैं। द्रव्येन्द्रियाँ कर्त्ता-भोक्ता नहीं है। हे ज्ञानी! आँख से देखा तो जाता है, पर आँखें देखती नहीं। देखनहार कोई-और है, करनेवाला कोई-और है, करानेवाला कोई और है, कराया किसी और से जाता है। कर्त्ता आत्मा है, करा रहा ज्ञान है, किया जा रहा इन्द्रियों से है।

जो 'सहज' की व्याख्या की गई है लोक में, उस 'सहज' शब्द को सुनकर यह हमारी युवा पीढ़ी सदाचार से च्युत हो गई। यह विषय देश के युवा के कान तक पहुँचाना चाहिये। 'सहज' शब्द को सुनकरके यूँ कह दिया, कि यह तो प्रकृति का परिणमन है, ये तो 'सहज' है। जिस 'सहज' की व्याख्या अद्वैत की व्याख्या चिद्रूप की लीनता थी, उस 'सहज' की व्याख्या में भोगवृत्ति खड़ी कर दी। ये अध्यात्म का दुरुपयोग है। मेरा दोष नहीं, इन्द्रियों का दोष है। नहीं, ज्ञानी! इन्द्रियाँ जड़ हैं (द्रव्येन्द्रिय)। जो भावेन्द्रिय है, वह आत्मा के परिणामों की दशा है। आत्मा का विभाव-भाव है।

विभाव-स्वभाव, स्वभाव-स्वभाव ये आत्मा में दो शक्तियाँ हैं। जीव और पुद्गल में दो शक्तियाँ विद्यमान हैं, स्वभाव शक्ति, विभाव शक्ति। द्रव्य तो सहज स्वभाव-स्वभाव में ही रहते हैं। छः द्रव्यों में से चार द्रव्य (धर्मद्रव्य, अधर्म द्रव्य, आकाश द्रव्य, काल द्रव्य) स्वभावभूत ही परिणमन करते हैं। एक जीव और एक पुद्गल, इनमें वैभाविक शक्ति और स्वाभाविक शक्ति ये दो शक्तियाँ विद्यमान हैं। जो जीव की स्वाभाविक शक्ति है, वो वही

'सहज' शक्ति है। वैभाविक शक्ति जो है, वो 'सहज' शक्ति नहीं है। यदि वैभाविक शक्ति को 'सहज' शक्ति कह दोगे, तो सहज शक्ति की अन्यथोत्पत्ति। भैया! आप कुपित कितने समय तक रह सकते हो? क्रोध में कितने समय तक जी सकते हो? क्रूर-से-क्रूर परिणामी होगा, वह दीर्घ समय तक क्रोधकषाय में रह नहीं सकता है। या तो मृत्यु को प्राप्त हो जायेगा या पागल हो जायेगा।

हे निर्ग्रन्थो! हे श्रावको! एक बात का ध्यान रखना। पत्थर उठाकर किसी के सिर पर मार देना, उससे जितनी हिंसा होती है, उससे कोटि-कोटि हिंसा इस बात पर होती है, कि किसी व्यक्ति पर दबाब डालकरके उसके मस्तिष्क को भारी बना देना, किसी को मानसिक तनाव में डाल देना। किसी से याचना भी करना हो आपको, आप किसी के द्वार पर भिखारी बनकर तो जाओ, पर हिंसक बनकर तुम न जाना। जो व्यक्ति दीर्घ समय तक किसी से याचना करता है, और वो व्यक्ति देने में असमर्थ है, और आप अपना चेहरा बनाकर बैठ गये हो, कि मुझे चाहिये ही है। आपने जब चेहरा बनाया है, इस बात का बोध होना चाहिये। आगमग्रन्थों में मुद्राओं का वर्णन है और प्रतिष्ठाग्रन्थों में सकलीकरण की जो विधि है, जो मुद्रा की विद्या है, ये तन्त्र है।

जो तन्त्र है, वह मुद्रा के प्रभाव से भावों की विभक्ति करके उसमें रासायनिक तत्त्वों का संचार होता है। यदि कोई व्यक्ति किसी को छलना चाहता है, तो चेहरा बनाकर आता है। चेहरे की भावभंगिमा पर के भावों को भंगित कर देती है। जिसका चेहरा अशुभ है, प्रशस्त परिणामी के सामने पहुँच जाय, तो उसके परिणामों के विकृत कर देता है। बालको! चेहरे पर पाउडर लगाने का उद्देश्य क्या है? जब तुम इतने गोरे हो, फिर भी पाउडर क्यों? क्रीम क्यों? चेहरे पर लगा पाउडर तन्त्र मात्र है। जैसे ही आप क्रीम, पाउडर, मेकअप कर आ गये हो, दूसरा व्यक्ति आपके चेहरे को देखे, तो आकर्षित हो। हे ज्ञानियो! इस चेहरे को मात्र देखिये। ये चेहरे की चमक नहीं है, ये तन्त्र की चमक है। पाउडर धुल जायेगा, तो इसका फीका चेहरा दिखाई दे जायेगा।

न रागियों पर राग करो, न रागनियों पर राग करो। ज्ञानी! वस्तुस्वरूप को समझो। ये चेहरा चमक रहा है न? ये पगड़ी की आभा चेहरे पर आ रही है लौट करके और दोनों का मिलान करके जीव का चेहरा चमकता दिख रहा है। बस, ये तन्त्रविद्या है। इससे आप क्या, देव भी प्रभावित हो जाते हैं। जितने पुजारी हैं, सब पीले कपडे पहने दिखाई क्यों देते हैं? परमेष्ठी का ध्यान भी पीत वर्ण में होता है। यही कारण है। आचार्यभगवन्तों के पास शिष्यों और भक्तों की भीड़ क्यों लग जाती है? ये पीत वर्ण से युक्त होते हैं, और पीत लेश्या आकर्षित

करती है। पुष्प पीला होता है, भौंरे वहीं जाकर मड़राते हैं। जिसके परिणाम पीतभूत होते हैं, उसके पास भक्तों की भीड़ होती है। पीत और पद्म लेश्या के जो परिणाम हैं, वह भक्ति के परिणाम हैं।

गुरु के प्रति भक्ति, अर्हन्त के प्रति भक्ति, परमात्मा के प्रति आस्था जो है, ये जीव के पीत व पद्म लेश्या के परिणाम हैं। और इन परिणामों से जो आराधना कर रहा है, ऐसे जीव के पास अद्भुत वर्णों की दशा, परिणामों की दशा होती है। पुष्प पीत है, भौंरे पहुँच रहे हैं। पर भौंरों का रंग जो है, वो काला है। जो काले होते हैं, उन्हें पीले के पास जाना ही पड़ता है। जिनकी अशुभ लेश्यायें चलती हैं, उन्हें शुभ करने के लिये परमात्मा के पास जाना ही पड़ता है। पतंगे कहाँ जाते हैं? दीपक की लौ काली है कि पीली है? चारइन्द्रिय भौंरा, चारइन्द्रिय पतंगा जब पीले के पास पहुँचता है, तब पंचेन्द्रिय ज्ञानी क्यों नहीं पहुँचेगा? इसलिये पीत परिणाम रखो। किसी को बुलाने की आवश्यकता नहीं है, किसी को अपने पास आकर्षित सम्मोहिन करने की आवश्यकता नहीं है। जो स्वयं में सम्मोहित हो जाता है, उससे दुनियाँ सम्मोहित होती है।

शक्त्यांश बढ़ाना चाहिये, लोगों को बुलाना नहीं चाहिये। जिसके शक्त्यांश वृद्धिमान होंगे, उसके पास लोग खिंचे चले आयेंगे। चुम्बक में शक्त्यांश अधिक हो जाते हैं, तो लोहा खिंच जाता है। यदि लोहा बजनदार है और चुम्बक के शक्त्यांश न्यून हैं, तो लोहे के पास चुम्बक खिंच जाती है। जिस साधक के परिणामों में विशुद्धि तीव्र होती है, उसके पास रागी लोग खिंचे चले आते हैं। यदि कहीं साधक की शक्ति कम है, तो रागियों के साथ साधक बंध जाता है, क्योंकि रागियों में शक्त्यांश अधिक हैं। जो श्रमण, जो साधु श्रावकों के बीच में 24 घण्टे घिरे हों और उन्हीं के अनुसार, उन्हीं के साथ, उन्हीं जैसी बातें करे और राजनीति, कूटनीति, खोटी नीति से भरे हुये परिणामों से युक्त हो, तो समझ लेना कि उसकी साधना के शक्त्यांश न्यून हैं और वासना के अधिक हैं, इसलिये वासित लोगों के साथ अधिक सहयोग चल रहा है।

बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च ।(5/37)। द्व्यधिकादिगुणानां तु (5/36) (त.सूत्र)

दो अधिक गुणवानों का बंध होता है और जिसके शक्त्यांश अधिक होते हैं, वह अपने रूप परिणत करा लेता है। ये 'तत्त्वार्य सूत्र' का सूत्र ही नहीं, ये विश्व के सम्पूर्ण रसायनशास्त्रों का प्रमुख सूत्र है। इससे बड़ा कोई रासायनिक सूत्र नहीं मिलेगा आपको। जितने रसायनशास्त्री बैठे हों, सुन रहे हों, ध्यान से सुनने का। आपने जड़ द्रव्यों के रासायनिक तत्त्व की व्याख्यायें तो की हैं, पर चेतन में चेतन का रसायन कैसा? और जड़ का प्रभाव चेतन पर कैसा? और

चेतन का प्रभाव जड़ पर कैसा? एक रासायनिक तत्त्व है और रासायनिक प्रभाव दो पर ही पड़ता है। जीव और पुद्गल। अमूर्तिक पर कोई रासायनिक तत्त्व का प्रभाव नहीं पड़ता है।

धर्मद्रव्य अपने स्वभाव में है, अधर्मद्रव्य अपने स्वभाव में है। काल अपने में है, आकाश अपने में है। शब्द चेहरे को सफेद कर देता है। सुना कभी? शब्द चेहरे को काला कर देता है। पाउडर लगाने की क्या आवश्यकता है? माँ! उस जीव को घोर पाप का बन्ध होता है, जो किसी के चेहरे को काला कर देता है।

एक योगी विराजे यहाँ पर, और कोई श्रावक आ जाये, और अकेले साधु हैं। दूसरा श्रावक कहे, महाराज! मैं 15 दिन से चौका लगा रहा हूँ। आप मेरे घर पर पधार जायें, बहुत दिन हो गये। और इसी बीच में अन्य श्रावक भी आ गये। बताओ, एक योगी को आपने तनाव में डाला कि नहीं? इतने सारे लोग बोल गये हैं, अब ये जीव किसके यहाँ जायेगा? और इनके कहे अनुसार गया, तो उनका मुनिधर्म भी गया। और नहीं पहुँचे, सो श्रावकों ने चेहरे लटकाने शुरू कर दिये। वो दृष्टि साधु की आप पर पड़ी, कि ये दु:खी जीव है। हे ज्ञानी! तू तो दु:खी था ही, पर जो दु:ख मिटाने के लिये निकले थे, उनको दु:खी क्यों कर रहा है? अपने पुद्गल के पिण्डों के राग में उनको दु:खी मत कर।

भैया! वस्तुस्वरूप समझने के लिये बहुत धैर्य चाहिये। दान तो प्रसन्नता के लिये था। दान दु:खी होने के लिये नहीं था। दान लोभ की निवृत्ति था। दान मान की प्रवृत्ति के लिये नहीं था। जो मान की प्रवृत्ति के लिये दान देगा, यदि मान नहीं मिल सका, तो दान देकर दु:खी होगा। और जो दान देकर निर्लोभता की अनुभूति लेगा, वह शौचधर्म को प्राप्त होगा। शौचधर्म की अनुभूति के लिये दान था, न कि मान कषाय की ज्वाला/अग्नि में जलने के लिये था। द्रव्य भी गया, धैर्य भी गया। चारों ओर से जीव च्युत हो गया। यथार्थ में जो धर्म है, हमने, विद्वानों ने, मनीषियों ने धर्म को धर्म में डाल दिया है। धर्म का अर्थ हो गया है सम्प्रदाय। और धर्म को जैनधर्म बनाकरके, जो वस्तु धर्म था, उसे भूल गये। उस व्याख्या को किया जाता तो, ज्ञानी! वह विश्वधर्म है। यह मात्र जैनधर्म नहीं है। विश्व की कण-कण का धर्म जो है, इसी का नाम जैनधर्म है।

भैया! पानी कैसा होता है? शीतल। अग्नि कैसी होती है? उष्ण। भैया! पानी में शीतलता भरने कौन गया? अग्नि में ऊष्णता भरने कौन गया? तो आगमों में ज्ञान-दर्शन भरने कौन गया? ज्ञानी! जल में शीतलता, अग्नि में ऊष्णता, आत्मा में ज्ञान-दर्शन, ये सहज है। और जिसे भरा जाता है, वह असहज है।

क्रोध 24 घण्टे नहीं आता। मान की पुष्टि नहीं होती तो क्रोध आता है। 'क्या करूँ? ऐसा निमित्त मिला, तो गुस्सा आ गई।' ज्ञानी! गुस्सा आ गई, सो तेरा विभाव स्वयं का है। निमित्तों को दोष क्यों दे रहा? निमित्त ने प्रवेश किया, कि उपादान तेरा विकृत हुआ है? निमित्त कभी किसी के भीतर प्रवेश नहीं करता। निमित्त कभी तन्मयभूत नहीं होता। यदि तन्मयभूत हो गया, तो वो निमित्त कैसा? निमित्त भिन्न होकरके ही प्रभावित करता है। तन्मयभूत कोई हुआ है तो हे जीव! तेरे परिणाम ही तन्मयभूत हैं। तेरा ज्ञान तन्मयभूत है, तेरा दर्शन तन्मयभूत है।

सम्हालना है तो ज्ञानी! अपने ज्ञान-दर्शन को सम्हालिये। परवस्तु को सम्हालने की आवश्यकता नहीं है। हे मुमुक्षु! तुझे किसी ने गाली दे दी, तो तू पीछे कदम लेकर जायेगा। इतना पीछे तू हो गया। अच्छा होता कि उसे उत्तर देने की अपेक्षा अपने परिणाम सम्हाल लेता। परिणाम तेरे थे, गाली दूसरे की थी। परिणाम सम्हालना चाहिये था, कि पर की पर्याय को सम्हालना चाहिये था? ये मुझे गाली दे रहा है, सो ये आपका ज्ञानी उसका मुँह पकड़ने बैठ गया। अरे ज्ञानी! उसके दूषित तन को क्यों छू रहा है? वह तो मद्यपायी था, उसको छूना भी पाप था, उसे छूने क्यों गया? उतना तुझे पुरुषार्थ करना पड़ गया। 'देखो, जानो, जाने दो,' इतना पुरुषार्थ कर लेता, तो दूसरे के चेहरे पकड़ने क्यों जाना पड़ता? और तुझे जो लोग श्रद्धा से देखते थे, वे तुझे लड़ाकू न कह पाते। सज्जन/साधुपुरुषों को, ज्येष्ठ पुरुषों को, जिनकी इज्जत है उन्हें, अपने तन को सम्हालने की अपेक्षा अपने मन को सम्हालना चाहिये। यदि मन बिगड़ गया, तो उसके लिये डॉक्टर नहीं मिलेगा।

तन को सम्हालने के लिये कोटि-कोटि लोग हैं, पर मन को सम्हालने के लिये जगत में कोई नहीं है। मात्र "स्वयंभू" स्वयं। भैया! विश्वास मानिये, ये आपकी श्रद्धा बोल रही है, ये आपकी भक्ति बोल रही है। ध्रुव सत्य है। श्रीराम को समझाने के लिये अनेक लोग आये थे। लक्ष्मण के वियोग होने पर, कई मास तक भाई के शरीर को कंधे पर रखकरके घूमते रहे। एक बलभद्र जैसे महापुरुष लक्ष्मण के शरीर को लिये यत्र-तत्र विचरण कर रहे थे। कृतांतवक्र सेनापति का जीव, जो देव पर्याय को प्राप्त हुआ था, उसने कितना पुरुषार्थ किया था। कभी बालू को पेलता दिखाया, कभी पाषाण के ऊपर खेती करके दिखाई और कभी पानी को मथ करके दिखाया।

श्रीराम पूछ लेते थे कि ये क्या कर रहे हो? बोले-पानी से घृत निकाल रहा हूँ। कहीं पानी से घी निकलता है? हाँ, पानी से घी नहीं निकलता, पर मरे व्यक्ति को भोजन जरूर

कराया जा सकता है। तो उस समय श्रीराम कहते थे, 'तेरा भाई मरा, तेरा पिता मरा। मेरे भाई को मरा बोलते हो।' और चल देते थे भाई को लेकरके। कषाय के छः माह बीत गये। पर की समझ अपनी समझ बनती नहीं। जब अपनी समझ ही समझ में आती है, तभी पर की समझ निमित्त बनती है।

भैया! कितने युवा होंगे जो मन में विचार करके आये हैं कि ऐसा दुष्कर्म करूँ? आप उनको समझाने जाओगे, तो समझ में नहीं आयेगा। गुरु भी बैठे हैं, परमात्मा भी समझाने आ जाये, लेकिन नहीं समझा पाते हैं। जब उनका मष्तिष्क ठण्डा होता है तो हाय! मैंने ये क्या कर लिया?

ज्ञानियो! करने के पहले सोचना अवश्य। भीतर का निर्णय तुझे ही मालूम होता है। भीतर का निर्णय करने के पहले समझ गया तो, बाहर के अपयश से बच जायेगा। और भीतर के निर्णय को ग्रहीत कर लिया, तो बाहर का अपयश तू भगवान् बनके भी मिटा नहीं पायेगा। भीतर का निर्णय कितना ही खोटा या अच्छा हो जाये, वह तुझे ही ज्ञात होता है कि तू भीतर क्या कर रहा है? यदि भीतर का निर्णय बाहर आ गया, तो तू बाहर के अपयश को बचा नहीं पायेगा। इसलिये साधुपुरुष बन।

'सकृद् बाधितो विधिर्बाधित एव सत्पुरुषवत्।' ये 'कातंत्र व्याकरण' का सूत्र है। सिद्धांत है। जो विषय एक बार बाधित हो जाता है, वह बाधित होता ही है। कोई साधुपुरुष है, जिसके शील-संयम की देव भी चर्चा करते हों, सारे देश में जिसकी संयम की सुगंध फैल रही हो, उस संयमी के बारे में कोई किंचित भी गलत प्रचार हो गया, अब कितना ही मोह स्थापित हो जाये, पर जगत् की श्रद्धा को तुम ठीक कर नहीं सकते हो। भैया! किसी की आँख में कंकड़ चला जाये, उसे तो तुम निकलवा सकते हो, लेकिन किसी की आँख में अश्रद्धा का कंकड़ आ गया, तो उसे निकाल पाना कठिन होता है। जीवन में भूखे रहकर सो जाना, भोजन न मिले तो णमोकार पढ़के सो जाना और प्राण भी जाते हों तो अरहन्त को भजते हुये प्राण भी छोड़ देना, परन्तु प्रण का त्याग कभी मत करना।

प्राणान्ते न भङ्गतव्यं, गुरुसाक्षीश्रितंव्रतम्।
प्राणान्ते तत्क्षणे दुःखं, व्रतभङ्गो भवे-भवे।।

प्राणों का वियोग क्यों न हो रहा हो, प्राणों का अन्त क्यों न हो रहा हो, लेकिन गुरु के सामने लिये व्रत को तोड़ मत देना। "प्राणान्ते तत्क्षणे दुःखं" प्राणों का वियोग होने पर तत्क्षण

ही दु:ख होता है, पर "व्रतभङ्गो भवे-भवे " जो एक बार व्रत को भंग कर देता है, वह भवों-भवों में दु:खी होता है।

साधुजीवन भी जीना है तो सतत् स्वाध्याय, सतत् साधना, सुनीति पर जीयेगा, तो ही जी पायेगा। 'सहज' की व्याख्या है, लक्ष्य हमारा युवाओं पर है। और युवा से तात्पर्य शरीर के युवा से मेरी कोई चर्चा नहीं चल रही है। जिनके तन बूढ़े हो चुके हैं और मन वासनाओं से युक्त हैं, वे सब युवा ही हैं। जिनके शरीर जर्जर हो चुके हैं, लेकिन विषयों की रुचि अभी वृद्ध नहीं हो पा रही है, वे सब युवा हैं। उन सभी युवाओं से कहना है। जिनके चेहरे युवा हैं, साधना वृद्ध हो चुकी है, उन वृद्धों से नहीं कह रहा हूँ। उन युवाओं से कह रहा हूँ जिनके शरीर तो बूढ़े हो चुके हैं और वासना युवा बैठी हुई है घोड़े के समान।

मुमुक्षु! घोड़ा कभी बूढ़ा नहीं होता, ऐसे ही मनुष्य कभी बूढ़ा नहीं होता। घोड़े को गरिष्ट भोजन मिलता रहे तो उसकी वासना कभी बूढ़ी नहीं होती है। ऐसे ही मनुष्य को बाजीकरण मिलता रहे तो, उसकी वासना कभी बूढ़ी नहीं होती है।

'सहज' कह करके क्या कर रहा है जीव? भोग में कुसमाधि का रूप दे डाला। सहज कह करके भोग को समाधि का रूप दे दिया। भोग समाधि कैसे? और समाधि में भोग कैसा? एक भैया हमसे बोल रहे थे, महाराज! ये बताओ, हमने बहुत सारे आचार्य, निर्ग्रन्थ महाराजों के, भगवन्तों के उपदेश सुने हैं, पर आपकी सभा में युवा अधिक क्यों दिखाई देते हैं? जो समयसार, जो तत्त्वोपदेश वृद्धों का विषय होना चाहिये, वहाँ आपके पास युवा अधिक क्यों रहते हैं?

ज्ञानी! आपको मालूम होना चाहिये कि ये तन के युवा हैं, लेकिन इनके मन वृद्ध हो चुके हैं, इसलिये ये मेरे पास आते हैं। दूसरी बात को समझना चाहिये। आपने धर्म को धर्म के रूप में नहीं कहा। धर्म को धर्म के रूप में कहना प्रारम्भ कर दो। युवाशक्ति कोई बाहर से उतरकर नहीं आई है। ये युवा कोई बंदर की संतान नहीं हैं, कोई भालू की संतान नहीं हैं, ये मुनष्यों की संतान हैं। और मनुष्य वो है, जो मननशील है। आपकी संतान है और आप अपनी संतान को निशाचरी रूप में देखो, बंदर, भालू के रूप में देखो, तो ये तुम्हारा दोष है, ये उनका दोष नहीं है। आपने जन्म देना तो सीखा है, पर आपने पालना नहीं सीखा।

युवा का चित्त पानी की धार है। उसका काम बहना है। ढलान जिस ओर होगा, वहाँ बह जायेगा और जहाँ गड्ढा होगा, वहाँ ठहर जायेगा। अब आपको सोचना चाहिये कि इन युवाओं को गड्ढे की ओर ढलान किये हो, कि बड़े तालाब की ओर किये हो, कि सागर

की ओर? सरिता की ओर ये पानी ढलेगा तो नियम से सागर बनेगा। ताल-तलैया में जायेगा, तो पशु-पक्षी पी जायेंगे और कुछ लोग कपड़े धोकर आ जायेंगे, तो सूख कर समाप्त हो जायेगा।

हे युवाओ। आपकी जो प्रज्ञा है, वो महान है। आपको जिस ओर लगा दो, वह कर के आ जाते हो। इसलिये आप वीर की संतान हो। आज से आप को ताल-तलैया में सूखना नहीं है, मगरमच्छों को नहीं पालना है। आपको सरिता बनके बहना है और सागर में जाकर रत्नाकर बनना है। तीर्थंकर बनना है। भैया! वो शक्ति अपने पास है कि नहीं? भैया! अग्नि जलाती है कि बुझाती है? अग्नि पकाती है, कि जलाती है, कि प्रकाश करती है? (तीनों करती है।) भैया! तू युवा है, तू जलाता है, कि पकाता है, कि प्रकाश देता है? भैया! इस युवा से आग लगवाना है तुझको, कि पकवाना है, कि प्रकाश करवाना है? डरे-डरे क्यों बोल रहे हैं? भैया! अग्नि में दाहकत्व है, प्रकाशत्व है, पाचकत्व है। अग्नि त्रिधर्मी है।

हे युवा! तू दाहकत्व, पाचकत्व, प्रकाशत्व गुण से युक्त है। यदि आपने अपने ज्ञान को विषयों में लगाया है, तो दाहकत्व है, जला दिया तूने। गृहस्थी में रहकर यदि आपने आपने आप को धर्मसाधना में लगाया है तो किंचित पाचकत्व गुण है। आपने अपने आपको योगी बना दिया तो तेरा ज्ञान प्रकाशत्व गुण है।

अग्नि किसी के मकान में लग जाये तो दाहकत्व, अग्नि यदि भोजन में लग जाये तो पाचकत्व, अग्नि दीपक में लगा दो तो प्रकाश दे रही है। इस ज्ञान-अग्नि को दाहक मत बनाओ, पाचक बनाओ। स्व-परप्रकाशी कोई है, तो ज्ञानगुण है। "प्रदीपवत्"। इसलिये सभी वृद्धों से मेरा कहना है कि इन युवाओं को आप अशुभ नजर से मत देखना। हे युवाओ। इन वृद्धों को तुम अशुभ/हीन भावनाओं से न देखना। ये वृद्ध न होते तो तुम कहाँ से आते? इनका सम्मान रखना। पर, हे वृद्धो! इन पर आशीष बना कर रखना, क्योंकि ये न होंगे तो सनातन धर्म कौन चलायेगा?

अपने-अपने में जियो, पर एक-दूसरे पर साम्यभाव रखो। जो नमोऽस्तु-नमोऽस्तु बोलेंगे, वे भी युवा होंगे और जिनको नमोऽस्तु-नमोऽस्तु होगा, वे भी युवा होंगे। आपकी संख्या दोनों तरफ कम है। इधर भी कम है, उधर भी कम है।

जिस वासना को 'सहज' कह दिया था, वह वासना सहज नहीं थी, कर्माधीन थी। कर्मसापेक्ष है। जो कर्मसापेक्ष है, वो सहज नहीं है, वो विकारीभाव है। और विकारीभाव सहज नहीं होता। तो 'सहज' का अर्थ क्या था? शान्तिभूतावस्था। ये घनानन्द अवस्था है, जिसमें

पर की कोई अपेक्षा नहीं है। निज में निज का आनन्द चल रहा है। जैसे जल में शीतलता कोई लाया नहीं, कोई ले नहीं जा सकता, ऐसे ही आत्मा में आत्मा का आनन्द गुण है, वो सहज है। सहज की अनुभूति सहजरूप होना चाहिये थी। स्त्री-पुरुष के सेवन का नाम सहजभाव नहीं है। वो अब्रह्मभाव है, विकारीभाव है और विकारीभाव सहजभाव नहीं होता है। इसलिये आचार्यमहाराज ने स्पष्ट कर दिया है।

ज्ञानियो! तभी तक विज्ञान है, विवेक है, तभी तक प्रज्ञावान हो, जब तक काम के वाणों से बिंधे नहीं हो। जो कामना और कामिनी के विकल्प में आ जाता है, उसकी कमर टूट जाती है। जो कामना, कामिनी, कंचन के पीछे पड़े होते हैं, उन सबकी कमर टूटती है। जिन्होंने कामना, कामिनी, कंचन को तिलांजलि दे दी है, वो तीनलोक का नाथ बनकरके सिद्धशिला पर विराजमान होता है। मेरा चेहरा मत देखिये, अपने-अपने निहारो।

यदि विश्व में द्वन्द्व है, तो कामना, कामिनी, कंचन के कारण। महाभारत देखो, तो कामना, कामिनी, कंचन। रामायण देखो तो कामना, कामिनी, कंचन। और अपने-अपने घरों में देखो, तो सबके घरों में कामना, कामिनी, कंचन। संसार में वे ही रुले, जो कामना, कामिनी, कंचन के वश में हुये । जो कामना, कामिनी, कंचन के वश में हुये, उनकी कमर नियम से टूटी। भैया! चमकता चेहरा पण्डित जी का देखना, छुआरा हो गया बेचारा। ये खजूर जैसा चेहरा तुम कामना, कामनी, कंचन में लिप्त मत कर देना । नहीं-तो भैया! विश्वास रखो, खजूर जैसा चमकता चेहरा छुहारा हो जाएगा। खजूर देखा है, कितना चमकता है? और जब छुहारा हो जाता है, तब क्या होता है?

ज्ञानियो! डाली पर लगा अंगूर चमकता दिखाई देता था, पर किसमिस कैसे पिचक गई है? आप लोगों को मेरी बातें बुरी नहीं लगती? कैसी खरी-खरी तो सुना देते हैं, फिर भी सुनते रहते हो। अगर कोई-और कहे तो लड़नें बैठ जाते। अब क्या करें? जो करो है, सो सुनने ही पड़ है।

विषयासक्तचित्तानां, गुणाः को न नश्यति।
न मानुष्यं, न देवत्वं, न विजाता सत्यभाक्॥

जिसका चित्त विषयों में आसक्त हो जाता है, न वहाँ दैवत्व बचता है, न वहाँ सत्यता बचती है,न मानुषत्व बचता है। सब पलायन कर जाता है। जो लंकेश विद्याधरों का सम्राट था, एक क्षण में बेचारे का सब फीका पड़ गया। विश्वास रखना, जब तक तुम्हारा पाप मुठ्ठी में छिपा है और पुण्य की सत्ता है-

जब तक तेरे पुण्य का, बीता नहीं करार।
तब तक तुझे माफ हैं, दुर्गुण करो हजार।

और जिस दिन पुण्य क्षीण हो जायेगा, उस दिन सब पलायन कर जायेंगे। चाहे छुपके करो, चाहे प्रकट करो, परन्तु कर्म तो सामने आयेगा। विषयों की आकांक्षा से भरा जीव कामना, कामिनी, कंचन में लिप्त होता है। ज्ञानी! अग्नि जलाये तो तन को जलाये और क्रोध जलाये तो चिंतन को ही जलाये। कितने क्रोधी हैं लोग कि भाई ही भाई से नाता तोड़ देते हैं। कितने क्रोधी हैं लोग कि पिता से पिता कहना भूल गये।

हे ज्ञानी। कषाय तेरा धर्म नहीं है। क्रोध के वश में तूने क्या-क्या नहीं किया? बहुत अच्छा हुआ कि वृद्धावस्था आते-आते समझ में आ गया। पर इतना ध्यान रखना कि जितनी तीव्र इच्छायें होंगी, उतनी तीव्र कषाय होगी। जितनी इच्छायें मन्द होंगी, उसकी कषायें मन्द हो जायेंगी। आवश्यकता को न्यून कीजिये। आवश्यकता आपकी अल्प होगी, तो कषायें आपकी स्वयं ही मंद हो जायेंगी। जिसकी आवश्यकताएँ तीव्र होंगी, इच्छायें तीव्र होंगी, उसकी पूर्ति भाग्य से होगी। इच्छा की पूर्ति इच्छा से होती नहीं है। और भाग्य तेरा है, तो कषाय ही करेगा, नरक ही जा पायेगा, कुछ कर नहीं पायेगा।

मुमुक्षु! इच्छाओं से प्राप्ति होती है, कि पुण्य से प्राप्ति होती है? इच्छाओं से प्राप्ति होती तो तू यहाँ बैठने की इच्छा न करता। तू तो कोई अधिकारी, मिनिस्टर, प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति की सीट पर बैठने की इच्छा रखता। लेकिन हे ज्ञानी! तेरे पुण्य में इतना ही लिखा था कि तू यहाँ ही बैठ पायेगा। आज से सब ध्यान रखना, जो जहाँ है, आप इच्छाओं के साथ अपने पुण्य को निहारिये। क्या तेरी प्रज्ञा न्यून थी जो तू संतुष्ट हो गया? आप चाहते तो बहुत ऊँचाइयाँ प्राप्त कर सकते थे, पर पुण्य नहीं था आगे जाने का।

रविषेणाचार्य जी ने 'पद्मपुराण' में लिखा है कि एक समय में एक ही गुरु अनेक छात्रों को ज्ञान दे रहा है। एकसा ग्रन्थ, एकसे गुरु, एकसा समय, एकसा सबकुछ होने पर भी पुण्य का द्रव्य न्यून होने के कारण वह अधिक होने से एक हीन हो गया, दूसरा महान् हो गया। भैया! तेरे साथ अनेक छात्र पढ़ते थे। तू तो देश का प्रतिष्ठाचार्य बन गया और कुछ साथी तेरे हल की मुठिया पकड़े-पकड़े जीवन निकाल लिये। कुछ तो तराजू पकड़े-पकड़े ही चले गये। और कुछ लोग ऐसे भी हुये हैं, जिन्हें न तराजू पकड़ने को मिली, न हल की मुठिया पकड़ने को मिली। मात्र झोला लटकाये, दूसरे के द्वार पर, उनको धन्यवाद देने में चली गयी।

अगर तेरे आशीर्वाद में इतनी ताकत थी, तो अपनी झोली क्यों नहीं भर पाया? अहो आश्चर्य! छलियों की भाषा तो सुनो। झोली लटकाये पहुँच गया और द्वार पर कहता है कि दूधों नहाओ, पूतों फलो, भला हो आपका, धन-धान्य से भर जाओगे। ज्ञानी! तेरे आशीर्वाद में इतनी ताकत थी, तो तू मेरे द्वार पर क्यों आया?

इसलिये मैं तो वन्दना करता हूँ गुरु की, भगवान् की। उनसे कुछ चाहता नहीं हूँ। मुझे मालूम है कि न गुरु दे सकते हैं, न भगवान् दे सकते हैं। मेरा भाग्य अच्छा है तो दुनियाँ का सबकुछ मिल सकता है। यदि भाग्य नहीं है, तो हाथ का धन भी चला जाता है। मैं कोई की वन्दना इसलिये नहीं करता कि मुझे इनका आशीर्वाद लग जाये। न कोई का वरदान लगे, न कोई का आशीर्वाद लगे। ये पागलपन है। वरदान उसको फलित होते हैं, जिनको पुण्य फलित होता है और श्राप उनको लगता है, जिनको पापकर्म का उदय होता है। मेरे पास वो वस्तु है, तो मैं दुनियाँ में क्यों भटकूँ? आपको लगेगा कि महाराज जी क्यों शुष्क बोल देते हैं? ये शुष्क नहीं है, ये ध्रुव सत्य है। भैया! कहीं नहीं भटकना। कोई आ जाये, कहे, 'भैया! दान दो, नहीं देगा तो भस्म कर दूँगा।' उससे कहना-

एसो पंचणमोयारो सव्वपावप्पणासणो।
मंगलेसु य सव्वेसु, पढमं हवदि मंगलं।। मूलाचार।।

जो चार की शरण में जा चुका है, उसको जगत् में कहीं किसी का भय नहीं होता है। और जो चार की शरण में नहीं है, वो दुनियाँ में भयभीत होकर जीता है। एक निर्णय किया हमने तो, आपको पंसद हो तो आप कर लेना। मैं समाधि के लिये ही तो मुनि बना हूँ। जब होना होगी, हो जायेगी। अपन जाग्रत रहो।

दर्शन, ज्ञान, चारित्र से किंचित् हिल भी मत जाना। प्रत्यक्षसागर जी की समाधि हुई, लोग कहने लगे- महाराज जल्दी चले गये। बोले कि आहार कर लेते, तो समाधि नहीं होती। मैंने कहा, तुम सब पागल लोग हो। समाधि के लिये तो साधु बने थे। और साधना करते हुये समाधि हुई है, इससे बड़ा सौभाग्य किसका होता है? खाते-खाते चले गये, पीते-पीते चले गये, तो कैसी समाधि?। भैया! ध्यान रखना, ये है संसार, ये कबहुँ कहवो छोड़ नहीं सकत। बुन्देलखण्ड में कहावत है कि हंडिया के मुख पर पारो होत, पर आदमी के मुख पर कोई पारो नहीं होत। ऐसी करो, सो वैसी कहेंगे और वैसी करो, सो ऐसी कहेंगे।

एक दादा एक दिन अपने बेटे को एवं नाती को लेकर, घोड़ा पर बैठकर निकल पड़े। जैसे ही वे दादा पण्डित जी के घर से निकले, तो पण्डित जी बोल पड़े, कैसा आदमी है निर्दयी,

इसको दया तक नहीं आती, तीनों पीढ़ियाँ बैठी हैं? दादा थोड़े भावुक जीव थे। उनने कहा, भैया! ये कह तो ठीक रहे हैं। ये एक जीव है और अपन तीनों-के-तीनों बैठे हैं। एक काम कर लो, उतरके चलो। सो उतर चले। जैसे ही उतरके चलने लगे, सो दूसरे लोग कहने लगे, देखो तो कैसा पगला आदमी है, सवारी हाथ में लिये और तीनों पांय-पांय चल रहे हैं। अब बेटा बोला, पिता जी! एक काम कर लो, आप बैठ जाओ, हम दोनों चलते हैं। सो जब दादा बैठ गये, तब और दूसरे बोले- बुड्ढे को शर्म नहीं लगती है। देखो तो, बच्चे को पैदल चला रहा है और स्वयं घोड़े पर बैठा है। दादा बोले- बेटा! तुम बैठ जाओ। जैसे ही बेटे को बैठाला, तब कोई दूसरा कहता है, कैसा युवा है? बाप तो पैदल चल रहा है और स्वयं घोड़े पर बैठा है। अब हर प्रकार से देख लिया तो बाप-बेटे ने सलाह करी-भैया! ऐसा भी कर लिया, वैसा भी कर लिया, तब भी कोई कहनेवाला मानता ही नहीं है। अब तो अपने विवेक से काम करो। क्योंकि हडिया के मुख पर पारा हो सकता, आदमी के मुख पर पारा हो नहीं सकता। जब इसने राम को नहीं छोड़ा, तो हमें कैसे छोड़े? और जब मन की होने लगी, तो फिर तो अनर्थ ही हो जायेगा।

काम, क्रोध, लोभ, सहजानन्द इस पर बहुत व्याख्या होनी चाहिये। 'समयसार' जी की व्याख्या में जबलपुर में सहजस्वरूप पर 2-3 प्रवचन हुये। भैया लोगों ने ऐसे अनर्थ कर डाले थे, इसलिये मुझे आगम रखकरके ही आगम की गुत्थियों को बाहर निकालना है। जिनागम रख कर लोगों ने विपर्यास किया था। भैया! 'सहज' शब्द का प्रयोग करके देश को ही नहीं, विदेश तक को भ्रमित कर दिया गया था। रात्रि में फलाहार किया और बोलते हैं कि सहज हो रहा है।

हे ज्ञानी! अंदर से बोल कि राग कर रहा है, सहज नहीं कर रहा है। सहज जो होगा, वह भोजन नहीं करता, पानी नहीं पीता। सहज तो चिद्रूप में लवलीन होता है।

राग-द्वेष, लोभ, मात्सर्य, ईर्ष्या। हे भगवान्! सिंहनी के मुख में जाना पसंद कर लेना, पर ईर्ष्या के मुख में जाना पसन्द मत करना। माँ! तुम झुलस रही हो, मात्र ईर्ष्या के वश में। न किसी को कुछ दे रहे हो, न किसी से कुछ ले रहे हो, पर ईर्ष्या में झुलस रहे हो।

हे ज्ञानियो! जलने के पहले जलना (ईर्ष्या) छोड़ो। जब तक शरीर जले, उसके पहले जलना छोड़ दो। यदि भीतर का जलना छूट गया, तो शरीर जलेगा नहीं, कपूर की भाँति उड़ जायेगा, अरहन्त बन जाओगे, परमौदारिक शरीर को प्राप्त हो जाओगे। मात्सर्य, मान, माया, लोभ, अहंकार, मायाचारी, मोह परिणाम, कन्दर्प परिणाम, कुत्सित परिणाम, कामवासना से युक्त परिणाम, दर्प आदि।

आपने घर में ताले पर भी ताले डाल रखे हैं। और ज्यादा जरूरत पड़ी तो गार्ड भी लगा लेते हैं। यहाँ तक कि आपके गाँव में तो रात्रि में पुलिस की गाड़ी भी घूमती रहती है। दुनियाँ की गाड़ियाँ तो बहुत संचालित कर ली आपने, पुलिस भी लगा ली है, सैनिक भी लगे हुये हैं, पर हे ज्ञानी! "धर्म सर्वस्व हारिणः एतेहि रिपवो चौरा", परन्तु सर्वस्य धर्म के हरने वाले कोई चोर हैं, तो काम, क्रोध, मान, माया, लोभ, मात्सर्य, ईर्ष्या ये चोर हैं। इन डाकुओं से बचो। इनके कारण जीव संसार में बहुत दुःख को प्राप्त हो रहा है।

रागद्वेषमयो जीवः, काम-क्रोधवशे गतः।
लोभमोहमदाविष्टः, संसारे संसरत्यसौ।। 24 ।। सा.स.।।

"रागद्वेषमयो जीवः" राग-द्वेष, मोह से जीव "काम-क्रोधवशे गतः" काम-क्रोध के वश हुआ "लोभ-मोह-मदाविष्टः" मोह और लोभ में आविष्ट होकरके "संसारे संसरत्यसौ" संसार में भ्रमण कर रहा है।

ये तत्त्व की प्ररूपणा प्रत्येक हृदय में पहुँचना चाहिये। अब क्या करूँ? अपन ऐसे खोटे समय में पैदा हुये हैं। एक पूर्व कोटि समय मिलना चाहिये था। भैया! सुनो। अपन को भगवान् बनना है, पर इतनी-सी बात मेरी मान कर चलना कि अपन को मूककेवली नहीं बनना। और अच्छी साधना अभी कर लो, और आठ वर्ष अन्तर्मुहूर्त के होये और दीक्षा ले और फिर दूसरे मुहूर्त में केवलज्ञान प्राप्त करके एक पूर्व कोटि तक खूब दिव्यध्वनि खिरायें। फिर निर्वाण तो होना ही है।

भैया! तुम सब भी साथ में केवली भगवान् बनना। सबकी गंधकुटियाँ लगें। भगवन्! अपनी तो ऐसी ही भावना है। इसलिये तो हम आप सबसे ज्ञानी कहते हैं। सबसे।

सम्यक्त्व-ज्ञानसम्पन्नो, जैनभक्तः जितेन्द्रियः।
लोभ-मोह-मदैस्त्यक्तो, मोक्षभागी न संशयः।। 25 ।। सा.स.।।

ज्ञानियो! आचार्यमहाराज ने आप सबको प्रमाणपत्र दे दिया है आज। 'मोक्षभागी न संशयः।' भैया! कोई संशय नहीं करने का, बस। 'सम्यक्त्व ज्ञानसम्पन्नो' सम्यक् दर्शनज्ञानचारित्र से सम्पन्न, जिनेन्द्र भगवान् का भक्त, 'जैनभक्तः जितेन्द्रियः' जितेन्द्रिय पुरुष 'लोभ मोह मदैस्त्यक्तो' लोभ, मोह, मद, माया का त्याग करने वाला जीव है, वह नियम से 'मोक्षभागी' मोक्षभागी है 'न संशयः' इसमें कोई संशय नहीं है।

जैन श्रमणपरम्परा में साधु के 10 कल्प की व्याख्या है। 10 कल्पों में एक मासकल्प होता है। चातुर्मास कल्प होता है। भारत की भूमि पर ही नहीं, विश्व में इन दिगम्बर मुनिवरों

को वात-रसायन कहा है। जैसे वायु रिसती रहती है, बहती रहती है, वैसे ही जैनसाधु गमन करते रहते हैं। बहती हुयी वायु सारे लोक को शीतलता प्रदान करती रहती है। इसी प्रकार श्रमण परम्परा है। चातुर्मास के काल में योगी एक स्थान पर ठहरते हैं, शेष काल में विहार करते हैं। एक मास विहार, एक मास वाचना। यह जो 'वाचना' शब्द है, यह वर्तमान का नहीं है, यह आगम की प्राचीन व्यवस्था है। 5 प्रकार के स्वाध्यायों में सबसे पहला स्वाध्याय वाचना है। वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय, धर्मोपदेश पाँच स्वाध्याय हैं। आचार्य-प्रणीत ग्रंथों को विनयपूर्वक वाचन करना। शास्त्र और अस्त्र को बड़े विवेक से प्रयोग करने की आवश्यकता है। यदि अस्त्र का विपरीत प्रयोग कर लिया, तो स्वयं का ही घात हो जायेगा। अस्त्र का घात जो है, वह देह मात्र को नष्ट करेगा, परन्तु शास्त्र के विपरीत वाचन से श्रद्धान विपरीत होगा और विपरीत श्रद्धान से मोक्षमार्ग ही विपरीत हो जायेगा।

वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय, धर्मोपदेश इन स्वध्यायों में सबसे पहले वाचना है। पूर्व आचार्यों की वाणी को ज्यों-का-त्यों पढ़ना। एक शब्द भी इधर से उधर नहीं करना। श्रुत की आराधना एक बहुत बड़ी साधना है। पंचमकाल में सबसे उत्कृष्ट साधना का नाम स्वाध्याय है। आज राजस्थान में प्रथम वाचना प्रारम्भ हो रही है। जो जीव पूर्व में अरहंत के समवसरण में गये होंगे, उन जीवों के अरहंत की देशना सुनने के परिणाम होंगे अथवा जिनकी समवसरण में जाने को तैयारियाँ हैं, वे ही यहाँ आने के परिणाम कर पायेंगे। जिनकी दुर्गति सुनिश्चित है, वे मंदिर के द्वार पर बैठे रहेंगे, पर अंदर जाकर दर्शन करने के भाव भी नहीं करेंगे। एक दूसरे की निंदा-आलोचना करते रहेंगे, परन्तु तत्त्वोपदेश सुनने के परिणाम नहीं होंगे।

यह अहोभाग्य है कि आज हम श्रुत सुन रहे हैं। श्रुत समझ में न भी आये, फिर भी असंख्यात-गुणश्रेणी निर्जरा का साधन है। हो सकता है कि कठिन शब्द समझ में न आये, पर इतना तो समझ में आयेगा कि समझ में नहीं आ रहा है। यदि इतना भी समझ में आ गया, तो विश्वास रखना, बहुत बात समझ में आ गयी। मुझे समझ में आ जाये कि मैं कुछ नहीं जानता हूँ। बहुत सारे जीव ऐसे होते हैं, जिनकी मानसिकता में होता है कि मैं सबकुछ जानता हूँ। **मानियों के मान को नष्ट करने का साधन है जिनवाणी।** जब तक मान नष्ट नहीं होगा, तब तक भगवान् बनने वाला नहीं है। **प्रभुता/अहंता को रोकने वाली अगर कोई सत्ता है तो उसका नाम प्रभुता/अहंता है।** गौतम स्वामी भी महावीर स्वामी के समवसरण में नहीं पहुंचे। क्या बात थी? वह मान-कषाय थी। वे महावीर के शिष्य बनने नहीं गये थे, वे महावीर को समझाने गये थे। लेकिन ऊँट कब तब बड़ा होता है? जब तक पर्वत के नीचे

न आये। पर्वत के नीचे आने पर ही उसे अपनी ऊँचाई का एहसास होता है। विश्व में जितने भी अहंकारी जीव हैं, उन सबके अहंकार का गलन करानेवाला कोई जीव है, तो मात्र अर्हंत की जिनेन्द्र की वाणी है। उनकी वाणी के सामने सब ओछे हो जाते हैं।

ज्ञानियो! आज अपने बंधुओं से कह देना कि हमने आपके काषायिक कार्यों में अनेक बार सहयोग किया है, आज मुझे अर्हंत की वाणी को सुनने का नियोग मिला है और वैसे परिणाम हो रहे हैं। सुनते-सुनते पता नहीं कब आयु का क्षय जो जाये। यह वाणी सुनते-सुनते यदि आयु भी समाप्त हो गयी, विश्वास रखना, नियम से सुगति का ही गमन होगा। **आयुबंध के काल में जिनवाणी सुनने के परिणाम हो जायें, आयु बंध के काल में मंदिर में जाने के भाव हो जायें, आयुबंध के काल में श्रुत के शब्द पड़ जायें, विश्वास रखना, वह जीव नियम से सुगति को प्राप्त करेगा।** भविष्य में तीर्थंकर के समवसरण में पहुँचेगा।

जैसे सम्यग्दर्शन के आठ अंग हैं, वैसे ही सम्यग्ज्ञान के भी आठ अंग होते हैं। उन आठ अंगों में एक 'उपधानाचार' है। संयम लेकर, व्रत लेकर ग्रंथ को प्रारम्भ करना। यहाँ पर आचार्यभगवन् कुलभद्र स्वामी, जिन्होंने 'सारसमुच्चय' नाम का ग्रंथ लिखा, जिस ग्रंथ में सम्पूर्ण धर्म की नीतियों का वर्णन किया है। यह जीव आस्था से, श्रद्धा से युक्त है। पर श्रद्धा कैसी होनी चाहिये, उसके विवेक की आवश्यकता है। हर व्यक्ति के पास चिन्तवन है, हर व्यक्ति के पास विवेक है, पर विवेक की दशा कैसी होनी चाहिये, इसका विवेक होना चाहिये। पानी तुम्हारे पास है। आप चाहो तो किसी के ऊपर फेंक कर शीत की बाधा खड़ी कर दो। आप चाहो मिट्टी में डाल दो तो कीचड़ हो जाये। पानी आपके पास है। प्यासे के कंठ में डाल दो तो प्यास बुझ जाये। पानी आपके पास है। तीर्थंकर के मस्तक पर डाल दो, तो गंधोदक बन जाये। इसी प्रकार हर व्यक्ति के पास ज्ञान है, विवेक है, पर विवेक में विवेक चाहिये। चिंतन की धारा कहाँ जा रही है? एक ने अपने चिंतन से मिथ्यात्व की पुष्टि कर ली है, दूसरा अपने चिंतन से सम्यक् की दृष्टि कर रहा है। आप चाहे अपने चिंतन की धारा से घर को स्वर्ग बना लो, आप चाहो घर को नरक बना लो। मुख ही तो है, ज्ञान ही तो है।

बिल्ली अपने मुख में अपने बच्चे को लेकर जाती है। बिल्ली के मुख में जब बच्चा होता है, तब बिल्ली कौन कहलाती है? अहो बिल्ली! तेरे मुख में बच्चा है, तो तू माँ है। तेरे मुख में जब चूहा होता है, तब तू हत्यारिन है। मुख वही है। जिस मुख से बच्चे को उठाती है, उसी मुख से चूहे को भी उठाती है। मुख तो वही है, पर अंतरंग परिणाम भिन्न है। जिस भाव से तू बच्चे को उठाती है, उस भाव से चूहे को उठा ले तो तू जगत की माँ बन जाये। वस्तु में पाप नहीं, वस्तु में पुण्य नहीं है। जैसे बिल्ली के मुख की ओर निहारो, वही मुख

हिंसाभूत हो रहा है, वही मुख अहिंसाभूत हो रहा है। ज्ञान तेरे पास है। यदि जीव चाहे तो अपने ज्ञान से सारे जगत् को भगवान् के रूप में देखे। अपने घर का वातावरण परिवर्तित होना चाहिये। सम्यक्त्व जो है, वह कोई बाहर की वस्तु नहीं है। आस्था बाहर की वस्तु नहीं है। मुद्रा बाहर की वस्तु नहीं है। सारे जगत् के लोगों को आप प्रसन्न करने के राग में, सुखी करने के राग में, सारे जगत् में आप दु:खी हो और सारे जगत् को भी आप दु:खी किये हो। बड़े विवेक से समझना जो मैं कह रहा हूँ।

भैया! मेरा मित्र मेरे से प्रसन्न रहे, इसलिये तू उस मित्र की इच्छा की पूर्ति करने चला, पर उसकी इतनी इच्छायें थी, असीम थीं। वह कहता था कि मुझे तेरा घर चाहिये। जब मित्र को घर देने चलेगा तो तेरा पिता क्या बोलेगा? और कहीं तूने मित्र को घर दे दिया, तो तेरा भाई, माँ, पिता भी थे, इन सभी को तू कहाँ छोड़ने जायेगा? मित्र के राग में, एक को सुखी करने के राग में अनेक को दु:ख देना, यह जिनवाणी का उपदेश नहीं है। एक जीव को सुखी करने के राग में अनेक को दु:ख देना यह अर्हन्त की देशना नहीं है। समझिये मैं क्या कह रहा हूँ। अनेक को सुखी करने के लिये एक को दु:खी करना, यह भी अर्हन्त का उपदेश नहीं है। यह अज्ञानियों के भाव हैं, उनके ही उपदेश हैं जो कोई यूँ कहे कि अनेक सुखी हो जायें तो एक को दु:खी कर दूँ।

एक परिवार रो रहा है, भूख से तड़प रहा है, तब एक जीव कहता है कि एक भैंसे को मार दो तो इतने सारे जीव का पेट भर जायेगा। एक ही तो दु:खी होगा, लेकिन इतने तो सुखी होंगे। हे ज्ञानी! तू क्या चिंतन कर रहा है? तुझे अभी धर्म समझ में नहीं आया। अभी तुझे आँख का धर्म दिख रहा है, आत्मा का धर्म दिखाई नहीं दे रहा है जो एक पंचेन्द्रिय जीव का वध करके परिवार के पालन की बात कर रहे हो। जो भूखे हैं, वे अपनी ही असाता से हैं। उनकी असाता को तुम दूर नहीं कर पाओगे, इसलिये पंचेन्द्रिय का घात करके आप असाता का बंध मत कीजिये। यह कैसा धर्म है? अनेक को सुखी करने के लिये एक को दु:ख देना, यह भी पाप है। और एक को सुखी करने के लिये अनेक का वध करना, यह भी महापाप है। पूछ लेना अपने घर पर। तेरे पिता जो पैसा कमाने में पाप करते हैं, उस पाप का फल भोगने आप उनके साथ जाओगे क्या?

धिक्कार हो। पास ही बैठा बेटा अपने पिता से कह रहा है कि पिताश्री! मैं आपका नहीं खा रहा हूँ, अपने भाग्य से खा रहा हूँ। मेरा पुण्य न होता तो आपके जैसा पिता मुझे मिलता कैसे? पर तू जो पाप कर रहा है, उसका फल तो तुझे ही भोगना पड़ेगा, मैं भोगने नहीं जाऊँगा।

हे बेटो। तुम यह भी मत सोचना। यदि तुमको वैराग्य होने लग जाये और तुम्हारे मन में भाव आ जाये कि मैं अपने माता-पिता को छोड़कर वैरागी बन रहा हूँ, मैंने इनका क्या चुकाया? हे रागी! यह भाषा वैरागी की नहीं, रागी की होती है। जिसको वैराग्य होता है, वह क्या चिंतन करता है? माँ मेरी जनक नहीं, पिता मेरा जनक नहीं है। मेरी आत्मा में माँ का अंश नहीं है, मेरी आत्मा में पिता का अंश नहीं। यदि निमित्त बने हैं, तो शरीर के बने हैं।

ज्ञानी! न आत्मा जनती है, न मेरी आत्मा कभी मृत्यु को प्राप्त होगी, क्योंकि आत्मा त्रैकालिक ध्रुव है। और गहरे में जाओ, भैया! विवेक के साथ सुनना। हे पिता! तू मेरा जनक नहीं है। हे जननी! तूने मुझे जन्म नहीं दिया। तेरे हृदय में वासना का जन्म न हुआ होता तो मेरा जन्म न हुआ होता। तेरे मन में वासनाओं ने जन्म लिया है। मैं तो अपने पुण्य के उदय से जन्मा हूँ। ऐसे भी माता-पिता हुये जो वास्तव में माता-पिता नहीं बनना चाहते थे। गर्भपात कर रहे हैं, गोलियाँ खा रहे हैं, लेकिन प्रबल पुण्यात्मा जीव था, इसलिये माता के सब प्रयास करने के बाद भी संतान ने जन्म लिया है। वह माँ, माँ नहीं है। उसका पुण्य ही उसकी माँ है। माता-पिता के पूरे प्रयास के बाद भी वह संतान जन्मी। लेकिन मरा नहीं हुआ। कौन किसका है? भ्रम को निकाल देना। संयोग है। जगत् के लोगों के बीच में संयोग है।

ज्ञानियो! संयोग तो संयोग है, स्वभाव नहीं है। मिले हैं। मिल कर नहीं रह पाओगे। वियोग निश्चित है। इसलिये न एक को सुखी करने के लिये अनेक को दु:ख दो, न अनेक को सुखी करने के लिये एक को दु:ख दो। सम्यक्त्व बहुत दूर है, पहले अहिंसा को तो समझिये। जिस दिन अहिंसा समझ में आ जायेगी, उस दिन सम्यक्त्व समझ में आ जायेगा। जब तक बाहर की आँख बाहर में चल रही है, तब तक लोगों पर दया दिखाई देती है। पर सत्य दया यह नहीं है। रात्रि में व्यक्ति तड़प रहा है, उसको भोजन कराना चाहिए कि णमोकार सुनाना चाहिये? तुझे लगेगा कि भोजन कराना चाहिये। हे रागी! तुझे उसकी पर्याय से राग था, इसलिये भोजन करा रहा है। उसकी परिणति से राग होता तो तू यूँ कहता कि रात्रि में अनंत जीवों को मत खाओ ज्ञानी। अनेक जीवों का भक्षण करके दुर्गति को प्राप्त करेगा। इसकी गति के बारे में तुम्हारा ध्यान नहीं है, वर्तमान की क्षुधा तुम्हें दिख रही है। तत्त्वज्ञानी होगा तो यूँ कहेगा कि मैं रात्रि में खिलाकर तुझे नरक नहीं भेजना चाहता हूँ। रात्रि में मत खाओ। यदि प्राणों का वियोग भी होता हो तो णमोकार पढ़ते-पढ़ते अंतिम श्वास ले लेना, ज्ञानी! वर्तमान की पर्याय जायेगी, पर भविष्य निर्मल होगा।

ज्ञानियो! धर्म की जितनी व्याख्या चल रही है, वर्तमान के शरीर की मात्र बातें कर रहे हैं लोग। देह का धर्म दिखाई दे रहा है। आप ने लोगों के बीच में ही छोटा-सा भी कोई व्रत लिया है, कदाचित् विषमता आ गयी, आप उसे तोड़ने खड़े हो गये। हाँ, तोड़ सकते हो, क्योंकि स्वतंत्र थे, स्वच्छंद हो रहे थे। माना कि रात्रिभोजन ही क्यों न छोड़ा हो, लेकिन रात्रि में भोजन करने के परिणाम आ गये और माँ ऐसी पापिन मिल गयी जो कहती है कि बेटा! मन तो हो ही गया, अब तू खा ले। हे माँ! मन हुआ है, दोष लगा है, अनाचार नहीं हुआ है। ऐसा नहीं बोलना कि बेटा! खा ले। बेटा! यदि तूने खा लिया, तो पेट तो भर जायेगा, पर विश्वास रखना, अंदर जो व्रत तोड़ने का कष्ट है, वो न तेरी माँ ठीक कर पायेगी, न तेरा पिता ठीक कर पायेगा। 24 घण्टे खटकेगा कि मैं पापीजीव हूँ, मैंनें व्रत तोड़ दिया। रात्रि में ग्रास खायेगा तो उससे शरीर भले ही पुष्ट हो सकता है, पर जो संक्लेशता खड़ी है, उससे आत्मा पुष्ट नहीं हो पायेगी, वह तो क्लेश को ही प्राप्त होयेगी।

भैया! लोक में यही हो रहा है, देहधर्म की प्रधानता चल रही है। देहधर्म की प्रधानता धर्म नहीं है। जब तक आत्मधर्म पर दृष्टि नहीं है, तो देहधर्म है कौन-सी वस्तु? ज्ञानियो! जब तक सुन रहे हो, तब तक परिणामों में क्या धारा चल रही है? पूरा जैनतत्त्व रासायनिक तत्त्व है, इसलिये आज के युग में जिनवाणी को समझना बहुत कठिन नहीं है। भैया! मोबाइल पर कोई भी संदेश आता है, तो कुछ होता है कि नहीं होता है? क्या होता है? जो होता है, वही होता है। उसे बताया नहीं जाता है।

जब आत्मद्रव्य मिल जाये, तो जो होता है, वही होता है। आप उस वस्तुस्वरूप को समझो। अपनों की बात सुनने में आनंद आता है, तो अपनी बात सुनने में क्यों नहीं आनंद आयेगा? आपको मालूम होना चाहिये कि जो देह की बात है, वह अपनों की बात है। परिवार की बात है, वह अपनों की बात है। जो आत्मा की बात है, वह अपनी बात है। अपनों की बात अनंत बार सुनी है, ज्ञानी! अपनी बात सुनो। यदि तू दीक्षा लेना चाहे और तेरा पिता रोने भी लग जाये, फिर भी तुझे पाप नहीं लगेगा। क्यों नहीं लगेगा? रागी राग में रो रहा है। मैं उसको रुलाने को दीक्षा नहीं ले रहा हूँ, मैं अपनी आत्मा के कल्याण के लिये दीक्षा ले रहा हूँ। कभी इस भ्रम में मत पड़ना कि मैंने अपने माता-पिता का कुछ भी नहीं किया।

हे ज्ञानी! यदि घर में रहता, तो करना ही चाहिये था, पर वैराग्य हो रहा है और अपने शरीर को मैं अपना नहीं स्वीकार रहा हूँ, तो दुनियाँ के शरीर को अपना क्यों स्वीकारूँ? यह तत्त्वदृष्टि है।

सम्यक्त्वज्ञानसम्पन्नो, जैनभक्तः जितेन्द्रियः।
लोभ-मोह-मदैस्त्यक्तो मोक्षभागी न संशयः।। 25 ।।

माँ! बेटे के गर्भ में आते ही तुझे क्या-क्या दिखाई देता है? जो चाक्षुस होता है, आँखों के सामने आया है, वह बहुत कम होता है। जो आँखों के सामने नहीं आया है, पर आ चुका होता है, वह अधिक होता है। बेटे के गर्भ में आते ही माँ को पोता दिखना प्रारम्भ हो जाता है और पोते की बहू भी दिखना प्रारम्भ हो जाती है। और यहाँ तक कि इस सभा में ऐसे भी लोग बैठे होंगे जो संतान के गर्भ में आते ही बैंक में बैलेंस भी डालना प्रारम्भ कर देते हैं।

धन्य हो उस जीव के पुण्य को, धन्य हो कि अभी वह जमीन पर नहीं आया, फिर भी उसके लिये नौकर लग चुके हैं। मालूम, हम लोग क्यों मुस्कराते रहते हैं? जब एक जीव गर्भ में नहीं आया, उसको पता नहीं कि कौन-सी पर्याय से आया है, फिर भी उसके लिये नौकर लोग लग चुके हैं। भैया! बताओ, माँ-पिता सेवा में लगे हैं कि नहीं लगे हैं? एक रागी असंयमी शिशु के लिये पालनहार मिल जाते हैं, तो महाव्रतों के पालन करने वालों को लोग न मिलें, ऐसा होता नहीं है। कोई साधु के मन में विकल्प आये तो, महाराज! अभी तुम साधु बने ही नहीं हो। जब माँ के पेट में आये शिशु की व्यवस्था अनेक लोग बनाने लगते हैं, तो फिर महाव्रती को व्यवस्था बनाने की आवश्यकता नहीं, व्यवस्थित होने की आवश्यकता है। व्यवस्थित रहोगे तो पुण्य का संचय होगा, पुण्य का संचय होगा तो अपने आप व्यवस्था बनानेवाले मिल जायेंगे।

जीवन में कुछ कर सको तो 'व्यवस्था' शब्द को हटा देना और 'व्यवस्थित' शब्द को चुन लेना। जो-जो व्यवस्थित रहते हैं, लोक में उनकी सब व्यवस्थायें बन जाती हैं। वाणीसंयम, तन-मन का संयम हो। एक पुरुष आपके सम्मान के लिये हाथ जोड़े खड़ा था और आप उसको गाली दे दिये। बताओ, वह क्या तुम्हारा सम्मान करेगा? कर सकता है, दूसरे प्रकार से पूजा करेगा। समझ गये? .....

पता नहीं कितने घर नष्ट हो गये, कितने संबंध टूट गये मात्र वाणीसंयम के अभाव में। जिन घरों में सुबह से मंगलाचरण हुआ करते थे, उन घरों में आज सुबह से गालियाँ सुनायी पड़ रही हैं। यह नरक से निकले नारकियों का समूह है। ज्ञानी! तब भी खिन्न मत होना, क्योंकि यह अपने ही अशुभ कर्म का उदय है, जो ऐसे जीवों का संयोग मिला।

आचार्यमहाराज क्या कह रहे हैं? जो सम्यग्ज्ञान से युक्त है, वह जिनेन्द्र भगवान् का भक्त है। भैया! धर्मात्मा का समागम भी उतने ही पुण्य से मिलता है, जितने पुण्य से भगवान् मिलते हैं। यह अपना अहोभाग्य मानो कि इतनी विशाल समाज में जन्मे हो। यदि किसी देहात में होते, तो एक धर्मात्मा भी जयजिनेन्द्र करने को नहीं मिलता।

'जिनेन्द्रभक्त जितेन्द्रियः', जो अपनी इन्द्रियों को नियंत्रित किये है। आप श्रावक हो, अभक्ष्य से तो कम-से-कम अपनी दृष्टि को हटाओ, जिन द्रव्यों के सेवन करने में कोटि-कोटि जीवों की हिंसा हो रही है। जिस जीव को इतना भी विवेक नहीं, यह विश्वास रखना, मोक्षमार्ग अभी बहुत दूर है। अभक्ष्य, अनीति, अन्याय इन तीन का विसर्जन करो। सच्चा जैन अनीति का द्रव्य नहीं लायेगा, अभक्ष्य सामग्री नहीं लायेगा, किसी के साथ अन्याय नहीं करेगा। ऐसा जितेन्द्रिय जीव लोभ, मोह, मद में नहीं पड़ेगा। जो-जो लोक में अनर्थ हो रहा है, वह सब लोभ के वश में हो रहा है। जितना कमा कर रखा है, विश्वास है मुझे कि आप इतना भोग नहीं पाओगे। जितना और कमाने की इच्छा है, उतना आप जी नहीं पाओगे। आपको मालूम होना चाहिये कि पिता जी जब गये, तो जो कमाया था वह साथ नहीं ले जा पाये। खा नहीं पाये, खानेवाला कोई दूसरा ही पुण्यात्मा है। जब जन्मा था, तो गरीब की झोपड़ी में जन्मा था। बनाते-बनाते वृद्ध हो गया, अब बताओ उस महल में जन्मेगा कि मरेगा? इस भव में क्या होगा? जन्मे तो झोपड़ी में थे, पर महल मरने को बना लिये।

जब जीव मोह, लोभ, मद को छोड़ देता है, तब वह मोक्ष का भागी होता है, इसमें किसी प्रकार का कोई संशय नहीं है। जो ऐसे नहीं हैं, वे नरक के भागी हैं, इसमें भी कोई संशय नहीं है। आपको जैसा समझ में आये, वैसा कर लेना।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

आत्मसुख के घातक

काम-क्रोधस्तथा मोहस्त्रयोऽप्येते महाद्विषः।
एते न निर्जिता यावत्, तावत्सौख्यं कुतो नृणां ॥26॥

काम, क्रोध और मोह ये तीनों विकारीभाव आत्मा के महान् शत्रु हैं। जब तक यह मानव इन तीनों शत्रुओं से पराजित है, इनके वशीभूत है, तब तक उसे सुख की प्राप्ति कैसे हो सकती है?

॥ देशना ॥

अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है।

यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी 'सारसमुच्चय' जी में आत्मद्रव्य की सहज व असहज वृत्ति की व्याख्या कर रहे हैं। जो मिश्र धारा है, वह असहज धारा है और जो अमिश्र धारा है, वह सहज धारा है। शुद्ध-आत्मा के भावों की अनुभूति का वेदन जीव ने किया नहीं। कषाय के अभाव का क्या आनन्द होता है, वह अभी आप ले नहीं सकते हो; पर कषाय के मंद उदय का क्या आनन्द होता है, इसे आप आज भी ले सकते हो।

कषाय के अभाव का आनन्द यदि लेना है, तो ग्यारहवें-बारहवें गुणस्थान में प्रवेश करना होगा। कषाय के अभाव का आनन्द जो है, वह ग्यारहवें गुणस्थान से प्रारम्भ होता है।

कषाय के मन्दोदय का आनन्द प्रथम गुणस्थान से प्रारम्भ हो जाता है। अनन्तानुबंधी कषाय के मंद उदय के प्रभाव से मिथ्यात्व के तीन टुकड़े हो जाते है। अनन्तानुबंधी कषाय के मंदोदय के बिना, जीव के अर्हन्त के पादमूल में जाने के परिणाम नहीं होते हैं। कषाय के मंदोदय में प्रभू को देखने के भाव होते हैं। अनंतानुबंधी कषाय के मंदोदय में जीव को परमेष्ठी को निहारने के परिणाम होते हैं और अनन्तानुबंधी के विगलित होते ही परमेष्ठी को निज श्रद्धा का विषय बनाने के परिणाम होते हैं। मिथ्यात्व के मंदोदय में मोक्षमार्ग की नींव डलना प्रारम्भ हो जाती है । लेकिन ज्ञानियो! सीढ़ी तभी बनती है, जब सम्यक्त्व प्रकट होता है।

मिथ्यात्व के मन्दोदय के अभाव में तत्त्वज्ञान नहीं होता और तत्त्वज्ञान के अभाव में तत्त्व निर्णय नहीं होता और तत्त्वनिर्णण के अभाव में तत्त्वश्रद्धान नहीं होता, तत्त्वश्रद्धान के अभाव में सम्यग्दर्शन नहीं होता।

ज्ञानी! धैर्य से समझना विषय को, क्योंकि चतुर्थ गुणस्थान हो गया, उसे आपने सर्वश्रेष्ठ मान है। अरे ज्ञानियों! जिस पर गुणस्थान अवलम्बित है, उसकी भी तो चर्चा करो।

सम्यग्दर्शन जिससे प्रकट होता है, वह कौन है? अनन्तानुबंधी का मन्दोदय। जिसको 'देवसेन' स्वामी की भाषा में कहना चाहिये भद्रमिथ्यात्व, भद्रपरिणाम। परिणामों की भद्रता इतनी महान् है, कि जीव को "समन्तभद्र" बना देती है।

कषाय के आवेग में माँ से माँ कहने में व्यक्ति को झिझक लगती है, पिता को पिता कहने में व्यक्ति को फीकापन लगता है, फिर ज्ञानी! परमात्मा को परमात्मा स्वीकारना बहुत कठिन है। जितने आज तक अपने आप को परमात्मा कह गये हैं, वे सब कषायी लोग हैं। जितने परमात्मा कह रहे हैं, वे कषायी हैं और जितने परमात्मा बन गये हैं, वे अकषायी थे। कहने वाला परमात्मा होता नहीं है और जो परमात्मा होता है, वह अपने आप को परमात्मा कहता नहीं, वह प्रकट करके दिखाता है।

"आप्ताभिमान दग्धानां" जो आप्त के मान में दग्ध हो रहे थे, अपने आप को परमात्मा कह रहे थे, "सर्वेषामाप्तता नास्ति कश्चिदेव भवेद्गुरु" सभी आप्त नहीं होते हैं । कोई एक गुरु अवश्य होता है।

तीर्थकृत्समयानां च परस्परविरोधतः।
सर्वेषामाप्तता नास्ति कश्चिदेव भवेद् गुरुः ।। 3 आ. मी.।।

'मैं तीर्थकृत हूँ,' अपने आपको तीर्थंकर कहने वाला कोई तीर्थकृत नहीं हो जाता है। एक-न-एक कोई महान् गुरु अवश्य है। इसलिये कषायी की वन्दना करना नहीं। कषायी वन्दनीय होता नहीं, कषायी में वन्दनीय अवश्य बैठा है। कषाय हटेगी, तो वही वन्दनीय बन जायेगा। इसलिये कषायी को छोड़ भी मत देना।

घृत दुग्ध होता नहीं, दुग्ध घृत होता नहीं, परन्तु ज्ञानियो! दुग्ध के बिना घृत होता नहीं। भगवान् की वन्दना जो करता है, वह कषायी ही होता है। जब भगवान् की वन्दना करने वाला कषायी होता है, तो अपनी वन्दना कराने के भाव करने वाला अकषायी कैसे हो गया?

वन्दना करने वाला कषायी होता है और अकषायी वन्दना करता नहीं। तीव्र कषायी की वन्दना होती नहीं और वन्दनीय कषायी होता नहीं। अकषायी वन्दनीय होता है, अकषायी वन्दना को चाहता नहीं। बिना कषाय के वन्दना के परिणाम नहीं होते। वन्दना का भाव भी कषाय है, तो फिर अवन्दना का भाव धर्म कैसा?

ज्ञानियो! धैर्य से समझना, अन्यथा अनर्थ हो जायेगा। धर्म के लिये अधर्म भी सेव्यमान है, सेवने योग्य है। क्या कह रहे हो महाराज? हाँ, ध्रुव सत्य कह रहा हूँ। इस तथ्य को समझने के लिये बिल्कुल शान्त होकर समझना पड़ेगा। अधूरी बात समझ मत बैठना। जिसे धर्म कह रहे हो, वह तो अधर्म है। धर्म के लिये अधर्म का भी आलम्बन लेना पड़ता है और फिर उस अधर्म को उपचार से 'धर्म' संज्ञा देना पड़ती है। यदि उपचार से 'धर्म' संज्ञा नहीं देंगे, तो अधर्म को कोई स्वीकार करने को तैयार नहीं है।

'मिट्टी का घड़ा लाओ', कहें तो कोई उठाने जायेगा नहीं। 'घी का घड़ा उठा लाओ', कहें तो तू लोग दौड़कर जल्दी चला जायेगा। जबकि घड़ा तो मिट्टी का ही लाया है, पर मिट्टी मात्र का कहता तो लेकर नहीं आते, 'घी का' शब्द जोड़ने से तू लेकर आया है। ऐसे ही ज्ञानियो! जो पूजा की जा रही है, जो पाठ हो रहा है, जो आराधना चल रही है, यथार्थ में वह मेरी आत्मा का धर्म नहीं है, वह पर-साक्षेप है, इसलिये अधर्म है। वह निजधर्म नहीं है, इसलिये अधर्म है। पर उससे निजधर्म की प्राप्ति का मार्ग खुलता है, इसलिये वो भी उपचार से धर्म है।

आहार करना धर्म नहीं, प्रवचन करना धर्म नहीं। प्रवचन में लीन होना धर्म है। दिगम्बर मुनि का आहार के लिए उठना, ये राजमार्ग नहीं है, ये अपवाद मार्ग है। जब आहार लेना अपवाद मार्ग है, तब ज्ञानी! समितियों से शून्य होकर जीना, ये तो अपवाद मार्ग ही नहीं अपितु महान् शिथिलाचार है।

"अनशन स्वरूपोऽहम्"। क्या करूँ? लोग पचा नहीं पाते हैं, तो सत्य को सुन भी नहीं पाते हैं। आप बिल्कुल भयभीत मत हो, आप जो चाहते हो वो मैं कह दूँगा। लेकिन जिसे नहीं जानते, उसे तो पहचानो। आहार लेना धर्म नहीं है, और मेरी आत्मा तो आहार लेती ही नहीं है। ये तो कर्म की उदीरणा है, असाता का प्रेरित हुआ परिणाम है। असाता कर्म न होता तो भगवान्-आत्मा आहार लेने क्यों जाता? हे असाता कर्म! आहार छोड़ो, आहार लेने वाले को ही छोड़ देता हूँ। अग्नि कभी पिटती ही नहीं है, पर अग्नि को भी पिटना पड़ता है। कुघातु के संसर्ग में आयी अग्नि भी पिट जाती है। लोहे के संयोग में अग्नि को पिटना पड़ता है जबकि वेदों में अग्नि को देव कहा है।

हे भगवान्-आत्मा! दुष्कर्मो के संयोग से तुझे संसार में पिटना पड़ रहा है। जब मुझे सत्य समझ में आ रहा है, तो मैं कैसे परवस्तु को अपना निज मान लूँ? तुमको नहीं समझ में आता, तो मानो।

कुधातु के संयोग से अग्नि को घन खाना पड़ते हैं। कर्मों के संयोग से ज्ञानी आत्मा को घन खाना पड़ते हैं। भिन्न करके निहारिये। उदयरूप, भोगरूप, बन्धरूप। उदय में जो है, उन्हें मुस्करा कर भोग रहा है। उदय में आये कर्मों को देखकर हर्ष-विषाद करना। वर्तमान में जो देख रहे हैं, उन्हें देखकर हर्ष-विषाद करना। उदय में आये कर्मों में हर्ष-विषाद, भोग रहे कर्मों में हर्ष-विषाद, अभिनव बन्ध कर रहा है उसमें हर्ष-विषाद।

वस्तु का मिलना उदयभूत है, वस्तु का भोगना भोगभूत है। भोग में कषायभाव हुये हैं, तो बन्धभूत है। धर्म के लिये तो उपचार-धर्म करना, पर उपचार-धर्म को धर्म मत मान लेना। धर्म के लिये उपचार-धर्म का पालन तो करना ही चाहिये। व्रत, समिति, गुप्तियों का पालन योगियों को करना चाहिये। लेकिन व्रत, समिति, गुप्ति का पालन योगी का धर्म नहीं है, धर्म की प्राप्ति का उपायभूत धर्म है। ऐसा कहने में क्या विकल्प है?

किसी की सामर्थ्य नहीं किसी की दुकान से सोना खरीदने की, तो क्या दुकानदार सोना बेचना बंद कर देगा? नहीं ज्ञानी! कोई गरीब आया, वो बनावटी आभूषण खरीदना चाहता है, तो बनावटी दुकानदार के पास जाओ। इसलिये वस्तुस्वरूप को समझो।

क्या गम्भीर विकल्प मन में आ रहा है? लोग सत्य को नहीं समझ पा रहे हैं। न समझना चाह रहे हैं। असत्य का जीवन अनन्त काल से जिया है और अनन्त काल से असत्य को सत्य मान बैठा है। यही तत्त्व की भूल है। आज मुझे बोध हुआ है, कि इस परम तत्त्व को क्यों नहीं निकाला गया है? समझानेवाले ये समझते रहे कि कहीं लोग भ्रमित न हो जायें? यही तुम्हारा भ्रम है।

दूध में घृत है। यदि कहीं आपको डर लगता रहा और गोपिका उसमें जामन न डाले, तो दही कैसे बने? दही को न मथे, तो मक्खन कैसे निकले? और मक्खन को बिना तपाये घृत कैसे बने?

वन्दना कषायी करता है, अकषायी वन्दना करता नहीं। और तीव्र कषाय में वन्दना का भाव आता नहीं। कषाय के मन्दोदय में जीव को परमेष्ठी दिखते हैं और कषाय के तीव्रोदय में जीव को पाँच पाप दिखते हैं। और दोनों अभीष्ट हैं। पाँच पाप अभीष्ट न होते, तो जो पंचपरावर्तन अनादिकाल से चल रहा है, इसमें भयभीत क्यों नहीं हुआ?

पाँच पाप इतने अभीष्ट हो गये जीव को, कि उसको पंचपरमेष्ठी दिखना बंद हो गये। जब कषाय का मन्दोदय आता है, तो पाँच पाप पापभूत दिखते हैं और पंचपरमेष्ठी उपादेयभूत दिखते हैं और जब कषाय का अत्यन्त मन्दोदय, संज्वलन का मन्दोदय होता है, तब पंचपरमेष्ठी

भी हेयभूत दिखते हैं, निज भगवान्-आत्मा उपादेयभूत दिखती है। हेय, उपादेय। ज्ञेय सारा विश्व है, उपादेय (व्यवहार से) पंचपरमेष्ठी हैं, निश्चय से एकमात्र निज शुद्धात्म द्रव्य ही उपादेश है। परमात्मा भी पर-आत्मा है।

श्रद्धा के विषय को, आस्था के विषय को वस्तुस्वभाव तो नहीं बनाया जा सकता । वस्तुस्वभाव तो वस्तुस्वभाव है। यही सच्ची श्रद्धा है। आप लोगों का परस्पर में मैत्रीभाव है। यदि मैत्रीभाव है, ये तो बहुत अच्छी बात है, ये तो होना ही चाहिये; लेकिन ज्ञानी! इस मैत्रीभाव को मैत्रीभाव बना कर ही चलना, पर अन्ध भाव मत बना देना। यदि यूँ कहें कि महाराज! हम दोनों के शरीर दो दिखते हैं, पर आत्मा एक ही है। तो हे मिथ्यादृष्टि! तू किस बात का पण्डित है?

यदि विद्वान् ये कहे कि महाराजश्री! हम दोनों विद्वानों के शरीर अवश्य भिन्न-भिन्न दिख सकते हैं, पर हम दोनों की आत्मा एक है। ज्ञानी! अगर तेरे में से दोनों की आत्मा एक हो गई, तो एक का अस्तित्व समाप्त हो गया, फिर 'दोनों' शब्द तेरे पास आये कहाँ से? इसलिये उपचार, 'उपचार' वही लगाना चाहिये, जिससे हाथ-पैर चल सके। जिससे हाथ-पैर ही न चले, सिद्धांत ही नष्ट हो जाये, वह उपचार 'उपचार' नहीं, उपचाराभास है।

एक द्रव्य दूसरे द्रव्यभूत न कभी हुआ, न होगा। एक सिद्ध में अनंत सिद्ध अवश्य विराजते हैं, पर एक सिद्ध अनंत सिद्ध होते नहीं और अनन्त सिद्ध एक सिद्ध होते नहीं।

अण्णोण्णं पविसंता दिंता ओगासमण्णमण्णस्स।
मेलंता विय णिच्चं सगं सभावं ण विजहंति ॥7॥ पंचा.॥

एक द्रव्य दूसरे द्रव्य में मिले होने पर भी अपने स्व-स्वभाव का परित्याग नहीं करते हैं। इसलिये मेरी आत्मा मेरी ही आत्मा है, मेरी आत्मा महावीर की आत्मा नहीं है। मेरी आत्मा विद्यासागर या विरागसागर नहीं, अनन्त सिद्ध नहीं। मेरी आत्मा तो मेरी आत्मा है। न मेरी आत्मा मेरे शिष्य की आत्मा है, न मेरी आत्मा मेरे गुरु की आत्मा है, और मेरी आत्मा परमात्मा की आत्मा भी नहीं है। मेरी आत्मा तो मात्र मेरी ही आत्मा है।

कण-कण स्वतंत्र है। अणु-अणु स्वतंत्र है। 'स्वतंत्रतः कर्त्ता:।'(जै.व्या.)। ऐसी प्रीति मुझे नहीं चाहिये, ऐसा वात्सल्य मुझे नहीं चाहिये, जिससे मेरा अस्तित्व ही समाप्त हो जाये। मुझे नहीं चाहिये वो परमात्मा, जो यूँ कहे कि विशुद्धसागर जी! तुम मेरे में मिल जाओ। ज्ञानी! मैं तेरे में क्यों मिलूँ? जब मेरी सत्ता स्वतंत्र है, तब मैं तेरे में मिल कर अपनी सत्ता का नाश

नहीं करना चाहता हूँ। आप परमात्मा हो, मैं आपकी वन्दना आप में मिलने , हेतु नहीं आया हूँ। मैं आपकी वन्दना आप जैसा बनने के लिये, करने आया हूँ।

मैं भगवान् से मिलने कभी नहीं जाता और न ही मिलने का मुझे कोई भाव है और न ही कभी मैंने स्वप्न में भी सोचा कि मैं भगवान् से मिलूँ। क्यों मिलना? ये परद्रव्य है। मेरा आत्म-द्रव्य ही मेरा द्रव्य है। भैया! विश्वास रखना। नमक की रोटी तो खा लेना, पर श्रद्धा में रहना। नमकीन संज्ञा रोटी की अवश्य है, पर रोटी तो रोटी है, नमक तो नमक है।

राग की धारा में नमकीन रोटी पसन्द आती है। ये राग का भोग चल रहा है। ये नमक, रोटी का भोग का नहीं है। नमक का भोग अलग है और रोटी का भोग अलग है। ऐसे ही जब मैं परमात्मा की भक्ति करता हूँ, तब भक्ति के आनन्द में होता हूँ, तो वहाँ परमात्मा नहीं होते हैं और जब परमात्मा होते हैं, तो भक्ति का आनन्द होता नहीं है। ज्ञानियो! खोजो, मैं क्या बोल गया?

"वेद-वेदक भाव"। जब वेद होता है, तब वेदक नहीं होता है और जब वेदक होता है, तो वेद नहीं होता है। जब भगवान् महावीर स्वामी मुझे दृष्टिगोचर होते हैं,तब मुझे भक्ति का आनन्द नहीं आता है, भगवान् का आनन्द आता है। जब भक्ति में डूब जाते हैं, तो भगवान् भी गौण हो जाते हैं, भक्ति की अनुभूति प्रारम्भ हो जाती है।

जब ग्रास चबाता है, तब ग्रास का स्वाद नहीं आता है और जब स्वाद आता है, तब ग्रास चबाता नहीं है। अब आप मोटी बुद्धि से इसे पकड़ नहीं पाओ, तो ये तुम्हारा भिन्न विषय है; लेकिन ध्रुव सत्य है कि जब चबाना बंद हो जाता है एक क्षण को, स्वाद तब आता है। जब गुटकता है, फिर तो गई सो गई।

इसलिये जो ध्रुव द्रव्य की ध्रुवता है, उस ध्रुव की ध्रुवत्य दृष्टि को समझने के लिये शान्त चित्त की आवश्यकता होती है। शुरू में तो विपर्यास-सा महसूस होता है, लेकिन विपर्यास को हटाओगे तो विपर्यास तो लगेगा-ही-लगेगा। भैया! नमक तो नमक ही होता है और मिश्री ही मिश्री होती है। नमक खाने वाले को मिश्री खिलाओगे तो उसका स्वाद तो लगेगा ही विपरीत, पर विपरीत तो होता ही है, लेकिन विपरीत होता ही नहीं है स्व-स्वभाव में।

भैया! आप सोचिये कि मैं कहाँ जीता होऊँगा और ये जगत् कहाँ जी रहा है। इनको लगता है कि मैं पागल हूँ और मेरे को लगता है कि ये पागल है। और दोनों ही पागल नहीं हैं, और दोनों ही पागल हैं।

हे ज्ञानियो! एक-दूसरे को पहचानने के लिये आपको सर्वज्ञ बनना पड़ेगा। यदि सर्वज्ञ नहीं बन पा रहे हो, तो सर्वज्ञ के ज्ञानी बन जाओ, तो समझ जाओगे। ऐसा मैंने इसलिये बोला- जिसको नमकीन पसन्द है, उसको बूरा खाने में चेहरा बिगड़ता है और जिसको बूरा पसन्द है, उसको नमक खाने में चेहरा बिगड़ता है, जबकि चेहरे बिगड़ने की सामग्री दोनों नहीं हैं। दोनों ही चेहरे की मुस्कान की सामग्री हैं। पर क्या करूँ? जिसको जो पसन्द है, उसे वो वैसे ही लगने लगती है।

अरे ज्ञानियो! तुम्हारा भोगों में चेहरा मुस्कराता है और योगियों का योग में चेहरा मुस्कराता है। जिसको राग का स्वाद चाहिये, उसको समयसार में कहाँ स्वाद मिलेगा? भैया! नमक तो नमक है और मिश्री तो मिश्री है। नमक को मिश्री कहोगे तो विपर्यास कहलायेगा कि नहीं? पर नमक 'नमक' सत्य है, मिश्री 'मिश्री' सत्य है। इसलिये, हे भोगियो! तुम्हारा सुख भी सत्य है। यदि तुम्हारा सुख सत्य न होता, तो आप अनन्त काल से इसमें बैठे मुसकरा कैसे पाते? तुम्हारा सुख सत्य नहीं है। यदि सत्य होता, तो भगवान् बनके क्यों बैठते? तुम्हारा सुख झूठा है। "दुःखमेव वा" (त. सू.) तुम्हारा सुख तो दुःख ही है।

जिसके भोगने पर पश्चाताप आये, वो सुख कैसा? जिसके भोगने पर नाक सुकड़े, वो सुख कैसा? जिसके भोगने पर स्वयं ग्लानि आने लग जाये, वो सुख कैसा? जिसको मंच पर बैठकर, दुनियाँ को मुस्करा कर कह सके, वो तुम्हारे मुख से न निकल पाये, वो सुख कैसा? जो बात छिपा-छिपा कर रखी जाये, उसी का नाम पाप है। जिसको छुपा कर रखा जाये, जिसको छुपके किया जाये, जिसको कहने में स्वयं शर्म आये, जिसके कहने पर दूसरे तुझे पापी कहने लग जायें, उसी का नाम पाप है।

कभी पंचकल्याणक करते हो, विधान करते हो, क्या छुप कर करते हो? जिसको खुल कर किया जाये, खुल कर कहा जाये और कहनेवाले आनन्दित हों, सुननेवाले भी आनन्दित हों, और करने के बाद तुम पुण्यात्मा कहलाओ, उसी का नाम धर्म है। पर वह स्वभावभूत नहीं है। जो कुछ कर रहे हो, वह स्वभाव की प्राप्ति के लिये करना। ये तो नियोग था इस भूमि का, जो कि हम लोग इस सत्य को समझ रहे हैं। ये तो क्षेत्र का पुण्य है। कोई कहेगा कि महाराज श्री! आप तो मानते नहीं हैं इन सबको। ज्ञानी! आपको क्या पता कि मैं क्या-क्या मानता हूँ और क्या-क्या नहीं मानता हूँ?

मैं क्षेत्र का पुण्य कह रहा हूँ, आप कहेंगे जड़ है, कैसे जड़ कह दिया आपने? पृथ्वीकायिक जीव है, वो जड़ नहीं है। जिस पृथ्वीकायिक जीव ने मायाचारी की थी, वो कहीं

धर्मक्षेत्र में एकेन्द्रिय तिर्यञ्चपर्याय को प्राप्त हुआ; परन्तु उसके पुण्य परिणामों के संस्कार थे, इसलिये उसकी छाती पर आज जिनवाणी चल रही है। एक वो स्थान होगा, इसी से लगा हुआ परिसर, जहाँ संडाश बना होगा। एक ये भूमिप्रदेश है, जहाँ तीर्थंकर, अरिहन्तों की वेदी बनी हुई है। एक वह भूमि है, जहाँ तीर्थंकर की दिव्यध्वनि खिर रही हो। उस पृथ्वी में विद्यमान वर्तमान के जीवों का तीव्र यशःकीर्ति नामकर्म का उदय होगा।

1999 में आचार्यमहाराज ने मुझे दुर्ग से भिण्ड बुलाया और एक दिन उन्होंने बोल दिया कि विशुद्धसागर जी! ये सब मुनिराज हैं, इन सबके सामने तत्त्वचर्चा करो। हम तो घबराते थे इन सबसे। फिर भी तत्त्वचर्चा करी। दूसरे महाराजों ने अपनी भाषा में थोड़ी गरमी दे दी, सो मैं तो घबरा गया। दूसरे दिन फिर बोला, तो मैंने कह दिया कि महाराज! मैं तो नहीं जाऊँगा। आचार्यश्री बोले- बताओ-बताओ, बात क्या है? मैंने कहा कि कुछ नहीं है, लेकिन मैं नहीं जाऊँगा। प्रश्न इतना-सा था, कि आज धारणा हमारे विद्वानों की क्या है? जो पत्थर जमीन से निकल चुका है, इन्होंने उसको जड़ कहना शुरू कर दिया है।

खदान से निकले पाषाण को आपने अचेतन कहना प्रारम्भ कर दिया है, जबकि सिद्धांत इस बात को स्वीकार नहीं करता। जघन्य अवगाहना से युक्त जीव अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण भी अपनी अवगाहना बना कर उस स्थान में, उस पाषाण में रह सकता है, क्योंकि परतों की पर्तें रहती हैं। जो खण्ड जहाँ से निकला है, उतने खण्ड के जीव का अभाव हुआ है। लेकिन उस समय जो पाषाण थे, आज मंदिर में विराजे तीर्थंकर स्वामी हैं। जितने जिनालयों में विराजित जिनप्रतिमा हैं, उनको आप अचेतन ही मत मानिये। ये रटे-रटाये विषय थे सबके, मैं विषय कह ही रहा था कि सबके सब मेरे ऊपर टूट पड़े। मैंने कहा कि तनिक धैर्य रखो।

मैं क्या कह रहा था? आज वही ज्ञानीजीव मानने को तैयार हैं। मुस्करा कर मानते हैं। ज्ञानी! बात समझो कि गहराई क्या है? ये आज की बातें नहीं, पुरानी हैं। पहले उमास्वामी महाराज ने 'तत्त्वार्थ सूत्र' संस्कृत भाषा में लिखा, तो इन जैनियों ने खूब हँसी की। भैया! विरोध हुआ था उमास्वामी महाराज का। क्योंकि हमारे धर्मग्रंथ प्राकृत भाषा में लिखे जाते हैं, आपने संस्कृत में कैसे लिख दिया?

दिगम्बर जैनाम्नाय का पहला ग्रंथ है संस्कृत भाषा का 'तत्त्वार्थसूत्र'। ऐसे ही पहला प्रयोग होगा, लेकिन वही जो समझ में आता है, आज सभी स्वीकार करने लगे न? ऐसे ही ज्ञानी! 'आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्'। अभी 'नमोऽस्तु शासन जयवन्त हो' पहला प्रयोग है, तनिक देर हो जायेगी तो सभी स्वीकार करने लग जायेंगे। 'जो है, सो है।'

1999 की बता रहा हूँ आपको। पूरा संघ था। मैंने कहा-कि जो पाषाण की प्रतिमा है, उस एकेन्द्रिय जीव का प्रबल पुण्य है। ज्ञानी लोग कहने लगे-क्या? वो तो जड़ का पुण्य होता है। मैंने कहा-जड़ अपनी दृष्टि में आपको जड़ दिख रहा है, लेकिन वो जड़ नहीं है, चेतन है। एकेन्द्रिय जीव का प्रबल पुण्य का उदय होता है, तीव्र यश:कीर्ति नाम-कर्म का उदय होता है, तब उस पाषाण में प्रतिमा का उदय होता है। आप अर्हन्त की पूजा में जा रहे हैं, तो उस जीव को भी पुण्य मिलता है।

दो अनुयोग के ज्ञाता हैं, वे द्विवेदी जी हैं और तीन अनुयोगों के ज्ञाता हैं, वे त्रिवेदी हैं और चारों अनुयोगों के ज्ञाता हैं, वे चतुर्वेदी जी हैं। "विद् धातु ज्ञानार्थे" विद्-धातु ज्ञान के अर्थ में आती है। और वेद यानि अनुयोग, द्वार। वे अनुयोग जो चार हैं, वे हमारे वेद हैं। और द्रव्यानुयोग वेदान्त है। वेदान्त क्यों? अन्त शब्द का अर्थ होता है धर्म। अनेकांत यानि वेदान्त।

अनेक धर्म जिसमें हों, उसका नाम है अनेकांत। वेदान्त यानि जिस धर्म का अन्त में वेदन होता है। आत्मद्रव्य चिद्रूप है, अखण्ड एकरूप है। उस वेदान्तभूत आत्मगुणों में से ज्ञानगुण एक है। उस ज्ञानगुण की अनुभूति लेना ही वेदान्त है। और ऐसे वेदान्त में लवलीन, ब्रह्मस्वरूप में लवलीन हो रहा है, वही ज्ञानी ब्रह्म में लीन हो रहा है, उसका नाम ब्राह्मण है। ये मुनिगण सब द्विज हैं, ब्राह्मण हैं। द्विजन्मा हैं। एक बार माता के उदर से जन्मे, सो एक जन्म और दूसरा, गुरु ने दीक्षा दी है, संस्कार दिये हैं, सो द्विज। ये हमारे द्विज लोग बैठे हुये हैं।

ज्ञानियो! वे संज्ञातीत, सर्वनामातीत हैं। वे तो अपने अखण्ड स्वरूप में लीन हैं। वो परमात्मा है और परमात्मा ब्रह्मभूत है। द्विजन्म की जो पूर्णता है, सफलता है, उसका नाम ब्रह्म है। ओ ज्ञानियो! कहाँ पहुँच गये?

मलरहिओ णाणमओ, णिवसइ सिद्धीए जारिसो सिद्धो।
तारिसओ देहत्थो, परमो बंभो मुणेयव्वो ॥26॥ त.सा॥

'मलरहिओ, णाणमओ।' मल से रहित, ज्ञानमयी जैसा परमब्रह्म सिद्धशिला पर विराजा है, 'तारिसओ देहत्थो,' वैसा देह के अन्दर परमब्रह्म विराजा है। हे ज्ञानी! कषाय को मंद कर, ब्रह्म को लख, ब्रह्म को निरख। यदि ब्रह्म को प्रकट करना है तो कषाय का अभाव करो।

मोक्षमार्ग का प्रारम्भ है मिथ्यात्व की भद्रता। मोक्षमार्गी मिथ्यादृष्टि नहीं है, मोक्षमार्गी सम्यग्दृष्टि है और ज्ञानी! उपचार मोक्षमार्गी सम्यक्-दृष्टि, यथार्थ मोक्षमार्गी महाव्रती और एक-देश मोक्षमार्गी है देशसंयमी और निर्विकल्प मोक्षमार्गी अप्रमत्त गुणस्थान तक। ये छः गुणस्थान प्रमाद के हैं। सप्तम गुणस्थान से लेकर बारहवें गुणस्थान तक प्रमाद रहित गुणस्थान

हैं। और तेरहवाँ, चौदहवाँ "न प्रमादी", ये परमात्मा का गुणस्थान है। और अशरीरी सिद्ध परमात्मा गुणस्थानातीत हैं।

गुणस्थान धर्म नहीं है, मार्गणास्थान धर्म नहीं है, कषायस्थान धर्म नहीं है, संक्लेश स्थान धर्म नहीं है। जो धर्म है, वह निज आत्मा का ज्ञायकभाव धर्म है। सोना धर्म नहीं है, जागना धर्म नहीं है। ज्ञायकभाव धर्म है। पंचमकाल में नहीं आना था मुझे। खोटे कार्य किये होंगे, सो खोटे काल में आये। ये राग की लालिमा ही पञ्चम काल में लेकर आयी है। इसको हटाना पड़ता है। पहले अप्रशस्त राग को हटा लीजिये, फिर प्रशस्त राग पर विचार करना। ठीक है? क्योंकि उभयनय की व्याख्या ही सम्यक् है, नहीं तो जीव भ्रमित हो जायेंगे। तत्त्व की गवेषणा में, चारों अनुयोगों में जो-जो कथन है, वह मात्र द्रव्यानुयोग का ही है। प्रथमानुयोग में होगा तो-भी किसी जीव की ही व्याख्या होगी। करणानुयोग में जो व्याख्या है, जीव-पुद्गलादि की ही व्याख्या है। चरणानुयोग भी किसी जीवद्रव्य के लिये ही है। और द्रव्यानुयोग सम्यक् द्रव्यभूत ही है। 'धवला' जी की नौवीं पुस्तक में सिद्धांत को भी 'अध्यात्म' लिखा है।

क्या सोना? भैया! आचार्य विमलसागर जी तो मात्र दो ही घण्टा सोते थे और रात्रि में भी जाप करते रहते थे। आज क्या हो रहा है? भैया! हर व्यक्ति सन्मतिसागर जी तो बनना चाहता है, विमलसागर बनना चाहता है। हे भैया! शरीर के सागर तो बन जाओगे, पर साधना के सागर बनो। भीतर की साधना तो देखो कि विमलसागर जी क्या करते थे और सन्मतिसागर जी क्या करते थे?

इसलिये किसी का रूप बनना अपने को पसन्द नहीं है। रूप क्या बनना? स्वरूप बनना। स्वरूप तो होता है। रूप हटा दो, उसी का नाम स्वरूप है। नहीं बनना, किसी की नकल नहीं करना जीवन में। और नकल करना ही है तो उनकी करो जो असल में थे। वे सिद्ध भगवान्। अन्वेषण करो, मिलान करो। कुन्दकुन्द स्वामी ने कह दिया कि नकल करो तो अच्छे से करो।

जो जाणदि अरहंतं, दव्वत्तगुणत्त-पज्जयत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं, मोहो खलु जादि तस्स लयं ॥ 80 प्र.सा.॥

जो अरिहन्त के द्रव्य को, अर्हन्त के गुण को, अर्हन्त की पर्याय को जानता है, 'सो जाणदि अप्पाणम्' वह अपनी निज ध्रुव आत्मा को जानता है, 'मोहो खलु जादि तस्य लयं'

उसका मोह विलीन हो जाता है। भैया! कर नकल। नकल में क्या होता है? लोग अक्ल कम लगाते हैं। नकल में अक्ल नहीं लग पाती है और अक्ल होती है तो नकल हो ही जाती है।

प्रश्नपत्र में ही आधे उत्तर लिखे होते हैं। आप बुद्धि लगाओ। यदि विवेकी छात्र है तो उसको प्रश्नपत्र तीन बार पढ़ लेना चाहिये। प्रश्नपत्र पढ़ेगा तो उसी प्रश्नपत्र में बहुत सारे उत्तर मिलेंगे।

हे ज्ञानियो! भगवान् के पास जाने की आवश्यकता नहीं है। आप अपने आप को ही पढ़ लो, आपके अंदर ही भगवान् बैठा है, मालूम चल जायेगा। प्रश्नपत्र में उत्तर होते हैं, थोड़ा विवेक लगाना पड़ता है। भैया! कुछ समझ में आ रहा है कि नहीं? भैया! भूल मत जाना, बड़े जुगत से रखना जितना तुम्हें समझाया जा रहा है। भैया! पण्डित जी ने बोला था अभी तीन दिन पहले, कि महाराज! मैं इसलिये चुप रहता हूँ कि जो सुन रहा हूँ, वो बाहर न निकल जाये। ज्ञानियो! वस्तुस्वरूप को समझो।

जैसे एक जड़रत्न मिल जाये जीव को, तो अपने बुन्देलखण्ड में कहने लगते हैं कि भैया! बड़े जुगत से रखना, इसको गुमा मत देना। इसलिये, हे ज्ञानियो! ये अर्हन्त की देशना है, इसको हृदयांगन में जुगत से रखना। कहीं इसको कोई चील/कौआ उठा न ले जाये। विषय-कषाओं को, कल आचार्य महाराज ने बताया है कि लुटेरे हैं। काम, क्रोध, मान, माया, लोभ इनसे अपनी रक्षा करो। पर जो सम्यक्-गुण से सम्पन्न हैं, सम्यक्-ज्ञान से सम्पन्न हैं, सम्यक्-चारित्र से सम्पन्न हैं, जितेन्द्रिय जीव जिनेन्द्र का भक्त है, वह मान, माया, लोभ से रिक्त है। "मोक्षभागी न संशयः" वह तो नियम से मोक्षभागी है, इसमें कोई संशय नहीं करना।

ज्ञानियो! कीचड़ में हाथी फँस गया। वह निकल नहीं रहा था, तो हाथी को कैसे निकाला? ज्ञानी! चींटी कभी दल-दल में आ जाये तो उसको छोड़ दो, ज्यादा निकालने का प्रयास मत करो, क्योंकि उसके इतने नाजुक हाथ-पैर होते हैं कि वह हाथ लगते ही मृत्यु को प्राप्त हो जाती है। वह तो स्वयं ही निकल आती है। यदि तुमने छेड़ा तो बेचारी ऊपर चली जाती है। ऐसे ही ज्ञानियो! परिणामों में वह शक्ति/ताकत है कि हाथी को कैसे निकाला जाये? महावत को बुलाया। वह बोला- ये हाथी कोई सामान्य हाथी नहीं है। ये हाथी वो है, जिसने संग्राम में युद्ध किये हैं। और संग्राम में शक्ति/ताकत तभी आती है, जब सेना छलांग मारती है। और जब संग्राम में संग्राम के बाजे बजते हैं, तो योद्धाओं की बाँहें फड़कने लगती हैं। उसी प्रकार जब संग्राम के बाजे बजे तो हाथी उचका और कीचड़ से बाहर आ गया।

हे हाथियो! उचक जाओ और जिनवाणी को सुनते हुये कषाय की दल-दल से बाहर निकल आओ। जब संग्राम के बाजों की आवाज सुनकर हाथी कीचड़ से निकल सकता है, तो ज्ञानियो! ये तो जिनवाणी का संग्राम है, उसको सुनकर तो कोई भी प्राणी ऐसा नहीं है जो विषयों की, कषायों की कीचड़ से न निकलेंगे। निकलेंगे-ही-निकलेंगे। वह अव्रती से व्रती तो बन ही जायेगा।

व्रती वही बन सकता है, जिसने दुर्गति का बन्ध नहीं किया। मनुष्य, तिर्यंच और नारकी, इन आयु का बन्धक कभी व्रती नहीं बन सकता। लेकिन भैया! अंतिम समय तक जिनवाणी का आलम्बन मत छोड़ देना। 'मूलाचार' जी में लिखा है, कि संगीत की आवाज से वनस्पति भी प्रसन्न होती है। इन माताओं से कह देना कि कुछ भी समझ में न आये तो न आने दो, लेकिन जिनवाणी सुनने मात्र से कर्मों की गुणश्रेणी निर्जरा होती है। आपने बाली मुनिराज का नाम सुना, जिन्होंने रावण के द्वारा कैलाश पर्वत को हिलाने पर अंगूठा दबा दिया था? वे मुनिराज कौन थे? वे बालि पहले मुनिराज नहीं थे, बाद में मुनिराज बने। एक मृग का जीव है वो, जंगल में एक वीतरागी निर्ग्रन्थ तपोधन। श्रुत कहो, श्रुत सुनो।

मेरा सभी माता जी व महाराज जी से कहना है कि श्रुत सुनो, श्रुत कहो। प्रवचन करने में कभी प्रमाद मत करना। कोई रात्रि में कह दे कि मेरी अंतिम श्वास चल रही है, तो साधु रात्रि में वहाँ भी बोल सकता है। मात्र उनको सम्बोधन करने के लिये, सल्लेखना के लिए। उपदेश के लिये कभी मना मत करना। मंच लगे, माईक लगे, तभी प्रवचन नहीं।

वीतरागी निर्ग्रन्थ तपोधन! इतने कोमल भाव से उच्चारण होना चाहिये और मंद स्वर से व भद्र परिणामों से पाठ होना चाहिये कि तिर्यञ्च भी पिघल जाये और तिर्यञ्चपना छोड़ दे। मुनिराज पाठ कर रहे थे और हिरण तो संगीतप्रिय प्राणी है ही। जैसे ही मुनिराज जिनवाणी का पाठ करते, हिरण आकरके प्रतिदिन मुनिराज के मुख से जिनवाणी सुनता। जिनवाणी सुनते-सुनते हिरण ने ऐसे पुण्य का संचय किया कि वही जीव वहाँ से चलकर बालि मुनिराज बने।

बालको! युवाओ! श्रद्धापूर्वक सुनते रहना और सुनते-सुनते ही एक दिन ऐसा आयेगा कि तुम सुनानेवाले बन जाओगे और मुख से ही नहीं, सर्वांग से सुनानेवाले अर्थात् केवली बन जाओगे। इसलिये प्रतिदिन सुनना। किसान बाल नहीं देखता, बाल में बीज देखता है। और डालता बीज जमीन में है। उसी प्रकार हमें नीचे देखना है। साधना के मार्ग में लगे होने पर भी साधक अपने त्याग-संयम को नहीं देखता, वह तो मात्र शिवत्व को ही देखता है।

भैया! आपके यहाँ खेती तो है? आपके यहाँ खेती भी होती है, गेंहूँ भी होते हैं। गेहूँ की बाल में जहाँ दाने छिपे होते हैं, यदि वो बाल कहीं लग जाये, तो खुजली होने लगती

है। पर कोई यूँ सोचे कि भैया! गेंहूँ बोओगे, बालें होंगी, तो खुजली होने लगेगी, तो गेंहूँ बोओगे क्या?

अरे ज्ञानियो! आपको यूँ सोचना चाहिये कि बीज बोओगे, बालें आयेंगी, खुजली होयेगी, पर दाने भी तो आयेंगे। ये बीच के उपसर्ग तो चलते ही रहते हैं। हमें तो दाने पर लक्ष्य रखना चाहिये। टेंशन कोई नहीं, कोई तनाव नहीं। ये मोक्षमार्ग है। जैसे बालों में खुजली होती है तो लोटना पड़ता है। खुजली से तो बचो, पर दाने का नाश मत कर दो। दाना तो दाना है।

तीर्थभूमि धर्म से शुष्क हो जाती है। पपौरा जी, आहार जी, बंधा जी, द्रौणगिरि जी, बानपुर इनको कोई चमत्कार न मानो। मात्र इतना ही चमत्कार मानो कि तीर्थभूमि के मध्य रहने वाली समाज धर्मभावना से भी जुड़ी हुई है। इससे बड़ा कोई चमत्कार नहीं है। तीर्थभूमियों के लोग शुष्क हो जाते हैं भैया! मालूम क्यों? कि हमारे यहाँ तो महाराज आते ही रहते हैं। पर ध्यान्य हो वह समाज, जो यूँ नहीं कहती है कि महाराज आते हैं, वह तो यूँ कहती है कि हम तो महाराज के पास जाते हैं और लाते हैं।

काम-क्रोधस्तथा मोहस्त्रयोऽप्येते महाद्विषः।
एते न निर्जिता यावत् तावत्सौख्यं कुतो नृणां ॥ 26 ॥ सा. स॥

हे सुधी श्रावको! काम, क्रोध और मोह ये तीन महा शत्रु हैं इस आत्मा के। जब तक इन शत्रुओं द्वारा जीते गये हो, पराजित हो चुके हो, तब तक तुमको कहीं सुख नहीं है। जब तक ये तीन शत्रु तुमको पराजित किये हैं, तब तक पराधीनता में कहाँ सुख है? और ये तीन शत्रुओं पर जब तुम विजय प्राप्त कर लोगे, उस दिन तुम तीनलोक के नाथ बनकर, निजनाथ बनकर, निजात्म भूमि का सुख लूटोगे, निज सम्पत्ति के स्वामी बन जाओगे।

ज्ञानियो! स्वतंत्रता ही हमारा धर्म है। स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। हे ज्ञानियो! यहाँ लगाओ स्वतंत्रता। इन तीनों से अपने को स्वतंत्र कर लो, उसी का नाम स्वतंत्रता दिवस है। तुम बहुत स्वतंत्रता दिवस मनाते हो, गणतंत्र दिवस मनाते हो। ज्ञानी! निज गण की रक्षा कर, वो गणतंत्रता दिवस तेरा होगा। और निज कर्मों को हटा करके निज आत्मा को स्वतंत्र कर, यही तेरा स्वतंत्रता दिवस होगा। 'आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

सद्-देशना

तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में मोक्षमार्ग का स्वरूप कह रहे हैं। अखण्ड चिद्रूप भगवान्आत्मा को समझना है तो अघ का विसर्जन करना होगा। अघ यानि पाप। भग् यानि ज्ञान। जब तक अध है, तब तक भग् पर दृष्टि नहीं है। जिसकी भग् पर दृष्टि है, उसकी अध पर दृष्टि नहीं है। जिस जीव के अंतस् में श्रद्धान का विपर्यास है, उस व्यक्ति को हर वस्तु उल्टी ही नजर आती है। यदि नीचे का मटका उल्टा रखा है तो ऊपर का प्रत्येक मटका उल्टा ही रखना पड़ेगा। उल्टे मटके पर सीधा मटका होता नहीं है। सीधे मटके पर ही सीधा मटका रखा जाता है। जिसका मुँह ही उल्टा है, उसका चारित्र भी उल्टा ही होगा, उसका ज्ञान भी उल्टा ही होगा। इसलिये आवश्यकता ज्ञान को सम्यक् करने की नहीं है, आवश्यकता श्रद्धान को सम्यक् करने ही है। और जिसकी श्रद्धा सम्यक् है उसका ज्ञान भी सम्यक् है, उसका चारित्र भी सम्यक् है। जब तक मृत्यु से डर लगेगा, तब तक श्रद्धा सम्यक् हो नहीं सकती। सम्हलकर सुनना। जिसको मृत्यु का भय समाप्त हो गया है, उसी की मुद्रा सम्यक् हो सकती है। जीने का राग विश्व में सबसे बड़ा राग है। मरने का डर विश्व में सबसे बड़ा डर है। जिसने निर्णय कर लिया है कि मरण मेरा होता नहीं है, प्राणों का क्षरण होता है, मृत्यु तो पर्याय का परिणमन है, फिर उसे डर नहीं।

ज्ञानियो! पर्याय बदले तो बदल जाने देना, पर अपनी श्रद्धा को नहीं बदलने देना। हे ज्ञानी! यदि शरीर टूटा, तो वर्तमान मात्र का शरीर टूटेगा, लेकिन यदि वर्तमान के शरीर में तेरी श्रद्धा टूट गयी, तो भव-भव में भटकना पड़ेगा। कितना पुण्य किया होगा कि वर्तमान में तुझे देव-शास्त्र-गुरु मिले हैं। इनका मिलना इतना दुर्लभ नहीं है, जितना दुर्लभ इनके पास आने के परिणामों का होता है। हर व्यक्ति के परिणाम नहीं होते हैं।

सर्प डँसे तो जानिये रुचि सों नीम चवाय।
कर्म डँसे तो जानिये जिनवाणी ना सुहाय॥

यदि कालिया नाग ने किसी को डँस लिया है, उस व्यक्ति को कड़वा नीम भी मीठा लगता है। नाग का डँसा नीम खाता है, पर जिसको कर्मों ने डँस लिया है उसे वीतरागी अर्हंत की देशना नहीं सुहाती है। जीवन भर क्या किया है, यह उसके जीवन से मत पूछना, अंतिम

समय परिणामों से पूछ लेना। किसी ने कहा कि णमोकार सुनाऊँ? तो वह कहता है कि हल्ला मत कीजिये।

अहो! जिस जीव ने जीवनभर अर्हन्त का अभिषेक किया हो ,मुनियों को दान दिये हों, जिनवाणी का वाचन किया हो, ऐसा जीव अंतिम समय में कहता है कि मुझे नहीं सुनना है। इसका मतलब क्या? इसने देह की प्रशंसा के लिये धर्म किया है, आत्मप्रशंसा के लिये धर्म नहीं किया। 'यथा मति, तथा गति।' जैसी मति होगी, वैसी गति होगी और जैसी गति होगी, वैसी अंतिम समय में मति हो जायेगी। इसलिये आज से ही सम्हलना है। और ये मत सोचना कि पड़ोसी का क्या हो रहा है। धर्म तो धर्म है। धर्म धर्मी से रहित नहीं होता है। जैसे अग्नि से उष्णता का अभाव नहीं होता है, वैसे ही ज्ञानियो! सच्चा धर्मात्मा वही होता है, जो अग्नि-उष्णता की भाँति अपने आप में वीतरागता को लेकर चलता है। कभी-कभी मन में क्या भाव आता है? मैं पूजन कर रहा हूँ, यदि मैं नहीं आता तो भगवान् ऐसे ही बैठे रहते। मैं साधुओं की सेवा में लगा हूँ, यदि मैं नहीं आता तो नगर में साधु नहीं रह पाते। मैं जिनवाणी पढ़ रहा हूँ, यदि मैं जिनवाणी नहीं पढ़ता तो स्वाध्याय ही नहीं होता। भइया! यह एहसान किस बात का है? अपनी गति को सुधारने के लिये मति सुधारने आये हो, कि दुनियाँ पर एहसान दिखाने के लिये तुम धर्म कर रहे हो? धर्म परवस्तु नहीं, निजवस्तु है। श्रद्धान 'निज' का विषय है, श्रद्धान 'जिन' का विषय नहीं है। जिन में श्रद्धान करना, यह तेरा विषय है, 'जिन' का विषय नहीं है। जिन तो 'जिन' हो गये। जिनको जिन बनना है, वे 'जिन' पर ही श्रद्धान करें, निज पर ही श्रद्धान करें, अन्य पर श्रद्धान न करें। सम्यग्दृष्टि जीव आँख खोलता है तो जिन को देखता है और आँख बंद करता है तो निज को देखता है। जब तुम्हारी आँख खुले, तो जिन को देखना और आँख बंद हो तो निज को देखना। किसी तीसरे को प्रवेश मत होने देना।

ज्ञानियो! आप जब कहीं अंधेरे में टार्च लेकर जाते हो, तो बीच-बीच में टार्च को बंद कर लेते हो। क्यों? व्यर्थ में बैटरी खर्च न हो जाये। इतना तुमको विवेक है, तो अपनी आँखें बंद क्यों नहीं कर लेते? निज की बैटरी की चिंता क्यों नहीं करते? निज को देखो, जिन को देखो, अन्य किसी को न देखो। इसलिये योगी नासाग्र-दृष्टि में अपना ध्यान करते हैं। जिनदेव को देखो। जिनशासन में, नमोऽस्तु शासन में, जितनी अर्हंत की प्रतिमा हैं, वे आँख खोलकर नहीं देखते। हमारी दिगम्बर परम्परा में नासाग्र-दृष्टि है। किसको देखना? अनन्तों को देख चुका हूँ। एक को देख लेता, तो अनंतों को देखने का परिणमन नहीं होता। जो एक को देख लेता है, उसके ज्ञान में अनंत दिखते हैं।

जो अनंतों को देखने का भाव रख रहा है, वो एक को नहीं देख पाता है। जो एक को देख लेता है, उसे अनंत दिखना स्वयमेव प्रारम्भ हो जाते हैं। एक यानि मेरा ध्रुव भगवान्-आत्मा। जो जीव निज आत्मा को देख लेता है, वह कैवल्य को प्राप्त कर लेता है। जो कैवल्य को प्राप्त होता है, उसे देखना नहीं पड़ता है, उसके ज्ञान में सब दिखता है। वे कभी केवली नहीं बन पायेंगे जो अनंतों को देख रहे हैं, जो अनंतों को जानना चाहते हैं। ज्ञानी! मष्तिष्क को स्वच्छ करो, हृदय को स्वच्छ करो दुनियाँ दिखना-जनना प्रारम्भ हो जाती है,। जिसका हृदय पवित्र है, जिसका विचार पवित्र है, उसका ज्ञान स्वयमेव प्रखर होता है।

ज्ञानियो! कोटि-कोटि द्रव्य का घाटा लग रहा हो, उसका विकल्प नहीं करना, लेकिन कोई आकर कह जाये कि आप अमुख देव की आराधना करो तो इतना द्रव्य आपको मिल जायेगा, भइया! कह देना कि मैं दासी का दास होना पसंद करता हूँ, लेकिन जिनेन्द्र के चार वरणों को छोड़कर दुनियाँ में धोक देने नहीं जाना चाहता हूँ। मुझे दासी का दास होना स्वीकार है, लेकिन तीनलोक के नाथ को छोड़कर पुद्गल के टुकड़ों के पीछे सम्यक्त्व की आराधना छोड़ देना अच्छी बात नहीं है। यह पर्याय तो अनेक बार मिली है। मालूम, अपन लोग अनंत बार मिल चुके हैं। आपने सोचा था क्या कि अलवर में वाचना होगी? मैंने भी नहीं सोचा था। पर ज्ञानियो! ये नियोग बना कैसे?

पूरे विश्व में खोज आना, यह ध्रुव सत्य है कि अर्हंत का भक्त तीनलोक के नाथ की आराधना करने वाला व्यक्ति कहीं भीख माँगते नहीं मिलेगा। दुनियाँ में सब जगह चंदा माँग कर अनुष्ठान होता है, लेकिन जैनी किसी के घर में चंदा माँगने नहीं जाता है, न किसी के घर में भीख माँगने जाता है। अपने घर से ही भगवान् की भक्ति करता है।

ज्ञानियो! कदाचित् किसी पूर्व कर्म के उदय से सम्पत्ति नष्ट हो गई, तो जिनदेव की आराधना करो, आपको पुनः सम्पत्ति मिल जायेगी। कह देना, ज्ञानी! मैं विपत्ति में रहना पसंद करूँगा, पर मिथ्यात्व की सम्पत्ति को स्वीकार नहीं करता हूँ। सम्पत्तिशाली वही है, "जिनगुण सम्पत्ति होऊ मज्झं। " जिसको जिनेन्द्र के गुणों की सम्पत्ति पर लगन लगी हो, वह जड़ सम्पत्ति पर क्यों दृष्टि डालेगा? अशुभ कर्म के उदय से कदाचित् विपत्ति आ भी जाये।

बालको! एक बात अपनी डायरी पर लिख लेना। जीवन में जब संकट के दिन आयें, तो किसी पड़ोसी के घर मत जाना। संकट के दिनों में मित्र या भइया के घर भी मत जाना। विश्वास मानना, दुनियाँ भरे-भरे को ही पूछती है, खाली को कोई नहीं पूछता। भरा मटका दिखने पर यही दादा सिक्का भी दे देते हैं जब पुण्य का उदय प्रबल होता है। श्री राम, लक्ष्मण,

सीता जब पिता के वचनों का पालन करने जंगल में भ्रमण कर रहे थे, ताप्ती नदी को पार करते हुये एक श्रावक के यहाँ पहुँचे। ब्राह्मणी ने सम्मान किया, परन्तु स्वामी आ गया। जैसे ही ब्राह्मण आया, उसने राम, लक्ष्मण जैसे महापुरुष को अशुभ-से-अशुभ वचनों का प्रयोग किया। नगरवासियों ने इकट्ठा होकर कहा, भाई! देखो तो ये चाँद-सूर्य जैसे चमक रहे हैं चेहरे। इन महापुरुषों से तुम कैसे बोलते हो? एक बार सीता को भी लगा, क्योंकि नारी का हृदय है जो जल्दी गर्म और जल्दी ठण्डा। सीता बोलीं- हे स्वामी! इस विप्र का घर छोड़ कर चलो। राम धैर्य से देख रहे थे। सीते! क्या कह रही हो? स्वामी! वह जंगल बढ़िया है, जिसमें हिरणों के बीच में रहो, कोई कुछ कहने वाला तो नहीं मिलता, किसी की गाली तो नहीं सुननी पड़ती और ये ब्राह्मण कितने अपशब्द बोल रहा है? हे स्वामी! चलो इधर से। श्रीराम कहते हैं-हे जानकी! थोड़ा धैर्य रखो। पर लक्ष्मण कहाँ मानने वाले थे। उन्होंने उस ब्राह्मण को उठा दिया और चकरी जैसा घुमा दिया। पटकने वाले थे। राम कहते हैं-भइया! सुन-सुन! ब्राह्मण, गाय, यती, बालक, नारी दोषी भी क्यों न हो, तो भी क्षत्रिय इन पर प्रहार नहीं करता है। महापुरुष अबला पर बल नहीं दिखाते हैं।अबल पर बल नहीं दिखाते। यदि युद्ध भी करना हो तो सामने वाला बराबर का तो होना चाहिये । श्री राम की बात सुनकर लक्ष्मण ने उसे जमीन पर खड़ा कर दिया। पर अंतस् में सोच रहे थे कि सबके दिन एक से नहीं होते। कहाँ अवधपुरी में दशरथ के घर खेलने वाला राजकुमार बालक, आज जंगल में भटक रहा है। जिसने कभी सूर्य की किरण न देखी हो, वो जानकी राम के साथ झाड़ियों-झाड़ियों में घूम रही है।

माँ! कभी अशुभ विचार मत लाना। तुम्हारे पति तुम्हें जंगल में तो नहीं छोड़ रहे हैं। तुम्हारे ससुर जंगल तो नहीं दे रहे हैं। आज घर में जरा-सी बात होने पर घर का वातावरण ही बदल देते हो। धन्य हो राम, लक्ष्मण, सीता के लिये। जिसके राज्य का अधिकार होने पर भी पिता की प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिये जंगल स्वीकार कर लिया। आज के बेटे कहते हैं कि मेरे पिता जी ने मुझे क्या दिया? अरे बेटे! तू ध्यान दे कि तेरे पिता ने तुझे क्या दिया, तेरी माँ ने तुझे क्या दिया। ये बात, तू ध्यान रख कर बाद में करना। मैं तुझसे पूछता हूँ कि तूने पीड़ा के अलावा उन्हें क्या दिया? माँ ने तो 9 माह पीड़ा को सहन किया, वजन को ढोया। पिता ने इतना सबकुछ किया है। और-तो-और, शीलधर्म जैसी सम्पत्ति को छोड़ दिया। अब तू ही बता, तूने पिता को क्या दिया? बेटा! आज से ध्यान रखना, पिता से जीवन में कभी भी हिस्सा मत मांगना। उस बेचारे के हृदय से पूछना। और जितने बेटे माँग चुके हों, वे आज जाकर अपने पिता से क्षमा माँग कर आना। आपकी पर्याय निकले या पिता

की पर्याय जाये, इसके पहले परिणामों को सम्हाल लेना, तो बहुत अच्छा होगा। जिनवाणी का सार यही है। तत्त्व को सुनते-सुनते हृदय न बदला, तो सुनने का क्या फायदा? समझ में आ रहा है आपको? जिन्होंने माँग लिया हो, वे आज पिता के चरणों में जाकर क्षमा माँगकर आना कि हे तात! मेरे से बहुत बड़ी भूल हुयी है कि मैंने आपसे हिस्सा माँगा है। यह तो आप-जैसा पिता मिला है। ज्ञानी! यदि पुण्य होगा, तो हिस्सा माँगना नहीं पड़ेगा। जंगल में भी छोड़ दिया जायेगा, तब भी भवन बन जायेंगे।

राम कहने लगे-सीता! आप बहुत जल्दी घबरा जाते हो। असम्मान को सहन करने की सामर्थ्य और लाइये। जो अपमान को सहन करने की सामर्थ्य नहीं जुटा पाते हैं, वे असमय में ही ऊपर चले जाते हैं। सम्मान को सहन करने की सामर्थ्य है, तो अपमान को सहन करने की सामर्थ्य और लाइये। जो अपमान को सहन नहीं कर पाते हैं, सहन शक्ति न होने के कारण ही हृदयाघात होता है। अज्ञानी फूलों को देखकर फूलता है और दु:ख को देखकर कूलता है। सम्यग्दृष्टि जीव सम्पत्ति में फूलता नहीं है और विपत्ति में कूलता नहीं है। अशुभ के दिन पर-घर में मत जाना।

ज्ञानियो! कौन समझता था कि नारायण और बलभद्र जैसे जीव को भी अपमान सहन करना पड़ सकता है? एक विप्र के घर से बाहर निकलना पड़ गया। कभी मत जाना दूसरों के घर। भगवान् के द्वारे पहुँच जाना, गुरु के चरणों में बैठ जाना। कोई न मिले तो अमित्रों का मित्र जिनवाणी है। हो सकता है कि अपन अपना दु:ख किसी को सुनायें तो वह कहे कि मैं थक गया हूँ। तो दु:खी को और दु:ख होगा। पर जिनवाणी कभी नहीं कहेगी कि बेटा! रहने दो। जन्म देने वाली माँ बेटे को लिये-लिये थक जाये तो जमीन पर रख दे, पर माँ भगवती जिनवाणी कभी आपको जमीन पर नहीं रखेगी। वह यही कहेगी बेटे! तू वही है, जो सिद्ध परमेश्वर है। यह विपत्ति जो है, वह कर्माधीन है। दु:ख है, कर्माधीन है। समता स्वाधीन है। विषमतायें पराधीन हैं, समता स्वधीन है। कह देना दु:ख देने वाले से, हे ज्ञानी! तू मुझे दु:ख तो दे सकता है, पर दु:खी नहीं कर सकता।

हे ज्ञानियो! किसी ने मेरे सिर पर पत्थर फेंक कर मार दिया। वह पराधीन था। पर पत्थर के लगने पर आँख में आँसू डालना या न-डालना, यह स्वधीन है। ज्ञानी लोग जो हैं, वह विपत्ति को देखकर भी मुस्कुराना नहीं छोड़ते हैं। तो विपत्तियाँ ही विपत्ति में पड़ जायें। ज्ञानी लोग मुस्कुराते ही रहते हैं, विपत्ति भी क्यों न हो। जब रोयेगा ही नहीं, तो विपत्ति को ही रोना पड़ेगा। इसलिये तत्त्वज्ञानी जीव, वीतरागी निर्ग्रन्थ तपोधन, इन्होंने समता को मुस्कुराहट के साथ

निहारा है, तो विषमता को भी मुस्कुराहट के साथ निहारा है। धन्य हैं वे योगी, जिनके सिर पर सिगड़ी रखी गयी हो, तब भी चेहरे पर सिकुड़न भी नहीं आयी। वे गजकुमार स्वामी धन्य हों। वे धरती के देवता, नमोऽस्तु स्वामी! आपकी समता धन्य हो। तीर्थंकर पारसनाथ स्वामी की वंदना करने आप जाते हो? तो भगवान् की वंदना करने के साथ यह मत माँगना कि 'रविव्रत करूँ सो सुख संपत्ति होई।' वो क्या माँगने की आवश्यकता? मंदिर-मंदिर में कोई तीर्थंकर मिलें या न मिलें, पारसनाथ स्वामी अवश्य मिलेंगे। कारण क्या है? इसलिये विराजमान करते हैं कि प्रभु! 10 भव तक कमठ ने वैर निभाया, पर आपने समता नहीं छोड़ी। आपकी समता-सम्पत्ति से मैं बहुत प्रभावित हूँ।

तत्त्वज्ञानी जीव सबकुछ छोड़ने को तैयार है, लेकिन समता को नहीं छोड़ता। परम सत्य तो यह है। परम निश्चयनय की दृष्टि से समझो तो ज्ञानी! तूने दान दे दिया और तेरे अध्यक्ष ने लिख दिया और तू मुस्करा दिया कि मैं इतना छोड़ कर आया हूँ। ज्ञानी! तूने छोड़ा ही क्या है? वह तो परवस्तु थी। पर को दे दिया है। तेरे भीतर जो राग-द्वेष बैठा है, वो तेरे भीतर की वस्तु थी, उसे कितना छोड़ा? लोग मुस्कुराते हैं कि मैंने इतना दे दिया। क्या दिया है? ये तो तेरा था ही नहीं जो दिया है। जो तेरा है, वो छोड़ कर देख। कठिन है? करना कठिन है। ज्ञानी! कुछ कठिन नहीं। निर्णय कर लो। धन का दान तो देते ही हो, लेकिन साथ में जो लोभकषाय है, उसे पहले छोड़ना।

द्रव्य छोड़ना मात्र दान नहीं है। द्रव्य को घर में रखा है, वह घर में उपयोग हो जाता तो कौन पूछने वाला था? पर तू समझदार व्यापारी है, इसलिये सोचा कि दान दे दो तो कम-से-कम नाम तो लिखा रहेगा। तो तूने क्या किया? दान दिया, कि व्यापार किया है? देखो, अलग से मत पूछने आना, शर्त रख दी, कि जब तक नाम नहीं लिखा जायेगा, तब तक दान देते नहीं। हे मुमुक्षु! तूने किया क्या? इस पटिया के चक्कर में उस पटिया को खो दिया। जिस शिला पर पहुँचने वाले थे, लोभकषाय के त्याग में उस पटिया को खो दिया। लोभकषाय के त्याग करने के लिये दान दिया जाता है। और जब तुम किसी को दान दो, तो ऐसे देना जैसे शाम को अच्छा भोजन करके सुबह छोड़कर आ गया, उसे देखता है क्या? ओ हो हो! कितनी सुन्दर सामग्री माँ ने बनायी थी, तूने सब बर्बाद कर दी। उसको भी एक बार देख तो लिया करो जो छोड़कर आये हो। जैसे भोजन के विसर्जन के रूप में जाने के बाद तुम निहारते नहीं हो, ऐसे ही तत्त्वज्ञानी जीव जिस दान को दे देता है, उसके बारे में सोचता नहीं। मैंने दिया यानि दिया। नहीं तो क्या किया? द्रव्य छोड़ा तो मान का लोभ घेर लिया।

तब बार-बार दृष्टि जाती है कि उधर मेरा नाम लिखा है। इसी बीच में अगर गतिबंध हो जाता तो एक-इन्द्रिय बनकर पटिया में लग जाता। धर्म की व्याख्या क्या है? धर्म के नाम पर ध र्म की चर्चा तो की है, पर यथार्थ में आपको धर्म से दूर भी किया गया।

अरे ज्ञानी! भगवान की भक्ति करता, तो पुण्य बढ़ता, तो अपने आप समृद्धि होती। पर बोली लेकर जो कलश को घर ले आया है, उसे समय-समय पर देखते रहने से कलश तो नहीं भरता, कलश के चक्कर में भगवान् को और छोड़ बैठा। आज खूब लुटाई चल रही है। लोभ देकर धर्म कराया जा रहा है। क्यों?

सोच को शौच कर लें तो जगत में आनंद-ही-आनंद है। सम्पूर्ण द्वादशांग का सार है यह। ऐसा विचार करो तो जगत् में विसंवाद ही समाप्त हो जाये। सोच यानि विचार, शौच यानि पवित्रता, धर्म, निर्लोभता। विचारों में पवित्रता आ जाये तो अब ज्यादा कुछ करने की जरूरत नहीं। जितना भी अनर्थ हुआ है, वह सब लोभ ने किया है। मोह की विडम्बना तो आप सब देख ही रहे हैं। कोई किसी का तो होता नहीं है, तब भी अपना मान बैठा है। ध्रुव सत्य है कि आँख बंद हो गयी तो राख ही हो जाओगे, राख कुछ नहीं पाओगे, राग ही कर पाओगे। दुनियाँ में एकमात्र अर्हंत भगवान् ही ऐसे होते हैं, जिनका निर्वाण होने के बाद राख नहीं होती है। कपूर की भाँति उनका शरीर उड़ जाता है। पर जगत् में शेष जीवों की तो राख होती है। जो जलेंगे, उनकी राख होगी। जो मिट्टी में गाड़ेंगे, वह मिट्टी में मिल जायेंगे, लेकिन राख को नहीं पाओगे। इसलिये छोड़ो उस मोह को। सम्यक्त्व, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र तीन-तीन हेतु दे दिये हैं आचार्य महाराज ने। मोह, लोभ और अहं इनको छोड़ देगा, वह जीव नियम से मोक्षभागी होगा, इसमें कोई संशय नहीं।

काम क्रोधस्तथा मोहस्त्रयोऽप्येते महाद्विषः।
एते न निर्जिता यावत् तावत्सौख्यं कुतो नृणाम्।। 26।।

भइया! क्या कह रहे हैं आचार्य महाराज? लगता है कि ऐसे ग्रंथों को जब तक खोला नहीं जायेगा, तब तक कितने अन्धकार में रहेंगे। ज्ञानियो! कोटि-कोटि द्रव्य का खर्च करके बेंड तो बजबा सकते हो, मंदिर खड़ा कर सकते हो, लेकिन करोड़ों द्रव्य का व्यय करके शान्ति खरीद कर नहीं ला सकते हो। समझो, मैं क्या कह रहा हूँ। जितने शांत यहाँ बैठे हो, यही परिणति यदि 24 घंटे रहने लग जाये, तो शरीर के रोग क्या हैं, आत्मा के ही रोग समाप्त हो जायें। जितने लोक में रोगी हैं, अधिकांश मानसिक रोगी हैं। जब इच्छा की पूर्ति नहीं होती,

पुण्य से अधिक सोच लेते हैं लेकिन मिलता है नहीं, फिर हीन भावना आ जाती है। पागलों की भीड़ लगी रहती है।

जितनी सामर्थ्य पुण्य की है नहीं, उससे ज्यादा सोच लेते हैं। अरे ज्ञानियो! ठण्डी का मौसम है, चादर छोटी है, पैर लम्बे हैं, तो क्या करना चाहिये? अपने पैर सिकोड़ लो, ठण्डी बच जायेगी। ऐसे ही पुण्य की चादर छोटी है, इच्छाओं के पैर लम्बे हैं, तो दु:खी होना ही पड़ेगा। इच्छाओं को सिकोड़ लो, तो सुख में जियोगे, किसी घर में माँगने नहीं जाना पड़ेगा, किसी से कुछ नहीं लेना पड़ेगा और किसी के द्वार पर अपनी गरीबी का रोना भी नहीं रोना पड़ेगा। इस समय सारे विश्व में सबसे बड़ी कोई पीड़ा है, तो वह ऋण लेना है। 'मूलाचार' जी में लिखा है। यदि मुझे मालूम चल जाये कि किसी से ऋण लेकर चौका लगाया है, तो मैं तेरे चौके में नहीं जाऊँगा। क्यों महाराज? मन शुद्धि, वचन शुद्धि, काय शुद्धि, आहार-जल शुद्ध है। पर शुद्धि काहे की बची, क्योंकि जब से तूने पैसा ऋण पर लिया है, अब देना पड़ेगा, तो मनशुद्धि तो अब समाप्त हो चुकी है। इसलिये उसके यहाँ आहार नहीं लेने का।

हे श्रावको! जितनी तुम्हारी सामर्थ्य हो, जितना तुम अपने घर में सहज भोजन करते हो, वह शुद्ध भोजन तुम साधु को देना। सीमा से अधिक खर्च करके तुम चौका कभी नहीं लगाना। सीमा से अधिक लगाओगे तो परिणाम अशुद्ध होंगे। परिणामों की अशुद्धि में मात्र भोजन बचेगा, शुद्धि समाप्त हो जायेगी। बहुत कठिन मार्ग है? बहुत सरल मार्ग है।

आचार्य महाराज क्या कह रहे हैं कि कोई किसी का शत्रु नहीं है। इन आँखों से मत देखना, भीतर भी देखना भैया। राम रावण के शत्रु थे। लक्ष्मण रावण के शत्रु थे। जो मैं राम, रावण, लक्ष्मण की बात करूँ, उसे आप अपने में खोजना। राम तो जंगल में अपना समय पूर्ण कर रहे थे। राम रावण के शत्रु कब हो गये? लक्ष्मण रावण के शत्रु कब हो गये? कोई शत्रु होता नहीं है, आज समझ में आता है।

हे लंकेश! काम न होता, तो राम शत्रु क्यों होते? हे रावण! तूने सीता के रूप को देखा। यदि तू रूप को न देखता, उसके स्वरूप को देख लेता, तो तेरी यह दशा न होती। किसे देखा? अरे ज्ञानियो! तुम भी अपने बेटे की माँ का रूप देखने न जाते, तो इधर बैठे मिलते, वहाँ न बैठे मिलते।

ज्ञानियो! माँ मना रही थी कि बेटा! भोजन कर ले। पर आज तू खुद कमाकर भी चौके में आदर से भोजन नहीं कर पाता, धिक्कार हो तुम्हें। धन्य हो इन योगियों को, जो कभी

किसी के चौके में पता करने नहीं जाते हैं। और जब निकलते हैं तो हे स्वामी! नमोऽस्तु, नमोऽस्तु, नमोऽस्तु। कैसा लग रहा है आपको?

हे लंकेश! राम नहीं, काम तुम्हारा शत्रु था। कोई किसी की सेवा भी करना पसंद नहीं करता। मनुष्य-जैसा अहंकारी प्राणी किसी की सेवा करे, यह संभव नहीं है। सत्य बताना, ज्ञानी! तू पैसा लाकर माँ को देता है, कि बेटे की माँ को देता है? इतनी मेहनत से कमा कर देता है। किसी को जरा भी मदद नहीं होता है। भैया! यदि तू अपने मचले मन को मना लेता, तो किसी को न मनाना पड़ता। मचले मन को नहीं मना पाया, इसलिये तू बेटे की माँ को भी मनाता है और बेटे को भी मनाता है। धन्य हैं वे जीव, जिनने अपने मन को मना लिया है, दुनियाँ उन्हें मना-मना कर खिलाती है-हे महाराज! थोड़ा और ले लो।

गहरी बात क्या कर रहे हैं आचार्य महाराज? नारायण श्रीकृष्ण ने शिशुपाल का घात किया, किसके पीछे? हे नारद! तुम्हारा तो काम इतना ही है। चित्र ही दिखाया था। चित्र देखते ही चित्त भिद गया। जो चित्र देखते हैं, उनके चित्त भ्रष्ट होते हैं और चित्त भ्रष्ट होते हैं तो चारित्र भ्रष्ट होते हैं।

काषायिक भाव की पुष्टि के न होने पर दूसरे से कषाय करता है। पर शत्रु होता ही नहीं है। इस सोच को ठीक कीजिये कि इसने ऐसा किया। काम-वासना, क्रोध-कषाय, मोह यह तीन मेरी आत्मा के प्रबल शत्रु हैं। इसलिये आज से पर को शत्रु कहना बंद करो। गाली देने का त्याग करो। गाली देना बंद हो गया तो भाषा समिति का पालन हो गया, वचनगुप्ति समझ में आ गयी, सत्य धर्म आ गया तो आप मुनि/आर्यिका बनने के पात्र हो गये। उसे जगत् में अन्य कोई दु:खी करने वाला नहीं है। मोह, काम, क्रोध तीन शत्रु हैं। जिसने इनको जीत लिया, वही सुखी है। और जो इससे पराजित हो गया, उसको संसार में सुख की प्राप्ति नहीं है। अभ्यास करना इन पर विजय का।

'**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।**' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

ज्ञान के समान सुख नहीं

नास्ति कामसमो व्याधिर्नास्ति मोहसमो रिपुः।
नास्ति क्रोधसमो वह्नि-र्नास्ति ज्ञानसमं सुखं॥27॥

कामवासना के समान कोई रोग नहीं है, मोह के समान कोई शत्रु नहीं है, क्रोध के समान कोई अग्नि नहीं है और ज्ञान के बराबर कोई सुख नहीं है।

॥ देशना ॥

अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है।

यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी तत्त्व की गणेषणा कर रहे हैं। वस्तु व्यवस्थित है। इस व्यवस्था को कोई अव्यवस्थित करने की सामर्थ्य नहीं रखता है। द्रव्य का द्रव्यत्व स्वभाव है, द्रव्य का परिणमन स्वभाव है। जो परिणमनशील है, द्रवणशील है, उसका नाम ध्रौव्य है।

यथास्वं पर्यायैर्द्रूयन्ते द्रवन्ति वा तानि इति द्रव्याणि। (सर्वार्थसिद्धि)

जिसमें होता है, जो है, उसका नाम ध्रौव्य है। आत्मा को, परमात्मा को जो लोग स्पर्श कर रहे हैं, ये पर्याय की भूमिका है। सबसे पहले परमात्मा व आत्मा की व्याख्या की आवश्यकता नहीं है, सबसे पहले आत्मा को द्रव्य स्वीकारने की आवश्यकता है। जितने रसायनशास्त्री बैठे हों, वे विवेक के साथ सुनना। जैन तत्त्व को लोगों ने सम्प्रदाय समझ लिया है, जबकि जैन-दर्शन सम्प्रदाय नहीं है, ये वस्तुव्यवस्था की व्याख्या करने वाला दर्शन है।

वस्तुव्यवस्था की व्याख्या जिसमें होती है, उसका नाम जैनदर्शन है। सारे विश्व का दर्शन कहने की यदि सामर्थ्य किसी में है, उसका नाम जिनेन्द्रदेव है। वह जिन है। "जिनः देवयस्य चासौ जैनाः" जिन हैं देव जिसके, उसका नाम है जैन।

तत्त्व, पदार्थ, द्रव्य तीनों की संज्ञा एक ही है, लेकिन स्वभाव एक नहीं है। तीनों की संज्ञा एक है, तीनों एक द्रव्य की संज्ञा है, एक पदार्थ की संज्ञा है, पर एकत्वभूत नहीं है। दही, मक्खन, घृत तीनों गोरस हैं, पर तीनों एक नहीं, फिर भी तीनों एक हैं। तीनों का अधिकरण एक है, तीनों का आधार एक है, इसलिये तीनों एक हैं। पिता, पुत्र, भाई फिर भी तीनों एक हैं, तीनों एक नहीं हैं। एक पुरुष में पुरुषत्व भी है, पुत्रत्व भी है, भ्रातृत्व भी है, पतित्व भी है, मातृत्व भाव भी है। सम्बन्ध की अपेक्षा से भिन्न-भिन्न हैं, लेकिन वस्तु की अपेक्षा से एक है।

जिस तत्त्व की प्ररूपणा होना चाहिये थी, उस तत्त्व की प्ररूपणा लोगों ने नहीं की है और वैज्ञानिकों ने धार्मिक ग्रंथों से तत्त्व को निकाल लिया और अपना नाम दे दिया। अनेकानेक लोगों ने अपने-अपने नाम से सिद्धांत बना लिये, परन्तु विश्वास रखना, ये सिद्धांत त्रैकालिक हैं। जैसे कोई कम्पनी से ट्रैक्टर लेकर आता है और अपने नाम से यहाँ बिक्री करता है, ऐसे ही वैज्ञानिकों ने अर्हन्त की वाणी की कम्पनी से सिद्धांत निकाले हैं और अपने नाम का मार्का लगाकर बिक्री की है बाजार में।

गोरस दृष्टि देखेंगे, तो तीनों एक है, लेकिन संज्ञा की दृष्टि से देखेंगे तो भिन्न हैं। संज्ञा की दृष्टि से ही भिन्न नहीं है, स्वाद की दृष्टि से भी भिन्न हैं। संज्ञा की दृष्टि से दही में, घृत में, दुग्ध में भेद है क्या? संज्ञा मात्र में भेद नहीं है, इनके स्वाद में भी भेद है। जब तू पति होता है, उस समय तेरा स्वाद भिन्न होता है और जब तू पुत्र होता है, उस समय तेरा स्वाद भिन्न होता है और जिस समय तू पिता होता है, उस समय तेरा स्वाद भिन्न होता है। लेकिन फिर भी वस्तु एक है। इसलिये एक में अनेक, अनेक में एक। यही है स्याद्वाद सिद्धांत। स्यात् एक, स्यात् अनेक। सम्बन्ध अपेक्षा अनेक। गुणों की अपेक्षा अनेक। स्वरूप अपेक्षा एक, धर्म अपेक्षा अनेक। एक द्रव्य अनेकधर्मात्मक है।

जितने भी डॉक्टर, इंजीनियर, टीचर, प्रोफेसर, रसायनशास्त्री हों, ध्यान से सुनना। चेतन द्रव्य चेतनभूत है, अचेतन द्रव्य अचेतनभूत है। चेतन को समझाने के लिये अचेतन का दृष्टांत तो हो सकता है, पर चेतन को अचेतन किया नहीं जा सकता और अचेतन को चेतन किया नहीं जा सकता। द्रव्यशील जो हैं, वह छहों द्रव्य हैं। परन्तु अपने-अपने स्वभाव में द्रव्यशील हैं। जीव गैसभूत नहीं होगा और गैस जीवभूत नहीं होगी। जो गैस है, वह पौद्गलिक द्रव्य है और आत्मा जो है, वह चेतन द्रव्य है। चेतन निर्मित नहीं होता है। जो भौतिकशास्त्र में, रसायनशास्त्र में सूत्र आते हैं, वो ज्ञानियो! समझने के लिये सूत्र हैं। वस्तु के लिये कोई सूत्र नहीं है। एक अद्भुत बात समझो आज। ग्रन्थों में जितने कथन हैं, वे सब प्रज्ञा के लिये हैं, समझने के लिये हैं। वस्तु के लिये कोई सिद्धांत नहीं लगते हैं। ज्ञानी! जो भी सूत्र हैं, वे अपनी बुद्धि में बिठालने के लिये हैं। वस्तु के लिये कोई सूत्र नहीं है।

एक जीव कह रहा है कि अग्नि में पाचकत्व है, दूसरा जीव कह रहा है कि अग्नि में दाहकत्व है और तीसरा कह रहा है कि अग्नि में प्रकाशत्व है। त्रिधर्मत्व अग्नि में है, ज्ञानी! लेकिन अग्नि अपने आप में तटस्थ है। आपको मेरा उपयोग जैसे करना हो वैसी संज्ञायें दे दो, लेकिन मैं तो एकत्वभूत मात्र हूँ, ऊष्णता धर्म है मेरा। जो मुझे अध्ययन के रूप में निहार रहा है, वह मेरा प्रकाश करके ग्रन्थ पढ़ रहा है, तो मेरा प्रकाशक कहता है। और दूसरा मेरे

द्वारा रोटी पका रहा है, सो पाचक कहता है। और तीसरा मेरे द्वारा किसी का घर जलाता है, सो दाहक कहता है।

हे ज्ञानियो! ऐसे ही परमात्मा है। एक जीव परमात्मा को परमात्मा के रूप में देखता है, तो दूसरा जीव परमात्मा को पत्थर के रूप में देखता है (प्रतिमा को), तीसरा जीव पाषाण की प्रतिमा में कला को देख रहा है।

खजुराहो में पहुँचा पुरुष। एक भद्र पुरुष था। वह कहता है कि शांतिनाथ स्वामी जयवन्त हों। उसको शांतिनाथ तीर्थंकर दिखते हैं। शिल्पकार पहुँचता है तो उसको शिल्पकला दिखती है। विदेशी पुरुष आते हैं। जिसे आप 1 घण्टे नहीं 5 मिनट में देखकर चले जाते हो, वे घण्टों-घण्टों एक-एक प्रतिमा को देखते हैं। उसको पुरातत्त्व की सामग्री दिखती है। जिसको वीतरागता देखना हो, उसको वीतरागता दिखती है। जो सुन्दरता देखने जाता है, उसको उन मंदिरों में सुन्दरता ही दिखती है। लेकिन मंदिर न सुन्दर है, न असुन्दर है। वो तो पत्थर "जो है, सो है"।

भैया! जिस दिन सत्य समझ में आ जायेगा, तब घर में ही घण्टों-घण्टों हँसी आयेगी। इसलिये आयेगी कि पत्नी चिल्लायेगी मेरा पति, सो आपका पक्ष ले रही है। माँ चिल्लायेगी मेरा बेटा, सो आपका पक्ष ले रही है। पुत्र चिल्लायेगा मेरा पिता, सो आपका पक्ष ले रहा है। पर ज्ञानी! तू शान्त बैठा हुआ है। मैं न ये हूँ, न वो हूँ, न ओ हूँ। मैं जो हूँ, सो हूँ। मैं तो त्रैकालिक द्रव्य हूँ। ये लोग मुझे सम्बन्धों से नाप रहे हैं। मैं सम्बन्ध नहीं हूँ, मैं तो स्वभाव हूँ।

चर्म के नेत्रों ने सम्बन्धों को निहारा है, लेकिन वस्तु सम्बन्धभूत नहीं है, वस्तु तो स्वभावभूत है। जो स्वभावभूत है, वह तत्त्व है और जो सम्बन्धभूत है, वह पदार्थ है। जो स्वभावभूत है, वह तत्व है और जो परिणमनशील है, वह द्रव्य है। और जो दोनों में है, उसका नाम पदार्थ है। पदार्थ दोनों में है। क्यों? क्योंकि वह अर्थभूत है। अर्थभूत नहीं होगा, तो क्रिया-कारक नहीं होगा। क्रिया-कारक नहीं होगा, तो वस्तुव्यवस्था ही नहीं बनेगी।

जो वैज्ञानिकों ने कहा कि ऊर्जा का नाश नहीं होता। किसी ने कहा कि वस्तु परिणमनशील है। जबकि एक बात का ध्यान रखना, जैनदर्शन में 'पंचास्तिकाय', वैदिक दर्शन में 'गीता', इन ग्रन्थों के रहस्यों को धर्म के नाम से कहते रहोगे तो नहीं समझ पाओगे। इन दोनों ग्रन्थों को जब आप तटस्थ होकर एक रसायनशास्त्री होकर देखोगे, तब इनके रहस्यों को आप समझ लोगे। 'गीता' की कारिकायें, 'पंचास्तिकाय' की कारिकायें, वैदान्तों, उपनिषदों की कारिकायें, 'समयसार' की कारिकायें, बिल्कुल एक-दूसरे की पद्यानुवाद जैसी हैं।

'गीता' के श्लोक, 'पंचास्तिकाय' की गाथायें, 'समयसार' की गाथायें, उपनिषदों की कारिकायें ज्यों-की-त्यों रखी हुई है। कोई खोज करे तो यों कहेगा कि इन्होंने इसका अनुकरण किया कि इन्होने इसका अनुकरण किया है? इनका सामन्जस्य हुआ कैसे? आपको मालूम होना चाहिये कि जब मूल वाणी ''ऋषभदेव'' की लिखी थी, तब ''मारीचि'' कौन था? वह समवसरण में बैठा हुआ जीव था और तत्त्व की गवेषणा तो उसने वहीं से की है। भारतीय दर्शनों में तात्त्विक चर्चा करने वाले तीन दर्शन हैं। शेष तो क्रिया में उलझे हुये लोग हैं। जैन, सांख्य, वैशेषिक। द्रव्य, गुण, पर्याय की व्याख्या इन तीन दर्शनों में मिलेगी आपको और द्रव्यणशीलता, परिणमनशीलता, वस्तुस्वभाव की व्याख्या ''वैशेषिक'' इस पर अपनी चर्चा रखता है। सांख्य अपनी बात को और जैन अपनी बात को रखते हैं। शेष जो अन्य दर्शन हैं, बहुत सारी ऊपरी क्रियाओं पर हैं।

द्रव्य, गुण, पर्याय की व्याख्या है, गुणपर्ययवद् द्रव्यम्, 'सद्द्रव्यलक्षणम्' जहाँ 'सत्' शब्द का प्रयोग होता है, वहाँ भाव, अभाव, अभाव-भाव, भावाभाव ये चार शब्दों का प्रयोग है। इन चार शब्दों का प्रयोग "पंचास्तिकाय" में आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी करते हैं, वहीं गीता में, सत्-असत्, असत्-सत्, सतासत् क्या है? साधक को अपनी चर्या की क्रिया को पूर्ण करके, मात्र ज्ञान में लवलीन रहने की आवश्यकता है, तभी भारतीय संस्कृति को समझ पायेंगे। हमारी भूमि पर गूढ़ रहस्य भरे हुये हैं, ये विश्वास रखना। विदेश में प्रचारकों की संख्या हुई है, विचारकों की संख्या हुई है, परन्तु अंतरंग में डूबने वाले आचार्य भारत की ही भूमि पर हुये हैं।

वस्तुस्वरूप को समझे बिना यदि आपने कोई कम्पनी प्रारम्भ की, तो आपको मेहतन अधिक लगती है, और कोई दूसरे ने 4 कम्पनियाँ देख ली हैं और उन 4 को देखकर आप 50 साल में जितना ऊपर उठ पाओगे, वो 5 साल में उतना ऊपर उठ जाता है। क्यों? क्योंकि उसे मेटेरियल बना हुआ मिल गया। जितने वैज्ञानिक हैं, ये ऊपर उठे हुये क्यों दिखाई देते हैं? ऋषी -मुनियों ने तो अन्दर बैठ-बैठ कर खोजा है, और इनको मुनियों का खोजा हुआ मिल गया है जो अपने बाजार में बिक्री कर रहे हैं।

'नैवाऽसतो जन्म सतो न नाशो।' ज्ञानियो! ये सूत्र यदि समझ में आ गया, तो कभी भी किसी की आँख से आँसू नहीं गिरेगा और न ही कभी किसी चेहरे पर अट्टहास, खिल-खिलाहट रावण-जैसी होगी। असत्य का जन्म नहीं होता और सत्य का विनाश नहीं होता। जो कुछ होता है, वह वस्तु का परिणमन होता है।

पिता जी की मृत्यु हो गई, रोना किस बात पर? सत्य का विनाश नहीं होता है। जीव की पर्याय का परिणमन हुआ है। जो पिता आज मेरे घर में था, वो दूसरे घर में पहुँच चुका है। जाने वाला नहीं रोता है, जहाँ से जाता है, वो रोता है।

द्रौणगिरि से विहार हुआ, टीकमगढ़ में वाचना चल रही है। बड़ा मलहरा, छतरपुर वाले चेहरा बनाये हुये थे कि महाराज जी मेरे यहाँ क्यों नहीं आये? वे बिलख रहे थे, टीकमगढ़ वाले मुस्करा रहे थे। पर जो आया है, गया है, वो न रो रहा था, न हँस रहा था। वो निहार रहा था कि मैं तो 'जो हूँ सो हूँ।' न यहाँ आया, न वहाँ गया। मेरा तो परिणमन चल रहा है। स्थानान्तरण है। रागी रोते हैं, रागी हँसते हैं। जिसने वस्तुस्वरूप को जान लिया है, वह न रोता है न हँसता है।

भैया! लोटे का पानी तूने पी लिया और जाकर कहता है कि पिताजी! मुझे बड़ा मीठा, स्वादिष्ट, शीतल पानी पीने को मिला। तो मुस्करा गया। पानी कहता है कि ये पागलों की भीड़ है। मुझे कौन पी सकता है? लोटाकाश में था, पेटाकाश में पहुँच गया। पेटाकाश से फिर लघुशंका में बाहर आ गया, फिर नाली में पहुँच गया। नाली से नदी में पहुंच गया, नदी से सागर में पहुँच गया। सागर से वाष्पित होकर फिर बरस गया, पुनः तुम्हारे गिलास में आ गया। तब भी तू कह रहा है कि मैंने पानी पिया। ज्ञानी तूने क्या पिया? उसे ही रोज पी रहे हो, जिसे अनंतों ने पिया है। नया क्या है।

जो परिणमन चल रहा था, वह पानी 'द्रव्य' था। जो शीतलता थी, वह पानी का स्वभाव था। वह पानी तत्त्वभूत है। पानी द्रव्य है, पदार्थ है।

जो स्वभाव का अध्ययन करता है, भाव का कथन करता है, उसका नाम तत्त्व होता है। वस्तु की जो स्वाभाविक दशा है, वह सत्व है। वस्तु की जो वैभाविक दशा है, वो पदार्थ है। परन्तु जो वैभाविक दशा है, वह सर्वथा विभावभूत ही नहीं है, स्वभावभूत भी है। जो पदार्थ है, वह द्रवणशील है, परिणमनशील है।

"तस्य भावस्तत्त्वम्"। (सर्वार्थसिद्धि)। आत्मा पदार्थ है। ये मनुष्य है, ये तिर्यंच है, ये देव है, ये नारकी है, ये सिद्ध है, ये संसारी है, ये परिणमन चल रहा है, ये द्रव्य है। जिसका परिणमन हो रहा है, वह पदार्थ है। इतना ही अंतर था। जहाँ द्रव्य को अपरिणामी कहा, द्रव्य अपरिणामी नहीं होता। इसका तात्पर्य है कि अन्य चतुष्य में परिणमन करता है। द्रव्य की परिभाषा ही यूँ है।

द्रव्यस्यभावो द्रव्यत्वम् निजनिज-प्रदेश समूहै—
रखण्डवृत्या स्वभाव विभावपर्यायान् द्रवति
द्रोष्यति अद्रुवदिति द्रव्यम् ॥ 96 आ. प.॥

अर्थात्-जो अपने-अपने प्रदेशसमूह के द्वारा अखण्ड से अपने स्वभाव-विभाव पर्यायों को प्राप्त होता है, होवेगा, हो चुका है, वह द्रव्य है। उस द्रव्य का जो भाव है, वह द्रव्यत्व है। जो प्राप्त हुआ है, जो प्राप्त हो रहा है, जो प्राप्त होगा, उसका नाम द्रव्य है। परिणमन हुआ है, परिणमित हो रहा है, परिणमित होगा, इसका नाम द्रव्य है। ये परिणमन किस में चल रहा है? पदार्थ में। इसलिये 9 पदार्थ हैं, परन्तु ज्ञानियो! तत्त्व 7 ही हैं। ऐसा क्यों? जो आस्रव तत्त्व है, उसमें ही पुण्य-पापरूप पदार्थ का परिणमन चल रहा है।

पदार्थ है, परिणमनशील है, परिणामी है, लेकिन जैसा स्वतंत्र स्वभाव सिद्धशिला पर विराजे सिद्ध भगवान् का है, वो प्रकटभूत स्वभाव है और निगोदिया में अप्रकटभूत स्वभाव है। वह जो स्वभावशक्ति है, वह तत्त्व है।

'तस्य भावस्तत्त्वम्।' ये मुनिवेश है, ये मुनि नहीं है। ये बैठा इसमें जीव है, वह मुनि नहीं है, वह मुनिद्रव्य है। तो फिर मुनि कौन है? ज्ञानियो! जो मुनित्व परिणाम है, उसका नाम मुनि है। वह तत्त्वभूत है। हे मानव। तेरी मानवता कहाँ गई? हे मनुष्य! तेरा मनुष्यत्व कहाँ है? जो मनुष्यत्व है, वह तत्त्व है। 'तस्य भावस्तत्त्वम्।' जो स्वभाव है वस्तु का, उसका नाम तत्त्व है।

जो सत्य है, यही सत्य है। जितनी परिभाषायें शास्त्रों में हैं, रसायनशास्त्र, भौतिकशास्त्र आदि में हैं, मात्र अपनी प्रज्ञा को समझाने के लिये हैं। पर वस्तु को बनाने के लिये कोई परिभाषा होती नहीं है। वस्तु तो होती है। होती नहीं है।

अहो ज्ञानी! जीव कब होगा? वह तो होता ही है, होता नहीं है। एक 'होता' यानि उत्पन्न होना, एक 'होता' त्रैकालिक होना। इसलिये ज्ञानियो! पारिणामिक भाव सहजस्वरूप है। छहों द्रव्य परिणमन स्वभावी हैं। ये सब काषायिक भाव हैं। हर्ष-विषाद अज्ञानभाव है। सत्स्वरूप पर दृष्टि करो। जिसने सत्स्वरूप को समझ लिया है, वही श्रमण है, वही साधक है, वही सत्य पुरुष है। वेश सत्पुरुष नहीं होता है। जो सत्य समझ करके तटस्थ हो गया है, वही सत्पुरुष है। गम्भीरता लाई नहीं जाती है, सत्य में गम्भीरता होती ही है। चंचलता जब तक रहती है, तब तक वस्तु का ज्ञान नहीं होता है। भैया! चंचलता सत्य के ज्ञान के अभाव में होती है। ज्ञानी! एक पुरुष के हाथ में एक सिक्का था चाँदी का। वह उचका कर देख रहा था। अचानक उसके हाथ से सिक्का गिर गया। जब सिक्का गिरा तो उस समय उसने ये नहीं देखा कि पूर्व दिशा में गिरा है, कि पश्चिम में, उत्तर दिशा में गिरा है कि दक्षिण में गिरा है। अब बताइये, वह सिक्के को किस दिशा में देखेगा? उसने सिक्के को देखा नहीं, लेकिन

जिस तरफ से आवाज आई, ठीक आपने अपना दिमाग तो लगाया, लेकिन वह लुढ़क कर तो जा सकता है दूसरी दिशा में। अब बताओ, कहाँ देखेगा?

ज्ञानी! तत्त्व का निर्णय ऐसे ही होता है। वो सिक्का गिरा जमीन पर, भैया! वह कहाँ-कहाँ देखेगा? सिक्का गुमा है क्या? सिक्का, सिक्का में गुमा हुआ है क्या? जैसा सिक्का तेरे हाथ में था, वैसा ही सिक्का जमीन पर है कि नहीं? है। सिक्के में कुछ अन्तर आया, सिक्का बदला क्या? चाँदी से सोने का हो गया क्या? गिलट का हो गया क्या? काँच का हो गया क्या? सिक्का तो सिक्का ही है। पर हे ज्ञानी! जब तुझे सिक्का नहीं दिखा, तो तू कितनी दिशाओं में देख रहा है?

जब ये चारों दिशाओं में देखेगा, तो स्थिर होगा कि चंचल होगा? हे ज्ञानी! तू चारों दिशाओं में कब तक निहारते रहेगा? जब तक सिक्के का बोध नहीं होगा। और जैसे ही सिक्का दिख जायेगा, तो तेरा चारों दिशाओं में देखना बंद हो जायेगा, मात्र सिक्का ही देखेगा। ऐसे ही अज्ञानी, चंचली वे ही होते हैं, जिनको स्वयं का सिक्का समझ में नहीं आता है। और जिसको सत्य समझ में आ जाता है, उनको गम्भीरता स्वयमेव ही प्रकट हो जाती है।

ये है वस्तुस्वरूप। चंचली वे ही होते हैं, वचन उनके ही विकृत होते हैं, मन उनके ही विकृत होते हैं, जिनको सत्य का बोध नहीं होता है। जिनको सत्य का बोध हो जाता है, उनकी वाणी का, उनके तन का, मन का शोध हो जाता है। सब तत्त्व की बातें करते हैं और बाद में कहते हैं कि महाराज! कहो क्या करें? गन्ना मीठा है, गन्ने में मिठास है। आधार-आधेय सम्बन्ध अभिन्न है। गन्ना मीठा पदार्थ है, गन्ने में मिठास तत्त्व है। इसलिये स्यात् भिन्न, स्यात् अभिन्न, स्यात् भिन्नाभिन्न। ज्ञानी! पदार्थ भिन्न, पदार्थ अभिन्न।

ज्ञानाद्भिन्नो न चाभिन्नो, भिन्नाभिन्नः कथंचन।
ज्ञानं पूर्वापरीभूतं सोऽयमात्मेति कीर्तितः ॥4॥ स्व. सं.॥

ये आत्मा स्यात् ज्ञान से भिन्न, स्यात् अभिन्न, स्यात् भिन्नाभिन्न। कथंचित्। ज्ञानी! अग्नि भिन्न, ऊष्णता भिन्न कब होना चाहिये? और भिन्न नहीं है, तो आप भिन्न करके दिखाइये। हे ज्ञानी! अग्नि धर्मी है, ऊष्णता धर्म है। पर धर्म-धर्मी में भिन्नत्व होता नहीं है। संज्ञा की अपेक्षा से, प्रयोजन की अपेक्षा से, लक्षण की अपेक्षा से भिन्नत्व है और अधिकरण की अपेक्षा से अभिन्नत्व है।

'तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्।' (½ त. सू.) क्यों? पदार्थ श्रद्धान भी लिख सकते थे? तत्त्वों पर श्रद्धान है, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। पदार्थ की स्वभावभूत परिणति पर जो श्रद्धान

है, उसका नाम सम्यक्त्व है। यदि स्वभावभूत दशा में नहीं जा रहे हो, तो विभाव में डूबते रहोगे। ज्ञानी! विभाव तो विभाव है। ये भी आप सुन रहे हो। विश्वास रखना, ज्ञानियो! अनन्त पर्याय तुम्हारी समाप्त हो जायेंगी, लेकिन प्रवचन का विषय समाप्त होने वाला नहीं है।

भैया! जो कथन यहाँ चल रहा है, लोग उसको इतना दुरूह मानते हैं। ये छोटे-छोटे बच्चे सुन रहे हैं, आप कल्पना करो। सिद्धांतों के व्याख्यान विश्व की भूमि पर आना चाहिये। सिद्धान्त की व्याख्यायें जब विश्व की भूमि पर आ जायेंगी, तब लोग भूल जायेंगे ऐक्टर और वैज्ञानिकों को। न ऐक्टर को देव बनायेंगे, न ही वैज्ञानिकों को देव बनायेंगे। देव की वाणी को ही भगवान् की वाणी मानोगे।

देव यानि भगवान् देवाधिदेव। ज्ञानियो! प्रयोक्ता को कर्ता मत बनाइये। माँ! टीकमगढ़ में रोटियाँ बनती हैं, कि रोटियाँ बनाई जाती हैं? आप कर्ता हो, कि प्रयोक्ता हो? आद्यभूत कर्ता हो, कि अनाद्यभूत कर्ता हो? यदि तू आद्यभूत कर्ता हो, तो माँ! तू तो रोटी बन चुकी है, अब कोई खा लेगा, फिर कल कौन बनायेगा?

माँ! तू रोटी की कर्ता है, अनाद्यभूत तो कह सकते हैं, आद्यभूत कर्ता कोई माँ होती नहीं। हे माँ! तू रोटी की कर्ता नहीं है, तू प्रयोक्ता है। तू मात्र अपने ये हाथ-पैर, बेलन चौकी के हिलाने की कर्ता हो। उसके भी कर्ता नहीं हैं, आप तो उपयोग के कर्ता हो, रोटी तो योग ने बनाई है। आप उपयोग के कर्ता हो, कि रोटी बनें इस भाव के कर्ता हो? तुम रोटी बनाने के भी कर्ता नहीं हो। तुम तो बेलन-चौकी चलाने के भावों के कर्ता हो। बेलन जो चला है, वह काययोग से चला है और जो रोटी बनी है, वह बेलन को चौकी पर रखे होने से बनी है। पर रोटी आप नहीं बने हो, रोटी आटा बना हुआ है। आप तो उपयोक्ता हो, प्रयोक्ता है। कर्ता नहीं हो। कर्ता कोई है रोटी का, उसका नाम आटा है।

बताइये भैया! आप लोग कौन-से धर्म में घूम रहे हो? सबकी बातें एक ही चल रहीं हैं कि मैंने मंदिर बनवा दिया, मैंने मठ बनवा दिया। अरे ज्ञानी! तू मंदिर/मठ बन गया होता, तो तू मुझे दिखाई ही नहीं देता। उस मिट्टी को जलना पड़ गया, उसको तो कोई श्रेय नहीं दे रहा है और आप कह रहे हो कि मैंने मंदिर खड़ा करवा दिया है, बाजार के मंदिर में शिखर बन गया।

हे ज्ञानी! तू मात्र राग का ही कर्ता है, पदार्थ का कर्ता नहीं है। पुण्यद्रव्य के नियोग से श्री प्राप्त हुई है। उस श्री के नियोग से सारे जगत के द्रव्य का सहयोग मिला है। लेकिन ये सहयोग तेरा स्वभाव नहीं है। तू मात्र राग का कर्ता है, तू द्वेष का कर्ता है विभावभूत, पर स्वभाव से तो एकमात्र चेतन गुणों का ही कर्ता, चेतन गुणों का ही भोक्ता है।

'जो है, सो है।'

सब आनंद में सुन रहे हैं। पर जो मैं कह रहा हूँ, वह विषय कहीं तुम्हें आँखों से लोक में दिखाई नहीं देगा। और फिर यहाँ से निकलो, और फिर कहीं देख लिया कि महाराज जी ने क्या सुनाया था? या तो पगला जाओगे। जो कथन हुआ है, वह तो दृष्टिगोचर ही हुआ है। जो दृष्टिगोचर होता है, वह पदार्थ होता है। और जो कथन चल रहा है, वह तत्त्व पर चल रहा है।

तत्त्व दिखता नहीं है। तत्त्व अनुभूति का विषय होता है। पानी तो दिख सकता है, पर शीतलता दिखाके बताइये आप। मुझे शीतलता देखना है आँखों से। भैया! तूने पानी पिया कभी? सही में पिया है? आँखों से देखकर पिया है? बताओ, उसका स्वाद कैसा था? (महाराज श्री पानी में स्वाद नहीं था।)

भैया! जब पानी में स्वाद नहीं था, तो पिया क्यों तूने? बेस्वाद की वस्तु को पिया जाता क्या? अच्छा, भैया! ठीक है, पानी में तुझे स्वाद समझ में नहीं आ रहा, तो दूध में स्वाद होता कि नहीं? बताओ कैसा होता है? अभी मंगलाचरण हुआ था। उसमें एक लाइन थी कि ज्ञानी की कोई उम्र नहीं होती। बड़ा आयु से नहीं होता है, बड़ा ज्ञान से होता है। तुम ये मत मानना कि यहाँ इतने बड़े-बड़े लोग बैठे हुये हैं, मैं इनके सामने कैसे कहूँगा? हो सकता है कि जिधर दृष्टि उनकी जीवन में न गई हो, उधर दृष्टि तेरी चली जाय। इसलिये उम्र की यहाँ कोई गिनती नहीं है।

अच्छा, ये बताओ कि मीठे का स्वाद कैसा होता है? देख लो, ये है जगत् की लीला। ज्ञानियो! जो कथन होता है, वह पर्यायदृष्टि का है। जो कथन का विषय नहीं है, वो तो 'जो है, सो है।' इतना कह देता कि महाराज! स्वाद अवश्य होता है, लेकिन अवक्तव्य है।

जब पानी या दूध का स्वाद नहीं बता सकता मुमुक्षु, तो ध्रुव भगवान्-आत्मा का स्वाद क्या बतायेगा? आत्मा का स्वाद तो आत्मा ही है। वो जो जैसा है, वैसा ही है। अनुभूति अवाच्य होती है, अनुभूति वाच्य नहीं होती है, क्योंकि वह स्वानुभवगम्य है।

द्रव्य तो द्रव्य है, पदार्थ तो पदार्थ है, तत्त्व तो तत्त्व है, पर तीनों एकत्वभूत हैं। इसलिये यूँ नहीं कह सकते हैं कि द्रव्य बहिरात्मा, पदार्थ अन्तरात्मा, तत्त्व परमात्मा। ये अवस्थायें रहेंगी। चाहे वर्फ बन जाये, तब भी पानी शीतल है। चाहे गर्म हो जाये, तब भी पानी शीतल है। भैया! पानी में उष्णता आयी नहीं है, उष्णता तो अग्नि का धर्म था, वह पानी का विभाव

भाव हो गया है। स्वभाव तो शीतल ही है। जमीन पर रख दो तो स्वयमेव ठण्डा हो जायेगा। जो स्वयं में होता है, स्वयं हो जाता है, वही स्वभाव होता है। जो पर से होता है, पर के लिये होता है, वह विभाव होता है। अग्नि में वही पानी डाल दो। गर्म/उबलता पानी अंगारे पर डालोगे तो अंगारा और जलना चाहिये कि बुझना चाहिये? खौलता पानी जलती अग्नि पर डाल दिया तो अग्नि का क्या होगा? (बुझ जायेगी।) क्यों? गर्म पानी से अग्नि बुझती क्या? कह दो—महाराज श्री! पानी गर्म था ही नहीं, गर्मी सोपादिक अग्नि की ही थी। पानी के शीतल गुण ने जलती अग्नि को बुझा दिया। गर्म पानी भी बुझा देता है। इसलिये कितनी ही क्रोधी, मानी, मायावी आत्मा होगी, उसको भी ठण्डे दिमाग से पूछना—'भैया! क्रोध करना अच्छी बात है क्या?' वो पापी से भी पापी कह देगा कि पाप करना अच्छी बात नहीं है। स्वभाव पर कभी तर्क नहीं होता। ज्ञानी! अयथार्थ कथन होता ही नहीं है।

घोर पापी पुरुष भी पाप को पाप ही कहेगा, पुण्य नहीं कहेगा। भैया! विश्वास मानना, जो मस्ती में मुस्करा-मुस्करा कर पाप कर रहा होगा, वो भी पाप को पाप ही कहेगा।

रावण भले ही सीता को हरण करके ले गया था, पर जब वह अपने कक्ष में बैठता था, तब उसको विवेक जागता था कि मैंने ये अच्छा नहीं किया। उज्जवल कुल को कलंकित कर दिया। पर क्या करे? पुनः अहंकार की आग लगती थी तो कहता था, 'मैं भूमिगोचरी राम के सामने कैसे झुकूँ?' वहाँ उसका अहंकार टकरा रहा था। बाकी उसको इतना विवेक हो चुका था कि मैंने ठीक नहीं किया, मुझे जानकी वापस कर देना चाहिये। ऐसा रावण का चिन्तवन चलता था। आप रावण को क्यों खोजते हो? अपने मन के रावण से पूछ लो, कई बार शासन के विरुद्ध, समाज के विरुद्ध, माँ के विरुद्ध काम कर बैठते हो, फिर मन में कहते, अरे! लेकिन अब कोई क्या कहेगा?

अरे भैया! कुछ हो जाये उल्टा-सीधा, तो मन तो कहता है कि अच्छी बात नहीं है। लेकिन अब अपनी गलती कैसे कहें? कोई क्या कहेगा? भैया! कोई पचास रूपये की वस्तु पाँच सौ रूपये में बेचता है, लेकिन जानता तो है। खूब घी में आलू फेंट कर बेचो। अरे! व्यापारी लोग हैं। चोखे में खोटा मिला-मिला कर बेचो। बेच लो, बेच लो। पैसा तो आ जायेगा, लेकिन विश्वास रखना, परिणाम की विशुद्धि नहीं आयेगी। भैया! 'जो है, सो है।'

साँची बात सुनो। विद्वान् आ गये, सो विशुद्धसागर जी ऐसे बनकर बैठ जायें कि ध्यान कर रहे हों महाराज। घोर मायाचारी कर रहे महाराज। और जब कोई नहीं था, सो कमरा में बैठे मस्ती कर रहे थे महाराज। महाराज! मायाचारी करके बैठ जाओगे, तो समाज में, देश

में ये तो कहलाओगे कि बहुत साधक हैं विशुद्धसागर जी, बिल्कुल शान्त हैं विशुद्धसागर जी, लेकिन अपने हृदय से पूछना कि तुम कैसे हो?

पर्याय का धर्म पर की आँखें जानती हैं, परिणामों का धर्म स्वयं की आत्मा जानती है। लिख लो हृदय की डायरियों पर। इसलिये मैं उतने ही विशुद्धसागर को मानता हूँ, जितने मेरे परिणामों के विशुद्ध होते हैं। बाकी तुम जानो, तुम्हारा काम जाने। मैं नहीं मानता दुनियाँ की बातों को। सत्य तो सत्य है। चंचलता असत्य में होती है, सत्य में कभी चंचलता नहीं होती है। अज्ञान में चंचलता होती है।

सिक्का का बोध होते ही आँखें घूमना बंद हो गयी थी। जिस दिन सत्य का सिक्का समझ में आ जाता है, उस दिन से दुनियाँ में आँखें घूमना बंद हो जाती हैं।

भैया! सत्य तो सत्य है। वस्तुस्वरूप को कभी नहीं भूलना। जीवन में घोर पाप से भी घोर पाप क्यों न हो जाये, तब भी अपने पाप को पाप ही कहना। पर सबसे कहने मत जाना। जीवन में कहीं खोटे-से-खोटे कार्य तेरे द्वारा हो गये हों, तो उसे कभी मत छिपाना, अपने गुरु के पास जाकर प्रायश्चित्त अवश्य लेना।

वैद्य और गुरु इन दोनों को पहले अपने आस्था में करना चाहिये और फिर गुरु बनाना। क्योंकि जो बातें माँ से नहीं बताई जा सकती, पिता से नहीं बताई जा सकती, मित्रों से नहीं बताई जा सकती, वह गुप्त-से-गुप्त रोग वैद्य को बताये जाते हैं। वैद्य तो समझ लेगा कि इसे ऐसा रोग हुआ है, तो इसने क्या किया होगा? और यदि वैद्य समाज में बिखेर देगा, तो इस की क्या हालत होगी?

वस्तुस्वभाव और भीतर का ज्ञान, नीति, राजनीति, लोकनीति इनका बोध न हो जाये, तब तक आचार्य के सिंहासन पर बैठने की कोई आवश्यकता नहीं है। जगत् की सारी नीतियों का ज्ञान होना चाहिये। विश्व के जितने नीतिज्ञ हैं, सबका बोध होना चाहिये ।

भैया! एक बेटे को जन्म देकर पालना सरल है, पर दूसरे के बेटों को संस्कार का जन्म देकरके, अनेक के बीच में रहकर, उनको पालना कठिन है। और दिगम्बर मुनि तो बहुत बड़ी ऊँची खोपड़ी होती है। इनको सम्हालना बहुत कठिन होता है। जिस प्रकार हाथी को बाँधने के लिये रस्सा भी मस्त होना चाहिये और सांकल भी मस्त होना चाहिये।

भैया! सर्वार्थसिद्धि का देव 33 सागर तक तत्त्व चर्चा करता है फिर भी समय का पता नहीं चलता है।

अब आपको सर्वार्थसिद्धि, श्लोकवार्तिक, राजवार्तिक, पंचास्तिकाय, नियमसार, तिलोकसार इन ग्रंथों के स्वाध्याय की आवश्यकता है। तभी उस तत्त्व, पर्याय, गुण का अर्थ निकाल पायेंगे अन्यथा वह विपरीत हो सकता है। और वैदिक दर्शन में यदि जाना हो तो कुछ कारिकायें आपको गीता की देखनी पड़ेंगी या फिर वैज्ञानिक दर्शन में द्रव्य, गुण, पर्याय की व्याख्या है। सांख्य दर्शन में वस्तुस्वभाव की व्याख्या है। लेकिन ज्ञानियो! जहाँ कुन्दकुन्द स्वामी ने जो व्याख्या की है, वहाँ वे सम्पूर्ण व्याख्या आ चुकी हैं।

'नीतिवाक्यामृत' ग्रन्थ है आचार्य सोमदेव सूरि का। जितने राजनेता हैं, इनको तो इसे पढ़ना ही चाहिये। जीवन में दो ग्रन्थों का अध्ययन तो प्रत्येक राजनेता छात्र को करना ही चाहिये। जिस शरीर में आत्मा न हो, तो शरीर की कोई शोभा नहीं है और ग्रन्थालय में "कुरल काव्य" ग्रन्थ न हो, तो उस ग्रंथालय की कोई शोभा नहीं। यह एक ऐसा ग्रन्थ जो "तमिल का वेद" कहलाता है। हिन्दू कहता है कि मेरा ग्रन्थ है। जैन कहते हैं कि यह 'कुरल काव्य' मेरा ग्रन्थ है।

'नीतिवाक्यामृत' ग्रन्थ में सोमदेव सूरि ने लिख दिया कि अब जो भी नीतियाँ बनेंगी, लिखी जायेंगी, इसका ही पिष्ट-प्रेषण होगा, इसके आगे कोई नीतिग्रन्थ हो नहीं सकता।

चाहे वह नारद की नीतियाँ हों, विदुर की या चाणक्य की नीतियाँ हों, वो सारी-की-सारी ''नीतिवाक्यामृतम्'' ग्रन्थ में लिखी हुई हैं। पर ध्रुव सत्य है कि पढ़ने से कोई नीतिज्ञ नहीं बनता। वह तो जाना जाता है। बुद्धि तो स्वयं की चलेगी, तब वो नीतियाँ काम में आयेंगी।

भैया! 'समयसार' जी ग्रन्थ में सोना बनाने की विधि लिखी हुई है। परन्तु सब सामग्री मिल जाये, पर बनेगा तभी, जब पुण्य होगा।

नास्ति कामसमो व्याधिर्नास्ति मोहसमो रिपुः।
नास्ति क्रोधसमो वह्नि-र्नास्ति ज्ञानसमं सुखम् ॥ 27 ॥

कामवासना के समान कोई रोग नहीं है, मोह के समान कोई शत्रु नहीं है, क्रोध के समान कोई अग्नि नहीं है और ज्ञान के बराबर कोई सुख नहीं है।

'आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

सारसमुच्चय - 27

तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में मुमुक्षु जीव की भूतार्थ दशा का व्याख्यान कर रहे हैं। चित्त पवित्र है तो सर्वत्र आनंद है, चित्त मलिन है तो आनंद में भी आनंद का अभाव है। वस्तु जो है, वह आनंदभूत नहीं है। व्यक्ति जो है, वह आनंदभूत नहीं है। वस्तु व व्यक्ति में जो प्रीति है, वह आपको आनंद दे रही है। जब प्रीति हट जाती है, तो वही वस्तु दु:खानुभूति रूप अनुभव में आती है। प्रीति बढ़ने पर सुखानुभूति का अनुभव होता है। वस्तु वस्तुभूत है, व्यक्ति व्यक्तिभूत है। जो पुरुष आपको मित्ररूप में दिखता था, उससे इच्छा की पूर्ति होती थी, इच्छा की पूर्ति बंद हो जाये तो वही शत्रुरूप में दिखना प्रारम्भ हो जाता है। अभाव में व्यक्ति रुदन करता है, सद्भाव में प्रीति को प्राप्त होता है, जबकि वस्तु का अभाव हुआ नहीं है, जबकि वस्तु का सद्भाव हुआ नहीं है, स्थानान्तरण हुआ है। उसी स्थान पर परिवर्तन को देखकर अज्ञानी रुदन करता है। जो पुरुष आज तुम्हारे घर में जन्मा है, वह किसी के घर को सूना करके ही तो आया है। जो आपके घर में बेटे के रूप में जन्मा है, वह किसी के घर में रुदन कराके आया है। आज तुझे आनंद आ रहा है, उस घर को देख जहाँ रुदन हो रहा है। जो तेरे घर से जायेगा, वह किसी के घर में आनंदरूप में होगा।

ज्ञानियो! अज्ञानी रोते हैं। ज्ञानी समझता है कि यह जगत् का परिणमन ऐसा ही होता है। आनेवाला अपने में है, जानेवाला भी अपने में है। पर जिनके यहाँ आया है, उनका पागलपन है। जिनके यहाँ से गया है, उनका पागलपन है। इसी में व्यक्ति परेशान है। यही चेतन वस्तु के साथ है, यही अचेतन वस्तु के साथ है। एक सिक्का आपकी जेब में था, किसी ने छीन लिया, तो ज्ञानी! तू रुदन करने लग गया। सिक्का कह रहा है कि पागलों की टोली तो देखो, मैं तो जो हूँ, सो हूँ। एक की जेब में था, वह मुस्कुरा रहा था। दूसरे की जेब में चला गया, वो रोने लग गया और जिसकी जेब में पहुँच गया वह हँसने लग गया। पर मैं न इसका हूँ, न उसका हूँ। मैं तो मेरा ही हूँ। मैं निज चतुष्टय से भिन्न हुआ ही नहीं हूँ। मेरा स्वभाव मेरे से भिन्न हुआ ही नहीं है। लेकिन अज्ञानी रुदन कर रहा है। जितने जीव आज उन्मत्त हो रहे हैं, अवसाद/डिप्रेशन में जा रहे हैं, पागल हो रहे हैं, विश्वास रखना, यदि वह वस्तुस्वतंत्रता के बोध को जान लें, तो पागलपन एक पल में पलायन कर जाये। कौन कहाँ गया? स्थानान्तरण होता है, क्षेत्रान्तरण होता है, लेकिन वस्तु अपने स्वभाव से भिन्न होती ही नहीं है।

हे ज्ञानी! तू अपने शत्रु के द्वेष में, मित्र के राग में बिलख रहा है। एक इसलिये परेशान है कि मेरा शत्रु मुझे परेशान कर रहा है। दूसरा इसलिये दु:खी है कि मेरा मित्र परेशान है। पर आपको मालूम होना चाहिये कि असाता के उदय के अभाव में ऐसा कौन-सा द्रव्य है जो मुझे दु:खी कर पाये और साता के उदय के सद्भाव में ऐसा कौन-सा पदार्थ है, जो मुझे दु:खी कर पाये? जब साता का सद्भाव है, तो कोई मुझे दु:खी कर नहीं सकता है और असाता का अभाव है, तो कोई भी मुझे दु:खी कर नहीं सकता है। साता का अभाव, असाता का सद्भाव है, तो तीर्थंकर भी तुझे सुखी कर नहीं सकते। आपके घर में ही आपका सगा भाई भी गरीब है। आपका बेटा भी आपके घर में रोते दिखाई दे रहा है। पर बेटा के लिये पिता कुछ भी नहीं कर पा रहा है। बेटे को गलित कुष्ट हो गया है तो तुम वैद्य बुला सकते हो, तुम औषधि दे सकते हो, तुम दुआ दे सकते हो, पर हे तात्! तुम क्या मेरी पीड़ा को कम कर सकते हो? सांत्वना देनेवालों की संख्या करोड़ों हो सकती है, पर शांति देनेवाला एक भी नहीं मिलेगा। समझ में आ रहा है? शत्रु की खोज, मित्र की खोज बाहर की है, जबकि दोनों भीतर थे। अकषाय भाव है तो मित्र है और काषायिक भाव है तो शत्रु है। शत्रु तो तेरे भीतर था, उसे तू निकाल नहीं सका और भविष्य के भगवानों में शत्रुता निकाल कर भव का विनाश कर रहा है। समझो, सम्हलो। काम, लोभ, अहं ये प्रबल शत्रु हैं। मुमुक्षुओ! तपन पड़े, तो छतरी लगा लेते हो। पर हे ज्ञानी! जब काषायिक भाव की आग तेरे भीतर लगती है, तो कौन-कौन छतरी लगा लेते हो। दाह जब ज्वर बन जाये, तो चंदन के छींटे काम में आ जायेंगे; पर काम-ज्वर हो जाये, तो चंदन के छींटे भी काम में नहीं आते हैं।

ज्ञानियो! जग में सबकी कमर टूट रही है। किसके पीछे घर में बैठे हैं? कामना और कामिनी, दो ही तो संसार के बिंदु हैं। कामना यानि इच्छायें और कामिनी यानि नारी। ओ हो! सारा जगत घुटने टेक रहा है मात्र कामना और कामिनी के कारण। भीतर झाँक कर देखो। कामिनी की कामना ने रावण-जैसे लोगों को जमीन पर गिरा दिया और ज्ञानी! कामिनी की कामना ने पता नहीं कितने शीलवंतों के शीलों को डिगा दिया, नाश करा दिया। इसलिये आचार्यभगवान् 27वें श्लोक में इस बात को कह रहे हैं। यह मात्र सुनने का विषय मत बनाना। यूँ मानकर चलना कि आपकी सामायिक चल रही है। ध्यान का विषय बनाइये।

मित्रो! एक भी चर्चा बाहर की नहीं है। यह आप सबके स्वयं के भीतर की बातें हैं। शत्रुता क्यों बढ़ रही है? कामना की पूर्ति नहीं हो पा रही है। और जिसकी पूर्ति नहीं की, ज्ञानी! वही तुझे शत्रु दिखने लग गया, जबकि वह शत्रु नहीं था। तेरी कामना ही तेरी शत्रु थी, यदि वह उत्पन्न न होती, तो यह शत्रु क्यों बनता? जहाँ देखो वहाँ कामना खड़ी हुयी

है। माँ से कामना कर लेता है तो माँ को खो बैठा। पिता से कामना कर लेता तो पिता को खो बैठा। यहाँ तक कि अपनी पत्नि से भी अधिक कामना कर बैठता है, तो वो भी तेरी इच्छा पूरी नहीं कर पाती तो तू उसको भी खो बैठा। और जो तेरा बेटा था, उससे भी तू अधिक कामना कर बैठा तो तूने उसे भी खो दिया। तेरा संसार में कौन बचा? तेरी कामना ने सारे जगत् से तुझे अलग कर दिया। किसने किया? भरा हुआ परिवार कामना ने विलीन कर दिया। अग्नि किसी के घर में लग जाये तो कम-से-कम राख तो बचेगी, पर कामना की आग जब जलाती है तो वहाँ तो राख भी नहीं मिलती है। घर की आग बुझाने पड़ोसी मिल जायेगा, पर कामना की आग बुझाने पड़ोसी भी नहीं मिलेगा। कामना की अग्नि तो इतनी प्रबल है कि बिना दिखे ही सबकुछ स्वाहा कर डालती है। बुझाये कौन? कितने झुलस गये? चेहरे पर मुस्कुराहट लाना है और जीवन को आनंद से भरपूर करना है तो अपनी कामना को कमजोर कर लो। यदि कामना को कमजोर नहीं कर पाओगे, तो आनंद तुम्हारा कमजोर हो ही जायेगा। यह चर्चायें मात्र इसी हाल की नहीं हैं, विश्वास मानिये, सारे विश्व का यही हाल है। जिनवाणी को लोग यही समझ रहे हैं, कि यह तो मंदिर का विषय है, यह तो सामान्य लोगों का विषय है। जबकि जो चर्चा आप सुन रहे हो, वह विश्व के कानों में पहुँचना चाहिये। तब जीव को सोचना पड़ेगा कि ओ हो ! मैं कितनी भूल में हूँ?

कौन आपको दु:खी किये है? धन्य हो मुमुक्षु! आप अपने मुख से कह रहे हो कामना.....! फिर भी नहीं छोड़ पा रहे हो। वे ही सुखी हैं, जिनके काम ना। जहाँ कामना है, वे ही दु:खी हैं। ज्ञानियो! कमान भिद जाये तो शरीर मात्र नष्ट होगा और कामना का तीर लग गया तो भव-भव नष्ट होते हैं। किसी शिकारी का तीर तो देह मात्र को चुभता है, पर कामना का तीर भीतर की आत्मा को विलखाता है। एक काँटा लग जाये तो रास्ते में कोई पथिक निकाल देगा। कोई दुर्घटना घट जाये तो तुम्हारे रिश्तेदार देखने आ जायेंगे। लेकिन कामना का तीर जो तूने स्वयं चुभाकर रखा है, उसे निकालने न तो मित्र आयेगा, न तेरा शत्रु आयेगा। कौन बचायेगा? आप लोग दु:खी हो क्या.....? कहाँ दिखते हो दु:खी? कामना हटा दो, बस, सुखी हो जायेंगे।

ज्ञानी! तू दिगम्बर है क्या, श्वेताम्बर है क्या? ओ ज्ञानी! जितने यहाँ बैठे हैं, सब दिगम्बर हैं। फिर भी अंतर ऊपर है, तब भी दिगम्बर हैं। ज्ञानी! जैसा मैं हूँ, ऐसे ही सब लोग हैं। जो ऊपर व्यर्थ का टांग रहे हैं, सब हटा दो तो सब दिगम्बर ही हैं। पर धन्य हो दिगंबरो! अच्छे वस्त्रों में विघे बैठे हो, तब भी दिगंबर हो। पर ज्ञानी! इन गुरुओं की महिमा को गाया करो। इनके प्रसाद से तुम कपड़े पहनने पर भी दिगंबर कहलाते हो। वे दिगंबर कैसे जो दिगंबर

योगी के चरणों में न बैठ पायें? पर जिनके गुरु दिगंबर हैं, वे भी दिगंबर है। सारा विश्व दिगंबर है। वस्त्रधारियों की संख्या तो बहुत कम है। कपड़ेधारियों की तो गिनती हो जाती है, पर बिना कपड़े वालों की तो गिनती ही नहीं है। पर्वत है, आकाश है, वो दिगंबर है। प्रकृति की प्रत्येक वस्तु निर्वस्त्र है। जिनमें राग है, जिसमें वासना है, वे वसन पहनते हैं और जिनकी वासनायें उतर जाती हैं, वे वसन से रहित हो जाते हैं।

दु:खी हो क्या? ज्ञानियो! आप दु:खी नहीं हो। आपने दु:ख को मान लिया है। दु:ख है कौन-सी वस्तु? वस्तु को कमाने में कितना पुरुषार्थ करना पड़ता है? यदि उसी को जेबकतरा काट ले जाये, तो कैसा लगता है? 50 का नोट भी चला जाये तो आँखें डबडबा जाती हैं। जबकि 50 करोड़ भी मंदिर जी में दान कर दे तो मुस्कुराहट आती है। बात क्या है? जिनकी कटती है, उनको रोना पड़ता है। जो छोड़ते हैं, वह मुस्कुराते हैं। ज्ञानी! दान करके मुस्कुराते ही हो। धन्य हो, तब समाज बाँटेगी तेरे कपड़ों को, जब तू जायेगा। यदि छोड़कर जायेगा, तो तू मुनिराज बनके जायेगा। जिनके छुड़ाये जाते हैं, वे मुर्दे होकर जाते हैं।

जिनशासन में, नमोऽस्तु शासन में ज्ञानियो! 'सागर ते गम्भीर:।' यह वह मार्ग है जो सागर के समान गम्भीर है। इसलिये मुनिराजों के नाम के आगे सागर लगा रहता है। हे नाथ! जिस तरह सागर अपनी मर्यादा को नहीं छोड़ता है, ऐसे ही वीतरागी तपोधन अपनी मर्यादा को नहीं छोड़ते हैं। यह गम्भीरता का मार्ग है, उथला-उथला मार्ग नहीं है। जब तक वस्तुव्यवस्था समझ में न आये, तब तक जिनलिंग (साधुपद) को धारण नहीं करना चाहिये और वस्तुव्यवस्था समझ में आने के बाद घर में रहना नहीं चाहिये। समझ में आया? .....

वैराग्यरहित चारित्र धारण करेगा तो विलखेगा और वैरागी घर में रहेगा तो विलखेगा। चिंतन करो। वाचना के बाद पृच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय, धर्मोपदेश। यह पाँच स्वाध्याय हैं। क्रम से हैं। कोई कितना भी अव्यवस्थित बैठा हो, लेकिन कैमरा के सामने आते ही किनता व्यवस्थित हो जाता है। जब ये कैमरा घूमे तो कितने शांत हो जाते हो। भगवान् सीमंधर स्वामी के कैवल्य के कैमरे में सब झलक रहा होगा कि अलवर के मुमुक्षु शांत होकर जिनवाणी सुन रहे हैं। और वे पापी भी झलक रहे होंगे जो घर में पाप कर रहे होंगे। भइया! ऐसी कोई वस्तु है ही नहीं जो भगवान् के ज्ञान में झलके ना। जब कैमरे को देखकर तुम शांत हो जाते हो, तो ज्ञानी! कितने अच्छे से रहना चाहिये कि भगवान् के केवलज्ञान में भी अशुभ पर्याय न झलके।

नास्ति कामसमो व्याधिर्नास्ति मोहसमो रिपुः।
नास्ति क्रोधसमो वह्नि-र्नास्ति ज्ञानसमं सुखम्।। 27 ।।

ज्ञानियो! जगत् में अनेक व्याधियाँ हैं और उन रोगों के उपचार के लिये अनेक वैद्य हैं, अनेक दवाखाने हैं, लेकिन काम की व्यथा के लिये जगत् में कोई दवा काम नहीं आती। जो भी व्यक्ति शील खो रहे हैं, वे सब काम की पीड़ा के कारण खो रहे हैं। बनने वाला भविष्य का तीर्थंकर रावण, वो भी देखो कैसे वाणों से छिद गया। पर हे लंकेश! लक्ष्मण के वाणों से तो तू बाद में छिदा है, पर काम के वाण से तो तू छिद चुका था। काम के वाण से न छिदा होता तो लक्ष्मण के वाण से न छिदता। भैया! भीतर झाँक कर तो देखना ही पड़ेगा। काम के समान कोई व्याधि नहीं है और मोह से बड़ा कोई शत्रु नहीं है। बेटा ऊपर चला गया तो पिता रो रहा है, अब तू रो क्यों रहा है? वापस आयेगा, यह नियत है क्या? आना और जाना कोई नई बात नहीं है।

ज्ञानियो! अग्नि तो तब जलाती है, जब अँगुली डालोगे। पर क्रोध की अग्नि तो स्व-पर को जलाती है। हे क्रोधियो! जरा करुणा करो। जो मन से अशुद्ध हैं, उनके तन में अशुद्ध स्राव होते हैं। उनकी ग्रंथियों से अशुभ स्राव उत्पन्न होते हैं। और उससे परोसा हुआ भोजन जब तक तेरे पेट में रहेगा, तब तक तुझे भी क्रोध उत्पन्न करायेगा। वाणियों का प्रभाव पड़ता है। कितना महान् जैनदर्शन है। सबसे पहले मन शुद्धि। .....

माताओ! अगर आप अपने घर को आनंदमयी बनाना चाहते हो और अपने बेटे को बेटा, पति को पति मानके चलते हो, तो अशुद्ध परिणामों में और अशुद्धि के दिनों में न भोजन बनाना, न ही भोजन करना। वह जहर है। कुपित नारी का भोजन जहर है। देवी! अगर तू भोजन के समय माँ बनके आयेगी, तब भोजन करूँगा, नहीं-तो नहीं करूँगा। आपको स्वयं गुस्सा आ रही हो, तब भी भोजन नहीं करना। 'नास्ति क्रोधसमं वह्नि।' क्रोध के समान अग्नि नहीं है। नास्ति ज्ञानसमं सुखं " संसार में ज्ञान के समान कोई सुख नहीं है। देखो ,आप एक घण्टे से बैठे हो, आनंद लूट रहे हो कि नहीं? सब भूल गये, यह किसका आनंद है? यह ज्ञान का आनंद है।

आज चिंतन करना। भैया! सबसे कहना कि एक दूसरे को आनंद दो, आनंद लो, लेकिन क्रोध की अग्नि मत दो।

'आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"विषयकषायों के अभाव में ही सुख"

कषायविषयार्त्तानां, देहिनां नास्ति निर्वृतिः।
तेषां च विरमे सौख्यं, जायते परमाद्भुतम्॥ 28॥

कषाय और इन्द्रियजन्य विषयों से पीड़ित प्राणियों को मुक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती। कषाय और विषयों से विरक्त होने पर ही परम अद्भुत सुख की प्राप्ति होती है।

देशना

तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रंथराज 'सारसमुच्चय' जी में मोक्षमार्गी जीव की व्याख्या कर रहे हैं।

अहो! "नास्ति कामसमो व्याधिः" काम के समान कोई भी ब्याधि नहीं है। "नास्ति मोह समो रिपुः" मोह के समान कोई शत्रु नहीं है। क्रोध के समान कोई अग्नि नहीं है। ज्ञान के समान कोई सुख नहीं है। इच्छा करने से इच्छा की पूर्ति होती, तो जगत् में दुःखी कोई नहीं दिखता अथवा जगत् में कोई सुखी नहीं दिखता। दो रूप में देखना। या तो कोई खुश नहीं दिखता या कोई दुःखी नहीं दिखता। कारण क्या है? प्रत्येक पुरुष की दृष्टि स्वयं में सुखी होने की है। पर स्वयं के सुखी होने में तब तक आनंद नहीं है, जब तक दूसरा दुःखी दिखाई न दे। यह जीव की बहुत बड़ी कमजोरी है। स्वयं का सुख जो है, उसके वेदन के लिये दूसरे को दुःखी देखने में आनंद आता है। जब तक पड़ोसी दुःखी न दिखे, तब तक उसे यह एहसास नहीं होता कि मैं सुखी हूँ। हर व्यक्ति की दृष्टि में यही है कि मेरा शत्रु दुःखी रहे। बड़े ध्यान से सुनना.....।

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्।
परेण दत्तं यदि लम्यते स्फुटं स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा॥

हे ज्ञानी! तू बहुत बड़ी भूल में है। तेरे सोचने से तेरा शत्रु दुःखी हो जाता, तो तेरा किया कर्म कहाँ जाता? आपका सोच यदि स्वयं को सुखी बनाने का होता, तो तेरे किये अशुभ कर्म कहाँ जाते? उन कर्मों का फल भोगने कौन जाता? यदि मेरे सोचने से मैं सुखी या दुःखी होऊँ, तो तीर्थंकर ऋषभदेव से पूछ लो कि हे नाथ! आप अपने सोचने से सुखी नहीं हुये, न ही अपने सोचने से दुःखी हुये। जो आपने सोलहकारण भावना आयी थी, उससे तीर्थंकरप्रकृति का बंध हुआ था, जिस कारण से गर्भ से ही आप लोक में पूज्य हो गये। पर ....

आश्चर्य देखो? जिनके गर्भकल्याणक पर देव खड़े हों, जिनके कल्याणकों में, चाहे वह जन्म हो या दीक्षा हो, देव खड़े रहते हों, वे ही तीर्थंकर ऋषभदेव जब अंजुली लगाये छः महिने घूम रहे थे, तब वे देव कहाँ गये थे? भगवान् की विधि क्यों नहीं मिली? प्रभु! इतना पुण्य आपने किया था कि देवों के आसन हिल गये थे। आपके पुरुष की वह सत्ता कहाँ विलीन हो गयी? जब आप आहारचर्या के लिये निकले थे, तब सौधर्म इन्द्र का सिंहासन क्यों नहीं हिला? तभी तक तुम्हारा प्रभाव है, जब तक कर्म का विपाक नहीं आया और जिस क्षण कर्म का उदय आयेगा, प्रभावशाली का प्रभाव भी हीन हो जायेगा।

क्या सौधर्म इन्द्र अवधिज्ञान नहीं लगा सकता था? क्या भरत चक्रवर्ती अपने पिता की विधि नहीं मिला सकता था? क्या बाहुबली नहीं बता सकते थे? कर्म का तीव्र उदय सामने खड़ा है तो विश्वास रखना, सबकुछ जाननेवाला भी वहाँ सबकुछ भूल जायेगा। यह ज्ञान तभी तक काम में आता है, जब तक पुण्य साथ देता है। यह विज्ञान तभी तक काम में आता है, जब तक पुण्य साथ देता है। अशुभ कर्म का विपाक जब सामने आता है, तब तीर्थंकर-जैसे महापुरुष को भी अंजुलि लगाये घूमना पड़ता है और वहाँ कोई विधि बताने वाला नहीं मिलता। और जब कर्म का समय पूर्ण हो गया, तो वही विधि मिल गयी। श्रेयांस और सोम के यहाँ विधि मिल गयी और वही सौधर्म इंद्र रत्नों की वर्षा करने आ गया। इतने समय वह कहाँ था? जब तीर्थंकर ऋषभदेव को कर्मों ने नहीं छोड़ा, तो आप कौन होते हो?

कभी हीनभावना मन में मत लाना कि मेरे दिन कैसे आ गये। ज्ञानी! दिन ने दुःखी नहीं किया, दिनों ने दुःखी नहीं किया। उन दिनों को याद करो जब सुख के काल में तुम दूसरे के दुःख में दुःखी महसूस नहीं कर रहे थे। उस काल की याद करो। वह सुख का काल तुमको दुःख देकर गया है। अशुभ का आस्रव सुख के दिनों में ही तो किया था। सुख के दिनों में जितने फूलते हो, दुःख के समय में उतना ही कूलना पड़ेगा।

ज्ञानियो! सभी के साथ समन्वय के साथ निवास करना, लेकिन तीव्र राग के साथ मत रहना। जिनका जिनके साथ तीव्र राग होता है, वियोग के बाद उनको उतना ही रोना पड़ता है। इच्छा करने से संसार की विभूति नहीं मिलती। इच्छा करने से मोक्ष भी नहीं मिलता। संसार का सुख भी पुण्य के संचय से मिलेगा और मोक्ष मिलेगा तो रत्नत्रय के पालन से मिलेगा। इच्छा करने से न मोक्ष, न ही संसार का सुख मिलेगा। कौन चाहता है कि मैं नौकर बनूँ, मैं भीख माँगू? हर व्यक्ति की दृष्टि है कि मैं सम्राट बनूँ। पर बनूँगा कैसे? जितनी सामग्री

लेकर आये हो, मिलेगी तो उतनी ही। हर व्यक्ति की दृष्टि है कि मुझे पेट भरके मिल जाये, पर उतना द्रव्य तो चाहिये। यदि पुण्य का द्रव्य नहीं है, तो इच्छा ही कर पाओगे, प्राप्त नहीं कर पाओगे। इच्छा करने में तुम स्वतंत्र हो, पर प्राप्ति में तुम परतंत्र हो। इच्छा वर्तमान की है, प्राप्ति भूत के पुण्य की है। भूत में जो पुण्यकर्म किये, वर्तमान में वही फलित होंगे। किसी से मत पूछना कि कौन कैसा है? अपंग हो, सुंदर हो, दीन हो, दरिद्री हो, अमीर हो, किसी से कुछ मत कहना। ज्ञानी! पुण्य दिखाई नहीं देता, पर सुगंध आ रही है। इतनी तो पहचान आपको ज्ञात है। गुलाब की गंध केतकी, चम्पा, जूही से भिन्न है। पुण्य की सुगंध भिन्न है। नेत्रों से दिखे या न दिखे, पर सुगंध के माध्यम से हम इतना जान लेते हैं कि कहीं-न-कहीं गुलाब खिला है। यदि गुलाब न होता, तो सुगंध न होती, यह बोध होता है कि नहीं? सुगंध से आप गुलाब की पहचान कर लेते हो और दुर्गंध से, कहीं मल का पिण्ड है, जान लेते हो। यह अनुमान के माध्यम से। अग्नि को हम धूम्र के माध्यम से जान लेते हैं। ऐसे ही ज्ञानियो! जिनके टेड़े-मेड़े शरीर हैं, किसी से कुछ मत कहना क्योंकि वह भी भगवान-आत्मा है। लेकिन वह अपंग क्यों हो गये? जिनके तिरछे मन थे, जिनके तिरछे भाव थे, परमात्मा के चरणों में आकर भी जो परमात्मा को न देख सकें, भगवान् के पास आकर भी जिन्होंने आँखें बंद कर ली हों, गुरुओं के पास आकर भी जिन्होंनें आँखें बंद कर ली हों, जिनवाणी सुनने के लिये जिन्होंने कान बंद कर लिये हों। ऐसे-ऐसे जीव भी जगत् में हुये होंगे, और हैं, जिन्होंने अर्हंत की प्रतिमा को देखकर अपना मुख मोड़ लिया हो। आज उनके चेहरे देखो, कोई देखना पसंद नहीं कर रहा है। उनसे तुम पूछने भी मत जाना, जिनके चेहरे सुंदर हैं। भूत के पापियों की पहचान करो, भूत के पुण्यात्मा की पहचान करो।

हे ज्ञानी! तू बेटे को लेकर मुस्कुरा रहा है। पर ज्ञानी समझ रहा है कि यह शील से विहीन हो गया है। शील के नाश के बिना संतान ने जन्म नहीं लिया है। भक्ति के नाश के बिना कुरूप बना कैसे? वे ही कुरूपी होंगे, जिन्होंने अरहंत की भक्ति का नाश किया है। और ''भक्तिः सुंदररूपं'' जिन्होंने अरिहंत की आराधना की, वह नियम से सुंदर होगा। सौंदर्य-प्रसाधनों से कोई भी सुंदर नहीं होता है। सुंदर होता है तो अरिहंत की भक्ति से होता है। जो सुंदर आपको दिख रहे हैं, समझ लेना कि वह भूत के धर्मात्मा हैं। आपको किसी के सुंदर चेहरे को देखकर ईर्ष्या करने की जगह प्रणाम करना चाहिये। भ्रम को निकालिये। ईर्ष्या को छोड़कर विचार करो कि अरहंत की देशना झूठी नहीं हो सकती है। भगवान् सर्वज्ञ की वाणी में लिखा हुआ है कि भक्ति से सुंदर रूप की प्राप्ति होती है। ऐसा

'रत्नकरण्डश्रावकाचार' जी में आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने लिखा है। तूने पूर्व में नियम से अर्हंत की भक्ति नहीं की, उसका परिणाम यह कुरूप शरीर मिला है। यह तेरा पुण्य है और यह मेरा पाप है। अब किसी से क्या पूछने की आवश्यकता? मुमुक्षु! यदि कोई धीमान तुझे दिख जाये, तो उसके वैभव को देखकर ईष्या मत करना। पहचान समझो धर्मात्मा की। सम्यग्दृष्टि जीव विभूतिवान व्यक्ति को देखकर ईर्ष्या की जगह उसका सम्मान करता है। अज्ञानी उससे ईर्ष्या करके झुलस रहा है। झुलस कर क्या करेगा? उसकी सम्पत्ति का नाश तो कर नहीं सकता है।

माँ! सुनो ध्यान से, सौतेलापना, दूसरे की सम्पत्ति को देखकर ईर्ष्याभाव, उसकी सम्पत्ति का विनाश तो नहीं कर पाओगी, पर तू अपने पुण्य का विनाश अवश्य कर लेगी। सामने वाले के वैभव को देखकर ईर्ष्या करने की जगह सोच यदि सम्यक् है, तो विचार करेगा कि सुख पुण्य से मिलता है कि पाप से मिलता है? पुण्य से मिलता है। और पुण्य किससे मिलता है? पंचपरमेष्ठी की आराधना करने से पुण्य मिलता है। भद्र परिणमों से पुण्य मिलता है, कषाय के मंदोदय से पुण्य मिलता है। तो जो तुम्हें सुखी दिख रहा है, उसकी सम्पत्ति को देखकर तुझे ईर्ष्या करना चाहिये, कि अपने पाप पर विचार करना चाहिये? कि तू अभागे ने दान के द्रव्य को खाया है, सो आज दरिद्री हुआ है और इस जीव ने पूर्व में निर्ग्रन्थों को दान दिये हैं, अर्हंतों के मंदिर बनवाये हैं और जिनवाणी का प्रकाशन कराया है, उसका पुण्य आज उसके सामने आया है। आज देखो दरिद्री जो हैं, वे निर्माल्य के खाने से बने हैं। किसी के दान में विध्न किया होगा, कर्म कहता है कि कोई देखे या न देखे, पर मैं सबको देख लेता हूँ। में तीर्थंकर को भी नहीं छोड़ता हूँ। कर्म तो तीर्थंकर को भी नहीं छोड़ता है, तो आप कौन होते हो? इसलिये ध्यान दो, दूसरे के वैभव को देखकर आप चाहो तो कर्म की निर्जरा भी कर सकते हो और कर्म का बंध भी कर सकते हो। पता नहीं क्यों जीव मोह में इतना व्यथित हो जाता है, विवेक खो देता है। सम्पूर्ण चिंतन ठण्डे मस्तिष्क में होते हैं। शीतल जल में ही चेहरा दिखता है, उबलते पानी में चेहरा नहीं दिखता। तत्त्व का निर्णय भी कषाय के मंदकाल में होता है। कषायी को तो तत्त्व का निर्णय भी नहीं होता है।

ज्ञानियो! कषाय का यह मंदोदय-काल चल रहा है, इसलिये मैं प्रवचन कर रहा हूँ और तुमको समझ में आ रहा है। कषायी न तो कह पायेगा और सुन भी नहीं पायेगा। तीव्र रोष जब होता है, उस समय कोई भगवान् भी क्यों न आ जाये कि भइया! ऐसा मत करो, वो कहेगा कि मुझे शिक्षा मत दो। बस, शांत हो जाना, कुछ मत कहना। क्यों? बेचारे के कर्म का उदय ही ऐसा है। यदि मेरी बात कोई न सुने, तो मैं दु:खी नहीं हूँ। उस पर भी गुस्सा

नहीं करता। पर ऐसा अवश्य सोचता हूँ कि यदि मैं सर्वज्ञ होता तो इसकी पूरी भवावलि बता देता। पर मेरा यह दोष है कि मैं सर्वज्ञ नहीं हूँ। इस बेचारे का क्या दोष है? यदि सर्वज्ञ होता भी, तो इसकी काललब्धि के पवित्र हुये बिना में सर्वज्ञ बनके भी क्या कर सकता था? हम स्वयं को ही, अपने भावों को ही बदलने के कर्त्ता हैं और हो सकते हैं, लेकिन परभावों को बदलने के कर्त्ता किंचित् भी नहीं हो सकते हैं। निमित्त बन सकता हूँ, पर निमित्त भी तभी कार्यकारी होगा, जब उसका उपादान निर्मल होगा। कुछ समझ में आ रहा है? चेहरे उदास क्यों हैं? चिंतन तो करना भइया! पर चिंता मत करना।

मुमुक्षु तो वही है, जो चिंतन करता है। चिंतन करना, चिंताभूत मत करना। चिंतन करना, चित्त की पवित्रता के लिये करना। क्या किसी को कुछ दे सकते हो, किसी से कुछ ले सकते हो? गहरे में बैठ कर सोचिये। इस भ्रम को निकाल दीजिये कि मुझे अपनी संतान को सम्पत्ति देना पड़ेगी। हे ज्ञानी! तुझे क्या देना पड़ेगा? तू पहले ले चुका है, तुझे अब वही तो देना पड़ेगा। जितने संबंध स्थापित हो रहे हैं, यह कहीं-न-कहीं स्व-अर्जित हैं। सम्पूर्ण व्याख्या का उद्देश्य समझो। आप जिस घर में रह रहे हो, मुझे उसकी शांति हो गयी, तो ईंट-चूने के घर में तो शांति होती ही है। इस देह में अशांति न हो, तो बाहर के घरों में अशांति हो ही नहीं सकती है। तेरे ही परिणामों का शोर बाहर सुनाई देता है।

ज्ञानियो! आपने सुना होगा, पर्वतों पर ज्वालामुखी फूटता है, इसका हेतु क्या है? जब भूमि के अंदर गैसें वाष्पित होती हैं, तब उनकी गर्मी को सहन न करने के कारण ज्वालामुखी फूटते हैं। भीतर की गर्मी ही तो बाहर दिखती है। सच्चे मित्र की पहचान करना हो तो उसको गुस्सा दिला देना, फिर देखना कि उसके मुख से क्या-क्या निकलता है? अच्छे में तो सब अच्छे होते हैं। सज्जन पुरुष तो वही है, जो क्रोध के आने पर भी मुख से अशुभ भाषण नहीं करता है। प्रबल पुण्यात्मा जीव वह है जिसके मुख से अर्हंत की देशना मात्र निकले, शेष काल में मौन रहे। इससे बड़ा कोई पुण्यात्मा जीव नहीं होगा। एक जीव कहता है, कि मेरे घर में कुआँ है, आप जल ले सकते हो यदि आपको श्रीजी का अभिषेक करना है तो। निर्ग्रन्थ मुनियों को आहारदान के लिये भी मना नहीं करूँगा। लेकिन आप किसी अशुद्ध कार्य के लिये जा रहे हो तो मैं पानी नहीं दूँगा।

ज्ञानियो! मुख का उपयोग देखो कैसे करो। कानों से सुनो, आँखों से देखो। जब एक व्यक्ति कहता है कि गलत काम के लिये पानी नहीं दे सकता हूँ, तो अरे अज्ञानी! पानी से

ज्यादा कीमती तेरी वाणी होनी चाहिये। जब अर्हंत के अभिषेक के लिये पानी देता है, तो तुम्हारी वाणी भी अर्हंत और निर्ग्रंथ की स्तुति के लिये निकलना चाहिये।

माँ! तुम कहती हो कि धूप निकली है। कभी कहती हो कि देखो, गर्मी लग रही है। अरे! सबको एहसास है। पर बोलने वाले जीवों की आदत देखो। इनको अपने जीवन से कोई लेना-देना है? अगर बोलना ही है, तो ऐसा बोलो जिसे मैंने कभी न जाना हो। यथार्थ बताऊँ, दिगम्बर तपोधन पूरे देश में विचरण करते हैं। इनके विचरण करने के कई हेतु हैं। पूरे क्षेत्र में विचरण करो जिससे राग न बढ़े।

हे मुमुक्षु! इस ब्रह्माण्ड में तीर्थंकर से बड़ा कोई पुण्यात्मा जीव होता है क्या? उनके नाम जब याद नहीं, तो तुम्हारा और मेरा नाम क्या लोगों को याद रहेगा? चिंतन आज के लोगों के संकीर्ण हो गये हैं। वे सोचते हैं कि मेरा प्रभाव कम कर दो। लेकिन मेरा प्रभाव कम करने से कम नहीं होता। तेरे शक्त्यांश कम हो जायेंगे, तो मेरा प्रभाव बढ़ सकता है। पाँच पाप करने से पुण्य कम होता है, यह किसको पता नहीं है? कर्म का बंध होता है, यह पता है कि नहीं है? कर्मबंध होता है, पापबंध होता है, दुर्गति होती है, किसे नहीं पता है? तो छोड़ क्यों नहीं रहे हो? मालूम होने पर भी व्यक्ति छोड़ नहीं पाता है क्योंकि कर्म के तीव्र विपाक में बुद्धि काम भी नहीं करती है। ऐसे ही मुमुक्षुओ! दूसरे को क्षीण करने की बजाय, हीन करने की बजाय अपने पुण्य के शक्त्यांश बढ़ाओ, तो दूसरे का प्रभाव अपने आप कम हो जायेगा। तुम कम करने का विचार मत करो।

अरे ज्ञानी! निर्ग्रन्थ तपोधन इसलिये विचरण करते रहते हैं कि मेरा कोई निजी स्थान न हो जाये। मुनि को सर्प कहते हैं। आचार्य वीरसेन स्वामी षट्खण्डागम की धवला टीका में कहते हैं कि वीतरागी निर्ग्रन्थ मुनि तो कालिया नाग होते हैं। हर वस्तु में नाना गुण होते हैं। जहर को मत देखो। नाग में एक बहुत बड़ा गुण है, वह कभी अपने भवन को नहीं बनाता है, रहता बामीं में है। बामीं को दीमक बनाते हैं, रहते हैं कालिया नाग। ऐसे ही दिगम्बर मुनि कभी अपना भवन नहीं बनाते। श्रावक बनाते हैं, साधु रहते हैं, चले जाते हैं। विश्व में एक ही स्वस्थ परम्परा है, श्रमण परम्परा, जिसमें मठाधीश परम्परा नहीं होती है। दिगम्बर मुनि विचरण करते रहते हैं।

हे मित्रो! जो दूसरे के कष्ट को मिटा दे, उसका नाम मित्र है। हे मित्र! " परेषां दु:खानुत्पन्यभिलाषो मैत्री। (सर्वार्थसिद्धि टीका-683) दूसरे को दु:ख की उत्पत्ति न हो, ऐसे भाव होने का नाम 'मैत्रीभाव' है। प्राणीमात्र के लिये मैत्रीभाव का होना " सत्वेषु मैत्रीं"

मैत्रीभाव जगत् की बात करता है। बूढ़ी सासू को एक रोटी का टुकड़ा नहीं दे रही है और कह रही है 'मैत्रीभाव जगत् में मेरा सब जीवों से नित्य रहे।' भगवान् को सुनाकर। भगवान् से मित्रता करना है, कि इन प्राणियों से मित्रता करना है? हे ज्ञानी! पाषाण के भगवान् को पूजो और घर के भगवान् को पूछो। उनको ढोक लगाकर जब आ जाओ, तो उनसे पूछ लो कि दु:खी तो नहीं हो? गंभीर क्यों हो गये? कुछ घर में भी विचार कर लिया करो।

ज्ञानी! दिगम्बर साधु अपने निजी स्थान बनाकर नहीं रहते हैं। इसलिये 'धवला' जी में इन्हें नाग के समान कहा है। सारे जगत् के साधु संत मठाधीश हो सकते हैं, लेकिन मुनि एक स्थान पर लंबे समय नहीं ठहरता है और एक स्थान पर भवन बनाकर नहीं बैठता है। एक ईंट के पकने में कोटि-2 जीवों की हिंसा होती है। छः महिने तक वह ईंट के भट्टे पकते रहते हैं। कितने जीवों का नाश होता है। मुनिराज का धर्मशाला बनवाना धर्म नहीं, ज्ञान-ध्यान-तप में लीन होना धर्म है। क्योंकि श्रावकधर्म भिन्न है और साधुधर्म भिन्न है।

श्रावक तो रागी है, द्वेषी है, पर मुनिराज तो वैरागी है। श्रावक से कोटि-कोटि भूलें हो सकती हैं, पर मुनि का धर्म क्षमा करना ही है। जब भी मुनि बनने के भाव आयें, तो श्रावक यदि तुझे लेने न जाये, तो भी बेटा! आँख मत दिखाना। कदाचित् कोई तेरे लिये चौका न लगाये, तब भी कोई विकल्प नहीं करना। विश्वास रखना, इन रागियों को रोटियों के चक्कर लगाने पड़ते हैं, पर वैरागियों के चक्कर रोटियाँ लगाती हैं। ज्ञानी! यदि विधि होगी, विधि यानि भाग्य, तो जंगल में भी विधि मिल जायेगी।

" मुनि को देय भोजन, फिर निज करे आहारे।" जंगल में मुनिराज विधि लेकर निकल गये, सीता ने जंगल में प्रासुक आहार बनाया और अपने स्वामी से कहने लगी कि हम अवधपुरी में रोज मुनियों को आहार देते थे। वे दिन कहाँ गये? वे निशाचर लोग हैं जो साधु को आहार दिये बिना ही भोजन कर लेते हैं। सीता कहने लगी, स्वामी! आज मैंने रसोई बनाई है। यदि मैं अवधपुरी में होती, तो दिगम्बर मुनि को पड़गाहन कर आहार देती। विश्वास रखो, भक्त की भावना कभी अधूरी रहती नहीं। उधर लक्ष्मण देख रहे थे। राम से बोले, देखो भइया! भाभी की भावना पूरी हो गयी, मुनिराज आ रहे हैं। कैसा निमित्त -नैमित्तक संबंध। मुनिराज की विधि थी कि जंगल में आहार मिले और सीता ने रसोई बना कर रख ली। बर्तन मिट्टी के थे। (मिट्टी के बर्तन एक बार ही उपयोग होते हैं, दोबारा नहीं।) ओ हो। अब तो क्या कहना....। मुनिराज पधार गये। राम और सीता ने पड़गाहन किया। वे मिट्टी के बर्तन स्वर्णमयी हो गये।

ज्ञानियो! एक जीव वृक्ष पर बैठा सोच रहा था कि यदि मैं भी मनुष्य होता तो मैं भी आहार दे देता। बहुत गद्गद् भाव से देख रहा था। वो जटायू गिद्ध था। आहार के समय भक्ति में इतना लीन हुआ कि उसके पंख स्वर्णमयी हो गये। आहार के उपरांत वह पक्षी मुनिराज की ओर निहारने लगा। तब मुनिराज सोचते हैं कि जीव! तेरा भोजन अभक्ष्य है। यदि नियम दिलाऊँ, तो पालन कैसे करेगा? सीता ने समझ लिया महाराज के भावों को और कहतीं हैं कि हे स्वामी! आप तो नियम दे दो, इसके नियम का पालन मैं कराऊँगी।

ओ हो! एक वह माँ सीता जो उस पक्षी को शुद्ध भोजन कराती थीं और ये आज की मातायें अपने पति और बच्चों तक को शुद्ध भोजन नहीं करातीं है। धिक्कार हो। क्यों? यह आपको शुद्ध भोजन कराये तो क्या आप नहीं करोगे.....? समय व सामग्री सब उतनी ही लगती है। फिर शुद्ध भोजन करो ना?

ज्ञानियो! भोजन की विशुद्धि भावों की विशुद्धि का साधन है। जिनता विशुद्ध भोजन करोगे, उतने विशुद्ध परिणाम होंगे। वे दिन कहाँ गये? सीता ने महाराज के लिये आहार बनाया था, कि स्वयं के लिये बनाया था? तुमको तो चौका लगाना पड़ता है। हर व्यक्ति शुद्ध भोजन करेगा तो द्वार-द्वार पड़गाहन होगा, भो स्वामी! पधारो। मैंने तो स्वयं के लिये बनाया है, उसमें ही साधु को भोजन करायेंगे। सत्य तो यही है।

ज्ञानियो! चिंता में नहीं पड़ना। आकांक्षा से कोई कार्य की सिद्धि नहीं होती। कार्य की सिद्धि का साधन तुम्हारा पुण्य है। कार्य की असफलता का हेतु तम्हारा पापोदय है। इसलिये किसी के वैभव को देखकर आज से ईर्ष्या भी मत लाना। अपने पापोदय को देखकर बिलखना मत। यह देखना कि किया गया कृत्य ही मेरे सामने फलित है। यदि मैं अच्छा करूँगा तो अच्छा फलित होगा। मोह के समान कोई शत्रु नहीं है। इसलिये आज से किसी को शत्रु मत कहना। यहाँ तक होता है कि जीव को शत्रु के प्रति भी मोह होता है। वह मेरा शत्रु है। 'शत्रु' बाद में कहता है, 'मेरा' पहले कहता है। धिक्कार हो। शत्रु में भी मेरापन लगाओगे। ज्ञानी! जब 'मेरा' कहता ही है, तो 'शत्रु' शब्द हटा दो?

हे मुमुक्षु! यदि किसी ने तुझे गाली भी दी हो, तो तू अभी तक क्यों स्मृति में रखे है? वो कोई अमृत है क्या जो तू आज तक रखे हुये है? इतनी प्रीति से तूने गाली सुनी कि तुझे आज तक याद है। वे तो भाषावर्गणायें थीं, सो निकल गयी। कितनी भी शत्रुता बढ़ जाये, फिर भी परस्पर में बोलना मत छोड़ना। बोलते रहोगे तो कभी-न-कभी मिल जाओगे। यदि

बोलना छोड़ दोगे, तो कभी नहीं मिल पाओगे। इस भाव को ही मत देखो, भविष्य का भी ध्यान रखो।

ज्ञानियो! यह सूत्र तू अपने हृदय की डॉयरी में लिख ले, कि 'जलने के पहले जलना छोड़ दो।' बहुत बड़ा मंत्र है। समझ गये?

माँ! कहीं पड़ोस में कुछ हो जाये, तो पता नहीं तू कितनी जगह हल्ला कर देती है। तो आज कह देना कि 'जलने से पहले जलना छोड़ दो।' कठिन है? हजारों मंदिर बनवाना सरल है, पर जलने के पहले जलना छोड़ देना कठिन है। पर विश्वास रखना, यदि जलना नहीं छूटेगा, तो कल्याण होना मुश्किल है।

कषायविषयार्त्तानां, देहिनां नास्ति निर्वृतिः।
तेषां च विरमे सौख्यं, जायते परमाद्भुतम्॥28॥

किसी पर करुणा करो या न करो, पर स्वयं पर करुणा है कि नहीं? ध्रुव सत्य है कि आत्मा त्रैकालिक है। पूर्व में आप थे, भविष्य में भी रहोगे, यदि यह विश्वास है, तो ध्यान से सुनो। किसान भी भोगने के पहले बीज को सुरक्षित कर देता है। 'बीज राख फल भोगवे।' किसान की तरह वर्तमान की पर्याय में कुछ पुण्य को सुरक्षित रख दो, जो भविष्य में बीज बने। यदि नहीं रख पाये तो, ज्ञानी! बीज ही नष्ट हो जायेगा, फिर भविष्य के लिये क्या करेगा? माना कि तुम्हारी दान देने की सामर्थ्य नहीं है, लेकिन अनुमोदना के लिये तो कुछ नहीं लगता। रास्ते में चलते-चलते प्राणीमात्र के प्रति शुभभाव करने का समय मिलता है कि नहीं? तब भी क्षीण-पुण्यात्मा जीव के प्रशस्त परिणाम भी नहीं हो सकते हैं। श्रेष्ठ विचारों के लिये भी श्रेष्ठ पुण्य चाहिये।

मंदिर की देहरी पर दूसरे को गाली देने वाले जीव मिल जायेंगे। घर की देहरी पर अरिहंत की जय बोलने वाले भी मिल जायेंगे। बस, यहीं पहचान कर लो दोनों की। पुण्यात्मा और पापी की यही पहचान है। समय बहुत है आपके पास धर्म करने का। माँ! किसी को भोजन कराना धर्म है, कि उत्तम-क्षमा धर्म है?

'उत्तम-क्षमा धर्म है।' क्षमा करके भोजन करायेगी, तो तेरे हाथ का भोजन अमृत बनेगा और अधर्म करके भोजन करायेगी, तो वही भोजन जहर होगा। इसलिये आप एक काम करो, जिस बेचारे ने तुमको पूरा जीवन सौंप दिया है, उस पर इतनी करुणा करो कि उसे शांति से भोजन तो करने दो।

सत्य यही है कि मैं तुम्हें कितना भी समझा लूँ, लेकिन होना वही है जो तुम्हारी होनहार है। हाँ। इसलिये मैं तो 24 घण्टे प्रसन्न रहता हूँ। किसी को नहीं डाँटता हूँ। सत्य यह है कि जो मुमुक्षु जीव है, वह बिगड़ेगा ही कब?

ज्ञानियो! ध्यान रखो, बस, तत्त्व की प्ररूपणा करो। जिसकी भवितव्यता निर्मल होगी, वह अपने आप सुधर जायेगा। यदि आपकी होनहार अच्छी नहीं है, तो तीर्थंकर भगवान् भी समझाने आ जायेंगे तब भी सुधरनेवाले नहीं हो। जो जीव कषाय और इंद्रियविषयों में लीन है, उन प्राणियों के लिये मोक्ष की प्राप्ति नहीं है। कषाय और इंद्रियों से विरक्त जीव को ही अद्‌भुत सुख की प्राप्ति होती है। इसमें कोई शंका नहीं करना। अशुभ करके आने वाले को देखना, वह मुस्कुरा तो सकता है, पर प्रसन्न नहीं हो सकता है। यदि अशुभ तेरे से हो जाये, तो परिजनों के सामने तू हँस तो लेगा, पर विश्वास रखना, प्रसन्न नहीं हो सकता। प्रसन्नता अलग विषय है, हँसना अलग विषय है। जिस दिन अच्छा काम करेगा, चेहरे की चमक अलग होगी। आप क्या हैं? पुण्य क्या है? किसी से मत पूछो। जिसको कहने में शर्म न आये, वही पुण्यकर्म है। जिसको कहने में शर्म से माथा झुक जाये, कह ही न पाये, वही तो पाप है। 24 घंटे में जीव के कैसे-कैसे परिणाम होते हैं? जो बताने लायक होता है, वही बताते हो, बाकी सब छुपा लेते हो।

सत्य है। कहाँ जा रहे हो? न जाओ, न जाओ। जाओ तो ऐसे जाना जहाँ से आना न पड़े।

'**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।**' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"आत्म-चिकित्सा की प्रेरणा"

कषायविषयैः रोगैश्चात्मा च पीडितः सदा।
चिकित्स्यतां प्रयत्नेन, जिनवाक्-सारभेषजैः ॥ 29 ॥

कषायों और पंचेन्द्रिय विषयरूपी रोग के द्वारा यह आत्मा सदा पीड़ित रहता है। अतः जिनवचन रूपी उत्तम औषधि के द्वारा प्रयत्नपूर्वक इन रोगों की चिकित्सा करनी चाहिए।

तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आकांक्षायें शत्रु हैं और निज की आकांक्षाओं का उपशमन ही मेरा मित्र है। जितनी आवश्यकताओं की दृष्टि होगी, उतनी ही शत्रुता की वृद्धि होगी। काषायिक भाव ही शत्रु है, उपशम भाव ही मित्र है। ध्वनित यह होता है कि सामने वाला मेरा शत्रु है, पर ज्ञानी साम्य भाव से चिंतन करता है। एकेन्द्रिय में भगवान् को देखना तेरी दृष्टि में मित्रता है, कि शत्रुता? एकेन्द्रिय से तो शुत्रता होती नहीं है। शत्रुता पंचेन्द्रिय से करता है, वो भी आपके सगे-संबंधी होते हैं। आश्चर्य यह है कि घर में आये मेहमान को इतने सम्मान से देखते हो, जबकि वो तो चला जायेगा, कोई काम का नहीं है। अपितु खा कर ही जायेगा, करके कुछ नहीं जायेगा; पर जो 24 घंटे तेरे साथ तेरा काम करते हैं, जितनी प्रीति तू मेहमान के साथ करता है, उतनी तू अपते घरवालों के साथ करने लग जाये, तो कभी भी शत्रुता का जन्म नहीं हो सकता है। यदि आपको मेहमान से प्रीति होती है, बहुत अच्छा है कि जिनके साथ आप रह रहे हो, उनको ही मेहमान मानना प्रारंभ कर दो। जो मेहमान आता है, वह चला जाता है। विश्वास रखो, तुम्हारे साथ जितने रह रहे हैं, वे भी जायेंगे। उनके जाने के पहले क्यों न हम उनसे मित्रता बनाकर चलें? एक वर्तमान की पर्याय का जीव पता नहीं भविष्य में किस रूप परिणत होगा? वर्तमान की पर्याय का जीव भी ज्ञानियो! शत्रुरूप परिणत होगा। सम्बंध तुम्हारे सम्यक् होंगे तो मित्र बनकर रहेगा। असम्यक् संबंधों के होने पर वही जीव शत्रुरूप परिणत होगा। जहाँ-जहाँ इन्द्रियविषयों के सुखों की आंकाक्षायें तीव्र होने लगती हैं, वहाँ-वहाँ जीव के शत्रुओं की वृद्धि होने लगती है।

ज्ञानियो! पेट की भूख के लिये तो चार रोटियाँ चाहिये, पर कानों की भूख जो है, वह पेट की भूख से बढ़कर होती है। सम्हलकर सुनना। उदर की भूख से कर्ण की भूख विशाल

है। जैसे तीव्र क्षुधातुर पुरुष विवेकहीन पुरुष इस उदर के लिये भक्ष्य-अभक्ष्य दोनों का सेवन करता है, ऐसे ही कानों की भूख, तत्त्व व अतत्त्व दोनों को सुनने के बाद भी, समाप्त नहीं होती। ज्ञानियो! अपनी प्रशंसा का पेट इतना विशाल है कि कोटि-कोटि जिह्वाओं से युक्त होकर भी तेरी कोई प्रशंसा करे, तब भी तेरी भूख समाप्त नहीं होती है। कम-से-कम प्रशंसा को सुनो, तब भी अच्छा है, पर तेरी प्रशंसा की भूख जैसे मीठा के बाद नमकीन खाना पड़ता है। अपनी मीठी-मीठी प्रशंसा हो, दूसरे की निंदा हो, दोनों सुनने को मिल जायें, फिर तो क्या कहना। स्वर्गवासी की तरह स्वर्ग में अपने को अनुभव करता है। अपने राजसुख में जितना आनंद नहीं, उतना दूसरे की आलोचना में आनंद है। क्यों?

कर्मसिद्धांत तो सत्य है। परनिंदा से नीचगोत्र का आस्रव-बंध होगा कि नहीं? होगा। आश्चर्य! आयुकर्म के निषेक इतने अर्घमान हैं, इतने कीमती हैं, लेकिन आप उसे व्यर्थ की बातों में नष्ट कर रहे हो! एक-एक मिनिट आप कैसे समाप्त कर रहे हो? आप कहते हैं कि समय नहीं मिलता। किसी को मुस्कुरा कर खुश कर रहे हो, किसी को पैसा देकर खुश कर रहे हो, किसी को भोजन देकर खुश कर रहे हो, किसी की प्रशंसा करके खुश कर रहे हो, किसी की निंदा करके किसी को खुश कर रहे हो। यह आपका आत्मधर्म नहीं है।

हे ज्ञानी! तूने एक सिक्का कमाने के लिये, जो ग्राहक तेरी दुकान पर पहुँचा था उसको तूने चाय का कप मँगाकर पिलाया था। यह कप नहीं, कपट का रूप था। इतना भोला तू कबसे हो गया कि अपनी जेब का पैसा देकर तू दूध-चाय पिलाने लगा? क्यों भइया! क्या ऐसा नहीं करते आप? मुझे मालूम है कि ऐसा क्यों करते हो। पहले उसे ठण्डा करते हो, फिर उसी से खींच लेते हो। एक सिक्का इतना महत्वपूर्ण है कि एकत्व-विभक्त भगवान्-आत्मा को धोखा देकर तूने एक का नोट कमाया है। वो भी तू भोग पायेगा, कोई नियत नहीं है। जिस सिक्के को तूने कमाया है, उसे भोगनेवाला हो सकता है कि कोई दूसरा हो। क्या यह मायाचारी नहीं है? ज्ञानी! यह भी मायाचारी ही है। व्यर्थ में मुस्कुराता चेहरा बनाना, जबकि हृदय रो रहा है। इसलिये मुस्कुराता है कि कोई कुछ न कह पाये। यह भीतर की माया है।

अहो! माया के पीछे कितनी माया? जो माया कर रहे हैं, सब माया के पीछे माया है। पर जिस माया के राग में तुम माया कर रहे हो, वह माया तो साथ नहीं देगी, पर माया साथ जरूर देगी। माया यानि धन। जिस माया के पीछे तुम माया कर रहे हो, वह तो पीछे वाली

माया काम में आने वाली है नहीं। पर जो माया कर रहे हो, वह जरूर काम में आयेगी। हाथी, घोड़ा और ईंट ढोनेवाला भी बनायेगी। मैं नहीं कह रहा हूँ कि कोई बने। पर माया का धर्म ही यही है। 'माया तैर्यग्योनस्य' (6/16 त॰ सू.)। मायाचारी का फल तो तिर्यञ्च पर्याय होती ही है। और कदाचित् किसी जीव ने मनुष्य आयु का बंध कर भी लिया हो, फिर मायाचारी की है, तो स्त्रीपर्याय में जाते हैं। जगत् में जितनी नारियाँ हैं, वह सब मायाचारी का ही फल है। कर्मसिद्धांत को कौन टाल सकता है?

माँ! इस पर्याय में कितना आनंद है आपको? यदि आनंद नहीं है, तो कम-से-कम वर्तमान में सम्हलने का समय है। घर में 10 दिन का नमक रखा होता है, तब भी आप बोलती हो कि खत्म हो गया है। क्या परिवार तुम्हारा ही है, उनका नहीं है? इस परिवार के राग में तुम अपना पतन क्यों कर रहे हो? सीधा बोलो कि 10 दिन का है, 11वें दिन नहीं दे पाऊँगी, इसलिये पहले से लाकर रख दो। असत्य भाषण करके मायाचारी करके अगली पर्याय का विचार क्यों करो?

हे ज्ञानियो! इन बेचारों पर आप भी करुणा कर दिया करो। पहले से लाकर रख लिया करो, ताकि इनको मायाचारी न करना पड़े। पर जाति का धर्म जाये कैसे? पति कितना भी पैसा दे दे, पर पति की जेब से डाका डालने वाला कोई है तो .....। मैं बहुत अच्छी बात आपको बता रहा हूँ, आपको घोर हिंसा का पाप लगेगा। जिस दिन निकालते हो, उस दिन बताते नहीं हो। पर जेब से एक सिक्का भी गिर जाये तो आदमी तड़पता है। हे माँ! तूने भले ही ऐसा भाव किया हो कि बाद में बता दूँगी। ऐसा नहीं। कभी उनकी ही आवश्यकता पर आप उनको ही दे देती हो, लेकिन तब भी आपका जो तरीका था, वह सम्यक् नहीं था। जिस दिन पैसा आपने निकाला था, तब वह जीव घबरा रहा था कि पैसा गिरा तो आखिर कहाँ गिरा? धन को आचार्यों ने ग्यारहवाँ प्राण कहा है। अमृतचंद्र स्वामी ने कहा, अहो! जो यह मनुष्य है, पैसे के राग में यह अपने प्राणों तक की चिंता नहीं करता है। पता नहीं इस नगर में कहाँ-कहाँ के लोग सर्विस कर रहे होंगे। अपने माता-पिता को छोड़कर बैठे होंगे। क्या मालूम तुम्हारी ही संतानें कहाँ विदेशों में बैठी होंगी। इतने कष्ट से जीव कमाता है। उसका एक सिक्का भी कोई छीन ले, तो उसे कितना कष्ट होता है? इसलिये आज से ध्यान रखना, आप धर्म सुन रहे हो, वस्तुस्वभाव सुन रहे हो, जिनवाणी सुन रहे हो। पूछ कर ले लेना, बता कर ले लेना, छुपाकर मत लेना। उस जीव का कदाचित् अधिक निकाल लिया और धक्का

लग गया, तो हो सकता है कि किसी बड़ी मुसीबत का सामना भी करना पड़ जाय है। हृदयाघात भी। इसलिये आप विशेष ध्यान रखना, किसी को ज्यादा डाँटना मत। स्कूलों में भी बच्चों की पिटाई बंद हो गयी है।

मैं तो आचार्यों से भी कहता हूँ कि अब शिष्यों को भी डाँटने का समय नहीं है। समझाइये बस। लोगों की शक्तियाँ क्षीण हो चुकी हैं, कषाय तीव्र हो चुकी है, भावनायें धर्म से मंद हो चुकी हैं। काँच के गिलास के टूटने में समय लगता है, पर इस काल में आस्थाओं के टूटने में समय नहीं लगता है। संसार में तुमको जीना हो तो लोगों के साथ श्रद्धा बनाकर रखना। जिसकी परस्पर में प्रीति नहीं है, आस्था नहीं है, तो क्या जीवन है। **कर्मकलंक से रहित होना है, तो पापकलंक से रहित होना सीखो।** यदि पापकलंक कट गया, तो कर्मकलंक स्वयमेव कट जायेगा। लोग माला लेकर बैठ जाते हैं, हे भगवान्! मेरे कर्मों का क्षय हो। मेरे पापों का क्षय हो। अरे ज्ञानी-अज्ञानी! ऐसा हल्ला करने से पाप क्षय नहीं होगा। 'मेरे पापों का क्षय हो,' ऐसे पापक्षय नहीं होगा। ज्ञानी! पापों का क्षय कहने से नहीं, पापक्रिया के छोड़ने से होगा। कितने सारे लोग भावना भाते हैं 'प्रभु! मेरे भव का नाश हो जाये।'

हे ज्ञानी! मुझे विश्वास है कि जो सच्चा वीतरागी तत्त्वज्ञानी होगा, तो वो भगवान् को कर्त्ता नहीं बनाता कि 'हे प्रभु! मेरे भव का क्षय हो।' हे ज्ञानी! वे वर्द्धमान लौटकर तेरे भव का क्षय करने नहीं आयेंगे और यदि लौटकर आ भी गये, तो महावीर नहीं कहलायेंगे। कर्मकलंक से रहित आत्मा पुनः संसार में आती नहीं। जैसे जला बीज अंकुरित नहीं होता, ऐसे ही कर्म जिस आत्मा के जल चुके होते हैं, वे पुनः संसार में नहीं आते। यह अवतारवादी दर्शन नहीं है, ये उत्तारवादी दर्शन है। यहाँ परमात्मा अवतार नहीं लेते, यहाँ तो वैराग्यमयी आत्मा अपने पुरुषार्थ से अंतरआत्मा और वही अंतरआत्मा पुरुषार्थ करके परमात्मा बन जाती है। यहाँ भक्त बनकर भगवान् बनने की परंपरा है। चक्रवर्ती का बेटा चक्रवर्ती नहीं बनता। भरतेश के दीक्षा लेते ही वह महल 9 निधि, 14 रत्न पता नहीं कहाँ चले गये। पुण्यात्मा चला गया सो साथ ही वैभव भी चला गया। ज्ञानियो! आस्था का स्थान सुरक्षित होता है, भोगों का स्थान नाश को ही प्राप्त होता है। पूरे देश जाना, घूम कर आना। बड़े-बड़े दुर्ग-किले हैं। उन किलों में मंदिर हैं। किले तो मग्न हो गये, पर मंदिर फिर भी सुरक्षित हैं। इसलिये वास्तु के नाम पर, ग्रहों के नाम पर आत्मा की वंचना मत करो, मत करो। शनिग्रह की पूजा परिग्रह के लिये करते हैं।

अरे ज्ञानी! सबसे बड़ा ग्रह 'परिग्रह' है। जो चारों ओर से लगा है, उसे ही छोड़ दो तो सब ग्रह अपने-आप छूट जाते हैं। परिग्रह के चक्कर में दुनियाँ के ग्रहों को पूज रहा है। परिग्रह हट जाये, तो सारे ग्रह अपने आप हट गये। ज्योतिष और कुण्डली की दृष्टि से मुझे भी शनिग्रह लगा हुआ है और कालसर्प योग भी है। मैंने ज्योतिषी से पूछा कि क्या होता है उससे? बोला कि महाराज! सब उतर जाता है उससे। ज्ञानी! वही सब तो मैं उतारकर बैठा हूँ। उससे अब क्या होगा? अब क्या करेगा तेरा ग्रह?

ज्ञानी! ऐसा कहो कि कर्म कट जायें, तो सारे योग कट जायें। ग्रह यानि कर्म। इसलिये आपको भगवान् की भक्ति करना चाहिये क्योंकि भक्ति से कर्म कटते हैं। उसमें मुनिसुब्रत ही क्यों? क्या महावीर स्वामी की भक्ति करने से कर्म नहीं कटते हैं? क्या पारसनाथ की भक्ति करने से कर्म नहीं कटेंगे? एक ही तीर्थंकर क्यों? 24 तीर्थंकरों की आराधना करो, तुम्हारे यहाँ चौबीसी है। कर्म काटने के लिये सभी की आराधना करो।

ज्ञानी! कुछ भी कहो, आनंद तो घणा है जिनवाणी में। जितने मुमुक्षु यहाँ बैठे हैं, आनंद को लूट रहे हैं। ध्रुव सत्य है, जो अर्हंत की देशना में आनंद है, वह जगत् की किसी देशना में नहीं है। जगत् में कितनी ही चटपटी बातें सुनकर आ जाना, पर जब सल्लेखना का समय आयेगा, तब अर्हंत की वाणी ही काम में आयेगी, जगत् की चटपटी बातें काम में नहीं आयेंगी।

कषायविषयैः रोगैश्चात्मा पीडितः सदा।
चिकित्स्यतां प्रयत्नेन, जिनवाक्सारभेषजैः॥ 29॥ सा.स.॥

ओ हो! वही तो कह रहे हैं आचार्यमहाराज कि ये विषयकषाय तो रोग हैं और आपत्ति के स्थान हैं। यह आत्मा विषय-कषायरूपी रोग से सदा पीड़ित है। उसको ठीक करना है तो जिनवाणी के पास जाना ही पड़ेगा। देह के रोग को ठीक कराने के लिये सभी जगत दौड़ता है। यथार्थ मानिये, तत्त्व की गवेषणा करता रहेगा तो तन के रोग भी ठीक हो जायेंगे। विश्वास मानिये, तन के रोग भी ठीक हो जाते हैं। अधिकांश जो बड़े लोगों को रोग होते हैं, मानसिक तनाव में ज्यादा होते हैं। जिनवाणी सुनने में परिणाम शांत हो जाते हैं, तो हार्मोन बदलते हैं। उन हार्मोन के बदलने पर रोग स्वतः शमन हो जाते हैं। कर्मसिद्धांत कहेगा कि असाता से कर्म का उदय आया, उससे रोग हुआ है, पीड़ा हुयी है। जब तू जिनवाणी सुनेगा, तो परिणाम साता को प्राप्त होंगे, शांतचित्त होगा तो असाता कट जायेगी। साता का उदय आयेगा तो रोग स्वतः शमन हो जाता है।

आचार्य विरागसागर महाराज जयवंत हों। एलक अवस्था में मुझे 104-105 डिग्री बुखार था। आचार्यश्री से निवेदन कर लिया कि लँगोटी लगाय-लगाय मृत्यु को प्राप्त न हो जायें, इसलिये आप तो मुझे मुनि बना दो ताकि सल्लेखना अच्छी हो जाये। और उनने भी देखो कितनी बड़ी करुणा की। जिस दिन से दीक्षा हुयी, उसी दिन से बुखार का पता नहीं चला कहाँ गया। यह संयम की महिमा देखो। यानि सामायिक करते-करते उस समय बहुत पीड़ा होती थी, उस दिन के बाद पता ही नहीं चला। रोगी जितने हैं, सब मुनिराज बन जाओ, देखो, कैसे ठीक होते हो।

ज्ञानी! तू तन के रोग की बात कर रहा है, भव का रोग ही समाप्त हो जायेगा और जब भव ही नहीं बचेगा, तो रोग किसमें होंगे? इसलिये विश्व में सबसे ज्यादा सारभूत दवाई है, औषधि है, वह अर्हंत के वचन हैं। भगवान् जिनेन्द्र के वचन ही परम औषधि है। इसलिये ज्ञानियो! जिनके मन स्वस्थ न हों, उन्हें जिनेन्द्र के वचनों की औषधि का पान करना चाहिये।

'**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।**' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"आत्मा का रक्षक संयम"

विषयोरगदष्टस्य, कषायविषमोहितः।
संयमो हि महामंत्रस्त्राता सर्वत्र देहिनाम् ॥ 30 ॥

जो विषयरूपी सर्प के काटने से कषायरूपी विष से मूर्च्छित हैं, ऐसे प्राणियों का संयमरूपी महामंत्र ही सर्वत्र रक्षक है।

कषाय-कलुषित जीव की दशा

कषायकलुषो जीवः, रागरञ्जितमानसः।
चतुर्गतिभवाम्बोधौ, भग्नानौरिव सीदति ॥ 31 ॥

जो प्राणी कषायों से कुलषित है, जिस का मन रागभाव से रंजित है, वह चार-गति रूपी संसार-समुद्र में टूटी हुई नौका के समान दुःख उठाता है।

॥ देशना ॥

वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी 'सारसमुच्चय' ग्रन्थ में समझा रहे हैं कि विषय-कषाय महान् शत्रु है, कालिया नाग है। इनको वश में करना है तो एकमात्र संयम की औषधि काम कर सकती है। विषय-कषाय से बचने का कोई उपाय है तो संयम शक्ति है। और संयम शक्ति तभी आपके साथ रह सकती है, जब आपकी संकल्प शक्ति दृढ़ है। जिसकी संकल्प शक्ति दृढ़ नहीं है, वह संयम की आराधना का निर्दोष पालन कर नहीं सकता है। संकल्प ही जीव को अपने आप में वशीभूत करा सकता है। जिसका संकल्प समाप्त हो गया है, न्यून हो गया है, उसको संसार में नियम-पालन में सुरक्षित रख पाना बहुत कठिन है। सारे विश्व में कोई महान् शक्ति है तो वह संकल्प शक्ति है। रस्सी का बंधा छूट सकता है, सांकल का बंधा भी सांकल को तोड़ कर भाग सकता है।

ज्ञानियो! मोक्षमार्ग जो है, सांकल के बंधन का मार्ग नहीं है, रस्सी के बंधन का मार्ग नहीं है। यह संकल्प शक्ति का मार्ग है। यदि आपने किसी को कैदखाने में डाल दिया बांध करके, तो शरीर को बांधा जा सकता है, लेकिन अंतरंग परिणामों को बांधने के लिये रस्सी काम में नहीं आयेगी। यानि संकल्प शक्ति ही काम में आयेगी। शरीर के बंधन से यदि मोक्षमार्ग

बनता होता, तो संसार में कितने सारे संप्रदाय ऐसे हैं जो अपनी इन्द्रियों पर ताले डालकर लटकाये हुये हैं, जो अपने आप को रस्सी से बांधे हैं। जो चरस, भांग, अफीम आदि का प्रयोग करके गड्ढों में पड़े हुये हैं। बेहोश होने का नाम संयम है क्या? मूर्छित होने का नाम संयम है क्या? इन्द्रियों को कुचल देना संयम नहीं है। बेहोश होकर, उन्मत होकर बैठ जाना संयम नहीं है। और राग-रंग में लिप्त होना भी संयम नहीं है। संकल्पशक्ति साधना को बचाने वाली विश्व में सबसे बड़ी शक्ति है। जिसकी जितनी दृढ संकल्पशक्ति होगी, उतना ही जीव उत्कर्षवादी होगा। जिसकी संकल्पशक्ति क्षीण है, वह मोक्षमार्ग तो दूर, संसारमार्ग में भी सफल नहीं हो सकता है। व्यापार, परिवार, संसार, गृहस्थी को चलाने के लिये संकल्पशक्ति का दृढ़ होना अनिवार्य है। क्या करूँ, कैसे करूँ? आज यह, कल वह व्यापार ज्ञानी! कभी सफल नहीं है। एक निर्णय करना पड़ेगा। उस संकल्पशक्ति को कोई दृढ़ता देने वाला है, उसका नाम है 'उत्साह शक्ति।' इन दो शक्तियों पर ध्यान दीजिये। उत्साह शक्ति, संकल्प शक्ति। अस्सी वर्ष का वृद्ध भी उत्साहित होता है तो सम्मेदशिखर की यात्रा पूर्ण कर लेता है। यदि उत्साहविहीन हो जाये, तो एक सीढ़ी नहीं चढ़ सकता। जो भी कार्य की पूर्णता को प्राप्त नहीं होता है, उसका उत्साह भंग हो चुका है। विश्वास रखना, वह तो विक्षिप्त हो चुका है। जीवन में उमंग का नाश नहीं होना चाहिये। साधना उतनी करना, जितनी साधना में उमंग बनी रहे। शरीर से उतनी ही मेहनत लेना चाहिये जिससे उत्साह में कमी न आने पाये। मस्तिष्क की मेहनत भी उतनी होना चाहिये ताकि उत्साह बना रहे। साधना भी उतनी करो जितने से उत्साह बना रहे। साधना करते-करते उत्साह भंग हो गया, तो जैसे प्राणों के निकलने पर देह जिस अवस्था को प्राप्त होती है, आत्मा के निकलने पर शरीर की जो दशा होती है, ज्ञानियो! उत्साहशक्ति के निकल जाने पर जीव की भी वही दशा होती है।

भैया! किसी का धन छीन लेना, किसी का भवन छीन लेना, लेकिन किसी की उत्साह शक्ति को भंग मत कर देना। ज्ञानियो! कोई तुम्हारा धन हरण करना चाहे तो चिंता मत करना, भवन छीनना चाहे तो भी चिंता मत करना, हाथ-पैर भी तोड़ डाले तो भी विकल्प मत करना? लेकिन पंचपरमेष्ठी के प्रति श्रद्धा को मत तुड़वा लेना। हे ज्ञानियो! जितना प्राणी के प्राणों का बध करनेवाला हिंसक होता है, उससे कई गुना हिंसक वो होता है, जो सत्यार्थ मार्ग से व्यक्ति की उत्साह शक्ति को भंग करा देता है। क्या होगा?

एक माँ गिरते बेटे से कहती है कि घोड़ा कूद गया, उठ जा बेटा। यथार्थ में द्रव्यानुयोग क्या है? उत्साहशक्ति को पूर्णतः प्रकट करा देना द्रव्यानुयोग है। क्या सामने कोई भगवान् है?

जीव के दो भेद हैं, संसारी और मुक्त। जो कर्मसहित है, वह संसारी और जो कर्मरहित है, वह मुक्त है। लेकिन 'समयसार' जी ग्रंथ फिर भी कहेगा कि प्राणीमात्र भगवान्-आत्मा है। जब 'समयसार' जी यूँ कहे कि निगोदिया में भी भगवान् विराजे हैं, तो अपने आप को हीन मत समझ। ज्ञानी! दूध में घृत विराजता है, तिल में तेल विराजता है, काष्ठ में अग्नि विराजती है, इस देह के अंदर मेरा शिव परमात्मा विराजता है, तो अपने आप को हीन मत समझो। अज्ञानी यूँ मान कर चल रहा है कि मैं तो संसारी हूँ, कुछ कर ही नहीं सकता हूँ, क्योंकि मैं तो दुर्बल ही हूँ। अपनी शक्ति को समझ नहीं रहा है, तो तू कब भगवान् बनेगा? तो द्रव्यानुयोग यूँ कहता है कि अपनी शक्ति को पहचानो। तुम भगवान् तो नहीं हो, पर भगवान् बनने की सामर्थ्य तुम्हारे अंदर है। जिसमें उत्साहशक्ति होती है, संकल्पशक्ति होती है, उसका नाम संसारी है। संकल्पशक्ति का जो फल है, वह संसारातीत भगवान् 'सिद्ध' है। प्रतिज्ञा कौन लेगा? संयम धारण कौन करेगा? ज्ञानी! आपको विवेक लगाना चाहिये। जो-जो व्रत का पालन करें, वे संसारी ही होते हैं। जो असंयम का पालन करेंगे, वो मोक्ष कैसे चले गये? मार्ग पर जब पहुँच जाते हो, तब तक मंजिल नहीं है। और मंजिल पर जब पहुँच जाते हो तो वह मार्ग पर चलते नहीं है। कितनी सहज बात है। जब आप श्री जिनालय की ओर जिनवाणी सुनने आ रहे थे, तब जिनवाणी नहीं सुन रहे थे और जब जिनवाणी सुन रहे हो, तब मार्ग में चल नहीं रहे हो। जो मोक्षमार्ग पर चलता है, वह मोक्ष में नहीं होता है और जो मोक्ष में होता है, वह मार्ग पर चलता नहीं है, वो तो होता है। इतनी सहज व्याख्या है, फिर भी लोग क्यों भ्रमित हो जाते हैं?

ज्ञानियो! 'समयसार' जी को समझने के लिये 'नियमसार' जी को समझना आवश्यक है। सम्पूर्ण जिनशासन में दो ही बातें हैं-

मग्गो मग्गफलं ति दुविहं जिणसासणे समक्खादं।
मग्गो मोक्खउवायो तस्य फलं होइ णिव्वाणं॥ 2 ॥ नियमसार॥

1990 में आचार्यमहाराज जब हम लोगों को 'नियमसार' पढ़ाते थे, तो समझ में नहीं आता था। ज्ञानी! यह कभी मत सोचना कि इतने बड़े ग्रंथ की वाचना में बैठने का क्या लाभ? पर एक सकोरे में एक बूंद पानी डाल कर देखना, पानी नजर नहीं आयेगा। तब पानी कहाँ गया? पुनः एक बूंद छोड़ना, वह कहाँ जायेगा? बार-बार एक-एक बूंद छोड़ते जाना। एक समय ऐसा आयेगा कि पानी नजर आने लगेगा। तो पानी की पहली बूंद का उपयोग हुआ कि नहीं? यदि प्रथम बूंद न होती, तो अंतिम बूंद दिखी कैसे? जैसे नये सकोरे में पहली बूंद

दिखाई नहीं देती, पर पड़ते-पड़ते वही पानी आँखों से दिखना प्रारम्भ हो जाता है, ऐसे ही प्रारम्भ में जिनवाणी के लिये हमारे मस्तिष्क नये सकोरे हैं। इनमें डालते जाओ, डालते जाओ, नहीं दिखने दो। लेकिन एक दिन आयेगा, नियम से दिखेगा और लबालब दिखेगा और यह श्रुतज्ञान केवलज्ञान के रूप में दिखेगा। इसलिये हे ज्ञानियो! तुम बैठे रहना, इतना ही याद कर लेना कि हमारे नगर में 'सारसमुच्चय' और 'समयसार' की वाचना हुयी थी। जब तू बड़ा होगा, तब तुझे लगेगा कि अहो! वो दिन भी मैंने देखे हैं जब 15 योगी थे, 'समयसार' जी की वाचना हो रही थी। भगवती माँ जिनवाणी कह रही हैं, मेरे सपूतो! एक-एक बूंद भी पड़ती रहेगी तो नियम से झलकेगा। वही 'नियमसार' की एक गाथा 1990 में याद की थी। आज समझ में आ रही है कि नहीं आ रही है?

जिनेन्द्र के शासन में किसी विषय का वर्णन है, व्याख्यान है, तो मात्र इतना ही है-"मग्गो मग्गफलं त्ति य।" मार्ग और मार्ग का फल। मार्ग पर क्यों चलना पड़ता है? जो मार्ग पर चलने के लिये मार्ग पर चले, वो तो पागल पुरुष है। मार्गी की प्राप्ति के लिये मार्ग पर चलना पड़ता है, कि मार्ग के लिये चलना पड़ता है? जो हमारा गंतव्य स्थान है, उस पर पहुँचने के लिये मार्ग पर चलना पड़ता है। पथ पर चलने का उद्देश्य निश्चित स्थान पर जाना होता है। जिसकी दृष्टि में निश्चित स्थान ही न हो और मार्ग पर चल रहा है, तो चलने से लाभ क्या? चलने का उद्देश्य तो निश्चित स्थान होना चाहिये। जैसे कोई जीव त्यागी बन जाये, ज्ञानी बन जाये, मुनिराज बन जाये और व्यवहार मार्ग का निर्दोष पालन कर रहा हो, और जैसे ही किसी ने कहा कि निज शुद्धात्मा की प्राप्ति के बारे में आपका क्या चिंतन है, और विशुद्धसागर उस ज्ञानी पर चिल्ला पड़े कि क्या तू निश्चय जैसी बात करता है, भाग यहाँ से।

हे ज्ञानी! गिलास को पकड़ने के लिये गिलास नहीं पकड़ा जाता। गिलास में रखे दूध को पीने के लिये गिलास को पकड़ा जाता है। गिलास पकड़े रहे, दूध न पीये, तो गिलास पकड़ने का उद्देश्य क्या है? व्यर्थ में गरम दूध से हाथ जला रहा है, इतने वजन को ढो रहा है।

ज्ञानियो! जो जीव व्यवहार-संयम को प्राप्त करने के उपरांत भी निश्चय पर लक्ष्य नहीं ले जा रहा है, वह ज्ञानी हाथ में गरम दूध का गिलास तो पकड़े है, पर पी नहीं रहा है। बर्तन मिल गया, पर वर्तन नहीं हो रहा है। समझो-समझो। यह संसार के प्रपंच की भाषा नहीं है, जैनदर्शन की भाषा है। जिस भाषा का प्रयोग आप लोग आपस में करते हो, उसी भाषा का

प्रयोग गणधर की गद्दी पर किया जाये, तो जिनवाणी में और मनवाणी में भेद क्या होगा? मैंने सुना है कि न्यायालय की भाषा भिन्न होती है। न्यायालय में प्रवेश करते ही पता चलने लगता है, क्योंकि भाषा बदल गयी है। कॉलेज की भाषा अलग और मित्रों के बीच की भाषा भिन्न होती है। यदि तू मोबाइल पर भी बात कर रहा है, तो वह समझ लेता है कि तू मित्र से बात कर रहा है कि पिता से बात कर रहा है। हे ज्ञानी! माँ से पत्नी की भाषा का प्रयोग करे, क्या वो बेटा 'बेटा' कहलाने लायक बचेगा?

माँ जिनवाणी की गद्दी पर बैठकर पर की बात करे, वह जिनवाणी का सपूत कैसा? सोचना पड़ेगा, समझना पड़ेगा। इसलिये हे विद्वानो! जिनवाणी की गद्दी पर बैठकर सामाजिक बात मत छेड़ना। जिनवाणी की गद्दी पर बैठकर किसी के आक्षेप की, पर की निंदा की बात नहीं करना, मात्र भगवती माँ जिनवाणी के आँचल का पान करना। नहीं तो क्या किया? अकषाय भाव की प्राप्ति के लिये हम यहाँ पर आते हैं। यदि काषायिक भाव सुनकर गये, तो यहाँ आने का उद्देश्य क्या था? हाथ में दूध से भरा गिलास है, तो बताओ क्या करना चाहिये? पीना चाहिये। बस, मैं तो यही करता हूँ। मुमुक्षु प्रमेयसागर! धन्य हो तेरी पर्याय को जो ऐसी युवा अवस्था में दिगम्बर मुनि बना है। जहाँ लोग भोगों के प्याले देखते हों, वहाँ तू अमृत के रस का पान करने की मुद्रा को प्राप्त हुआ है। इस युवा अवस्था में लोग पता नहीं कहाँ-कहाँ झाँकते होंगे, वहाँ वे युवा कहीं हाथ में माला भी दिख जाये, तो मुझे बड़ा संतोष होता है कि ऐसे खोटे काल में इसको भगवान् का नाम लेने की माला दिख रही है।

युवाओं को धोती-दुपट्टा पहनकर अभिषेक करते देखता हूँ, पड़गाहन में देखता हूँ, तो मेरा हृदय संतोष से भर उठता है। मुनिराज किसी भी प्रांत के हों, किसी भी नगर से आये हों, लेकिन जैसे ही मार्ग पर चलते ही दिखाई दे जायें, कुछ भी कहो, मन बहुत गद्गद् हो जाता है।

अब कोई कहे, क्यों मुमुक्षु! कब से जीव था? महाराज! आपके पास पुद्गल से परिचय करने नहीं आया हूँ। जो अर्हंत की मुद्रा है, उससे मेरा सनातन परिचय है। कब से? जब से मेरा त्रैकालिक आत्मा है। क्योंकि जिनमार्ग त्रैकालिक है, आजकल का मार्ग नहीं है। न इसे महावीर ने बनाया, न आदिनाथ ने बनाया। महावीर व आदिनाथ जिनशासन में दीक्षित हुये हैं, जिनशासन को उन्होंने दीक्षित नहीं किया । यह अज्ञानियों की भाषा है कि जैनदर्शन को महावीर ने चलाया या आदिनाथ ने चलाया है। ज्ञानी! यह तीर्थंकर परम्परा नहीं है,

श्रमणसंस्कृति है। आजकल के पढ़े-लिखे लोग उन्मत्त हो चुके हैं। जो आया, जिसने बोला, स्वीकार कर लिया। अरे! थोड़ा-सा बुद्धि का प्रयोग तो करो। यह श्रमणसंस्कृति है, श्रमणसंस्कृति। संत-संस्कृति नहीं है। नये भवन बनाकर उसमें 'संत भवन' लिख देते हो आप लोग। भैया! 'संत भवन' से किसका परिचय देना चाहते हो? तुम्हारी संस्कृति श्रमणसंस्कृति है। संत तो सभी जगह होते हैं, पर श्रमण तो दिगम्बर जैन ही होते हैं। यदि भवन पर 'जैन भवन' लिखा है, तो लोगों को अलग से समझ में आता है कि यह कोई जैन आयतन है, श्रमणसंस्कृति है। भारत की प्रधान मूल संस्कृति है। संत तो अनेक होते हैं। कपड़े वाले, लोटे वाले, अनेक प्रकार के होते हैं। आप बताओ, श्रमणों के उपासक हो कि संतों के उपासक हो?

एक-एक शब्द पर ध्यान दो। समझौता सामाजिक और मानवता में होता है, समझौता सिद्धांतों में कभी नहीं होता। सिद्धांतों में अगर समझौता करूँगा, तो मेरी संस्कृति का क्या होगा? चींटी की रक्षा भी करने वाला दर्शन है। प्राणीमात्र को हृदय से लगाने वाला दर्शन है। लेकिन रक्षा तो अहिंसा के लिये है। सिद्धांतों में समझौता करने वाला दर्शन नहीं है।

हे श्रावको! जिनागम में तुम्हारे लिये एक बहुत सुन्दर शब्द का प्रयोग किया है। श्रमण दिगम्बर मुनि हैं, तो आप श्रमणोपासक हैं। हे श्रमणोपासको! अपनी उपासना को खो मत देना। महाश्रमण महावीर स्वामी, महाश्रमण आदिनाथ स्वामी। क्या करूँ? दिगंबरों ने अपने प्राचीन शब्दों को पता नहीं क्यों खो दिया? कहीं 'श्रमण' लिखा दिखाई नहीं देता।

हे श्रमणो! सुन लो। और जब आचार्य अमृतचंद्र स्वामी से पृच्छना करते हैं तो वे आपके लिये कितने सुंदर शब्दों को प्रयोग करते हैं। 'निर्ग्रन्थ तपोधन ही है समयसार।' उस समयसार की जो उपासना करते हैं वे श्रावक हैं समयसारोपासक।

अहो श्रावको! ये वीतराग निर्ग्रन्थ योगी तो हैं समयसार और इनकी उपासना करने वाले श्रावक हैं समयसारोपासक। संघ बनना चाहिये-समयसारोपासक संघ या श्रमणोपासक संघ, जिससे लोगों को समझ में आये कि हमारी मूल अवस्था क्या है। इसलिये भैया! कदाचित् तू मन में विचार करके बैठा हो कि साधुओं को रहने का स्थान बनाना है, तो वहाँ 'संत' शब्द का प्रयोग मत करना, वहाँ 'मुनि परिषदी' लिख देना, श्रमणसंस्कृति भवन लिख देना। क्योंकि मुनि परिषदी शब्द का प्रयोग आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने 'सर्वार्थसिद्धि' ग्रंथ में किया है।

शब्दों का चयन ऐसा हो जिसमें हमारी संस्कृति परिलक्षित हो। आज हम बच्चों के नाम बेटी, पिंकी, चिंटू, पिंटू रख देते हैं। अरे ज्ञानी! पारस, महावीर, ऋषभ, अजित रखना।

कदाचित् पिता का अंतिम समय में राग लड़के पर आता और वह पारस नाम लेता, तो कम-से-कम भगवान् का नाम तो मुख से निकलता। कुछ नहीं है, प्रज्ञा को दिशा देने वाला चाहिये। दिशा बदलते ही दशा बदलता प्रारम्भ हो जाती है। मंदिर की दिशा जैसे ही पकड़ी, तेरे भावों की दशा बदलना प्रारंभ हो जाती है। इसलिये आजकल हे ज्ञानियो! जितने बड़े आदमी हैं, उतने ही छोटे आदमी हो चुके हो। बस, केवल किचिन और बाथरूम-संडाशय एकसाथ अटेच हैं। इनके परिणाम विशुद्ध हों तो कैसे हों? जिसकी क्षेत्रशुद्धि नहीं है, उसकी भावशद्धि कैसे होगी। समझ गये? यदि बनाने का विचार हो तो छोड़ देना। भवन बनाते समय इतना तो घ्यान रख लेता कि एक ऐसा तो कक्ष होता जहाँ पढ़ने का उचित स्थान होता।

ज्ञानी! अपनी स्वतंत्रता को निहारो। फल को भोगने तेरे साथ एक भी नहीं जायेंगे। अणु-अणु स्वतंत्र है, कण-कण स्वतंत्र है। इस बात पर लक्ष्य करो। मिले हैं, मिलते रहेंगे, पर मिल कोई नहीं पायेगा। विश्वास रखो, एक द्रव्य दूसरे द्रव्यभूत होता ही नहीं है, क्योंकि प्रत्येक जीव स्वतंत्र है। अंशवादी नहीं है, प्रत्येक आत्मा स्वतंत्र है। मैं किसी ईश्वर का अंश नहीं हूँ। प्रत्येक आत्मा स्वतंत्र है और प्रत्येक आत्मा का स्वतंत्र परिणमन है। गुरु का परिणमन गुरु में, शिष्य का शिष्य में, पिता का पिता में, पुत्र का पुत्र में, माँ का माँ में, बेटी का बेटी में। भ्रम को निकाल दो। कुछ अज्ञानी रागवश बोल पड़ते हैं, महाराजश्री! शरीर दो दिखते हैं, लेकिन आत्मा तो एक ही है।

हे अज्ञानी ज्ञानी ! तू क्या बोल रहा है कि आत्मा एक है और शरीर दो हैं? ऐसा कभी होता ही नहीं है। एक माँ के पेट में दो संतानें एकसाथ जन्म ले लें, तब भी दोनों स्वतंत्र ही होते हैं । न ही शरीर में दो आत्मा और न ही एक आत्मा दो शरीर हैं। एक शरीर में अनंत आत्मा होती अवश्य हैं। कब होती हैं? जब तू निगोद में जायेगा, तब एक में अनेक हो जायेगी, परन्तु फिर भी जीवों की सत्ता स्वतंत्र ही है। एक सिद्ध में अनेक सिद्ध भगवान् सिद्धालय में विराजते हैं, तब भी वे सभी स्वतंत्र ही हैं।

अण्णोणं पविसंता दिंता ओगासमण्णमण्णस्स।
मेलंता वि य णिच्चं, सगं सहावं ण विजहंति॥ 7 ॥ पंचास्तिकाय।।

इस गाथा को ध्यान में रखना। एक द्रव्य में दूसरे द्रव्य के मिले होने पर भी अपने-अपने स्वभाव का त्याग नहीं करते हैं। इसलिये आज से निर्णय करके जाना। मैं आपके वात्सल्य का अभाव नहीं करा रहा हूँ। वात्सल्य तो रखना, पर वात-रोग से पीड़ित न हो जाना। राग का वात न चढ़ जाये। वात्सल्य धर्मभूत होता है, राग पापभूत होता है। वात्सल्य में राग, स्नेह,

प्रेम नहीं होता है। उसमें तो मात्र धर्मानुराग होता है। इसलिये स्वयं के बारे में भी सोचना है। विश्वास रखना भइया! अपनी स्वतंत्र सत्ता का भान हो जाये, यही उत्कृष्ट ज्ञान है। इसलिये मार्ग और मार्ग के फल की बात करो।

मार्ग और मार्ग का फल। संकल्प शक्ति और उत्साह शक्ति। जब उत्साहशक्ति प्रबल होती है, तो मार्ग पर चलता है। मार्ग पर कब चलता है? जब संकल्पशक्ति होती है कि मुझे मंजिल को प्राप्त करना है। लक्ष्य पर संकल्प होता है। संकल्प के मार्ग पर उत्साह होता है। मार्ग पर उत्साह नहीं होगा तो लक्ष्य को प्राप्त कैसे कर सकेगा?

ज्ञानियो! "मग्गो मग्गफलं त्ति य" मार्ग जो है वह रत्नत्रय धर्म है। मार्ग का फल जो है, उसका नाम निर्वाण है। इसलिये हे मुमुक्षुओ! निश्चयनय मार्ग नहीं है, व्यवहारनय मार्ग नहीं है। परन्तु

जे णयदिठ्ठि विहीणा, तेसिं ण हु वत्थुरूवउवलद्धि।
वत्थु सहावविहूणा, सम्माइठ्ठी कहं हुंति ॥10॥ ल.न.च.॥

आचार्य देवसेन कहते हैं कि जो नयदृष्टि से विहीन हैं, उनको वस्तुस्वभाव की उपलब्धि नहीं है और जो वस्तुस्वभाव से विहीन हैं, वे सम्यग्दृष्टि हो नहीं सकते। इसलिये नय को तो जानना, न्याय के लिये जानना। नय में मत जानना न्याओं को। निश्चयनय अभेद का कथन करने वाला है। व्यवहारनय भेद का कथन करने वाला है। दोनों नयों को समझने की आवश्यकता है।

भैया! हड्डी के टूटने पर एक्स-रे मशीन के पास जाना पड़ेगा और यदि तुझे अपनी फोटो खिंचवाना है, तो कैमरेवाले के पास जाना पड़ेगा। ऐसे ही भो ज्ञानी! जो शुद्धात्मस्वभाव की व्याख्या है, भीतर की बात करोगे तो निश्चय में जाओगे और बाहर की बात करोगे तो व्यवहार में जाओगे। दोनों में से अनावश्यक कौन है? दोनों ही आवश्यक हैं। अपना-अपना विषय भिन्न-भिन्न है। इसलिये व्यवहार को व्यवहाररूप में और निश्चय को निश्चयरूप में देखिये, विवाद करने की आवश्यकता नहीं है। जो व्यवहार का लोप करता है, वह व्यवहारतीर्थ का शत्रु है और जो निश्चय का लोप करता है, वह निश्चयतीर्थ का शत्रु है, ऐसा अमृतचंद्र स्वामी ने 'समयसार' जी की 'आत्मख्याति टीका' में निबंधन किया है। इसलिये एक्स-रे है निश्चय दृष्टि, कैमरा है व्यवहार दृष्टि। पर विवाद दृष्टि भी नहीं है।

हे ज्ञानी! दाँयी भुजा तेरी कि बाँयी भुजा तेरी? दोनों भुजायें तेरी हैं। एक कोई ले जाये, तो तैयार है क्या? जैनियो! प्रेम से रहना सीखो। दाँयी भुजा भी तेरी होगी, बाँयी भुजा भी

तेरी होगी। निश्चय का अभाव करोगे, वह भी मेरा ही है। व्यवहार का अभाव करोगे, वह भी मेरा ही है। एक पुरुष की दो भुजायें हैं, ऐसे ही निश्चय-व्यवहार वीतराग शासन के कथन करने की दो शैलियाँ हैं। समाज में विखराव करके रख दिये हैं अहंकारी जीव ने। अपने मान की पुष्टि के लिये करते हैं। यह वही करते हैं जिनकी रोटियाँ सिकती हैं। जिनको वस्तुस्वरूप का ज्ञान होता है, वह यही कहते हैं कि मुझे वस्तुस्वरूप समझना है। न मैं निश्चय वाला हूँ, न व्यवहार वाला हूँ। मैं वस्तु के यथार्थ स्वरूप को जाननेवाला हूँ।

एक यथार्थ घटना आपको बताऊँ। विदिशा का नाम तो सुना होगा? बहुत मुमुक्षु जीव हैं। वहाँ एक पण्डित जी हैं। समझ गये आप? बहुत भद्रपरिणामी जीव हैं। 'छहढाला' पर बहुत व्याख्यान करते हैं। एक दिन मेरे पास आये, बोले, कुछ चर्चा करना है। मैंने कहा, कहो। बोले, मेरा ऐसा विचार है कि आप हम लोगों के साथ नहीं हो। मैंने कहा, ज्ञानी! कैसी बात कर रहे हो? मैं जगत् के सभी प्राणियों के साथ हूँ। तुमको मालूम होना चाहिये कि मैं अपनी देह के साथ नहीं हूँ, तो तेरे साथ क्या रहूँगा? मैं अपने शरीर को ही परिग्रह मानता हूँ। लेकिन पंडित जी! मैं किसी पक्ष में जाना पसंद नहीं करता हूँ। लक्ष्य मोक्षमार्गी है। मैं तत्त्व की व्याख्या तो करता हूँ, पर किसी पंथ में उलझना पसंद नहीं करता हूँ। यथार्थ मानिये। जहाँ मैं दीक्षित हूँ, उस संघ में हूँ। भारत में अन्य संघ हैं, मैं उन संघों में हूँ। मैं किसी भी संघ से बंधा मुनि नहीं हूँ। वस्तुस्वभाव स्वतंत्र है। किसी पंथ में बंध जाओगे तो खुलकर जिनवाणी की व्याख्या नहीं कर पाओगे क्योंकि वो जैसा कहेंगे वैसा बोलना पड़ेगा। फिर सत्य का व्याख्यान कैसे कर सकूँगा? जिसमें जो कमजारी होगी, वह उस बात को छिपाकर रहेगा। भैया! यदि कमजोरी स्वयं में हो, तो अपनी कमजोरी को बता देना, पर वस्तुस्वभाव तो यह है। आज यह बाचना अलवर के जैन भवन में नहीं, पर्वत की किसी चोटी पर सूर्य के सामने होनी चाहिये थी। मुझे विश्वास है कि ऐसी ही होनी चाहिये। पर यह मेरे शरीर की कमजोरी है। यह पंचमकाल का दोष है कि भवन में बैठ कर वाचना चल रही है। मुझे सत्य बोलना चाहिये।

निर्ग्रंथों को तो वनों में, जंगलों में, पर्वतों पर, नदी के किनारे रहना चाहिये। जंगलों में रहना चाहिये, लेकिन इस काल में निषेध है। निषेध ही है, क्योंकि उतनी सामर्थ्य नहीं है।

'पद्मनंदी पंचविंशतिका' में आचार्यमहाराज ने स्पष्ट कहा है। उत्तर गुणों की अपेक्षा मूलगुणों का पालन प्रधान होना चाहिये। इसलिये भवन में रहकर भी निज भवन में रहते हो। तो भवन 'भवन' में है, आप 'आप' में हो। जंगलों में रहने मात्र से जो कल्याण मानते हों, उन अज्ञानियों से कह देना कि तो बंदर भालू सबका कल्याण हो जाना चाहिये। जंगल में

भटकने से नहीं, अंदर में रहने से कल्याण होता है। इसलिये ध्यान रखना जीवन में, कभी इन विकल्पों में चले मत जाना कि मैं तो जंगल में रहूँगा। ज्ञानी! यदि साधना और निज के परिणामों को नहीं सम्हाल पाया, तो असमाधि को प्राप्त हो जायेगा। न जंगल में राग हो, न भवन में द्वेष हो।

ज्ञानी! भवन में रहने का त्याग कर दिया और भवन तेरे भीतर से नहीं गया, तो क्या गया? भवन में रहते हुये भी भवन तेरे में न रहना दोष नहीं है, भवन का तेरे में रहना दोष है।

ज्ञानी! अभी तू इतनी बढ़िया बुन्देलखण्ड की यात्रा पर गया था, पर घूम फिर कर अलवर आ गया। क्या वहाँ भगवान् नहीं दिखे? सिद्धक्षेत्र नहीं दिखे क्या? फिर भी लौटने का मन क्यों किया? पर ज्ञानी! तुझे भगवान् के साथ अलवर का मकान भी दिख रहा था। दिखता नहीं, तो लौटकर आ कैसे गया? इसलिये हे ज्ञानी! तू जंगल में होते हुये भी भवन में है, क्योंकि भवन तेरे भीतर है और निर्ग्रन्थ योगी जो होते हैं, वह भवनों में रहकर भी जंगलों में क्यों? भवन में तो हैं, पर भवन उनके भीतर नहीं हैं। मेरा कोई मकान नहीं है। जब मुनि के नाम पर भवन बनने लग जाते हैं तो वह कदाचित् निज भवन से दूर हो जाते हैं। आप भगवान् के नाम का भवन बनाओ। जब छोड़कर ही आये हो, तो जुड़ने की क्या आवश्यकता? इसके लिये भी ताकत चाहिये। संकल्पशक्ति और उत्साहशक्ति, दो शक्तियाँ चाहिये। कुछ नहीं, आनंद निष्पृहता में है, वह आनंद अष्पृहता में नहीं है। निज से लगाव करना प्रारंभ कर देगा और किसी से लगाव नहीं करेगा, तो तुझे कुछ भी नहीं लगेगा।

ज्ञानियो! किसी को भूत लग जाये, तो एक ही पर्याय में सताये। भूत लग जायें तो कोई मंत्र-तंत्रवादी उतार दे। भूताविष्ट को तो शीघ्र ठीक किया जा सकता है, पर मोहाविष्टो! तुमको मोह का भूत कबसे लगा है जो आज तक नहीं उतर रहा है?

हे मुमुक्षुओ! भूत तो हर समय नहीं, कभी-कभी ही सताता है, पर मोह का भूत तो तुझे हर समय सताता है।

ज्ञानी! मोह का भूत कौन उतारेगा? कीचड़ होता किससे है? पानी से। घुलता किससे है? पानी से।

जलेन जनितं पङ्कं, जलेन परिशुद्ध्यति।
चित्तेन जनितं पापं, चित्तेन परिशुद्ध्यति।।

मन से ही पाप होता है, मन से ही धुलता है। दुनियाँ धोने नहीं आयेगी। श्लोक पढ़ लो-

कषायकलुषो जीवः, रागरञ्जितमानसः।
चतुर्गतिभवाम्बोधौ, भग्ना नौरिव सीदति।। 31 ।।

मुमुक्षुओ! कषायों से कलुषित जो जीव है, जिसका मन राग से रंजित है, चर्तुगति रूपी महासमुद्र से पार होना चाहता है। जैसे टूटी नौका में बैठा दु:खी होता है, ऐसे ही जो जीव चर्तुगति संसार से पार होने के लिये चल दिया और विषय-कषाय को छोड़ नहीं पाया, ऐसे ही वह दु:खी होता है। जैसा टूटी नौका को भी धारण कर लिया, फिर भी प्रपंच का त्याग नहीं किया, कषायों के छेद लगे हुये हैं, उस नौका में बैठकर दु:खी ही होगा। मोक्षमार्ग में प्रसन्न वही रह पायेगा, जो ज्ञानी निज परिणामों में राग-द्वेष से रहित होगा। अन्यथा यहाँ भी लालसा के साथ दु:ख ही मिलेगा।

यह सत्य है कि जिम्मेदारी सौंपने पर आदमी बंध जाता है। आनंद का जीवन तो पर की जिम्मेदारी से शून्य होने पर है। जो है, सो है।

'**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।**' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

कर्मबन्ध का कारण

कषायवशगो जीवो, कर्म बध्नाति दारुणम्।
तेनाऽसौ क्लेशमाप्नोति, भवकोटिषु दारुणम् ॥ 32 ॥

कषायों के वशीभूत हुआ यह जीव कर्मों का तीव्र बन्ध करता है और उस कर्म के कारण ही करोडों भवों में घोर क्लेशों (दु:खों) को प्राप्त होता है।

संसार एवं मोक्ष का बीज

कषायविषयैश्चित्तं मिथ्यात्वेन च संयुतम्।
संसार बीजतां याति, विमुक्तं मोक्षबीजताम् ॥ 33 ॥

कषाय, विषय और मिथ्यात्व से संयुत [मलिन] चित्त संसार का कारण है और इनसे विमुक्त मन मोक्ष का कारण है।

॥ देशना ॥

अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी 'सारसमुच्चय' जी में जीव की विभाव दशा से स्वभाव दशा की प्राप्ति के उपाय की व्याख्या कर रहे हैं। दृष्टि को निर्मल करने की आवश्यकता है, वस्तु पर जोर देने की आवश्यकता नहीं है। और ध्रुव सत्य है कि जिसकी दृष्टि सहज हो चुकी है, उसको अपने आप में सम्पूर्ण अवस्थायें स्वयं की दृष्टिगोचर होना प्रांरभ हो जाती हैं। जब-जब जीव के अंतस् में रत्नत्रय धर्म प्रकट कराने की भावना जागृत होती है, तब-तब अपने काषायिक भाव के उपशमन कराने मात्र पर ही होती है। गर्मी शांत होते ही व्यक्ति का विवेक जाग्रत होने लगता है। उस उष्णता को देखना है, उस गर्मी को देखना है, वह किसी भी कषाय की गर्मी हो। तन गरम हो जाता है, तो मन कितना गरम होगा? और जिसका मन गरम है, उसका चैतन्य कितना गर्म होगा? ध्यान से समझना। यदि हृदय शांत है, चित्त शांत है, तो शरीर पर हाथ रखकर देख लेना, ठण्डा है। जिसके अंतस् में विकारों का जन्म हो चुका है, काषायिक भाव का जन्म हो चुका है, तो स्वयं के शरीर पर हाथ रख कर देख लेना, आपका शरीर गर्म हो चुका है। यह गर्मी कहाँ से आयी? अंदर के सन्ताप से ताप होता है।

ज्ञानियो! निहारिये, क्रोध के आते ही रक्त लाल दिखना प्रारम्भ हो जाता है। नयन रक्तमय हो जाते हैं। नाक के नथुने फड़फड़ाने लगते हैं। होठों को डसने लगता है। शरीर काँपने लगता

है, जैसे किसी ने मदिरा का पान किया हो। मदिरापायी की जो दशा होती है, वही कामी, क्रोधी की दशा होती है। कोई शरीर में शूल चुभाये तो व्यक्ति के एक अंग में दर्द होगा, परन्तु काषायिक भाव के शूल चुभने पर सर्वांग से दु:खी होता है। चिंता सता रही हो तो रात्रि के समय तुझे विशेष-से-विशेष वस्त्र, सुंदर-से-सुंदर पलंग, गद्दा, तकिये के होने पर भी शांति नहीं मिलती, करवट बदल रहा है। लेकिन निद्रा क्यों नहीं आ रही है? जिसकी साता की नींद भंग हो जाती है, उसकी आँखों की नींद भी भंग हो जाती है। बिना साता के शांति की नींद नहीं आ सकती है।

हे पुरुष! असाता को बुलाने वाला कोई बाहर का पुरुष नहीं है,तेरा ही परिणमन है। जीव काषायिक भाव में भी आनंद लेता है और चिंतवन चलता जा रहा है। जैसे-जैसे खोटा चिंतन चलेगा, वैसे-वैसे स्वयं व पर के घात का परिणाम होगा। कषायी पहले परघात का परिणाम रखता है। जब परघात की शक्ति नहीं होती है, तो स्व का ही घात कर बैठता है। कषाय का उद्गम जब भी तेरे अंतस् में होता है, तब किसी परवस्तु का आलम्बन होता है और तू स्वयं के भीतर कषायों को जन्म दे रहा होता है।

हे ज्ञानी! परवस्तु पर ही रहेगी, लेकिन तू उस कषाय से युक्त होकर निज का विघात कर लेगा। चारों कषायों पर दृष्टि करना। मार्ग में किसी के भवन पर तेरी दृष्टि पड़ गयी। उसे देखकर तू सोचने लग गया कि ये इतना पैसे वाला कब से हो गया? हे ज्ञानी! ईंट-चूने के भवन को देखकर तेरी दृष्टि कहाँ पहुँच गयी? जितने क्षण तू उसे निहार रहा था, उतने क्षण तेरे ज्ञान में वह ज्ञेय जो बन रहा था, वह ईंट और चूना था। जिस भगवान्-आत्मा को निज भगवत्ता निहारने का समय था, उस समय तेरा ज्ञेय क्या बन रहा था?

जिसके ज्ञान में जिनदेव झलकते हों, जिनवाणी झलकती हो, निर्ग्रन्थ गुरु विराजते हों, उनमें कोई अन्य कैसे रह सकता है ? अहो मुमुक्षु! जिस थाली में श्री लिख करके अर्हंत की प्रतिमा को विराजमान करता हो, उस थाली पर किसी और को बिठाया जा सकता है क्या? जिस थाली पर श्री लिखकर श्रीजी को विराजमान कर रहे हो, उस धातु की थाली पर भी, कोई ऐसा अभागा पुरुष नहीं होगा जिसके कि घर का कचरा भराकर उसमें रखकर बाहर फेंकने जायेगा। अज्ञानी भी होगा तो उस थाली को उठाते देख चीख पड़ेगा—'अरे भाई! ठहरिये! इसमें श्रीजी का अभिषेक हुआ है, इसमें तू कचरा क्यों फेंक रहा है?'

हे ज्ञानी! तेरे ज्ञान में जिनदेव ज्ञेय बने हों, जिनवाणी ज्ञेय बनी हो, निर्ग्रन्थ गुरु ज्ञेय बने हों, उस ज्ञान में विषय-कषाय की राग-रमणियाँ कहाँ आ रही हैं? यह तो अर्हंत के विराजमान होने की थाली में कचरे को भर रहा है। मैं यूँ कह रहा हूँ, कोई पाप के त्याग की बात नहीं

कह रहा हूँ। सिर्फ इतना कह रहा हूँ कि अपने ज्ञान में किसी अन्य को ज्ञेय मत बनाइये। जब अन्य ज्ञेय नहीं बनेगा, तो विश्वास रखना, तेरे से अन्य कोई पाप हो ही नहीं सकता है। समझने का प्रयास करो। दर्पण के सामने जैसा बिम्ब आता है, दर्पण में वैसा ही प्रतिबिम्ब आता है। तेरे ज्ञान में जैसा ज्ञेय आयेगा, वैसा ही तेरे ज्ञान का परिणमन होगा। जैसे एक मोटरसाइकिल के दोनों तरफ कांच लगे होते हैं। उद्देश्य क्या है? वह चेहरा देखने को तो है, पर स्वयं का नहीं, पीछे कौन आ रहा, उसे देख लूँ। उन ज्ञेयों को तो तू दर्पण में निहार रहा है। हे ज्ञानी! अपने ज्ञान को दर्पण बना लो और अपने भावों को ज्ञेय बना लो। ज्ञानी! आप इतने छोटे वाहन में भी पीछे का देखने के लिये दर्पण लगाये हो, क्यों? कहीं दुर्घटना न घट जाये। पीछे से आने वाले अन्य वाहन का प्रतिबिम्ब उसमें झलकता रहे, जिससे कि मैं सुरक्षित रहूँ। दूसरे का टकराव मेरे में न हो जाय।

हे मुमुक्षु! ऐसे ही अपने निर्मल ज्ञान को दर्पण के समान स्वच्छ करके निहार, कि मेरे ज्ञान में विषयों के वाहन न आ जायें, पापों के ज्ञेय न आ जायें। यदि पापपंक के ज्ञेय मेरे ज्ञान में आ गये, तो मेरी मोक्षमार्ग में दुर्घटना घट जायेगी और मेरा मार्ग लक्ष्य तक नहीं पहुँच पायेगा और मैं दुर्गति को प्राप्त हो जाऊँगा। लोग पूछते हैं कि सामायिक में क्या करूँ? सामायिक में कुछ नहीं करने का, मात्र अपने ज्ञान में आने वाले ज्ञेयों को जानिये और उनको पहचानिये और जैसे दर्पण में पीछे से आने वाला वाहन झलकता है, आप अपने वाहन को तुरंत किनारे कर लेते हो, ऐसे ही हे ज्ञानी! अपने ज्ञान के दर्पण में आने वाले काषायिक विभाव-भावों के बड़े-बड़े वाहनों को देखकर अपने परिणामों को धीरे-धीरे से एक किनारे कर लेना और इस विकारी-भाव के ज्ञेय को निकल जाने देना। उसको ज्ञेय मानकर देखना, हेय मानकर देखना, उसको उपादेय मानकर स्वीकार मत कर बैठना।

भैया! कितना भी बड़ा वाहन हो, तू किनारा कर देगा, तो वो तेरा कुछ नहीं बिगाड़ पायेगा। रास्ता छोड़ दो। सम्यग्दृष्टि जीव परज्ञेयों का नाश नहीं करता, न कर पायेगा। तत्त्वज्ञानी जीव परज्ञेयों से भागता नहीं है, घबराता नहीं है, नशाता भी नहीं है। परज्ञेयों से निज ज्ञाता को भिन्न कर लेता है।

जब तक इस विषय का बोध नहीं है, तब तक सोचना पड़ेगा। जिनदीक्षा धारण करके भी यदि इस विषय पर लक्ष्य नहीं किया, तो जीव ने अपने चारित्र की अनुभूति का कोई वेदन ही नहीं किया। ज्ञान को निहारिये और ज्ञान से निहारिये, ज्ञान के लिये निहारिये, ज्ञान में ही निहारिये। अन्य को अपादान कर दीजिये, पृथक् कर दो। मेरे लिये कोई भी अशुभ करना चाहता है, वह उसका सोच है, पर मेरा अशुभ उसके सोच से नहीं, मेरे अशुभ कर्म के उदय

से होगा। मेरा कर्मोदय अशुभ नहीं है, मेरा सुकृत चल रहा है, तो जो अशुभ सोच रहा है वह अशुभ सोच ही पायेगा, अशुभ कर नहीं पायेगा।

हे लंकेश! तू राम को मारने के परिणाम तो कर पायेगा, लक्ष्मण के वाण से मारा तू ही जायेगा। हम तो जिनवाणी पर चिंतन करनेवाले हैं। चाहे वियावान जंगल हो या महल अटारी हो, सब में आनंद का जीवन जीयो। विश्वास रखो, यमराज भी पराधीन होता है। आज तो आप निडरता की बात करो। मुझे मृत्यु से भी डर नहीं, आप लोग आश्चर्य करोगे, आपको है। क्यों? हे मृत्यु! तू मेरे आयुकर्म के नाश पर आयेगी, इसके पहने तू मेरा कुछ भी नहीं कर पायेगी। तू ध्यान रख, जो आयुकर्म है, तू उसे ही क्षीण कर पायेगी, पर मेरी अजन्मा भगवान्-आत्मा का तो कुछ भी नहीं कर पायेगी। मृत्यु से वे डरें, जो जीवन को अपना मानें। जब मैं अपने जीवन को ही अपना नहीं मानता हूँ, तो मृत्यु से डरने की आवश्यकता क्या है? किराये के घर में होने पर उसकी दीवाल खिसक जाये तो तुम टेंशन नहीं लेते हो। जो किराये के भवन को अपना मान बैठे, उसे तो रोना ही है।

पुण्य के द्रव्य से वर्तमान की पर्याय मुझे किराये पर प्राप्त हुयी है। मुझे मालूम है मेरा पुण्य का द्रव्य। शाश्वत सुरक्षित अपने आप को रखो। ये भवन गिरेगा, तो दूसरा मिलेगा, इससे और-अच्छा मिलेगा। आपको विश्वास है क्या? मुझे तो है। अगली पर्याय मनुष्य की तो होना ही नहीं है, देव की होना है और वैक्रियक शरीर मिलेगा। यह तो सड़ा शरीर है। यहाँ तो बैठ कर मात्र सोच पाता हूँ कि विदेह में विराजे सीमंधर स्वामी कैसे समवसरण में विराजे होंगे और अन्य जीव कैसे दिव्यदेशना सुन रहे होंगे। ज्ञानी! अगली पर्याय को निहारिये।

भगवान् की प्रतिमा के सामने जाकर सबसे पहले उनके आज्ञाचक्र, विशुद्धि चक्र को निहारिये। अच्छे से देखते रहना। विश्वास रखना, एक ऐसी शक्ति का संचार होता है, चित्त प्रसन्न हो जाता है और चित्त की प्रसन्नता ही बुद्धि का विकाश है। जिसका चित्त प्रसन्न नहीं है, उनकी बुद्धि भ्रष्ट होती है। इसमें शंका नहीं करना। प्रयास करो, प्रयास करो कि चित्त प्रसन्न रहे। हँसने का नाम प्रसन्न रहना नहीं है। अट्टहास काषायिक भाव है। अह्लाद तनावमुक्त जीवन है। जिनको बुद्धि का विकास चाहिये, वे चित्त को प्रसन्न रखें। आप विश्वास रखना, जिसका चेहरा पहले से ही लटका दिख जाये, एक दूसरे की वर्गणायें प्रभाव छोड़ती हैं। तो जिनके चेहरे लटके हों, उनका चेहरा देखना ही नहीं। सुबह से प्रभू को ही देखने क्यों जाना? इसलिये देखने जाना। चित्त होता, तो प्रसन्न होता। जिसके चित्त का ही अभाव हो गया है, वे परम कैवल्य को प्राप्त हो गये हैं। उनका चेहरा विषाद को प्राप्त हो ही नहीं सकता है। इसलिये सबसे पहले उठकर जिनबिम्ब को निहारना चाहिये।

'सुप्तोत्थितेन सुमुखेन सुमङ्गलाय।' वे जीव परम पुण्यात्मा हैं, जिनके भवन जिनालय के पास हैं। जगते ही सबसे पहले जिनमंदिर के दर्शन करते हैं। इसलिये भैया! सुबह से दुनियाँ को मत देखना, सबसे पहले उठकर अर्हंत को देखना। जिनके भवन मंदिर के पास हों,उठकर सीधे मंदिर न जा पायें, तो सबसे पहले जिनालय को नमस्कार कर लेना।

'दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भवतापहारि।' जिनेन्द्र के भवन के दर्शन मात्र से भव के ताप का हरण होता है। जो मंदिर के पास में रह रहे हैं, तब भी उनके हाथ नहीं जुड़ते हैं, वे तो अभागे हैं। नारियों को हाथ जुड़ जायेंगे, पर जिनदेव को हाथ नहीं जुड़ते।

ज्ञानियो! वस्तुस्वभाव समझो। जो जाननेयोग्य द्रव्य है, वह ज्ञेय है। परज्ञेयों को छोड़कर निज ज्ञेय को जानो। ज्ञेय यानि जाननेयोग्य द्रव्य। ज्ञाता यानि जाननेवाला मैं। ज्ञेय यानि पदार्थ। स्वपदार्थ, परपदार्थ। इसलिये निज ज्ञेय को समझो, परज्ञेय को छोड़ो। परज्ञान परज्ञेय से भिन्न जो परिणमन है, यही आत्मा की शुद्ध दशा है। कालचक्र कह रहा है कि किसी को मालूम हो या न हो, मुझे आपकी एक-एक क्षण की बात मालूम है।

ज्ञानी! टी.वी. कैमरा तो असफल हो जाय, पर अर्हंत के कैवल्य का कैमरा कभी असफल नहीं होता है। उनके ज्ञान में सब झलकता है कि तुम कहाँ क्या कर रहे हो। कालचक्र कहता है कि तुमको याद हो या न हो, जब आदिनाथ थे, तब भी तुम थे और जब महावीर थे, तब भी तुम थे। जब तुम सिंह की पर्याय में थे, तब भी मैंने तुमको देखा और जब तुम नरक पर्याय में थे, तब भी मैंने तुमको देखा; क्योंकि जगत् के सारे चक्र टूट जायें, पर कालचक्र तो अमर होता है।

समय सबको देख रहा है। हे मुमुक्षु! आप समय पर समयसार को देख लेते तो आज तुम भी समयसार बनके बैठे होते सिद्धालय में। अब क्या करें, तुमने परज्ञेयों को देखा। निजज्ञेय को निहार लेता, तो हे ज्ञाता! आज कैवल्य प्रकट हो गया होता।

हे ज्ञानी! जैसे किसी को 100 का नोट दिया। वह कहता है कि तेरे पुण्य में इतना द्रव्य है, जैसे उपयोग करना चाहे, कर सकता है, कोई तुझे मना करने वाला नहीं है। ऐसे ही आयुकर्म कह रहा है, तन व मन कह रहा है कि इस समय मैं तेरे हाथ में हूँ, तू जैसा मेरा उपयोग करना चाहे, वैसा कर ले। यदि तू वेश्यालय, मदिरालय जायेगा, तो तेरी दुर्गति होगी और यदि जिनालय जायेगा, तो तेरी सद्गति होगी। अब तेरे हाथ में है, जो करना चाहे वो कर ले। इसलिये वे अज्ञानी लोग हैं जो कहते हैं कि शरीर वश में नहीं है। ज्ञानी! तू ही तेरे वश में नहीं है, शरीर तो वश में है। कहने को लोग कहते हैं कि भैया! हम तो गाड़ी में आये हैं। पर गाड़ी में नहीं आये, तुम गाड़ी को लेकर आये हो। ज्ञानी! चला कौन रहा था? मस्तिष्क में जिनालय

था, तो उसकी स्टेरिंग जिनालय की ओर मुड़ गयी। मस्तिष्क में दूसरा स्थान होता तो वहाँ मुड़ गयी होती। गाड़ी तुझे लेकर नहीं आयी, तू गाड़ी को चलाकर आया है।

ज्ञानियो! यंत्र का चालक जैसा चाहे वैसा यंत्र चलता है। यह शरीर भी एक यंत्र है। इसमें बैठा चालक भगवान्-आत्मा है। जैसा चलाना चाहे, वैसा शरीर को चलना पड़ता है। इसलिये शरीर को दोष मत दो, अपनी परिणति को दोष दो।

कषाय विषयैश्चित्तं मिथ्यात्वेन च संयुतम्।
संसारबीजतां याति, विमुक्तं मोक्षबीजताम्॥ 33॥ सा.स.।।

आचार्यभगवन् कह रहे हैं कि जिसका चित्त कषाय, विषयों और मिथ्यात्व से युक्त है, यही संसार का बीज है। कोई और संसार में रुलानेवाला नहीं है। निज का ही चित्त विषय, कषाय और मिथ्यात्व में जा रहा है, यही संसार का हेतु है। जिस जीव का चित्त विषय, कषाय, मिथ्यात्व से रहित है, वही मोक्ष का बीज है।

बस, इतना सुंदर उपाय बता दिया। कुछ भी नहीं करना है। मार्ग नहीं बदलता है, न ही मार्ग बनाना है। आपको तो मात्र स्टेरिंग घुमानी है। मात्र दिशा बदलना है, जो तेरे हाथ में है। दशा बदलना फिर सहज है। दिशा जो बदल लेता है, उसकी दशा निश्चित बदल जाती है। अपने विषय, कषाय, मिथ्यात्व की दिशा बदल दो। ज्ञानी मोक्षमार्ग की दिशा में लग जायेगा तो मोक्ष-मंजिल नियम से प्राप्त होगी।

जाओ, आज अपने घर में बैठकर चिंतन करना कि मार्ग बदलना है या कि अपना स्टेरिंग घुमाना है? ज्ञानी! वस्तु नहीं, दृष्टि बदलना है। वस्तु बदलने का प्रयास मत करो, दृष्टि बदलने का प्रयास करो। जो दृष्टि बदल लेता है, उसकी दृष्टि निश्चित बदल जाती है।

'**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।**' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

कषाय के अभाव का फल

कषायरहितं सौख्यं, इन्द्रियाणां च निग्रहे।
जायते परमोत्कृष्टमात्मनो भवभेदि यत् ॥ 34 ॥

इन्द्रियों का निग्रह करने से आत्मा को परमोत्कृष्ट, कषायरहित, वीतराग आनन्द उत्पन्न होता है, जो संसार का छेदक है।

॥ देशना ॥

अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी भूतार्थ दशा और अभूतार्थ दशा दोनों की व्याख्या युगपद् कर रहे हैं। जो कर्मातीत दशा है, वही सत्यार्थ अवस्था है। कर्मातीत दशा को आच्छादित किये हैं कर्म, ये अभूतार्थ दशा है। भूतार्थ की प्राप्ति का लक्ष्य भी स्व के अंदर ही है। अभूतार्थ की लीनता भी स्व के अन्दर ही है। तटस्थ दशा पूर्णसत्य दशा है। और सत्य का बोध भी वही कर पायेगा, जो तटस्थ होकर जीवन प्रारम्भ करेगा। किंचित् भी अपने आप को मध्यस्थ भाव से जो निहार लेता है, उसे सत्य का बोध होना प्रारम्भ हो जाता है। और जब तक काषायिक भाव में बहते रहोगे, तब तक सत्य का बोध हो नहीं सकता। गंभीर-से-गंभीर अवस्था में भी जब भी शांति की अनुभूति होगी, मध्यस्थ भाव से ही होगी। कितने ही झंझावात हों, काषायिक परिणाम हों, लेकिन एक समय ऐसा आता है कि व्यक्ति को अपने आप में शांत होकर निर्णय लेना ही होता है। विषमतायें दीर्घ समय तक नहीं रहती हैं। तीव्र उद्वेग परिणाम ज्यादा समय तक नहीं रहते। विवेकहीन परिणाम भी दीर्घ समय तक नहीं रहते।

आवेश के परिणाम का भी समय है, क्योंकि उनकी उम्र अधिक नहीं है। जिनते आवेशित परिणाम हैं, उनकी उम्र बहुत कम है। आवेश परिणामों की उम्र तो कम होती ही है, पर आवेशी पुरुष की उम्र भी कम हो जाती है। इस विशेष बात को समझना जैसे विष के भक्षण से अपघात होता है। विष के भक्षण से अपघात कर लेना, नदी में कूद कर प्राण छोड़ देना, अस्त्र -शस्त्र के द्वारा अपघात कर लेना, इस बात को जानने-समझने वाले संसार में बहुत जीव हैं, लेकिन निज के परिणामों की संक्लेषता से भी अपघात होता है, इस बात को भी समझिये।

संक्लेश परिणामों से आयु का क्षय होता है। विष की वेदना से, हिमपात से, आहार के निरोध से, अग्नि, वज्र आदि के निमित्त से और निज के संक्लेश परिणामों से आयु का क्षय होता है। किसी ने जहर खाया नहीं, अस्त्र से मरा नहीं, अचानक मृत्यु हो गयी, क्या हुआ? हृदयघात हो गया है। हृदयघात क्यों होता है? संक्लेश परिणामों से।

हे ज्ञानी! असमय में तेरे जाने से परिवार की व्यवस्था तो भंग होती है, परन्तु तेरे परिणामों की व्यवस्था भंग होने से तेरे भविष्य की आयु की व्यवस्था भंग हो चुकी है। यह मत सोचना कि अत्यंत खुशी के क्षणों में अपघात होगा तो अच्छी गति हो जायेगी। आप इतने दिन से सुन रहे हो। क्रोधकषाय तो कषाय है ही, हास्य भी कषाय है। और आप कुपित भाव मात्र को संक्लेषता मानते हो, हर्षभाव को संक्लेष्ता नहीं मानते हो।

हे ज्ञानी! पानी के अंदर पत्थर फेंको तो स्थिर पानी में हलचल पड़ जाती है। मिट्टी का ढेला फेंको, हलचल पड़ेगी कि नहीं पड़ेगी? मिट्टी का ढेला तो फिर भी कठोर है, आप तो गुलाब का फूल पानी में जोर से फेंक देना, पानी में हलचल होगी कि नहीं? इतने सामान्य उदाहरण देने की आवश्यकता क्या है? आपको समझ में आना चाहिये कि बात क्या है। सारे लोक में चित्त को प्रसन्न करने की बात कही जाती है और आनंद के साथ इन्द्रियसुख मिले, सारी व्यवस्था उसी में चल रही है। जिस ओर भी निहारो, हर व्यक्ति का उपक्रम यही चल रहा है कि इन्द्रियदुःख की अनुभूति न हो। अब तो मुझे आश्चर्य होता है कि जो इन्द्रियसुख के त्यागी हैं, वे भी इन्द्रियसुख के लोभी लोगों को सुख के साधन उपलब्ध करा रहे हैं। यदि तू मुनिराज बनके यह सोचता है कि मैं एक बहुत बड़ा मेडीकल कॉलेज खोलता हूँ, तो हे ज्ञानी! तू इन्द्रियसुख को छोड़ कर आया है और मुझे विश्वास है कि तू दिगम्बर मुनि है तो मेडीकल कॉलेज में उपचार कराने नहीं जायेगा, तो तूने खुलवाया क्यों है? जगत् के जीव स्वस्थ रहेंगे, पर वहाँ हड्डी मांस से मिश्रित औषधियों का सेवन करेंगे, तो तेरे महाव्रत का नाश होगा। तुझे ऐसा व्याख्यान करना चाहिये था, ऐसा तत्त्व पिलाना चाहिये था, जिससे मानसिक रोग शान्त हो जाते, तो उसके शारीरिक रोग तो अपने आप शांत हो जाते। जिसके मानसिक रोग ठीक नहीं हो रहे हैं, उसके शारीरिक रोग तीनकाल में ठीक नहीं होंगे। मानसिक रोग को ठीक करने की कोई औषधि है, तो मात्र तत्त्वदेशना है, अर्हंत की देशना है। चित्त को प्रसन्न करने का पुरुषार्थ मत कीजिये, चित्त को पवित्र करने का पुरुषार्थ कीजिये। चित्त यदि पवित्र हो जायेगा, तो प्रसन्न अपने आप ही हो जायेगा। चित्त की पवित्रता की खोज करनी चाहिये। सर्वत्र दृष्टि फेंकिये, लोक में आज देहसुख मात्र की बात हो रही है, आत्मपरिणामों के सुख की बात नहीं हो रही है। यहाँ कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं अहो ज्ञानियो!

देह के सुख की व्यवस्था जगत् में सर्वत्र है, लेकिन आत्मा को स्वस्थ रखने की व्यवस्था पर दृष्टि कीजिये।

ध्यान शिवर में एक श्रावक आया, बोला, महाराज श्री! मैं तो बैठ नहीं सकता हूँ क्योंकि मुझे बार-बार लघुशंका जाना पड़ती है। अशुद्धि हो जाती है। मैंने कहा कि आप एक काम करो, दूर बैठ जाओ, अन्य किसी का स्पर्श मत करना। आप वहीं से ध्यान करना। दूसरे दिन कहता है कि अब अंदर बैठ जाऊँ? मैंने पूछा, क्यों? बोले, मैं तो बिल्कुल गया ही नहीं, अशुद्धि हुयी नहीं। उसको वो शिविर वरदान के रूप में फलित हो गया, उसका बरसों का रोग ठीक हो गया। क्यों ठीक हो गया?

जब यह जीव बायें स्वर से श्वास लेता है, तब शीतलधर्मी है। जब दायें स्वर से श्वास लेता है, तो उष्णधर्मी है। भोजन का पाक सूर्यनाड़ी पर हो, प्रभू का नाम चंद्रनाड़ी पर हो। इस जीव के अंतस् की श्वासें बढ़ जाती हैं, जब वह या तो भयभीत हो या काम से भरा हो, क्रोध से भरा हो, मान या लोभ से भरा हो। आप निहारना, आपकी श्वासें दीर्घ हो जायेंगी। जितना शांतचित्त हो, श्वासें उतनी मंद हो जायेंगी। श्वासें मंद कब होंगी? जब काषायिक भाव मंद होगा। श्वासों से कुछ नहीं होगा, श्वासों से बोध होगा कि कषाय की मंदता है या तीव्रता है। अन्य दर्शनों ने भी स्वरविज्ञान की व्याख्या की है, पर उन्होंने पूरा-का-पूरा स्वरविज्ञान पर ही छोड़ रखा है, क्योंकि उनके पास सिद्धांत नहीं था। जिनके पास सिद्धांत नहीं था, उनने नोकर्म की व्याख्या करके छोड़ दिया, कर्म की व्याख्या नहीं की। द्रव्यकर्म की व्याख्या के साथ भावकर्म की व्याख्या भी करना चाहिये थी। आगम से लोगों ने एक-एक बात को पकड़ा, पर सम्पूर्ण नहीं पकड़ सके। जैनाचार्यों ने उसे विभाग में बाँट दिया। नोकर्म, द्रव्यकर्म, भावकर्म।

एक भयानक दृश्य देखा। उसे देखते ही तुझे डर लगा, भयभीत हो गया। उस समय देखना, तेरी श्वासें बढ़ चुकी हैं। समझ रहा है। एक कह रहा है कि द्रव्य के देखने से डर लगा है, दूसरा कह रहा है कि इसमें कमजोरी है। पर इतना कहने से काम नहीं चलेगा। और भी कुछ है। डरता वह है, जो कमजोर होता है; परन्तु जो वीरपुरुष है, वह भयभीत नहीं होता है। भय संज्ञा की उदीरणा यह द्रव्यकर्म बोल रहा है। भयानक द्रव्य दिखा है, यह नोकर्म है और अंतरंग में विशुद्धि का अभाव हुआ है। और ज्ञानी! भयकषाय भावकषाय रूप में परिणत हुयी है। यह आपका भावकषाय भी साथ में है। डर लगा है, इसमें आपका बहुत सारा घाटा हो चुका है। भय उत्पन्न होते ही आप किसी दूसरे उपक्रम की खोज करोगे कि मेरी रक्षा कैसे हो? इसके लिये आपके हाथ में अस्त्र आ गया। हिंसक परिणाम हो चुके

हैं। कंपित हो चुके थे। आत्मप्रदेशों में स्पंदन हो चुका था तो तीव्र कर्मभाव हुआ, योग चंचल हो गया।

कायवाङ्मनः कर्मयोगः। स आस्रवः। (6/2 त. सूत्र)

मन, वचन, काय से आत्मप्रदेशों में जो परिस्पंदन हुआ है, वह योग है। उसी योग से आस्रव हुआ है। अब उपयोग क्या चल रहा है? उपयोग की धारा क्या है? अशुभ, शुभ। यह भयभीत द्रव्य किसने किया? ऐसा भाव तुम्हारे मन में आया और एक भिन्न पुरुष के प्रति अशुभ उपयोग चला गया, उसे मारने के परिणाम हो गये। तो अशुभ ही बंध होगा। संक्लेश परिणाम तीव्ररूप में चल रहे हैं, इसी काल में नहीं सम्हाल पाया, अचानक और संक्लेशता में चला गया तो धक्का लगा, स्वयं का ही अंत हो गया। कर्मसिद्धांत कहेगा कि संक्लेश परिणामों से आयु की उदीरणा हो गयी और मृत्यु हो गयी। अब तुम नोकर्म को कितना ही निहारते रहो। नोकर्म निमित्त बन गया, लेकिन भावकर्म की संक्लेशता और द्रव्यकर्म की हीनता ने आपकी पर्याय से आपको विदा कर दिया। श्वास के क्षय होने से, श्वास के निरोध करने से आयुकर्म का क्षय होता है। संक्लेश परिणामों से भी होता है। किसी पर करुणा हो या न हो, पर स्वयं की रक्षा के भाव तो होना चाहिये। बंध में आत्मरक्षा के परिणाम तो होना चाहिये। जो हो रहा है, उसे होने दो। वह सब सहज हो रहा है। स्वयं की रक्षा के भाव आ रहे हैं, तब भी संक्लेशता है। पर की रक्षा के भाव आ रहे हैं, तब भी संक्लेशता है। जब रक्षा के भाव में संक्लेशता है, तो अरक्षा के भाव में विशुद्धि कैसे होगी? आत्मरक्षा के भाव में संक्लेशता नहीं होगी और देह-रक्षा के भाव होंगे तो नियम से संक्लेशता होगी।

अहो ज्ञानी! कपड़े उतारने में ठण्डी लगती है कि नहीं? यदि तेरे कपड़े खोल दिये जायें, तो तू अभी परेशान हो जायेगा। जो देह की रक्षा के लिये बैठे हैं, वे संक्लेशी होंगे-ही-होंगे। पर जो आत्मरक्षा के लिये बैठे हैं, वे बुद्धिपूर्वक कपड़े खोलकर बैठे होंगे, क्योंकि कपड़े पहनना संक्लेशता है। कपड़े उतारना, उनको धोना, सब संक्लेशता है। घोर हिंसा।

ज्ञानियो! तुम जितने सहज होते जाओगे, उतने ही आनंद में डूबते चले जाओगे। इसलिये हल्के हो, हल्के हो, हल्के हो। पतंग ऊपर की ओर क्यों जाती है जबकि नीचे से उड़ाता है? उड़ती ऊपर की ओर है। भवन की 7वीं मंजिल से पत्थर को ऊपर की ओर फेंकना, फिर देखना कि कहाँ जाता है? तुम कितने ही परिग्रही बन जाओ, कितना ही धन इकट्ठा कर लो, पर पत्थर को जैसे नीचे ही गिरना होता है।

बह्वारम्भ-परिग्रहत्वं नारकस्याऽऽयुषः ।(6/15 त. सू.)। जो बहुत आरंभ-परिग्रह

करता है, वह नरकगति में जाता है। और पतंग देखो, जमीन पर होती है, पर जाती ऊपर है। ऐसे ही जीव जितना हल्का होता जाता है, उतना ऊर्ध्वगमन करता है। यही कारण है कि जब पूर्ण परम हल्के हो जायेंगे तो ऊर्ध्वगमन हो जायेगा। यही मोक्ष है।

कषायरहितं सौख्यं, इन्द्रियाणां च निग्रहे।

जायते परमोत्कृष्टमात्मनो भवभेदि यत् ॥ 34 सा. स. ॥

नोकर्म आदि की दृष्टि से श्वास आदि की व्याख्या है और भावकर्म परिणामों की विशुद्धि के लिये सारी व्याख्या है। इसलिये कभी-कभी दान, पूजन के काल में संक्लेशता जब आप करते हो, अच्छी बात नहीं है। भावों की विशुद्धि के लिये दान-पूजन करते हो आप, उसमें संक्लेशता बढ़ गयी, कि मुझे तो शांतिनाथ की पूजा करना है। एक कहता है कि मुझे तो पार्श्वनाथ की पूजा करना है। भैया! दोनों कर लो। पर दो तीर्थंकर की पूजा के राग में निज के तीर्थ को भग्न मत करो। जो तीर्थंकर बने हैं, वे शांति-तीर्थ की स्थापना से बने हैं। वे भी तीर्थंकर की पूजा से तीर्थंकर नहीं बने हैं। उन्होंने पूर्व में तीर्थंकर की पूजा इसलिये की कि शांत परिणामों की प्राप्ति हो जाये। दान हो या पूजा, इसका उद्देश्य संक्लेशता की हानि है। पर बहुत कठिन है। तुमने चार ग्रास दे दिये, मुझे एक भी नहीं देने दे रहे हो। बेचारे को धक्का मार दिया। देव, शास्त्र, गुरु के चरणों में तूने धक्का मारा है तो निधत्ति, निकाचित कर्म का बंध कर लिया।

भैया मेरे! धर्म करो, धर्म करो। धर्म समझकर करो। यह ऊपरी उत्साह जो बढ़ा दिया जाता है। अध्यक्ष हो, इसलिये यहाँ दिख रहे हो। वहाँ दिख रहे हो, इसलिये अध्यक्ष बना दिया गया है। मैं इसलिये कह रहा हूँ कि अभी आप आ रहे हो, उमंग है। माना यह उमंग ही तुझे मंदिर ला रही है। कोई पद हट गया, उमंग हट जायेगी, तो फिर भगवान् दूर हो जायेंगे। इसलिये भैया! कोई व्यक्ति धर्म कर रहा हो, उसकी बहुत प्रशंसा मत करना। प्रशंसा करने का शौक हो तो जब वह सामने न हो, तब उसकी प्रशंसा कर देना। समझो, हमने आज आपकी प्रशंसा कर दी, कल तेरे से बड़ा कोई आ गया, तो मैंने उसका नाम ले दिया तो यह ज्ञानी सोचेंगे कि महाराज पहले मेरा नाम लेते थे, अब उसका लेना चालू कर दिया। बस, यहीं से तेरी संक्लेशता बढ़ जायेगी। इसलिये अपना नाम लिवाने मत आना। नाम से भी शून्य हो जाओ, इसलिये आना।

कषायरहित सुख और इन्द्रियों का निग्रह करने वाला जीव परम आनंद को प्राप्त होता है। उसका वही परम आनंद संसार की संतति को छेद देता है। इसलिए ज्ञानियो! कुछ भी

हो जाये संसार में, लेकिन अपने परिणामों को भद्र रखना, शांत रखना। मिलना उतना ही है, जितना भाग्य में है। चाहे हाय-हाय करो, चाहे रोओ, चाहे गाओ, लेकिन मिलना उतना ही है। जब मिलना उतना है, तो क्यों न शांति के साथ जिओ?

इसको लगता है कि पूरा नगर मेरे हाथ में आ जाये। पर इसको मालूम होना चाहिए कि जिसके द्वार पर श्वान नहीं बैठते थे, उनके द्वार पर दस वाहन रखे हैं। जहाँ वाहन रखे रहते थे, वहाँ श्वान तक नहीं बैठ रहे हैं। भैया! सबके दिन एकसे नहीं होते। जाओ, अपने नगर में आप देखकर आओ। जहाँ घूरे पड़े थे, वहाँ महल बन गये और जहाँ महल बने थे, वहाँ घूरे पड़ रहे हैं। ज्ञानी! सबके दिन एकसे नहीं होते हैं। इसलिए चिन्ता नहीं करना।

'**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।** आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

ज्ञानीपुरुषों का कथन

कषायान् शत्रुवत् पश्येद्विषयान् विषवत्तथा।
मोहं च परमं व्याधिमेवमूचुर्विचक्षणाः॥ 35॥

विवेकी ज्ञानीपुरुषों ने कहा है कि कषायों को शत्रु के समान, पंचेन्द्रिय विषयों को विष के समान और मोह को परम व्याधि (महारोग) के समान समझो।

॥ देशना ॥

अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रंथराज 'सारसमुच्चय' जी में जीव के हित की कामना से नाना प्रकार से वस्तुस्वभाव की व्याख्या कर रहे हैं। जो जीव कषाय को शत्रु स्वीकारता है, वह आत्मरक्षा को प्राप्त होता है। और जिसने कषाय को मित्र मान लिया है, वह ऐसा मित्र है जो आपको ज्ञान भी नहीं होने दे पायेगा, सारे लोक में तेरी परिक्रमा लगवाते रहेगा। शत्रु बनाना तो शत्रुता है ही, मित्र बनाना भी शत्रु भाव है। उभय दृष्टि से देखना।

हे ज्ञानी! जिसे तूने अपना स्वीकारा है, वह तेरा हुआ कब है? और जिस परिवार में तू जन्मा था, वह जन्म देने वाले ऊपर जा चुके हैं। जन्म देने वाले तेरा अनादर नहीं कर रहे हैं, सम्मान नहीं कर रहे हैं, अब वहाँ तू अकेला है। पर जिसे तूने स्वीकारा था, वे ही तुझे घर से बाहर करेंगे। जिसे तूने जन्म दिया था, वे तुझे दुत्कार रहे हैं। अहो! पर की कषाय ने तुझे दुःखी नहीं किया, निज की कषाय ने तुझे दुःखी किया। यदि बेटा भी अशुभ बोले, तो यूँ मत बोलना कि बेटा अशुभ बोल रहा है। बेटे की कषाय ने अशुभ नहीं किया, तेरी ही कषाय ने अशुभ किया है। हे ज्ञानी! बहुत पीछे चले जाओ। अपनी 18-20-30 साल की उम्र में चले जाओ। जब तेरे सिर पर सेहरा रखा गया था। जब तू शादी कराने गया था, तब तेरे बेटे की कषाय थी कि तेरी कामना थी? बेटे की कषाय नहीं थी। बेटा तो वहाँ था ही नहीं, तेरे मन में काम-कषाय न होती, तो आज तुझे दुत्कारने वाला उत्पन्न होता ही नहीं। हिस्सा माँगने वाला कहाँ से आता? रोनेवाला, हँसनेवाला भी उत्पन्न नहीं होता। बहुत पीछे चले जाओ, अपने भूत में चले जाओ। भूत में जाकर निहारिये। पिता के जो रिश्तेदार हैं उन्हें आप कब निभाते हो? अपनी पत्नि के संबंधी जो हैं, उनको तुम ज्यादा देखते हो। हे ज्ञानी!

जब तू अपने पिता की संतान था, तब तेरे पास कोई रिश्ते नहीं थे, तू माता-पिता मात्र को जानता था। मित्र ही शत्रु है। मित्रभाव शत्रुभाव है। इस बात को समझने के लिये हे श्रावको! आपको बहुत विवेक से सोचना पड़ेगा। सारे जगत् की लीला है। मित्र बनाओ, लेकिन आज तुमको सोचकर उठना है कि मैंने मित्र बनाये, कि शत्रु बनाये हैं? अभी मैं स्थूल व्यवहार की बात कर रहा हूँ। थोड़ी देर से परम सत्य की बात सुनना।

ज्ञानी! मित्र बनाया है कि शत्रु बनाया है? मित्रता का भाव शत्रुभाव है। मार्ग में चलते-चलते अचानक एक पुरुष मिल गया और प्रेम की दो बातें हो गयीं, तो पत्राचार प्रारंभ हो गया। व्यवहार का राग कहेगा कि चलो, रास्ते में एक मित्र तो मिला। पर सत्यता तो यह है कि वह न मिलता तो भगवान् का नाम तो लेता। मार्ग तय करना था, उसके मिलने से गप्पें और प्रारंभ हो चुकी हैं। उससे कर्म का बंध होगा कि कर्म की हानि होगी? मित्र मिला कि शत्रु मिला? एक निर्ग्रन्थ वीतरागी योगी अपने कक्ष में बैठकर ध्यान कर रहा है, स्वाध्याय कर रहा है। वहाँ ज्यादा अच्छा था, कि एक भक्त पहुँचता है, 'भो स्वामी! नमोऽस्तु। मैं आपका भक्त बनने आया हूँ।' तू भक्त बनने आया, बहुत अच्छा, तेरा कल्याण हो। लेकिन तू वहाँ बैठ गया और यहाँ-वहाँ की बातें प्रारंभ करदी, तो तू मेरा भक्त बनके आया है कि शत्रु बनके आया है? साधना में विघ्न कर रहा है। हाँ, साधनाभूत के लिये वह बहुत अच्छा है। उसका समय कहेगा कि धिक्कार हो, मनुष्य जैसी महान् पर्याय को प्राप्त करके यूँ कह रहा है कि समय कटेगा। अहो! तुझे समय काटना पड़ रहा है, इसका मतलब तुझे मनुष्य आयु भारभूत है क्या?

ज्ञानी! चलती ट्रेन में मूँगफली बेचने वाला आता है। टाइम पास, टाइम पास। समझ रहे हो ना? हे अभागे! ट्रेन पटरी से उतर गयी, तो दुर्घटना घट गयी। कम-से-कम उस वाहन में तो मौनपूर्वक महामंत्र की आराधना करते तो सल्लेखना लेकर बैठना चाहिये। तू टाइम पास करने के लिये मूँगफली चबा रहा है। मूँगफली चबाते-चबाते चला गया तो पता नहीं कौन-सी दुर्गति में जायेगा? श्रेष्ठ पुरुष वे होते हैं, जो पैदल विहार करते हैं। लेकिन तुम नहीं कर पा रहे हो, तो कम-से-कम इतना तो करना चाहिये। जैसे ही विमान या वाहन में कदम रखो, चारों प्रकार के आहार-जल का त्याग कर दो। जब तक यात्रा चलेगी, तब तक मेरा समाधिमरण है। धन्य हैं वे वीतरागी श्रमण, जो श्रावक के यहाँ आहार करने जाते हैं तब भी त्याग करके जाते हैं। वो अंजलि खोलते हैं, तभी त्याग नहीं होता और जैसे ही आहार समाप्त हुआ, पुनः त्याग कर देते हैं। वहीं भक्ति करके प्रत्याख्यान कर देते हैं। क्या मालूम रास्ते में आने-जाने में कोई दुर्घटना घट जाये। इसलिये मेरा सल्लेखना-मरण चल रहा है। हर समय निर्ग्रन्थ योगी

का संथारा होता है, हर समय सल्लेखना व्रत होता है। साधुजीवन यानि जाग्रत जीवन। क्या सोते-सोते जीने का। प्रमादरहित जीवन जिओ। प्रत्याख्यान धर्म है। घर से चलके यहाँ आये हो, तो आपको प्रत्याख्यान कर देना चाहिये कि जब तक मैं प्रवचन सुन रहा हूँ, तब तक मेरा घर का प्रत्याख्यान है। घर में आरंभ-सारंभ जो भी हो रहा होगा, उस पाप से तो बचोगे। एक घंटे आप प्रवचन सुन रहे हो, बोल तो पाओगे नहीं, तो बोलने का प्रत्याख्यान कर दो, तो वचनयोग से होनेवाले आस्रव से बच जाओगे। ये सामने जो पर्वत दिख रहा है, इस पर्वत पर जो पानी गिरता है, तालाब खोदकर उस पानी को भी चारों ओर से रोका जा रहा है। क्यों? बाढ़ लगाओ, पानी बचाओ। जहाँ भी जंगल में ढलान है, वहाँ सरकार ने खुदाई शुरू कर दी पानी की सुरक्षा करने के लिये।

हे ज्ञानी! जैसे भारत सरकार पानी की बूंद-बूंद की रक्षा की बात कर रही है, ऐसे ही जिनशासन आपसे कह रहा है कि आप पल-पल अपने परिणामों की रक्षा करो। समय कट जाये, ऐसी भाषा जिसकी है, उससे ज्यादा अभागा कोई नहीं। गहरा निर्णय।

देशभूषण कुलभूषण मुनिराज कुंथलगिरि पर्वत पर विराजते हैं। जिनके शरीर पर सर्प घूम रहे थे, बिच्छू डंक मार रहे थे, श्री राम लक्ष्मण सीता ने देखा, ओ हो! इन योगियों को निहारो। राम ने धीरे-से साँपों-बिच्छुओं को दूर किया। उनका घात न हो जाये, सम्हालकर धीरे-से अलग किया और चरणों में बैठकर अष्टद्रव्य से पूजा की। इसी बीच में देखते हैं कि प्रचण्ड आवाज आती है। एक ज्योतिष्क देव ने महायोगीश्वरों पर उपसर्ग खड़ा कर दिया। इतना बियावान जंगल और डाकिनी-शाकिनी अनेक भूत-व्यंतर नाना कर्म दिखाकर योगीराज को विचलित करना चाह रहे हैं। सुमेरू हिल जाये, पर निर्ग्रन्थों का मन-मेरू हिलनेवाला नहीं है। वे निर्ग्रन्थ तपोधन इतने लवलीन हुये, बाहर में क्या हो रहा है, उनके ऊपर आपत्ति का कोई प्रभाव ही नहीं पड़ा। जो अपनी धुन में होते हैं, उन्हें बाहर की अनुभूति नहीं होती है और जिन्हें बाहर की अतुभूति होती है, वह अपने भीतर नहीं होते हैं। क्यों?

एक ऐसा परिणमन होता है। एक निर्णय हो जाता है। कोई गाली दे रहा है तो देने दो, अशुभ बोल रहा है तो बोलने दो, आवाज कर रहा है तो करने दो, मैं अपने भीतर हूँ। होली का दिन था। रास्ते में अनेक जगह गुलाल फिकते देखी, रंग फिकते देखा। पर जिनालय की वंदना करते ही यह ज्ञानी अपनी गाड़ी में बैठा, काँच बंद किये, बाहर क्या हो रहा है उससे कोई प्रयोजन नहीं। न धूल प्रभावित कर रही है, न रंग प्रभावित कर रहा है। कितने लोग होली में पिचकारी चला रहे हैं, पर काँच पर गिरती है, काँच पर गिर कर नीचे बह जाती है। जैसे कांच पर से रंग नीचे गिर जाता है, वैसे ही निर्ग्रन्थ तपोधन, जो नवद्वारों की खिड़कियों

को बंद करके बैठे हैं, विषय-कषाय की खिड़कियों को बंद किये हैं, रंग फेंकने वाले लोग पिचकारियों में रंग भर-भरके मारें, पर जैसे काँच से रंग बह जाता है, उनको कोई प्रभावित नहीं कर पाता, यही वीतरागी तपोधन की दशा है। बह गया। काँच ही क्यों लगाया जाता है? जो कुछ बहे, सब नीचे चला जाये और पारदर्शी होता है। ऐसे ही निर्ग्रन्थ तपोधनों का ज्ञान पारदर्शी होता है। जो कुछ गिरे, सब नीचे बह जाये। लेकिन सब दिखने के बाद भी वे देखते किसी को भी नहीं हैं। वेद्य-वेदक भाव तो निज स्वभाव का ही होता है। यह निर्ग्रन्थों का धर्म है।

अहो! यह भारतभूमि कितनी महान् है। जगत् की भूमियों में दार्शनिक हुये, वैज्ञानिक हुये, भौतिक द्रव्यों में लिप्त होने वाले जीव हुये हैं, लेकिन यह भारत भूमि वह भूमि है, जिसमें वीतराग वैज्ञानिक हुये हैं। यह योगियों की भूमि है। महान् योगियों ने विचरण किया है, उसका प्रभाव है यह। यहाँ अनंत चौबीसियाँ हो चुकी हैं। जब वर्द्धमान तीर्थंकर भारत की भूमि पर विचरण कर रहे थे, पूरे देश में विचरण कर रहे थे, तब इस भूमि से भी निकले होंगे। इन पर्वतों की पहाड़ियों को देखकर लगता है कि उन ऋषियों की वर्गणायें यहाँ भरी हुयी हैं, इसलिये विशुद्धि बनती है। आप समझो कि विशुद्धि क्यों बढ़ रही है। इस पर्वतमाला के चारों ओर उन ऋषियों की वर्गणायें भरी हुयी हैं जो जिनवाणी का पाठ किया करते थे। अब कोई आकर बोले कि मुझे यह वर्गणाएँ क्यों प्रभावित नहीं कर रही हैं? ज्ञानी तुझे मालूम होना चाहिये। देखो, सामने दो कैमरामेन बैठे हैं। एक पारस चैनल से, दूसरा लोकल। जब लोकल चैनल चालू रहेगा, तब पारस चैनल का प्रोग्राम उसमें कैसे आयेगा? क्यों भैया! पारस चैनल पर लोकल का चित्र आयेगा क्या?

आज के वैज्ञानिक युग में जिनवाणी को समझाना बहुत सरल है। समझ में आ गया होगा या समझाऊँ? इस प्रवचन में कौन-सा चैनल चल रहा है। कोई भी चैनल नहीं है। जितने चैनल चल रहे हैं, उन सभी की तरंगें इस भवन में हैं कि नहीं? और जितने टॉवर हैं, वे एक-दूसरे की तरंगों को संग्रहित कर रहे हैं कि नहीं? दिल्ली से छोड़ी गयी पूरे भारत में जा रही है। क्रम से जा रही है कि अक्रम से जा रही है? क्रम से जायेगी। शब्द की गति तो देखो। एक क्षण को अभी एक शब्द बोला जाता है, पूरे देश में क्या, विश्व में फैल जाता है। जब तुम्हारे पौद्गलिक शब्द की इतनी गति है, तो तीर्थंकर की देशना की क्या गति होगी? भैया! क्रम से फैलेगी ना सब वर्गणायें? जिसको तुम तरंगें कहते हो, जिनवाणी में उसे वर्गणायें कहते हैं। उन महायोगियों की वे पावन वर्गणायें सिद्धक्षेत्र में हैं। जिनालय में, यहाँ भी

जिनप्रतिमायें हैं। सिद्धभूमि पर भी वे ही प्रतिमायें विराजमान होती हैं। अतिशय क्षेत्र में भी वे ही प्रतिमायें विराजमान होती हैं। फिर भी तीर्थों में जाने के विशिष्ट परिणाम होते हैं।

हे ज्ञानी! यहाँ आपकी वर्गणायें हैं। जैसे जिनालय में जिनप्रतिमा की स्थापना में जो सूर्य मंत्र दिया गया है, उसकी वर्गणायें है। जो सिद्धभूमि है, उसकी अपनी वर्गणायें हैं। इसलिये जहाँ सिद्धभूमि है, वहाँ सबसे अधिक विशुद्धि बनती है।

ज्ञानी! जिस दिन परिणाम विशुद्ध हों, तीर्थंकर के चरणों में जाना, भावना प्रशस्त भाना, वही शुभ मुहूर्त है, पुण्य का उदय है। जिसका भाव मंगल है, उसका दुनियाँ में मंगल है। जिसका भाव मंगल नहीं है, उसके लिये मंगलवार भी अमंगल है। क्या तीर्थंकर भगवान् मुहूर्त देखकर दीक्षा लेने गये थे, कि जिस दिन दीक्षा लेने गये थे, उस दिन का वह मुहूर्त महामुहूर्त हो गया? भगवान् महावीर का निर्वाण अमावस्या के दिन हुआ था, वह काली रात दीवाली हो गयी। कितने बड़े-बड़े सेठ हैं जो बेचारे ज्योतिष के बिना कुछ नहीं करते?

मुमुक्षु! कुण्डली से कुछ नहीं होता है। पर हाँ, जो भाग्य में होता है, वही संकेत कुण्डली में होता है। ठीक है? हर व्यक्ति को मालूम चल जाता है कि मेरे साथ क्या घटना घटने वाली है। ज्ञानी! पाप करने के पहले परिणाम आ चुके होते हैं। अब तू पाप करे या न करे, परिणामों ने संकेत कर दिया। दृढ़ धर्मी हो तो पाप से बच जायेगा, बंध से भी बच जायेगा। पुण्य करने के पहले परिणाम आ चुके होते हैं। अब तेरा काम है पुण्य करना।

8 वर्ष की उम्र में मेरे परिणाम आ गये थे कि मुझे मुनिमहाराज बनना है और बन पाया 19 वर्ष में। इसलिये मैं खेलने भी नहीं जाता था। मैने एक शास्त्र में पढ़ लिया था जिसमें लिखा था कि हाथ-पैर टूटने पर मुनि नहीं बन सकते, इसलिये मैंने कहा कि खेलने ही नहीं जाना। मुनिराज मात्र बनने का लक्ष्य था। जब एक खंडित मूर्ति की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती हो, तो फिर खंडित को चैतन्य मूर्ति कैसे बना सकते हो? वह तो अखण्ड ही होना चाहिये। उतना खेलने का समय मैं जिनवाणी में लगाता था।

धन्य हों वे कुलभूषण महाराज। उन योगिराजों ने निर्विकल्प होकर उपसर्ग सहन किया और उपसर्ग होते देखकर राम लक्ष्मण ने धनुष-वाण उठाकर जैसे ही वार किया, उसकी आवाज को सुनकर वह ज्योतिष्क देव भाग गया। और उपसर्ग जैसे ही टला, उन महायोगीश्वरों को कैवल्य हो गया। जो उपसर्ग करने आया था, वही पूजा करने आ गया। सौधर्मइंद्र तक खड़े हो गये। यह है परिणामों की दशा कि कैवल्य हो गया। जब महाराष्ट्र जाओ तो उन कुलभूषण-देशभूषण मुनिराजों की वंदना करके आना कुंथलगिरि में।

ज्ञानी! वंदना ही नहीं करना, वहाँ थोड़ा बैठकर भी आना। जिस जीव ने उन योगियों की प्रतिमायें बनवायी हैं, वह जीव भी बड़ा पुण्यात्मा होगा। ऐसे लगता है जैसे दोनों भइया खड़े हों। मैं 19 दिन वहाँ रहा। बहुत आनंद आया। 'समाधितंत्र अनुशीलता' बहुत सारा मैंने वहीं लिखा।

दो-तीन तीर्थ ऐसे हैं। गोमटेश जाओ तो बाहुबली स्वामी की वंदना करना। जब शक्ति का संचय करना हो तो चन्द्रगिरि पर्वत पर जाना, भद्रबाहु स्वामी की गुफा में बैठना। मध्य प्रदेश जाओ तो सोनागिरि चंद्रप्रभू स्वामी के नयनों को निहारिये। टीकमगढ़ जाओ तो पपौरा में भौयरे के अंदर भगवान् हैं। तीन एकदम काले भगवान् हैं। झाँसी जाओ तो वहाँ करगुवाँ जी के सांवलिया पारसनाथ स्वामी और जैनों की संपत्ति देखना हो तो मूढबद्री जाओ। वह जैनियों की संपत्ति है। एक वटइया पर नेमिनाथ स्वामी विराजे हैं, वह है सांवर गाँव।

अहो ज्ञानी! ध्रुव सत्य है। यदि निज को भगवान् बनना है तो कहीं मत जाना। बस, आँख बंद करके निज में ही लीन हो जाना। कहाँ भटक रहे हो? कहीं नहीं जाना। हे मृग! तू कस्तूरी के लिये वन में भटक रहा है। जरा दृष्टि नीचे कर, कस्तूरी तो तेरी नाभि में है। अरे ज्ञानी! तू कहाँ भटक रहा है? रत्नत्रय ही तीर्थ है। तू तीर्थवंदना करने जा रहा है। तू चाहे तो तुझे मैं यहीं तीर्थ बना सकता हूँ। ज्ञानियो! पत्थरों से तीर्थ नहीं बने हैं। रत्नत्रय धारी जहाँ पहुँच गये, तीर्थ बन गये। 'जे गुरु चरण जहाँ धरे, जग में तीरथ होय।' देखो आपका अलवर का जैनभवन इस समय तीर्थ बना हुआ है।

मित्र बनना शत्रुता है। भूल तो नहीं गये? क्योंकि बिना राग के मित्र बनता नहीं। राग कषाय है, कषाय ही शत्रु है।

कषायान् शत्रुवत् पश्येद्विषयान् विषवत्तथा।
मोहं च परमं व्याधिमेवमूचुर्विचक्षणाः॥ सा. स. 35॥

हे विचारशीलो, विवेकी ज्ञानीपुरुषो! जो कषाय है, वह शत्रु के समान है। आपने जो मित्र बनाये हैं, वह बिना राग के बने नहीं हैं। राग से बंध होगा और बंध से संसार होगा। तो मित्र है, कि शत्रु है? स्वयं का भी घात किया, इस मित्र का भी घात किया।

ज्ञानी! यह जीव किसी से राग करने लग जाये, छुप-छुपकर पाप करने लग जाये और जिसके साथ पाप किया है, उसके साथ इसकी प्रीति हो जाये और दोनों गुप्त रूप से पाप करें, पर हे ज्ञानी! जिससे तेरा राग है, उनकी तो प्रीति है। तेरे पाप को वो नहीं बताये, उसके

पाप को तू नहीं बताये। इन दोनों में समझौता हो सकता है लेकिन जो पाप का बंध होगा, उससे भी समझौता है क्या? बस, इस बात का ध्यान रखना। आप किसी को बहला कर पाप तो कर सकते हो, पाप को छुपा सकते हो, लेकिन पापबंध से किसी का समझौता नहीं होता। बंध तो होगा। संडाश में बंद होकर तू गुटका खा सकता है, लेकिन दाँतों को संडाश में रख कर नहीं जा सकता है। बाहर आने पर दाँत बता देंगे कि तू क्या करके आया है।

ऐसे ही हे ज्ञानियो! तुम छुप-छुपकर पाप तो कर सकते हो, पर पाप का उदय जब आयेगा, तब वे बता देंगे कि तुमने क्या किया है। मुझे मत देखो, अपने हृदय को देखो। जो चेहरे यहाँ दिख रहे हैं, ऐसे ही 24 घंटे दिखते रहें, तो तुम भगवान् बन जाओगे। लेकिन आप जो दिख रहे हो, वैसे हो नहीं। जिस दिन वैसे हो जाओगे, यहाँ चेहरा दिखाने नहीं आओगे, निज में देखोगे। पर मैं फिर भी आपको महान् मानता हूँ, कम-से-कम आप अपनी बात को सुनते रहे हो। इस खोटे काल में कोई छोटा-सा भी नियम पालता है, भगवान् के दर्शन करने भी आता है, तो महान् है। एक भइया है जबलपुर का, उसने नियम लिया था कि जब तक दर्शन नहीं करूँगा, तब तक भोजन-पानी ग्रहण नहीं करूँगा। बताओ, एक युवा भी ऐसा नियम लेकर आ गया।

1997 की बात है। चातुर्मास के लिये पंडित जी पन्ना से दुर्ग के लिये आये थे। छत्तीसगढ़ में बहुत गर्मी पड़ती है। ऐसी तपन में नियम तो लिया कि जब तक महाराज नहीं मिलेंगे भोजन नहीं करूँगा। नियोग ऐसा बना कि मैं उस दिन जंगल में था। आहारचर्या के बाद सामायिक करने जा रहा था। इसी बीच वह वृद्ध विद्वान् हाथ में छड़ी लिये आये, बोले 'महाराज श्री!' आवाज नहीं निकल रही थी। मैंने देखा, फिर बोला कि जाओ, पहले भोजन करो। बोले, 'अभी दर्शन कर लेने दो आँखों को अच्छे से। मैंने प्रतिज्ञा की थी कि जब तक महाराज नहीं मिलेंगे, मुख में पानी नहीं डालूँगा।' व्रती आदमी। मैंने पूछा कि आये कैसे हो? बोले स्टेशन पर उतरा, फिर पैदल चला। ग्रीष्मकाल में 80 साल का वृद्ध पैदल चला है। वे आकर मेरे पैर दबाने लगे। सही बताऊँ, मुझे तो शर्म आ रही थी। ये इतने वृद्ध आदमी और इस समय मेरी उम्र 24 साल। मैंने स्वयं से कहा कि हे विशुद्धसागर! ये तेरे पैर नहीं दब रहे हैं, चारित्र की पूजा हो रही है। तू भूल मत जाना, यह चारित्र न होता तो इतनी दूर से चलकर यह वृद्ध नहीं आता।

कल्पना करो, ऐसे-ऐसे लोग पंचमकाल में हुये हैं कि एक 24 साल के युवा के दर्शन के लिये 80 साल का वृद्ध नियम लेकर चल दिया। कुछ-कुछ तो इन लोगों ने ही अपन को अच्छा बनाया है। आप विश्वास समझो।

ज्ञानी! जब भी आपके नगर में कोई मुनिराज आयें, कुछ गलत भी करते दिख जायें कदाचित्, तो जोर से बोलना, 'भो स्वामी! नमोऽस्तु। भो स्वामी! नमोऽस्तु। भो वीतरागी स्वामिन्! नमोऽस्तु।' उनको भी भान होगा कि मेरा स्वरूप तो वीतरागी है। ये वित्तराग नहीं है। अच्छे-अच्छे संबोधन पकड़ा करो। डाँटकर सुधारने का समय गया। अब तो पुचकार से सुधारने का समय है। बेटा भी यदि बीड़ी पीते दिख जाये और यदि तू किंचित भी समझदार है, तो उस समय बेटे के पास मत जाना। वो छुपकर पी रहा है, तेरी मर्यादा रख रहा है। सामने पहुँच जायेगा तो तेरे सामने पीना शुरू कर देगा। इसलिये ज्ञानी! तुम यह मालूम करना कि तेरे बेटे का मित्र कौन है। उस मित्र के माध्यम से सुधार करवा लेना। यह नीति न्याय है। जो यह नहीं जानते हैं, वे असफल हो जाते हैं।

ज्ञानी! बहुत समय हो गया है। विषय विष के समान है। यह मिथ्यात्व महाव्याधि है। इसलिये हे विवेकी जीव! ऐसा जानकर इनका परित्याग करो।

'**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।**' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"धर्मरत्न के चोर"

कषाय-विषयैश्चौरै-र्धर्मरत्नं विलुप्यते।
वैराग्यखड्गधाराभिः, शूराः कुर्वन्ति रक्षणम्॥ सा. स. 36॥

कषाय और विषय रूपी चारों के द्वारा धर्मरूपी रत्न चुराया जाता है, अतः शूरा यानी वीर-पुरुष वैराग्यरूपी तलवार की धार से धर्मरूपी रत्न की रक्षा करते हैं।

॥ सद्-देशना॥

अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की मंगल पीयूष वाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है।

यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवन्त हो। जयवन्त हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज सारसमुच्चय जी में आत्मतत्त्व की उपलब्धि का सहज मार्ग बतला रहे हैं। अंतरंग और बहिरंग साधन जो है वह साध्य की सिद्धि का आलम्बन है। जिन साधनों से आत्मा की वंचना हो, जिन साधनों से आत्मा संसार में रुले, ऐसे साधनों को बुद्धिपूर्वक छोड़ना चाहिये। अशुभ निमित्तों से आत्मरक्षा करना पुरुषार्थसाध्य है। आज जिनका कल्याणक का दिन है, मोक्ष कल्याणक है, उन सम्भवनाथ स्वामी के चरणों में अपने अंतरंग को पवित्र करने के लिये ज्ञानियों ने जिनमन्दिर की स्थापना की है। जब तक जिनमन्दिर रहेगा, जब तक जिनशासन-नमोस्तुशासन जयवंत रहेगा। यही कारण है। सोलहकारण भावना भाये बिना कोई भी जीव तीर्थंकरप्रकृति का बंध नहीं करता है। आज इस विषय को समझने की आवश्यकता है। जैनदर्शन बहुत गम्भीर दर्शन है। पर-निमित्तों को आत्मभूत मानोगे तो पतन होगा। निमित्त को निमित्तभूत मानोगे तो सहजबोध होगा। क्योंकि वस्तु-व्यवस्था व्यवस्थित है। जिनबिम्ब दर्शन, धर्मोपदेश, जातिस्मरण यह सम्यक् उत्पत्ति के बहिरंग साधन हैं।

एक अज्ञानी सिर को ऊपर करके चला जा रहा है और उसको जैसे ही जिनालय की घण्टी की आवाज सुनाई पड़ी, उसके हाथ जुड़ गये। उपादान दृष्टि यूँ कहेगी कि इस जीव के कषाय के मंद उदय के निमित्त से हाथ जुड़ गये और निमित्त दृष्टि यूँ कहेगी कि अरहंत के मन्दिर में बजती घण्टी की आवाज सुनकर यह हाथ जुड़ गये। परन्तु हाथ दोनों के नियोग से जुड़े हैं। ज्ञानी! भीतर से आस्था न होती, तो घण्टी क्या कर सकती थी और ज्ञानी घण्टी की आवाज न होती, तो अचानक आस्था उद्घटित हुयी कैसे? इन दो दृश्यों को समझने की आवश्यकता है। क्योंकि जगत में किसी ने क्रियारूप धर्म को स्वीकार किया, किसी ने ज्ञानरूप स्वीकार किया। लेकिन यह जो रासायनिक क्रिया है, उसकी व्याख्या करनेवाला जैन दर्शन है। जो यूँ कह रहा है कि घण्टी की आवाज जो तुमने सुनी है, वह ध्वनि थी, पौद्गलिक

थी। पौद्गलिक ध्वनि के नियोग से चैतन्य आत्मा प्रभावित हुयी है। ध्वनि पुद्गल द्रव्य की पर्याय है और जो प्रभावित हुआ है वह चैतन्य द्रव्य है।

दो द्रव्यों के संयोग से जो मिश्र परिणमन चलता है, यही तो रासायनिक क्रिया है। दो भिन्न-भिन्न पदार्थों के नियोग से जो परिणमन चल रहा है, दो भिन्न-भिन्न पदाथों के संयोग से आप एक अभिन्न दशा की ओर जा रहे हो। यह एक रासायनिक परिणमन है। एक दृष्टि जो संयोगी स्वभाव की ओर ले जाए और एक वस्तु संयोग भाव से एकत्व की ओर ले जाए। दोनों में निमित्त चाहिये। यह वस्तुव्यवस्था का व्याख्यान है, थोड़ा सम्हलकर सुनना। दो संयोगी भाव को भी निमित्त उत्पन्न करा रहा है। दो संयोगी भाव से पृथक् कराने की क्रिया भी निमित्त करा रहा है। उपादान में योग्यता है।

ज्ञानियो! निहारो। दो द्रव्यों के निमित्त से भिन्न अवस्था बन रही है। पुद्गल से जीव को समझने का प्रयास करना। आटा, पानी स्वतन्त्र हैं। मुख से फूँक दो तो आटा उड़ जाए। लेकिन पानी के संयोग होते ही जो उड़ने वाली सामग्री थी, वह घट्ट बन गयी है। यह क्या हुआ? उन दो के संयोग के बिना तुम्हें रोटी खाने को नहीं मिलती। और वही वस्तुव्यवस्था आगे देखना। द्विसंयोगी भाव ने उड़नेवाले आटे को घट्ट कर दिया है। और मधुर दुग्ध देखो। माँ! आपने जामन डाल दिया, मधुर दुग्ध जो था उसको आपने खट्टा कर दिया। पर यह ध्रुव सत्य है कि जो परम्परागत दही के जामन का उपयोग कर रहा है, वह तो माँस के पिण्ड को खाता है। जितने बाजार का दही खानेवाले हैं, सभी अभक्ष्य खाते हैं। ओ हो! आलू, प्याज, लहसुन नहीं खाते हो, पर बाजार का दही बड़े चाव से खा लेते हो। भैया! इन ज्ञानियों से कहना कि जिस जीव का दुग्ध आया है, उस दुग्ध से परम्परागत डाले जामन में उसी जाति के पंचेन्द्रिय संज्ञी जीव तत्क्षण जन्म ले रहे हैं और मरण कर रहे हैं। बाजार का दुग्ध व घृत, यह माँस का पिण्ड है। जिनका माँस खाने का त्याग है, ऐसी वस्तु का सेवन मत करो। उच्च कुल में जन्मे हो, ऐसी वस्तु का सेवन मत करो जिससे तुम्हारे धर्म का नाश होता हो, आत्मा की दुर्गति होती हो। जामन के पड़ते ही मधुर दुग्ध खट्टा हो गया। यह क्यों हो गया? संयोगी भाव। अम्ल तत्त्व के मिलने से मधुर फट गया। यह दो द्रव्यों के संयोग से एकत्व अवस्था को प्राप्त हुआ है। दो के माध्यम से एक अवस्था प्राप्त कर लेता है। और दो जुड़े हुये द्रव्यों को निमित्त भिन्न भी कर देता है।

माँ! दूध भी क्षारीय द्रव्य है। यदि मीठा बनाओगे, यदि चासनी की अशुद्धि हटानी है, तो पानी के छींटे मारोगे कि दूध के छींटे मारोगी? ज्ञानी! पकड़िये रासायनिक तत्त्व को। यदि आपको बूरे से कोई खाद्य द्रव्य बनाना है, तो वहाँ फिटकरी के छींटे नहीं डालते हो, दूध

के छींटे डालते हो। चासनी के अन्दर मल (अशुद्धि) जो संघटित थी, दूध के छींटे पड़ते ही वह अशुद्धि अपने आप पृथक् हो गयी। भिन्न द्रव्य के संयोग से जो संयोगी भाव था, उस एक द्रव्य ने संयोगी भाव को पृथकत्व रूप में बदल दिया। ऐसे ही यदि नारी पुरुष को पति के रूप में देखती है, तो बंधरूप अवस्था को प्राप्त होती है और वही पुरुष मुनिराज बनकर आ जाये तो अबंधरूप अवस्था को प्राप्त कराता है। समझो, ये क्या कह रहा हूँ। एक पुरुष एक नारी परस्पर में पति-पत्नी की दृष्टि से निहारते हैं तो भिन्न द्रव्य के बंध को प्राप्त हो रहे हैं। इधर तू कहता है कि मेरी पत्नि है, वह कहती है कि मेरा पति है। ऐसे जो दो विकल्प आये, उन दोनों विकल्पों के संयोग से उधर कर्मपिण्ड का सहयोग हुआ है। राग हुआ, तो बंध हुआ। दो भिन्न जीवों ने राग भिन्न-भिन्न में किया और निज अभिन्न आत्मा में कर्म का बंध हुआ। यह निमित्त की दृष्टि से नारी नर का रागभाव था और उपादान दृष्टि से जीव का निज का ही विकारी भाव था, और परम शुद्ध निश्चयनय से यूँ कहना—'हे जीव! तू निज शुद्धात्म स्वरूप से च्युत हुआ है। जो द्रव्य त्रैकालिक शुद्ध था, उस अवस्था से तू खुद को गिराकरके विभाव भाव को प्राप्त हुआ है।'

एक-एक पदार्थ को निहारना और दृष्टांतों को दृष्टांत ही स्वीकारना। दृष्टांत वस्तु नहीं होता है। वे अज्ञानी जीव हैं जो उपदेश की भाषा को वस्तुस्वभाव मान लेते हैं।

जिस बालक को सिंह का बोध नहीं है, उसको बिल्ली दिखाकर कहा जाता है कि सिंह ऐसा होता है। पर ध्यान रखना, जो बिल्ली को ही शेर मान लेता है, वो अज्ञानी होता है। जो शेर को समझने के लिये बिल्ली का दृष्टांत दिया जाता है, वह समझाने के लिये है। बिल्ली तो बिल्ली है। शेर तो शेर है। बिल्ली को शेर मत बना देना। ऐसे ही एक काँच का दृष्टांत है। एक उसी को वीतरागता की ओर ले जा रहा है, दूसरा सरागता की ओर ले जा रहा है। वस्तु एक है, समझाने वाली दृष्टि भिन्न है। इसमें दर्पण का कोई दोष नहीं है। एक यूँ कह रहा है कि जैसा दर्पण होता है, वैसा केवली का ज्ञान स्वच्छ होता है। केवली के ज्ञान में दर्पण की दृष्टि दी है। और एक कह रहा है, कि तू दर्पण में देख कि तेरा चेहरा कैसा दिखाई दे रहा है? तो यहाँ यूँ कहना कि जितने जीव बैठे हैं, सब दर्पण को अपनी जेब में रख लेना, और दर्पण रखकर जब-जब तुमको गुस्सा आये तो अपना चेहरा देखना। तेरा स्वयं का चेहरा तुझे लाल दिखाई देगा।

ज्ञानी! अशुभ परिणाम जब हो, तब दर्पण देख लिया करो। एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य में क्या प्रभाव पड़ता है? एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर्त्ता नहीं होता है, यह द्रव्यत्व दृष्टि है। पर एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य पर इतना प्रभाव पड़ता है, कि कुछ देर पहले आप कालेकलूटे दिख रहे थे, पर अब आपका सफेद रंग दिखना प्रारम्भ हो रहा है। क्यों? जब ठण्डी का

मौसम था तब गोरे भी काले लगने लगते हैं। और जैसे-जैसे गर्मी का मौसम आता है, व्यक्ति का रंग निखरना प्रारम्भ हो जाता है। यह मौसम का प्रभाव ही काल का प्रभाव है। वर्षा का मौसम आते ही पीतल के बर्तन काले होना प्रारम्भ हो जाते हैं। यह काल का प्रभाव है। और क्षेत्र का प्रभाव देखो। जैसे ही राजस्थान में प्रवेश किया, तो पता चलने लगा कि यह राजस्थान का शुष्क प्रदेश आ रहा है। मध्यप्रदेश को जाओ तो अलग अनुभव होता है। समशीतोष्ण कर्नाटक की ओर जाओ तो न गर्मी न ठण्डी मिलेगी। यह प्रदेश का प्रभाव है। समझते जाइये। जो जीव द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के परिणमन का विवेक नहीं रखता है, वह असफल हो जाता है। वस्तुस्वभाव को समझने के साथ इन विषयों को भी समझिये। जो द्रव्य क्षेत्र, काल, भाव का ध्यान नहीं रखता है, वह अपनी साधना से च्युत हो जायेगा। जो न तो मोक्षमार्ग में सफल हो पायेगा, न संसारमार्ग में सफल हो पायेगा।

ज्ञानियो! केशर की खेती जमीन में होती है कि आकाश में? ऐसे तो हर वस्तु आकाश में ही है। मैं भी हूँ, तू भी है और जमीन के अन्दर ही तो जड़ है। लेकिन काश्मीर लगते ही आपको कुछ भिन्न अवस्था महशूस होना प्रारम्भ हो जायेगी। नहीं तो कश्मीर की केशर को अलवर की भूमि में लगाया जाए, क्योंकि वहाँ से आते-आते यहाँ बहुत महँगा हो जाता है, इसलिये आप अब यहीं उगाना प्रारम्भ कर दो। लेकिन नहीं। ऐसा क्यों?

मुझे आश्चर्य होता है इन जीवों पर कि जो मनुष्य संज्ञी पर्याप्तक जाग्रत होने पर भी वस्तुस्वभाव के विस्तार को नहीं समझ पा रहे हैं। अरे ज्ञानी! तुझे मालूम होना चाहिये कि एक-इन्द्रिय वनस्पति भी क्षेत्र से प्रभावित होती है। वही कश्मीर की केशर यहाँ लगा भी देगा तो मात्र भूमि और द्रव्य का व्यय होगा। कश्मीर की केशर राजस्थान के शुष्क प्रदेश में उगने वाली नहीं है, क्योंकि उसके लिये यहाँ जलवायु नहीं है। यह क्षेत्र की प्रत्यासत्ति है। यहाँ कुछ भी हो, पर विदेहक्षेत्र से तो आज भी मोक्ष हो रहा है। यह क्षेत्र के साथ काल की प्रत्यासत्ति है। राजस्थान में बाजरा तो होता है, लेकिन आज चैत्र के महिने में बाजरा उगा कर दिखाओ? क्यों? वह क्वार-कार्तिक के महिने में उगता है, आषाढ़ के महिने में बोना पड़ता है। महाराज! बाजरा तो होता है, पर अभी बाजरे का मौसम नहीं है। अरे मुमुक्षुओ! भरतक्षेत्र में मोक्ष होता है, लेकिन अभी मोक्ष जाने का मौसम नहीं है। यह काल की प्रत्यासत्ति है। तो फिर जब समय होता है, तब सभी खेतों में बाजरा क्यों नहीं होता है? किसान के भावों की प्रत्यासत्ति है कि वह किसे उगाना चाहता है। जो बोयेगा, वही तो निकलेगा।

ज्ञानियो! जब तीर्थंकर वर्द्धमान स्वामी भारत की भूमि पर विराजमान थे, उस समय हम भी थे, आप भी थे। उनके साथ अनेक जीवों का कल्याण हो गया और हम अभी भी यहाँ बैठे हैं। बात क्या है? क्षेत्र तो था, काल भी मिला; लेकिन क्या करूँ, मेरे भाव नहीं बने।

विकल्प नहीं करो। यहाँ का वातावरण भिन्न है। जैनभवन चलना, वहाँ का वातावरण भिन्न दिखेगा। यह क्षेत्र की प्रत्यासत्ति है। यही श्रोता वहाँ पहुँच जायेंगे तो उनके भाव बदल जायेंगे। कोई भिन्न जीवद्रव्य नहीं आता है भगवान् बनने के लिये। जो तीर्थंकर सम्भवनाथ स्वामी के चरणों में खड़ा होता है, वही किसी स्त्री के द्वार पर खड़ा होता है। पुरुष वही होता है। निमित्त को देखो। जो भगवान् के चरणों में खड़ा होता है, वह भद्र नजर आ रहा है और नारी के पास खड़ा है तो कामी नजर आ रहा है। पुरुष वही है। वस्तु के बदलने पर तेरी दृष्टि बदली है। इसलिए सम्यक्-दृष्टि जीव उन निमित्तों से दूर रहता है जिन निमित्तों से उसके भाव विकृत हों। सम्यक्-दृष्टि जीव उन निमित्तों के पास रहता है, जिससे उसके परिणाम निर्मल हों। फिर भी निमित्तों को दोष मत देना। पर निमित्तों के नजदीक आना और निमित्तों से दूर रहना। दोष दोगे तो राग-द्वेष होगा। दूर नहीं होंगे तो असंयम को प्राप्त हो जाओगे। अतः आत्मरक्षा करना। काँटों के मध्य चलोगे तो आपको देखकर चलना चाहिये। उनका कार्य चुभना है। काँटे चुभेंगे, तुझे कष्ट होगा, तो जमीन को निहार कर चलो कि काँटें न चुभें। पर यदि काँटा चुभ जाए, तो द्वेष मत करना, क्योंकि वो जड़ थे, तू चेतन है। द्वेष किसका है? काँटों में वह सामर्थ्य नहीं थी कि वह पहचान लेता कि यह त्यागी-व्रती जीव है, यह महापुरुष है। वह नहीं पहचान पाते। पर तुम तो पहचानने की सामर्थ्य रखते हो। तुम देखकर क्यों नहीं चले कि यह काँटा है? जगत में कैसे अज्ञानी जीव हैं?

भैया! देखो, पति डाँटे तो तुम बेटे पर निकालती हो। बेटे के वश में पेन-कापी हैं, वह उन पर निकालता है। उनको तोड़-फाड़कर फेंक देता है। कषाय की गति अधोगति है, हर समय नीचे की ओर होती है। जब आप आफिस में अधिकारी से डाँट खाते हो, वहाँ तो बेचारे कुछ कर नहीं पाते, घर आकर पत्नि पर निकालते हैं। आप सोचो मैं क्या कह रहा हूँ? अपने घर को नरक मत बनाइये। आत्मविशुद्धि चाहिये तो ध्यान दो। एक बहुत बड़ा दोष तो यह किया कि तुमने दूसरे की नौकरी की। नौकरी करने से बड़ा कोई हीनभाव नहीं है। बहुत बड़ी गलती की है जो नौकरी की। स्वाधीनता का जो जीवन है, बड़ा आनन्द का जीवन है। जिस दिन तुझे समय चाहिये हो तो दुकान में ताला डाला और महाराज के पास चले आये।

जीवन की सबसे बड़ी भूल क्या किये? आप नौकरी करने लग गये। यह जीवन की बहुत बड़ी भूल है। अब आप चाहो भी कि में स्वतन्त्र होकर विचरण करूँ, लेकिन आप पराधीन हो चुके हो। इस पर्याय में ही आप वेदन करके देख लो। जो स्वतन्त्र है, वह यूँ कह देता है कि कोई बात नहीं, चार दिन भी दुकान नहीं खुले। ऐसे-ऐसे श्रावक हैं। नगर में साधु पहुँच जाए तो जिसकी दुकान सात बजे खुलती थी, उनकी बारह बजे खुल रही है। परन्तु हे ज्ञानी! दुकान खोलने से द्रव्य आता है कि लाभान्तरायकर्म के क्षयोपशम से द्रव्य आता है?

विश्वास रखना, तेरा लाभान्तराय कर्म का क्षयोपशम प्रबल है तो ग्राहक भी इंतजार करते मिलते हैं। जब तू ताला खोलता है, जो दिन भर में तू कमाने वाला था, वह एक घण्टे में कमा लेता है। सम्यग्दृष्टि श्रावक पुनः शाम को बन्द करके घर जाकर भोजन करता है। पुनः जिनमन्दिर पहुँच जाता है। सोच को शौच करो, भाव बदल दो। भव को पवित्र करना है तो भाव बदल दो।

क्षेत्र का प्रभाव, काल का प्रभाव, भाव का प्रभाव। आपने गलती तो यह की ही है कि सर्विस किये। अब वहाँ से थका हुआ, डाँट खाया हुआ, घर आता है। आप भरे हुये थे तो बहुत अच्छा होता कि आप जिनालय पहले चले जाते तो थोड़ा ठण्डा होकर प्रवेश करते। जैसे ही घर में प्रवेश किया, बस, पत्नि को डाँटना प्रारम्भ कर दिया। अब देखो कुन्दकुन्द स्वामी इस विषय पर क्या कह रहे हैं।

इस जीव ने जैसे ही पत्नि को डाँटना प्रारम्भ किया, इधर उसके भावों की अशुभ तरंगों ने भवन को दूषित करना प्रारम्भ कर दिया, उधर पत्नि की भावनाओं का दूषित होना प्रारम्भ हो चुका है। जो मैत्रीभाव घर में था, वह नष्ट हो गया। जब माता-पिता का ऐसा रूप देखा, तो बालक भी आपकी अशुभ तरंगों से प्रभावित हो गया। इस जहर को लाया कौन है? मुनिसंध 24 घण्टे साधना में लीन है। बाहर का श्रावक आया, अचानक जो साधुसंघ को देखे, वह तो अलग ही अनुभूति अपने साथ लेकर जाता है। और यह तो पूरा संघ है। संघ का एक साधु भी यदि विशिष्ट साधना कर रहा होगा, उसके पास जाओगे तो आपको अलग ही अनुभूति होगी।

जिस जीव का चिन्तन जितना प्रशस्त होगा, परिणामों की विशुद्धि जितनी पवित्र होगी, विश्वास रखना, उसके आभामण्डल से जीवों को उतना ही आनन्द आता है।

सिंह जैसा प्राणी साधु के चरणों में सिर टेक रहा हो। आचार्य शांतिसागर जी द्रोणगिरि सिद्धक्षेत्र में गुफा में सामायिक करने बैठ गये। अचानक शेर आ गया। ये कोई काल्पनिक कथा नहीं कर रहा हूँ। सत्य घटना है। सिंह आया तो लोगों ने समझ लिया कि अब तो महाराज का पता नहीं क्या होगा? सिंह ने जिनसिंह को देखकर चरणों में सिर टेक दिया। वनराज जो था, उसने मुनिराज को देखकर माथा टेक दिया और महाराज सामायिक करते रहे। जितने तुम्हारे परिणामों की विशुद्धि होगी, क्रूर प्राणी भी तुझे देखकर शान्ति को प्राप्त होगा।

मौन साधु होते हैं। मूक पशु होते हैं। जो बोलने की सामर्थ्य से रहित होते हैं, बोलना चाहते हैं, वे मूक हैं। जो बोलने की शक्ति होने पर भी बोलते नहीं हैं, वे मौन होते हैं। बोलने की इच्छा भी मन में नहीं लाते। मौन होकर शान्त बैठ जाना। यथार्थ मानना, आपके पास वह तत्त्व संग्रहित हो जायेंगे। एकान्त में बैठना, आपका आकर्षण बढ़ जायेगा। योगियों ने क्या

किया है? क्या रहस्य है? जब एक जड़ द्रव्य इतना शक्तिमान हो जाता है कि लोहे के पिण्ड को चुम्बक खींच लेता है। ऐसे ही जो साधकपुरुष है, वह अपने अन्दर के चुम्कीय तत्त्व को संग्रहित करते हैं। ये समयसार से बोल रहा हूँ।

रागदृष्टि तेरी चुम्बक की दृष्टि है। राग हट जाये, इसी तरह चुम्बक हट जाये, तो सुइयाँ घूमेंगी क्या? राग हट जाये तो तेरी दुर्गति का भ्रमण बन्द हो जायेगा। सब व्यर्थ की बातें हैं कि यह भटका रहे, वह भटका रहे। कोई नहीं भटका रहे। चुम्बकीय शक्ति जो रागरूप में रही है, उसको आप वीतराग रूप में बदल दो।

शक्ति को बढ़ाओ। यह जो विषय चल रहा है, वह आपके कॉलेजों में जाना चाहिये। आप आश्चर्य करोगे, विदिशा में एक प्रोफेसर प्रवचन सुनने आते थे। वे शान्त होकर बैठे रहते थे और चले जाते थे। जब मेरा वहाँ से विहार हो गया, तो साँची में वह दर्शन करने पहुँचे, और कहते हैं—महाराज! मैंने 1 मास तक सुना है। पर आज आपसे कुछ कहने की भावना रखता हूँ। मैंने कहा, बोलो भाई! क्या है? बोले, स्वामी! आपको मालूम होना चाहिये कि मैंने 9 मास तक एक भी प्रवचन नहीं छोड़ा है। और आज ये बड़े भाव से कह सकता हूँ। अभी तक मैं यह कहता था कि हमारा जैनदर्शन ऐसा है। कॉलेज के छात्रों के बीच जो विषय हम उनको समझा नहीं पा रहे थे, उस विषय को हमने आपके प्रवचन की सी. डी. सुनाकर समझाया है। हमारे सारे छात्रों ने स्वीकार कर लिया कि वास्तविक रासायनिक तत्त्व ऐसा है।

कारण क्या है? नियमसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय अलौकिक ग्रन्थ हैं। प्रत्येक पूरा रासायनिक शास्त्र है। इसलिये इन ग्रन्थों को रखकर जब तक व्याख्यान नहीं होंगे, तब तक आप यह नहीं समझ पायेंगे कि इस श्रमणसंस्कृति में कौन-कौन सी गम्भीर विद्या है।

राग, द्वेष और वीतराग भाव, सभी रासायनिक हैं। कुछ अन्य नहीं है। वही मुख है, वही जिह्वा है, वही वाणी है। जैसा अंतरंग का परिणमन होता है, वैसा व्याख्यान प्रारम्भ हो जाता है। वैसा व्याख्यान ही लोगों को तद्रूप प्रभावित करना प्रारम्भ कर देता है।

एक नाटक का पात्र भी अपने रूप में सम्राट बनके आ रहा है, तो उस सम्राट का पात्र करने से सम्राटपना दिखा रहा है। और जोकर की दृष्टि क्या होती है? हँसाने की। भैया! वह जितना भी चिन्तन करता है, बस वह यही सोचता है कि सामनेवाला हँसे। उसका जो ज्ञेय तत्त्व है, वह हास्य बना हुआ है। स्वयं हँस रहा है, दूसरे को हँसाने का लक्ष्य बनाया है। यह चारित्रमोहनीय कर्म का तीव्र आस्रव कर रहा है और करवा रहा है।

उसका लक्ष्य है कि सामनेवाले हँसने लग जायें। अभी तो अच्छा लग है कि जोकर सबको हँसा रहा है, पर यही जोकर कर्म का योग भी कर रहा है। समझ में आ रहा है? इसलिये

आचार्य महाराज कह रहे हैं कि–

हे ज्ञानी! कषाय जो है, वह शत्रु है। जो इन्द्रियविषय है, वह विष है। विष की गंध व्यक्ति को मूर्छित कर देती है। आपने मुझे हाथ धोने को पुड़िया दी थी। वह पुड़िया जैसे ही मैंने खोली, उसमें लिखा था कि एक किसान बालक कीटनाशक औषधि का छिड़काव कर रहा था। इतना ज्यादा छिड़काव करता रहने से उसकी वाष्प से वहीं मूर्च्छा खाकर गिर गया। जब तक हास्पिटल ले गये, ऊपर चला गया। कीटनाशक औषधि की सुगंध की वाष्प से उसके प्राण चले गये।

हे ज्ञानी! वह तो अन्दर नाक में गयी तब प्राण गये, लेकिन विषयकषाय की वाष्प को सूंघकर ही शुभउपयोग के प्राण नष्ट हो जाते हैं। बड़े-बड़े महापुरुष, जिनका इतिहास में नाम है, वे भी नारी की बात सुनकर अपने नारायणपन को भूल गये, चित्र को देखकर मूर्च्छित हो गये।

भामंडल से पूछो, अपनी सगी बहन सीता को देखकर उसके परिणाम विकृत हो गये थे। जब बाद में मालूम चला तो स्वयं को धिक्कारा हे पापी! तू क्या कर रहा है? बहन के साथ ऐसे भाव कर रहा है।

देशभूषण कुलभूषण मुनिराज को देखा? बेटा मुनि बनने नहीं गये थे। यथार्थ मानना। विद्या और धन, इनको यदि विशेष रूप से कमाना चाहते हो तो आपको अपना नगर छोड़कर जाना पड़ता है। आप भले अपने नगर में व्यापार करते हो, पर अपने नगर से बाहर जाते हो। देने जाओगे या लेने जाओगे। बिना बाहर उद्यम किये धन आता नहीं, बिना उद्यम के विद्या आती नहीं। विशेषता विदेश जाने से ही आती है। विद्या भी विदेश जाने से विकसित होती है। धन भी विकसित होता है तो विदेश जाने से होता हैं।

सेंट बेचने वाले जिस गली से निकल जाएँ, कोई न भी खरीदे, तब भी मालूम चल जाता है कि सुगंध है।

हे ज्ञानी! सच्चे योगी को देखकर भले ही तू योगी न बन पाये, पर इतना तो मालूम चल जाता है कि योगी का आनन्द कैसा होता है। आज यहाँ से जाओगे, कोई जरा-सी रुई भी अपने कान में लगाकर ले गया, तो घर महकता है कि नहीं?

हे मुमुक्षु! तुम इतनी देर जिनवाणी की रुई को लगा रहे हो, घर में जाकर वही सुगंध पहुँचना चाहिये। नहीं-तो यहाँ से जाकर तू बरसने लग जाए।

विष को जब तू जिह्वा पर रखेगा, तब मरण होगा, लेकिन विषय-कषाय ऐसी वस्तु है, जिसके चिन्तन मात्र से मूर्च्छा आती है, मर जाता है।

'मोहं च परमं व्याधिं' कोई महारोग है, उसका नाम मोह है। जितने रोगी हैं, सब मोह के रोगी हैं। क्यों? कभी-कभी ऐसा नहीं सोचते हो कि मैंने क्या किया जीवन में? जैसे आये थे वैसे ही जाने वाले हो, नहीं लगता है? भइया! यदि नहीं लगा हो, तो आज चिन्तन करना। जब बालक थे, तब मल विसर्जन करके यूँ-यूँ उसको फैला दिया, फिर मुख में रख दिया, देख चेहरा। अच्छा किया?

उस बच्चे को देखकर तो तुम चेहरा को सिकोड़ रहे हो, लेकिन वो बच्चे कोई दूसरे नहीं, हम-तुम ही तो थे। मल भी चाट डाला। कुछ समय उसमें निकाला, फिर पढ़ाई के तनाव में निकाला। पढ़ाई के बाद नौकर बनने के राग में इधर-उधर भटकता रहा। अब नौकर भी बन गया तो जो मिल गया है उसकी रक्षा में लगा हुआ है। अब बता तूने जीवन में सुख कितना भोगा है? शान्ति की अनुभूति कितनी ली है? प्रवचन में भी विकल्प सताने लगे कि मुझे आगे बैठने क्यों नहीं मिला?

कषायविषयैश्चौरै- र्धर्मरत्नं विलुप्यते।
वैराग्य खड्गधाराभिः शूराः कुर्वन्ति रक्षणम्॥ 36 ॥

यह विषय-कषाय रूपी जो चोर हैं, चित्त की विशुद्धि को तुरन्त चुरा लेते हैं। तीन-तीन चार-चार दिन परिणामों की विशुद्धि बनाई, तीर्थों की वंदना करके आया, लेकिन एक क्षण में विषय की कहीं आग लगी, तो पूरी विशुद्धि को तुमने नष्ट कर दिया। अभी देखो खेतों में किसान कितनी मेहनत कर रहे हैं। आप यहाँ पंखे-कूलर, ए. सी. में बैठे हो, वह खेतों से अनाज निकाल रहे हैं। लेकिन पूरा अनाज खलियान में पहुँचने के बाद शार्ट शर्किट हो गया या किसी ने काड़ी डाल दी, तो उसकी पूरी साल भर की मेहनत का क्या होगा? बताओ. ....।

उस किसान के बाहर के द्रव्य को देखकर तू यूँ सिर हिला रहा है, पर तूने भी तो जीवन में इतने विशुद्ध परिणाम किये, एक क्षण को विषय-कषाय सता गयी, उस पर क्यों नहीं कहता कि हे भगवान्! मैंने क्या किया?

ध्रुव सत्य है कि जब निगला जाता है, तब मुख नहीं चलता है और जब मुख चलता है, तब निगला नहीं जाता है। समझ गये? रसना इन्द्रिय का स्वाद जब लेता है, तब एक क्षण को मुख भी बन्द हो जाता है। जब स्वानुभूति होती है, तब जगत के सारे कार्य बन्द हो जाते हैं।

यह विषयरूपी जो चोर हैं, वह धर्मरत्न को चुरा रहे हैं। भैया! ताले पर ताले तू घर में डालकर रखता है। और कहीं तेज हवा चल गयी, तूफान आ गया, साँकल खटकी नीचे, तेरा हृदय खटकना प्रारम्भ हो गया कि कोई.....।

हे ज्ञानी! जैसे द्रव्य/श्री के लिये इतना तू जाग्रत है, ऐसे ही विषय-कषाय रूपी चोर जब तेरी साँकल खटकाये, तब तू अपने आप में सजग क्यों नहीं हो जाता? वह वीरता इन राग-द्वेष डाकुओं के आते ही कहाँ चली जाती है?

धर्मरत्न को चुरानेवाले विषय-कषाय रूपी चोर जब प्रवेश करने लग जायें, तब हे ज्ञानियो! जैसे आप अपने धन की रक्षा के लिये सशस्त्र सैनिक खड़ा करते हैं, वैसे ही वैराग्यरूपी तलवार लेकर साधु अपनी रक्षा करते हैं। यहाँ निर्ग्रन्थ योगियों और त्यागियों को आचार्यभगवान् कह रहे हैं–

हे मुमुक्षुओ! जो रण में शूर हैं, खड्ग लेकर अनेक प्राणियों के खून बहा रहे हैं, ये शूर 'शूर' नहीं हैं। जो तरुणी नारियों के कटाक्ष रूपी बाणों से नहीं बिधता है, वही शूर 'शूर' है। रण में शूर 'शूर' नहीं है। अपने शील की रक्षा कर पाना ही शूरता है। ऐसे शूर वैराग्यरूपी खड्ग को लेकर अपनी रक्षा करते हैं, धर्मरत्न की रक्षा करते हैं।

व्यवहार के घर में और निश्चय के घर में दोनों ही घरों में, अशुभ शब्दों की दुर्गन्धि मत फैलाना। यही तुम्हारी आत्मशान्ति का उपाय है।

'**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।**' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"सम्यग्दर्शन ही पथ्य है"

कषायकर्षणं कृत्वा, विषयाणामसेवनम्।
एतद् भो मानवाः! पथ्यं सम्यग्दर्शन मुत्तमम्॥ सा. स. 37॥

विषयकषायों को दूर करने के लिए, पथ्य के समान उपाय, निर्दोष सम्यग्दर्शन है। जब निश्चय सम्यग्दर्शन प्रगट हो जाता है, तब आत्मप्रतीति हो जाती है कि मेरा आत्मा मूल में परमात्मा के समान ज्ञाता-दृष्टा अविनाशी है तथा सच्चा सुख मुझे स्वतन्त्रता से अपने ही आत्मा के अनुभव से प्राप्त हो सकता है और विषयसुख, खारा पानी पीने के समान, विषयचाह को शमन नहीं करता है, प्रत्युत बढ़ा देता है। यही श्रद्धा कषायों का अनुभाग या बल कम करती हुई उनको कृश करती हुई चली जाती है। जैसे-जैसे कषाय मन्द होती है, वैसे-वैसे ही विषयभोगों के सेवन की प्रवृत्ति कम होती जाती है। आचार्यभगवन्त कहते हैं कि-हे मानवो! कषायों को कृश करके विषयों का सेवन नहीं करना। इसका हितकारी उपाय निर्दोष सम्यग्दर्शन है।॥ 37॥

॥ सद्-देशना॥

अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है।

यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवन्त हो। जयवन्त हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' में वैराग्य-भावना का अलौकिक व्याख्यान करते हुये समझा रहे हैं।

ज्ञानियो! "जैनीवृत्ति स्वेच्छाचार निरोधनी।" दिगम्बर योगी, वीतरागी तपोधन, धरती के देवता मुनिराजों की धर्ममय अलौकिक प्रवृत्ति होती है। जयवन्त हों धरती के देवता वीतरागी तपोधन, दिगम्बर श्रमण।

ज्ञानी! धरती के देवता दिगम्बर मुनि स्व दोषों की निन्दा करते हैं, परन्तु पर की निन्दा स्वप्न में भी नहीं करते हैं। तप करते हुए परीषह-उपसर्गों को समतापूर्वक सहन करते हैं। दिगम्बर मुनि ध्यान-अध्ययन में निरन्तर निरत रहते हैं एवं अंतरंग-बाह्य परिग्रह से विरक्त रहते हैं।

वीतरागी श्रमण ज्ञानोपकरण एवं संयमोपकरण मात्र को धारण करते हैं। ज्ञान-उपकरण अर्थात् शास्त्र स्वाध्याय के लिए, लेखनी शास्त्रादि लिखने के लिए। संयम-उपकरण अर्थात् शारीरिक शुद्धि हेतु कमण्डलु, मार्जन हेतु पिच्छिका। मुनिराज साधना के काल में निरन्तर जाग्रत

रहते हैं। दिगम्बर श्रमण समत्व भाव में स्थापित रहते हैं। ज्ञानियो! समत्व भाव ही श्रमण का आभूषण है। समता भाव ही श्रमणों की पहिचान है, चिह्न है। नग्न मुद्रा और पिच्छि-कमण्डलु बाह्य चिह्न हैं। वीतरागी मुनि विश्वमैत्री के विशिष्ट सूत्र विश्व के प्राणियों को प्रदान कराते हैं।

मुमुक्षुओ! जो संसारी प्राणियों को सांसारिक दु:खों से निकलकर उत्तम सुख में पहुँचाता है, वह धर्म है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को धर्म कहते हैं, क्योंकि ये सांसारिक दु:खों से छुड़ाकर आत्मा को उत्तम सुख में स्थापित करते हैं।

ज्ञानी! मोह-क्षोभ से रहित परिणाम ही चारित्र है, वही धर्म है, क्योंकि वह आत्मा का स्वभाव है। स्वभाव ही धर्म है। जो अपनी जाति में श्रेष्ठ होता है, वह रत्न कहलाता है। आत्मा के सर्व-भावों में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप परिणाम ही श्रेष्ठ हैं। अत: ये ही रत्न हैं। और इनमें परम रत्न श्रेष्ठ निर्मल सम्यक्-दर्शन है।

ज्ञानियो! शून्य कितने भी हों, यदि अंक रहित हैं, तो कोई मूल्य नहीं है। अंक है तो मूल्य है, अंक नहीं है तो शून्य-ही-शून्य है। मुमुक्षुओ! सम्यग्दर्शन है, तो ही ज्ञान समीचीन है। रत्नत्रय धर्म है।

ज्ञानियो! सम्यक् श्रद्धान है तो सम्यग्दर्शन है। सम्यक् के अभाव में ज्ञान-चारित्र भी विपरीत हैं। ज्ञानियो! सबकुछ दे देना, लेकिन सम्यक्त्व रत्न नहीं देना।

सम्यग्दर्शनशुद्धा नारकतिर्यङ्नपुंसकस्त्रीत्वानि।
दुष्कुलविकृताल्पायुर्दरिद्रतां च व्रजन्ति नाप्यव्रतिका:॥ 35 र. श्रा.॥

ज्ञानियो! आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने ग्रन्थराज रत्नकरण्ड श्रावकाचार में लिखा है कि—जो भव्यात्मा सम्यग्दर्शन से शुद्ध होता है, वह नरकायु, तिर्यंचायु को प्राप्त नहीं करता है। दुष्कुल में जन्म नहीं लेता है और नपुंसक भी नहीं होता है। अल्पायु वाला भी नहीं होता है और दरिद्री भी नहीं होता है। सम्यग्दृष्टि जीव उच्च कुल में ही जन्म लेता है। इसलिए श्रेष्ठ सम्यग्दर्शन को प्राप्त करना ही श्रेष्ठ है।

ज्ञानियो! कुन्दकुन्द स्वामी ने रयणसार जी ग्रन्थ में लिखा है कि इस खोटे काल में कोई उत्कृष्ट साधना है, तो मात्र स्वाध्याय है। पर्वत की चोटियों पर तुम बैठ नहीं सकते, नदी के किनारे जा नहीं पा रहे हो, वृक्ष के नीचे बैठ नहीं पा रहे हो, तो क्या करो? चित्त घूम रहा है। बन्दर को यदि उद्यान मिल जाये तो उजाड़ेगा कि नहीं? फल सहित वृक्ष मिल जाये तो बन्दर उस पर चढ़ जायेगा, जिससे अन्य वनस्पतियाँ सुरक्षित हो जायेंगी। इसी प्रकार से गुणभद्र

स्वामी ने कहा है कि मन रूपी बन्दर को श्रुत-स्कंध पर चढ़ा दो, जिसमें नय व प्रमाण की पत्तियाँ लगी हैं, तत्त्व के पुष्प हैं और मोक्ष का फल है। ऐसे श्रुत-स्कंध पर चढ़ जायेगा तो मन-बन्दर भटकने से बच जायेगा और तेरे चारित्र के उद्यान को सुरक्षित करेगा। यदि आपने इसे श्रुत-स्कंध पर नहीं चढ़ाया, तो चारित्र के बगीचे को उजाड़ देगा। आप सामान्य उपदेश कितने ही दिन सुनते रहोगे, पर यह मालूम नहीं चलेगा कि इसमें रहस्यपूर्ण क्या हुआ है। मूलग्रन्थों को लेकर चर्चा करोगे तो अन्दर में अह्लाद होगा। ज्ञानी! जैसे माँ के पत्र को बेटा दस बार पढ़ता है, फिर भी आनन्द आता है। हे ज्ञानियो! यह जिनवाणी जिनेन्द्रदेव का पत्र है, निर्ग्रन्थ गुरुओं के पास जाकर कहना-हे स्वामी! मुझे बता दो कि मेरी जिनवाणी में तेरे तीर्थंकर परमेश्वर ने क्या लिखकर भेजा है?

मुमुक्षुओ! पुण्य का द्रव्य जब तक तुम्हारे पास है, तब तक सब तुम्हारे हैं। जिस दिन पुण्य का द्रव्य समाप्त हो जायेगा, तो कोई तेरे नहीं होंगे। दो पर विश्वास रखना, तीसरे की ओर आँख उठाकर भी मत देखना। पहला भाग्य, दूसरा भगवान्। दो ही देखना, भाग्य और भगवान्। भगवान् है तो भाग्य बनेगा और भाग्य है तो भगवान मिलेगा, तीसरे को देखने की कोई आवश्यकता नहीं है। जितने आपको अपने साथ दिखाई दे रहे हैं, ध्यान रखना, ये तेरे साथ नहीं, तेरे भाग्य के साथ हैं। रावण के पास अठारह हजार अक्षौहिणी सेना थी और राम लक्ष्मण सीता तीन ही थे। भाग्य की महिमा देखो, रावण अकेला रह गया और वे तीन करोड़ हो गए। इसलिए हाय-हाय करने की आवश्यकता नहीं। आपके ही नगर में ऐसे भी धनपति हैं जो करोड़ों कमाते हैं और ऐसे भी जीव हैं जो भीख माँगकर अपना पेट भरते हैं। इससे लगता है कि न क्षेत्र किसी को कुछ देता है, न काल किसी को कुछ देता है। यदि काल देता होता, तो हर काल में जीव को सुख मिलना चाहिए। क्षेत्र देता, तो इस नगर में एक-सा सुख क्यों नहीं मिलता? इसलिए आपको विश्वास करना पड़ेगा कि द्रव्य, क्षेत्र, काल के अलावा भी कोई है, वह है भाग्य। भाग्य तेरे शुभाशुभ भावों से बनता है और भावों को निर्मल रखने के साधन हैं। जो जीव अशुभ में गया है, उसने पहले देखा है, फिर उपयोग जाता है और फिर जीव अपने स्वभाव से चला जाता है, संयम से च्युत हो जाता है।

मन को वश मत करो, आँखों को वश करो। जब-जब आँखें देखती हैं, वहाँ मन फिर जाता है। आप तो इंसान हो, आँखों को तो श्वान भी जानता है। आपकी दृष्टि प्रीतिपूर्वक है तो पूँछ हिलाने लगता है, आप गुस्से में हो तो धीरे-से भाग जाता है। श्वान भी आँखों

को जानता है। भीतर के भावों को बतानेवाला कोई है, तो वे हैं तेरी आँखें। अशुभ करके आया है तो आँखें अलग दिखाई देंगी और यदि शुभ करके आया है तो आँखें अलग दिखाई देंगी। भीतर की बात तो छिपा सकते हो, पर आँखों को कहाँ छिपाने जाओगे? आँखों की चंचलता से चित्त की चंचलता बढ़ रही है। ध्यानस्थ पुरुष के नेत्रों की टिमकार मन्द हो जाती है और श्वास भी मन्द हो जाती है। जिसने कुछ अशुभ किया है, उसकी नेत्रों की टिमकार बढ़ जायेगी, श्वासें बढ़ जायेंगी। किसी से पूछने की आवश्कता नहीं। जितना ध्यानस्थ होगा, जितना सत्पुरुष होगा, जितना साधक होगा, उसका भोजन व भाषण अल्प होगा, मल विसर्जन अल्प होगा और नेत्रों की टिमकार अल्प होगी। समझ लेना पुण्यात्मा जीव है। यदि इनमें से किसी वस्तु की वृद्धि है तो समझ लेना कि पुण्यहीन व्यक्ति है।

ज्ञानी! जगत् में किसी भी पर्याय में पाँच इन्द्रिय की अनुभूति ली जा सकती है, पर जगत् में स्वात्मानुभूति का एक ही माध्यम है, वह है दिगम्बर भेष। दिगम्बर भेष को प्राप्त करके भी जीव बाह्य प्रपंच में जा रहा है तो हे ज्ञानी! वमन करके सेवन करने के समान समझना चाहिए। वमन करके सेवन कौन करेगा? एक ही जीव है जो वमन करके सेवन करता है। कौन है? श्वान है। परन्तु जो जीव संसार के समस्त वैभव को छोड़कर आया हो और पुनः कहे, 'हे सेठो! मुझे कुछ चाहिए है।' तो वमन करके सेवन करना है। यह जिनमुद्रा है, अरिहंत मुद्रा। विश्व में विश्वास की कोई मुद्रा है तो वह जिनमुद्रा है। वस्त्र तो तस्कर की पहचान है।

ज्ञानी! आँखें चित्त के विकारों को उद्घाटित करने का साधन हैं। जब आँखें श्रुत के अक्षरों पर होंगी, तो चित्त अर्थ पर होगा। दो ही तो विकार खड़ा कर रहे थे, आँखें और चित्त। दोनों अक्षर और अर्थ पर टिक गये तो फिर कोई अनर्थ हो ही नहीं सकता। इसलिए वाचना की आवश्यकता है। स्वाध्याय क्यों करना चाहिए? चित्त भटकता है, आँखें भटकती हैं। यदि आँखें तुम्हारी ग्रन्थ पर होंगी, मन अर्थ पर होगा, तो अनर्थ से बच जाओगे। उस खोटे पंचमकाल में अपने आपको सुरक्षित रखने का कोई साधन है तो वह है मात्र स्वाध्याय। आप माला भी फेरोगे तो एकाध घण्टे बाद थक जाओगे। सभी तपों में स्वाध्याय एक ऐसा तप है जो अभी क्षण ज्ञानोपयोग की धारा है। 'वाचना' यानि निर्दोष आगम ग्रन्थों का पठन-पाठन, वीतरागी आचार्यों द्वारा प्रणीत ग्रन्थों को पढ़ना और मूल प्राकृत या संस्कृत भाषा से समझना। यह विशेष ध्यान रखना। हिन्दी में लोगों ने भावार्थ किये हैं, लेकिन मूल आचार्यों की व्याख्या क्या है और अपरवर्ती लोगों की व्याख्या क्या है। इसको आप तभी समझ पायेंगे जब आपको भाषा

का ज्ञान होगा। इसलिए संस्कृत से पढ़ना। विस्तार से समझना है तो जयसेन स्वामी को समझो। अध्यात्म के गूढ़ रहस्यों को समझना है तो अमृतचन्द्र स्वामी को पढ़ना पड़ेगा। इसलिए आपको दोनों को पढ़ना चाहिए।

मुमुक्षु! तत्त्व की गहराई में प्रवेश करना है और अपनी आत्मा को संसार के भटकाव से बचाना है तो भूतार्थ दृष्टि को और सत्यार्थ मार्ग को समझना पड़ेगा। इसलिए वाचना होना चाहिए। स्वाति की एक बूँद भी सीप में चली जाती है तो वह मोती बन जाती है। हमारे निर्ग्रन्थों ने संस्कृति की रक्षा के लिए ग्रन्थ लिख दिये, अब तुम ग्रन्थ नहीं लिख पा रहे हो तो कोई विकल्प नहीं करना, लेकिन निर्ग्रन्थों के लिये ग्रन्थों को खोलकर देखते रहना तो हमारी संस्कृति जयवन्त होगी। जब तक भीतर श्रुत विराजमान नहीं होगा, विश्वास मानना, बाहर के मन्दिर स्थान आँखों से दिखते रहेंगे। आज भवनों की तो वृद्धि हो रही है, किन्तु संवेदना की कमी हो रही है। संवेदनायें शून्य होने के कारण आँखों के विषय तो दिखाई दे रहे हैं, पर अन्तःकरण के विषय प्राप्त नहीं हो रहे हैं। मैं समझता हूँ कि जब तक यहाँ बैठे हो, तब तक कुछ तो महसूस हो रहा है। घर में इतने ही शान्त रहते क्या आप लोग? इसका तात्पर्य है कि जिनवाणी में कुछ तो है। ताली वाले उपदेश, चेहरे हँसने वाले उपदेश बन्द करो। अन्तःकरण में आह्लाद होने लगे, उस चर्चा की आवश्यकता है; क्योंकि जब तक तत्त्व की भावात्मक व्याख्या नहीं होगी, तब तक आप न धर्म की रक्षा कर पाओगे न स्वयं की रक्षा कर पाओगे। भावात्मक शैली का उपयोग ही आपको ऊपर ले जायेगा। पानी की एक बूँद आँख में आ गयी, रूमाल से पोंछना, रूमाल गीला दिखाई देगा। तो विश्वास रखना, माँ जिनवाणी की बूँदें तेरे हृदय को भी गीला कर सकती हैं, आवश्यकता है संवेदना की। आज का युवा माता-पिता को वृद्धाश्रम की राह क्यों दिखा रहा है? माता-पिता की गलती है। खूब पढ़ाया-लिखाया, सारी सुख-सुविधायें दी, लेकिन संवेदनायें नहीं दीं। उसका परिणाम है कि आज वृद्धों को आश्रम में रहना पड़ रहा है। यदि आप वृद्धाश्रम में जाना नहीं चाहते, तो आज से ही बच्चों को जिनवाणी पिलाना शुरू कर दो।

कषायकर्षणं कृत्वा विषयाणामसेवनम्।
एतद् भो मानवाः! पथ्य सम्यग्दर्शनमुत्तमम्॥ सा. स.॥

आचार्यभगवन् कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं कि हे भव्य मानवो! 'कषायकर्षणं कृत्वा' कषायों को कम करके, 'विषयाणां असेवनम्' पचेन्द्रिय के विषयों का सेवन मत करो, "एतत्

पथ्यं" इसके लिए पथ्य (हितकारी) यदि कोई है तो हे भव्य! वह "सम्यग्दर्शनं उत्तमं" उत्तम निर्दोष सम्यग्दर्शन ही है।

ज्ञानियो! सम्यग्दर्शन ही श्रेष्ठ उपाय है जिसे प्राप्त करके ही कषायों का अभाव किया जा सकता है। मोक्षमार्ग की कोई प्रथम सीढ़ी है तो वह सम्यग्दर्शन ही है। सम्यक्-श्रद्धान के अभाव में मोक्षमार्ग प्रारम्भ नहीं होता है। रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र) ही मोक्षमार्ग है।

ज्ञानियो! अनन्त संसार से पार उतरना चाहते हो तो सम्यक्-बोध, सम्यक् श्रद्धान को प्राप्त करो।

'**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।**' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

सम्यग्दर्शन ही परम हितैषी है

कषायातपतप्तानां, विषयामयमोहिनाम्।
संयोगायोगखिन्नानां, सम्यक्त्वं परमं हितम्॥38॥

कषायरूपी आतप उष्णता से सन्तप्त, विषयरूपी रोग से मूर्च्छित और अनिष्ट संयोग एवं इष्टवियोग से दु:खित संसारी प्राणियों के लिये सम्यग्दर्शन ही परम हितकारी है।

सम्यग्दर्शन के प्रति अनुराग

वरं नरकवासोऽपि, सम्यक्त्वेन समायुत:।
न तु सम्यक्त्वहीनस्य, निवासो दिवि राजते।। 39।।

सम्यग्दर्शन से विभूषित जीव का नरकवास भी अच्छा है और सम्यग्दर्शन से रहित का स्वर्ग में रहना भी अच्छा नहीं है, हितकर नहीं है।

।। देशना ।।

अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं।

तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनिषियो! जगत्कल्याणी है।

यह सर्वज्ञशासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमण संस्कृति ।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी 'सारसमुच्चय' जी ग्रन्थ में आत्मा के प्रधान गुण सम्यक् की व्याख्या कर रहे हैं। आज जैनदर्शन की हर विद्या को दार्शनिक, तत्त्विक दृष्टि से समझने की आवश्यकता है।

लोग भ्रम से इतना ग्रसित हैं, दु:ख से आविर्भूत हैं कि जब समता सामने आती है तो उनको मात्र इतना लगता है कि उपचार होना चाहिये। विचार, आचार समाप्त हो जाता है। ये जीवन का राग और इन्द्रियसुख का राग, विचार-आचार इन दोनों को नष्ट कर देता है। फिर विवेक और शास्त्रीय ज्ञान का पाण्डित्य समाप्त हो जाता है। ऐसे अज्ञानीजीव भारत की भूमि पर जैनकुल में जन्म ले लिये । जिन्होंने पत्नी के व्यंतर के उतारने के राग में जाकर एक बकरे और मुर्गे की बलि दे दी। उस जीव का घात करके, चतुर्दशी के दिन तो चाण्डाल ने भी हिंसा नहीं की थी। दिगम्बर मुनि से नियम लिया था। और किसी अज्ञानी, पाखण्डी ने एक ऐसे धर्मात्मा पुरुष को उलझाकर रखा और चतुर्दशी के दिन जीव का घात करा दिया। ये सब क्यों हुआ? हे ज्ञानी! हिंसा से शुभ होता तो अहिंसा का क्या होता?

आज कोई बालक है, दुबला-पतला है, क्षीणशक्ति है। और एक अधिक शक्ति शाली, मस्त है, दुबले-पतले चार बालकों को एकसाथ पटक देता है। ज्ञानियो! ये कोई चमत्कार नहीं है, उसके शरीर का बल है। ऐसे कोई देव है, व्यन्तरादि है, वह देवगति का जीव है। उसके पास शक्ति-सामर्थ्य है। तज्जन्य पर्याय के कारण उसको उतनी ताकत प्राप्त है। वह अपनी ताकत का प्रयोग करके, आपके इष्ट-अनिष्ट में सहकारी बन जाता है। उसके सहकारीपने को देखकर, चमत्कार मान करके, जीवों का बलिदान कहकर, ये मत समझ लेना कि बलिदान से तू स्वस्थ हुआ है, जीव की हिंसा करने से तू स्वस्थ हुआ है या धन मिला है। ज्ञानी! उसने तेरे लिये दुर्गति में भेजने का उपयोग किया है।

सम्यक्-दर्शन की रक्षा करना चाहते हो तो सबसे पहले गतियों के लक्षण समझिये आप। हमारे भैया वकील साहब जी हैं, वो इतनी ताकत रखते हैं कि किसी को भी घुमा सकते हैं मस्तिष्क से। यदि नहीं घुमा सकते होते, तो बिना हल चलाये, बिना तराजू चलाये वो परिवार कैसे चला रहा है? बड़े आनन्द के साथ, इज्जत के साथ रह रहे हैं। इसमें कौन काम कर रहा है?

जिनका तन काम करता है, वे ज्यादा सुख में नहीं रह पाते हैं। जिनका ज्ञान काम करता है, वे ज्यादा सुखमय होते हैं। तन की मेहनत करने वाले मजदूर कहलाते हैं और जो मस्तिष्क से मेहनत करते हैं, वे बाबू जी बने होते हैं और जो परिवार को छोड़कर मस्तिष्क से मेहतन करते हैं, वे मुनिराज कहलाते हैं और जो मुनिपने का भी राग छोड़ देते हैं, वे केवली भगवान् होते हैं और जो देह से रहित होते हैं। ऐसे सिद्ध भगवान् होते हैं।

चार गतियों का लक्षण समझिये आप। मुझे अक्सर लगता है उन विद्वानों को देखकर जो समाज को दु:खी देखकरके जादू-टोना, तंत्र-मंत्र में फंसा देते हैं, तब इनको वहाँ वस्तुस्वरूप की व्याख्या करनी चाहिये।

किसी बात को आश्चर्यचकित होकर देखना, ये दोष है। किसी भी बात को चमत्कारित रूप में निहारना, ये दोष है। अठारह दोषों में आश्चर्य भी एक दोष है। जिनदेव के आश्चर्य नहीं होता । आश्चर्यचकित होना, ये दोष है। ये 'अहा' तुम्हारा किस में जा रहा है? तुम सामान्य से देखो। यथार्थ बताऊँ मैं आपको कह रहा हूँ, आप सुन रहे हो, ये ध्रुव सत्य है। ये झलक रहा है, जो मैं कह रहा हूँ।

किसी शिल्पकार ने एक बहुत बड़ी आकृति देकरके एक पुतला खड़ा कर दिया। उस पुतले को देखकर भैया तू आश्चर्यचकित हो रहा है। हे ज्ञानी! पाषाण को तू नहीं निहार रहा

है। पाषाण को देख लेता, फिर आकृति को देखता तो नाम लेता कि वह भाव प्रमेय में विशेष है। पाषाण तो पाषाण है। आकार देखोगे तो नानारूप है। किसी के पिता की तस्वीर है तो किसी की माँ की तस्वीर है। जिसे तू माँ की तस्वीर कहता है, उसे ही कोई अपनी पत्नी की तस्वीर बोलता है।

भैया! जिसे तू अपनी माँ की तस्वीर कहेगा, उसे तेरा पिता किसकी तस्वीर कहेगा? उसी में एक को मातृ भाव झलक रहा है और एक बेचारे को पत्नी भाव झलक रहा है। इसलिये ज्ञानियो! जितने आकार हैं, सब भ्रम के कारण हैं। उनमें राग-द्वेष है। इसलिये निराकार अशरीरी भगवान्-आत्मा जो है, उनके न राग है, न द्वेष है। वो अमूर्तिक है। परम निरंजन स्वरूप जो भगवान् है, वो निराकार है, निरावलंव है।

शक्ति को शक्ति स्वीकारिये। कोई चमत्कार भी दिखा रहा हो तो उसको भी नमस्कार नहीं करना। वो तो विद्या है, उसको क्या नमस्कार करना। बहुत धैर्य चाहिये। मैंने बहुत बड़े-बड़े चमत्कार देखे हैं। भैया! आप आश्चर्य करोगे, आठ वर्ष की उम्र में मैंने बहुत बड़े-बड़े चमत्कार देखे हैं और उस चमत्कार वाले को मैंने यह कह दिया कि ये बंद करो अपने चमत्कार। भगवान् का नाम तेरे पास हो तो लो, नहीं तो ये चमत्कार कोई काम के नहीं है। चमत्कार के लड्डू नहीं देखे क्या?

मैंनें चमत्कार के लड्डू देखे हैं, मैंने चमत्कार की मिठाइयाँ देखी हैं। लेकिन जो चमत्कार दिखा रहा था, बाद में मैंने उसे कटोरा लेकर भीख माँगते देखा है। वह कह रहा था कि इसमें डालो। चमत्कार के लड्डू से पेट भरता होता, तो वह अंत में पैसे क्यों माँगता है? इसका तात्पर्य है कि चमत्कार झूठा है। मेरा व्यापार सत्य है।

जैसा मेरा व्यापार होगा, वैसा ही मेरा फल होगा। समझो, रहस्यों को रहस्यों में डाल दिया है। इसमें सामान्य लोग अज्ञानी बनकर पागल हो रहे हैं। माँ! एक बड़ा रहस्य बताऊँ आपको। इस बात के आप पूर्ण ज्ञाता हो। जब तक तेरे में घूँघट रहती है तब तक रहस्य रहता है। जिस दिन तुम अपने यहाँ बहू बनकर आयीं थीं, उस दिन घूँघट डालके आयीं थीं कि नहीं आयीं थीं? माँ! घूँघट पड़ा था जितना लम्बा, उतने ही लोग झांक-झांकके देख रहे थे। यहाँ तक कि अड़ोस-पड़ोस के लोग देखने आते थे।

ये बात सत्य है कि जितना गूढ़ रखा जायेगा, उसमें उतना ही आकर्षण होता है। यदि आप और घूँघट डाले रहती, तो आपकी और कीमत होती। जब से तूने घूँघट उठाया है, तुझे कोई देखता भी नहीं है।

जो प्राचीन मंदिर हैं, उनको तो अज्ञानी लोग नष्ट कर रहे हैं, तोड़ रहे हैं। बुद्धि तो भ्रष्ट हो गई बेचारों की। मंदिरों को तोड़ करके, हाल बना करके, भगवान् को बिठाल रहे हैं। ये मंदिर थोड़े-ही है, ये तो हाल है। गर्भालय में यदि कोई णमोकार भी पढ़ता है तो गूंजता है। उसकी तरंगें ऊपर जाती हैं। सारे वातावरण को प्रभावित करती हैं। ये गूढ़ रहस्य है। चमत्कार भी तुम्हारे हाथ में है और नाश भी तुम्हारे हाथ में है।

दोनों हाथ को मुकुलित करो, अब अनुभव करो कि दोनों हाथ के मध्य में कुछ हो रहा है क्या? कुछ नहीं हो रहा क्या? क्या हो रहा है? फिर खोल दो। जो बंद हाथ में गर्मी महसूस हो रही थी, अब क्यों नहीं है? ये गर्मी कहीं से लाये हो? कि पहले से थी? तो फिर आ क्यों रही है अगर पहले से थी?

वैसे हे ज्ञानियो! हर वस्तु में शक्ति विद्यमान है, उपयोग की विधि मालूम नहीं होती है, इसलिये आप ठिठुर रहे हो। यदि हाथ बंद कर लो तो गर्मी आती है। ऐसे ही अपने मुख को बंद कर लो, श्वासों को बंद कर लो, आँखों को बंद कर लो, योग को सम्हाल लो, तो ज्ञानी! तेरे अंदर वाष्प बनेगी और तेरी वाष्प ही तुझे सिद्धालय की ओर ले जायेगी। वो शक्ति भी तेरे पास है।

पर ये ज्ञानी लोगों को ठगते कैसे हैं? जिसने इस बात का ज्ञान कर लिया, वह उसे चमत्कार संज्ञा दे देता है। मैं कह रहा हूँ कि जिसे आप चमत्कार संज्ञा दे रहे हो, इसे 'वस्तुस्वभाव' संज्ञा क्यों नहीं देते? हाथ गरम हुआ न? हाथ गरम ही नहीं हुआ है, और-भी कुछ हुआ है। यदि आप रीढ़ की हड्डी सीधे करके यूँ ही बैठे रहे और प्रभू की ओर निहारते रहे, जितने विद्यार्थी हैं और जिन को अपने चित्त एकाग्र करना हो, विशद्धि और बुद्धि बढ़ाना हो, मस्तिष्क स्वस्थ रखना हो, तो जितने प्राचीन जिनबिम्ब हों, उनके सामने हाथ जोड़ कर, उनके मस्तक/ललाट को निहारना। बेटा! विश्वास रखना। चित्रों को देखकर चारित्र भ्रष्ट होता है कि नहीं होता?

टी.वी. के चित्रों को देखकर चारित्र भ्रष्ट हुआ कि नहीं हुआ है? और जब तीनलोक के नाथ को निहारेगा, तो तेरी बुद्धि क्यों नहीं खुलेगी, चारित्र क्यों नहीं बढ़ेगा? ऐन्टीना व्यवस्थित होता है तो चित्र भी आते हैं, ज्ञानी! ऐसे ही तेरा मन रूपी ऐन्टिना एकाग्र रहेगा तो विशुद्धि बढ़ेगी और ज्ञान अपने आप छमाछम बढ़ेगा।

भारतीय विद्या, जिसे लोगों ने अपने नामों से प्रवाहमान किया है, वो यथार्थ में तीर्थंकर अर्हन्त की वाणी थी। जिसको लोगों ने टोटका बोल दिया है। कुछ नहीं था टोटका, मैं तो

कह रहा हूँ। आप तो भगवान् को निहारिये। कोई क्या कर रहा है, वह मत देखिये। हमारे योगियों ने आपसे पहले से कह दिया है कि सामने जिनदेव हैं, उनको निहारो और जिनदेव न हों तो अपनी नाक को निहारो। नासाग्र दृष्टि से बैठेगा तो एकाग्र भी हो जायेगा, तेरी बुद्धि भी बढ़ेगी, आँखों की ज्योति बढ़ेगी और बुद्धि भी तेरी भ्रष्ट हो जाने से बच जायेगी। और इसमें हेतु है। जीव का जैसा परिणमन होता है, उसका क्षयोपशम तद्रूप परिणमन करता है। देखो, जिसके क्रूर परिणाम हैं, वह दीपक जलाकर टोटका करेगा। वह दीपक में हिंसा करेगा, घृत को जलायेगा। और यदि ज्ञानी होगा तो कहेगा कि कुछ नहीं, जिनदेव के सामने बैठूँगा और अर्हन्त को देखूँगा।

और अब आप मुनिराज हो, तो प्रतिमा लेकर घूमोगे क्या? क्योंकि जिनदेव को देखना है। नहीं, आप सिर पर श्री जी को लेकर नहीं चलोगे। आप तो अपने आप को देखिये। रहस्य है, रहस्य। पर हर बात को रहस्य में डालकर, छुपाकर रख देना और लोगों को आश्चर्यचकित कर देना, वही जो रहस्य के आश्चर्य होते हैं, वो धीरे-से मिथ्यात्व की ओर मुड़ जाते हैं।

ये हमारे गाँव के लोग हैं जो आँखें खोलते, आँखें मीचते और कहते हैं कि मुझे आत्मा दिखती है। भैया! वहाँ के लोगों को आँखें खोलने-मीचने में आत्मा दिखती है। सुनो- आँखों की टिमकार जितनी अधिक होगी, उतनी हिंसा अधिक होगी। जिस व्यक्ति के परिणाम विकारों से जितने भरे होंगे, किसी भी प्रकार का विकार होगा, उसकी श्वासों की गति और आँखों की टिमकार उतनी तीव्र होगी। जिसके भीतर में भय, काम, क्रोध, मान, माया, लोभ कोई भी कषाय सता रही होगी, उसकी श्वास की गति बढ़ जायेगी और नेत्रों की टिमकार बढ़ जायेगी।

चोर की आँखों से मालूम चलता है कि चोर है। बालक! तूने लड्डू छिप कर खाया है तो तेरी श्वासें बता देंगी कि तू माँ से छिप कर लड्डू खाकर आया है। जो लड्डू माँ ने दिया है, उसमें स्वाद है। उसी डिब्बे से तूने चुराकर खाया है। पर ज्ञानी! स्वाद तो रहेगा, लेकिन आनन्द नहीं है, क्योंकि माँ ने नहीं दिया था। बोल, बेटा! ऐसा नहीं है क्या? फिर भी चुरायेगा क्या?

पापी जीव के नेत्रों की टिमकार और श्वासों की गति वृद्धि को प्राप्त होती है। हे ज्ञानी! जितना विशुद्ध परिणामी होगा, जितना ईमानदार होगा, जितना सहज परिणामी होगा, जितना

निर्दोष संयमी होगा, उस व्यक्ति को कोई प्राणायाम करने की आवश्यकता नहीं है। विश्वास रखिये, कोई पेट फुलाने-पिचकारने की आवश्यकता नहीं है।

जितना विशुद्ध परिणाम होगा, उसकी श्वासों की गति सहज मंद हो जायेगी। लोगों को अपनी श्वास पर नियंत्रण करना चाहिये। जिसने श्वास की सिद्धि कर ली, उसका लक्ष्य था आत्मा पर। आचरण में जिसने श्वास की सिद्धि कर ली, सो सब अज्ञानी उसी को देखने लग गये। जिसने श्वास की सिद्धि कर ली है, उसने आत्मा की सिद्धि कर ली है। ज्ञानी! आत्मा की सिद्धि में ही श्वास की सिद्धि होती है। आत्मा की सिद्धि जिस दिन पूर्ण हो जाती है, उस दिन श्वास का आना-जाना बंद हो जाता है।

सबका छल चल रहा है। कैसे लोगों को वंचित किया जा रहा है। कभी आपके अन्दर ये होता है कि हम आपको सीधी विद्या बतायें भी तो आप करने को तैयार नहीं हैं।

तुलसी एंटीबायोटिक (Antibiotic) होती है। यदि कोई यूँ कहे कि घर-घर में तुलसी लगा लो, तो आप ये कहेंगे कि घर में वृक्ष लगाने की क्या आवश्यकता है? तो लोगों ने क्या किया? कि इसको तुम देव मानके भगवान् के नाम से पूजने लगे। और घर के वातावरण की शुद्धि के लिये लोग उसे पूजना प्रारम्भ कर दिये। ऐसा ही है।

अब मेरे से मत पूछना कि आप ये कहाँ से सीखे हो। ये पूछने का समय नहीं है। ठीक है? पर मैं जो कह रहा हूँ, उसे किसी वैज्ञानिक से पूछ लेना। और उसको समझ में न आये तो उसको मेरे पास भेज देना। इंजीनियर बुद्धि पकड़ना। भैया! रहस्य को रहस्य कर दिया और लोगों को भ्रम में डाल दिया और यूँ कह दिया कि देखो, ये तो मेरे हाथ से ही बनता है। ये तुम नहीं कर सकते हो। ज्ञानी! मैं क्यों पागलपन में जाऊँ।

जो वस्तु है, आकृति है, किसी शिल्पकार ने दी है। ठीक है। आप पहले मूल पाषाण को निहारिये, फिर शिल्पकार के द्वारा उत्कीर्ण आकृति को देखिये। उससे डरने की क्या आवश्यकता है? अब किसी ने उसको प्रतिष्ठित किया है, उस प्रतिष्ठाचार्य का क्या सदाचार है? अब चमत्कार किसने भर दिये। जो मंत्र था, मंत्र वह शब्द-शक्ति है। इससे मैं प्रभावित नहीं हो रहा हूँ, प्रभावित हो रहा हूँ पर प्रभावित नहीं होता हूँ।

लस्सी जानते हो? दही और बूरे से लस्सी बन जाती है। तुम धूप से आ रहे थे, उसको पीते ही कैसा लगता है? तराबट आ गई उसको। प्रभावित हुआ कि नहीं? चित्त प्रसन्न हो गया, शरीर तराबट को महसूस कर रहा है। प्रभावित तो हुये हो, लेकिन प्रभावित हुये क्या?

कोई दैव शक्ति आ गई क्या? कोई व्यंतर की शक्ति आ गई क्या? कोई भगवान् की शक्ति आ गई क्या? अरे! वो तो लस्सी थी। दही में बूरा मिला देने से उसका परिणमन् हो गया है और उसको पीने से तराबट मिल रही है। प्रभावित हुआ हूँ, पर प्रभावित नहीं हूँ।

पर ये मैं जो कह रहा हूँ, ये मुझे मालूम है। इसलिए जितने ज्योतिषी और जादू-टोने वाले हैं, वे मुझ से परेशान हैं। पर सत्यता यह है कि जो में कह रहा हूँ, ऐसा वो करें तो उनकी दुकान ज्यादा चलेगी और लोगों को मिथ्यात्व में तो नहीं डालोगे। मैं लस्सी का निषेध नहीं कर रहा हूँ, पर ये कह रहा हूँ कि लस्सी को कोई दैविक शक्ति मत बना दीजिये। वो लस्सी है।

ऐसे ही ज्ञानियो! जैसे पाषाण की प्रतिमा को मंत्र से मंत्रित किया जाता है, अभिमंत्रित किया और जो मंत्र की शब्दशक्ति है, वो प्रभावित करती है। ज्ञानी! मंत्रशक्ति ऐसी होती है जो पाषाण को भी परमात्मा के रूप में प्रकट करा देती है। ये मंत्रशक्ति का प्रभाव है। लेकिन मंत्रशक्ति को हम गूढ़ में नहीं डालना चाहते हैं, क्योंकि वो भी पुद्गल की शक्ति है।

जो मंत्रशक्ति है, वो पुद्गल की अर्जित शक्ति है। अरे ज्ञानी! जब शब्दवर्गणा पौद्गलिक है, उस पौद्गलिक शब्दवर्गणा से इतना प्रभाव हो सकता है कि रोते को हँसाया जा सकता है, हँसते को रुलाया जा सकता है। मंत्र ही तो चल रहा है। तुम इतने सारे लोग बैठे हो, मैं अकेला बोल रहा हूँ , मौन क्यों हो?

कल एक श्रावक ने पूछ लिया था मेरे से-महाराज श्री! क्षमा करना। एक बात पूछना है आपसे। मैंने कहा, पूछ लो, भैया! क्या पूछना है? महाराज श्री! क्या आप प्रवचन के समय हम लोगों के ऊपर कोई मंत्र छोड़ देते हो? मैने कहा-क्यों? क्या मतलब? बोला—बच्चे भी शांत बैठे होते है। कोई नहीं हल्ला करने वाला। यहाँ तक कि छोटे-छोटे शिशु हैं वो भी नहीं रोते हैं। आप कीलित करते हो क्या? मैंने कहा-हाँ, तू बिल्कुल सही कह रहा है, मैं कीलित करता हूँ। पर ध्यान रखना, कीले कहाँ है? तंत्र क्या है? अर्हन्त की वाणी ही तंत्र है। वो ही महामंत्र है। उस मंत्र को जो अपने आप में धारण कर लेता है, वो अपने आप में कीलित हो जाता है।

अर्हन्त की देशना ही मंत्र है। मंत्र किससे लिखे जाते हैं? वर्णों से ही तो लिखे जाते हैं। और वाणी क्या है? वर्ण ही है। ज्ञानी! गाली भी तो मंत्र है। जिससे आकर्षित हुआ जाये,

जिससे आकर्षित किया जाये, वही तो मंत्र है। आपने देकर देखी किसी को गाली? जरा दूर से देना थोड़ा। भैया! तू गाली दे रहा था और कह रहा था कि मैं मंत्र कर रहा हूँ। हाँ, बिल्कुल मंत्र कर रहा हूँ।

अभी जो ये हाथ जोड़े है मुमुक्षु आपका, उसके हाथ मारने को यूँ हो जाएँगे। दूर से भी करो तो भी यूँ ही हो जायेगे। मंत्र किसे कहते हैं? उतने दूर उसके हाथ जुड़े हुये हैं और ये यहाँ से गाली का प्रयोग कर रहा है। जैसे ही गाली सुनता है, नेत्र लाल हो गये, नाक फड़कने लगी, भ्रकुटियाँ चढ़ गई। ओ हो! समझ गया, शब्दशक्ति कितनी महान् होती है? कि उसने ऐसा प्रयोग किया, सो ऐसा हो गया। वह धीरे-से कहता है, भैया! मुझे क्षमा कर देना, मेरे से भूल हो गई, मैं तो आपका सेवक हूँ, आप महान् हो, मुझे क्षमा कर दो।

विश्वास रखना, इतना निर्दयी भी नहीं है। वह कहेगा हाँ, भैया! मैंने क्षमा कर दिया। ज्ञानी! ये क्या हो गया? ऐसा नहीं होता क्या? मंत्र चलाना सीखो। नाद की जो भाषा है, नाद की विधि मालूम होना चाहिये।

"ब्रह्मानन्द स्वरूपोऽहम् , ब्रह्मानंद स्वरूपोऽहम् , ब्रह्मानंद स्वरूपोऽहम्।"

क्या हुआ? इसलिये जो नाद है, वो ध्वनि है। जो ध्वनि है, वह अक्षर का विकल्प लेकर नहीं चलती। क,च,ट,प ये तंरगें चंचल रूप में आ रही हैं। ओम्.... ये नाद जब ब्रह्म नाद होता है और नाभि से मस्तक तक गूँजता है, तब विकारी तंरगें विलीन हो जाती हैं और विशुद्धि वर्गणायें अन्तस् में प्रवेश कर जाती हैं। यह नाद जो है, जिसको चन्द्र नाद कहा है, 'ऋषिमण्डल स्तोत्र' में अर्हद्नाद कहा है। जो अर्हद्नाद है, वो ही अशुभ का घात करने वाला है। इसलिये माताओं! यदि स्वस्थ रहना चाहती हो, घर के वातावरण को स्वर्गमय बनाना चाहती हो, तो जब-जब तुमको समय मिले, बताना बन्द करके नाद को सुनना।

मंदिर का माहौल परिवर्तित हुआ कि नहीं हुआ? अभी तो जरा-सी बात की मैंने आपसे, तो भड़भड़ी समाप्त है। यथार्थ मानिये, गम्भीर रोग से दूषित प्राणी भी होगा, वो भी यहाँ आनन्द महसूस करेगा। कुर्सी पर बैठने वाला, वो भी जमीन पर मिलेगा। भैया! सही बात है कि नहीं? आज उपदेशों की आवश्यकता है। आज वस्तुस्वभाव की व्याख्या की आवश्यकता है।

जितने जो हॉस्पिटल चल रहे हैं, यदि मानसिक तनाव को दूर करने की व्यवस्था की जाये, तो शायद नये-नये हॉस्पिटलों की आवश्यकता न पड़े। अब भैया! देख, तेरे घर में कमरे हैं तीन और तीन कमरों में तू घुस कर रहेगा और शुद्ध वायु मिलना नहीं, तो माथा दर्द

करना ही है तेरा। आँखों का दर्द तेरी ठीक होगी नहीं, अब जायेगा तो हॉस्पिटल में, कि मेरी आँखें दर्द हो रही हैं। वो तो आँखों की दवाई देगा, कमरे बड़े करने की दवाई नहीं देगा। और तू उससे आँखों की दवाई लेकर आयेगा और बंद कमरे में डालेगा, पहले से ही कमरे हैं गरमागरम और ऊपर से फिर दवाई और डाल लिये। पहले तो ठण्डा लगेगा, लेकिन बाद में और दिक्कत पड़ेगी।

आप विश्वास मानो, सुबह से आप थके-थकाये होते हो और घर के भीतर पंखों में सो रहे होते हो, सो और बीमार हो जाते हो। वही तुम घर के बाहर निकल कर देखो, आपको हल्का महसूस होता कि नहीं होता? रहस्य पकड़िये। इतने विशाल जिनालय क्यों ऐसे बनाये गये हैं? खुले। भैया! हजार सिर का कोई देवता यहाँ आकर खड़ा हो जाये और वो कहे कि मंदिर तोड़ दो, तो मंदिर मत तोड़ देना कभी। बुजुर्गों की सम्पत्ति है। तुम बना नहीं सकते कभी, तो तोड़ने का विचार मत करना।

तुम्हें कोई विशाल मंदिर बनाना हो तो दूसरा नया बना लेना, लेकिन इस मंदिर को ऐसा ही बना रहने देना। जिस श्रेष्ठी ने इस मंदिर की नींव रखी होगी, वो पुण्य के नियोग से स्वर्ग में देव हुआ होगा, तो वो वहाँ भी ताँक रहा होगा, कि मेरे बेटों ने इस मंदिर को कैसे सजाके रखा है।

प्राचीनता को नाश करने का विचार भी मत लाना। रहस्य समझो। काषायिक भाव में भीतर के रहस्य नष्ट होते हैं। गाली दिये, दूसरे को आकर्षित किया। आह्वानन् में, रोने में, इस सब में भाषा का भिन्न-भिन्न प्रयोग होता है।

भो ज्ञानी! सुनना। 'हे मूढ़! क्यों शांत बैठा है?' कुछ हुआ कि नहीं हुआ? क्यों? मूढ बोल दिया है। उत्तेजना बढ़ गई। हे मुमुक्षु! अपने भीतर के भगवान् को देख। भाषा में औषधियाँ हैं। जिन-जिन को अपने घर को पूर्ण स्वस्थ रखना हो, वो हाथ ऊँचे तो करो। मैं व्यवहार से बोल रहा हूँ। रखना ही बहुत अच्छी बात है।

घर को स्वस्थ तभी रख पाओगे, जब तुम अपने भीतर के घर को स्वस्थ रखोगे। जिसका भीतर का भाव स्वस्थ होता है, उसकी बाहर की भाषा स्वस्थ निकलती है और जिसकी भाषा स्वस्थ निकलती है, वह दूसरों का स्वस्थ परिणमन करती है। मरीज जाता है वैद्य के पास। वैद्य आत्मीयता दिखाता है। उसके शुद्ध भाषाण से आधा रोग तो वहीं ठीक हो जाता है।

कहीं यमराज का सगा भैया मिल गया, 'ओ हो हो! बहुत सीरियस है, सम्भावना बहुत कम दिखती है।' वो बेचारा बचने वाला भी होगा तो तेरी बातें सुनकर चला जायेगा। क्यों भाई! डॉक्टर तू क्या करता है? नहीं, इस भाषा का प्रयोग नहीं होना चाहिये। हाँ, यदि सीरियस है, तो क्या बोलना चाहिये? भैया! मैं उपचार अपनी तरफ से पूर्ण कर रहा हूँ। मेरा आपसे अनुरोध है कि आप सब प्रभु का नाम लीजिए और मैं अपना काम कर रहा हूँ। तो ज्ञानी! तुझे मालूम है, आयुकर्म के क्षीण होने पर न तंत्र काम में आते, न मंत्र काम आते, न औषधि काम में आती है। ये तभी तक काम में आते हैं जब तक आयुकर्म शेष है।

तू कितना हितैषी हो जायेगा? तू यूँ कहना कि मैं अपना काम प्रारम्भ कर रहा हूँ, तुम लेटे-लेटे करोगे क्या? इसलिये भगवान् का नाम लो। हे ज्ञानी! तू परम मित्र हो गया। जैसे ही भगवान् का नाम लिया, तूने उसका हाथ पकड़ा और उसका 'अर्हन्त नाम सत्य' हो गया। कम-से-कम भगवान् का नाम लेते-लेते तो गया।

पर वैद्य की दृष्टि "श्री" पर, और रोगी की दृष्टि जीने पर। ये दो दृष्टियाँ जिसकी लगी हैं, उसका कभी समाधिमरण नहीं हो सकता। निहारो-निहारो, घड़ी मत देखो, घड़ी देखो।

ज्ञानी! मंत्र क्या था? प्रशस्त, संस्कारित वर्णों की शैली। उच्चारण की जो शैली है, वही मंत्र है। इसलिये शब्दशक्ति पौद्गलिक है और एक दूसरे को प्रभावित करती है। इसलिए हम इसको भी आश्चर्य में नहीं डालते हैं कि किसी मंत्र से ऐसा हो गया। वो तो ऐसा होना ही था, तुमने क्या किया? कोई गाली देगा, तो सामने वाले को गुस्सा आयेगी। इसी प्रकार से यदि महामंत्र का पाठ करेगा तो तेरा इष्ट होगा। और देखना, झूठ बोलने के बाद मुस्कुराता है कि नहीं?

बालक! सुन। झूठ बोलने के बाद तू मुस्कुराता कि नहीं, सत्य बोलना। बस, यानि मुख से झूठ बुलवा तो सकता है तू, पर तेरा हृदय झूठ को स्वीकार नहीं करता है। इसलिये तू हँस पड़ रहा है। इसका मतलब है कि तू झूठ बोल रहा है।

यानि कि जो तुम गूढ़ता में डाल रहे हो, आश्चर्य में जा रहे हो, जबकि आश्चर्य में जाने की आवश्यकता नहीं है। हल्दी में चूने को डालोगे तो, रंग बदलेगा कि नहीं? एक भैया कह रहा कि मैं इंजीनियर हूँ, मैंने ऐसा तंत्र किया है, कि देखो, पीली हल्दी और सफेद चूना बदल गया और लाल रंग हो गया।

जो अपने स्वार्थ को लेकर बात की जाती है, उसका नाम नेताओं का भाषण होता है और जो दूसरे को प्रभावित करने के लिये बोला जाता है, वह जादूगर की भाषा होती है और जो भीख माँगने के लिये की जाती है, वह पण्डितों (ब्राह्मणों) की भाषा होती है। इन ज्ञानियों को दक्षिणा कैसे अच्छे से मिलेगी, उतनी मधुर भाषा बोलनी चाहिये।

आप विश्वास रखो, मूँगफली बेचने वाले की भी भाषा अलग होती है। यदि इनको भेजा जाये कि मूँगफली बेचके आओ, तो वो मूँगफली बेचके नहीं आ पायेगा। पहले इनको मूँगफली बेचने की भाषा सीखना पड़ेगी। इनको भिखारी बना के भेज दिया जाये कि भीख माँग कर लाओ, तो भैया खाली झोली लेकर आयेगा। पहले तुझे भिखारिओं के बीच में रहना पड़ेगा। उज्जैन में इतने भिखारी हैं, इतने भिखारी और-कहीं नहीं मिलेंगे। और इतने अच्छे भिखारी हैं कि भिखारी ही भिखारी की बौनी कराता है सबसे पहले। हम लोग तो चातुर्मास किये वहाँ पर। रोज सुबह एक भिखारी आता है, अपनी जेब से पैसा निकालकर दूसरे के कटोरे में डाल रहा है। हमने कहा देखो, भाई! भीख भी माँगना है, तो आपको भिखारी की भाषा सीखना पड़ेगी।

जब भिखारी को भिखारी की भाषा में भीख मिलती है, तो यदि तू दिगम्बर मुनि बनकर दिगम्बर मुनि की भाषा नहीं सीख पाया, तो भगवान् कैसे बन पायेगा? यहाँ भाषा समिति, वचन गुप्ति, सत्य महाव्रत, सत्य अणुव्रत और सत्यधर्म ये सब वचनों की शिक्षा है। इसलिये कभी भी कपड़े उतारकर फेंक मत बैठना, जब तक यहाँ की भाषा न सीख पाओ।

भैया! इंजीनियर कॉलेज की भाषा क्या इन्हीं लोगों जैसी होती है, जैसे ये लोग बोलते हैं? अलग होती है न? विश्वास रखिये, हर क्षेत्र की भाषा भिन्न है। पर जिस क्षेत्र में प्रवेश करोगे, वहाँ की भाषा ही प्रभावित करती है। मुमुक्षु! आपके सांसद भवन की अलग भाषा होती है। मैं तो इन योगियों से कहता रहता हूँ बार-बार। जैसे ही किसी परिसर में प्रवेश करो, वहाँ की भाषा को सुनकरके बोध होता है कि ये अमुक परिसर है। ऐसे ही तुम लोग 24 घण्टे उन बातों को ही मुख से निकालना या मौन रहना, कि बाहर का कोई व्यक्ति आकर निहारे कि ओ हो! ये योगियों की परिषद है, इसमें योग-मय भाषा ही चलती है। इसमें चकार-मकार की भाषा का प्रयोग नहीं होता और निर्ग्रन्थों की भाषा तो अलौकिक भाषा है।

"मूर्त्तमिव मोक्षमार्गमवाग्विसर्गं वपुषानिरूपयन्तं"। (सर्वार्थसिद्धि)। जहाँ वचनों का विर्सजन हो जाता है। दिगम्बर मुनि का भेष ही मोक्षमार्ग का उपदेश देता है, वहाँ बोलने की

भी आवश्यकता नहीं। कहीं से भी निकल जाना, वहाँ किसी को भी नहीं पूछना पड़ता, कि महाराज जी हैं क्या ये? देख लो, कौन हैं? तिजारा में बहुत सारे दिल्ली के श्रावक आये थे। मैं जिस कक्ष में बैठा था, वहीं पूछ रहे 'विशुद्धसागर' जी के दर्शन करना है। महाराज कहाँ बैठे हैं?' एक सज्जन तो मेरे से ही पूछ रहे थे, 'काय महाराज! वो बड़े महाराज कहाँ पर हैं?' तो पता ज्ञानी! मैं क्या करता हूँ? विशोकसागर, मनोज्ञसागर के पास भेज देता हूँ। कहता हूँ कि जाओ उनके पास। बाहर के लोग तो यही समझते हैं कि ये ही हैं विशुद्धसागर।

एक श्रावक कल जैनभवन में आये, अपनी पत्नी को लेकर आये और बोले, महाराज! मैं तो नहीं आ रहा था, लेकिन पारस टी.वी. पर हमारी देवी ने आपके प्रवचन सुने, तब से लगी थी कि एक बार दर्शन तो करा के लाओ। इसलिये मैं इनको दर्शन कराने लाया हूँ। मैंने कहा, 'क्यों? ऐसा कैसे हो गया?'

बोले-महाराज जी! क्या मालूम, दो शब्दों को सुनकर आ गये। अब कल्पना करो, जब यहाँ बैठकरके व्यक्ति बात कर रहा है और वहाँ टी.वी. पर देख करके कोई प्रभावित हो गया, अब समझ में आ रहा है कि तीर्थंकर भगवान् की देशना को सुनकरके एक दिन में हजारों लोग दीक्षा लेते थे, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

जितना तुम्हारी वाणी में मंत्र होगा, उतने ही लोग आकर्षित होंगे और वही कारण है। विश्वास रखना, जब तक तीर्थंकर की दिव्यध्वनि नहीं खिरती, तब तक तीर्थंकर के समवसरण में दीक्षार्थियों की संख्या भी नहीं बहती। भगवान् को केवलज्ञान होने के पहले, जब तक वो मुनिराज रहते हैं, सामान्य रूप से विचरण करते रहते हैं।

यही कारण है कि दिगम्बर जैन आम्नाय में ही नहीं सारे विश्व में, समरभूमि में भी युद्ध होता है, तो पहले सेनापति का भाषण होता है वीररस में। यदि सेनापति का भाषण नहीं होगा, तो सेना के सैनिकों की भुजायें काम नहीं करती हैं। ऐसे ही सैनिकों! ये सेनापति का भाषण होता है, सुबह-शाम आप सुनते हो भैया! तो आपकी भुजायें फड़कना चाहिये कि मैं पिच्छी कैसे तानूँगा? कमण्डल कैसे तानूँगा? अंजुली कैसे लगाऊँगा? और स्वानुभूति की अनुभूति कैसे लूँगा?

अब ये वीर की वाणी सुनो। हे वीर के सैनिको! क्या ये चूहे-से बने, छिपे बैठे रहते लोग? नहीं, जैनशासन चूहों का शासन नहीं है, ये क्षत्रियधर्म है। 24 तीर्थंकर क्षत्रिय थे। बनियों का नहीं ही, क्षत्रिय धर्म है।

जिनत्वदीयैः पटुसिंहनादैः (युक्त्यनुशासन)

ये जिनेन्द्र की वाणी जो है, वह सिंहनाद है। क्या हो गया? भैया! ये पद्मप्रभु स्वामी के समवसरण का प्रभाव है। यहाँ की भाषा परिवर्तित हो गयी, आप समझो। क्यों, जैनभवन की भाषा और यहाँ की भाषा में अन्तर नहीं दिख रहा आपको? दिख रहा है न? हाँ, पद्मप्रभु भगवान् की महिमा है ये।

इसलिये ज्ञानियो! ये विश्वास रखना, जगत के झमेले में उलझने की कोई आवश्यकता नहीं है। हाँ, ये मानिये कि एक द्रव्य में दूसरे द्रव्य को प्रभावित करने की शक्ति है, सामर्थ्य है। पर एक द्रव्य में दूसरे द्रव्य होने की सामर्थ्य नहीं है। आप रोटी खाते हो, तो पेट भरता है, संतुष्टि मिलती है। वो भोजन वो पानी सब भीतर तेरे पेट में पहुंच गया, संतुष्टि भी दिला दी, आनन्द भी दिला, फिर भी ज्ञानी! वह रोटी का टुकड़ा अपने बलरूप परिणत हुआ है, पर तेरी आत्मारूप परिणत नहीं हुआ। वो कहता है, पागल! तू संतुष्ट हो जा, लेकिन मैं आकाश में था, पेटाकाश में ले गया और सुबह मैं फिर आकाश में आ गया। मैं तो जो हूँ, सो हूँ। तू रो ले, चाहे हँस ले, पर मेरे अंदर कुछ भी तेरा परिणमन हुआ नहीं। वस्तु के परिणमन को बदल पाओगे क्या?

फिर कहाँ गया? फिर नाली में गया, फिर नदी में गया, फिर पाइप लाइन से तेरे नल में आ गया, फिर तेरे गिलास में आ गया, फिर पेट में गया, फिर कहाँ गया? फिर वहीं गया। भो ज्ञानी! चक्र चल रहा है। वस्तु का परिणमन त्रैकालिक चल रहा है और तू संतुष्ट हो रहा है—'अहो! शुद्ध पानी, शुद्ध पानी।' क्या पता नहीं कि कितने पेटों का पानी है?

सही नहीं है क्या ये? इसलिये आज भोजन करना, पानी पीना, पर इतने राग से मत करना। बस, सोच लेना कि क्या पी रहा हूँ? वो ही पी रहा हूँ, जो पिया था। ठीक है? अब तुम कितनी ही भाषा बना लो, लेकिन वस्तुस्वभाव क्या है? "जो है, सो है"। "शुचिः भूमिगतं तोयं।" ठीक है, भूमि में चला जाता बहता पानी। बहता पानी "निर्मला", पवित्र हो जाता है, पर है तो वही। जो है, सो है।

इसलिये हे ज्ञानियो! आज से कभी ये मत सोचना कि अहा! आनन्द आ गया। आज तो गजब का भोजन खाने को मिला। अच्छा रुचिकर भोजन था, महाराज! इतना स्वादिष्ट भोजन जैनभवन में बना है कि वो तो खाली ही नहीं हो रहा है। अरे ज्ञानी! क्या स्वादिष्ट बना है? अनन्त बार बना, अनन्त बार गया, फिर आ गया, क्या स्वादिष्ट बना?

मालूम, ये लोग क्या सोच रहे हैं? आज भोजन करने भी देंगे कि नहीं? लेकिन मैं यह सोचता हूँ—हे भगवान्! वो दिन कब आये जब भोजन करना भी बंद हो जाये। सही में मैं तो तुमको बताऊँ, जब तुम्हारे घर भोजन करने जाता हूँ, इतनी शर्म जगती है मुझे तो, मैं तो सिर भी ऊपर नहीं कर पाता हूँ। हे भगवान्! कब यहाँ से जल्दी भागूँ? बहुत शर्म लगती है। क्या है कि पूर्ण स्वतंत्र होने के बाद भी कुछ क्षण के लिये तुम्हारे घर पर जाना पड़ता है। अच्छी बात नहीं है। लेकिन पुरुषार्थ जारी है, हे भगवान्! वो दिन कब आये ।

हे गोम्टेश बाहुबली स्वामी! आपको कोटिशः नमोऽस्तु! भारत की भूमि पर आप जैसे मुनि हुये हैं, जो किसी के द्वार पर अंजुली लगाकर नहीं गये।

एक वर्ष पर्यन्त ध्यान किये खड़े रहे, किसी के घर अंजुली लगाकर नहीं गये। पर क्या करूँ? मैं अभागा, रोज जाना पड़ता है तुम्हारे द्वार पर। भावना भा रहा हूँ कि वो दिन भी कभी आयेगा, जब **तप्तऋद्धि** प्रकट हो, कोई भोजन की आवश्यकता नहीं।

घोर-घोर साधना करने पर भी शरीर में कोई कमजोरी नहीं आती जब तप्त-ऋद्धि प्रकट होती तब। ऐसे ऋद्धिधारी के नाम उच्चारण करने मात्र से चित्त स्थिर हो जाता है। इसलिये भैया! जगत् में लोगों को दर-दर से तो बचा कर लाना, अर्हन्त के चरणों में रख देना, लेकिन श्री व स्त्री के राग में आकरके किसी अन्य के चरणों में उसे मत रखना।

उससे यूँ कहना, भाई! तेरे असाता का उदय चल रहा है। प्रभु के चरणों ने क्या कहा था? मैंना सुन्दरी ने पूछा, 'मेरे स्वामी का कुष्ठ कैसे दूर होगा?' तुम सिद्धों की आराधना करो। जब सिद्धों की आराधना करने बैठी मैना सुन्दरी; तो उसके पति का कुष्ठ दूर हो गया। हुआ कि नहीं हुआ?

जब कर्मों के कुष्ठ दूर हो सकते हैं, तब देह के कुष्ठ क्या करते? बस, परिणामों की विशुद्धि पवित्र होना चाहिये। भैया! सारे जगत् से लोगों को उठाकर लाना और अर्हन्त के चरणों में रख देना, ठीक है, उपकार की दृष्टि है।

ऐसा उपकार करो कि आयुर्वेदिक औषधि दो। यदि रोग ठीक नहीं भी होगा तो कम-से-कम दूसरा रोग तो नहीं होगा। भैया! बराबर? नहीं-तो आप ही लोग कहते हैं कि साइड इफेक्ट हो जायेगा।

मालूम चला कि काले बाल करने के चक्कर में आँखें सफेद हो गयीं। ज्ञानी! चाँदी अच्छी लगती है कि ये कालापन अच्छा लगता है?

हे ज्ञानी! जैसे युवावस्था चेहरे पर दिख रही है, ऐसे ही आत्मा की उमंग की युवावस्था न निकल पाये। जो उत्साह धर्म के प्रति आज है, वही उत्साह 90 वर्ष में भी होना चाहिये। कितने बुजुर्ग लोग यहाँ सभा में बैठे हुये हैं। धन्य हो इनके परिणामों को। यदि जीवन के किसी भी क्षण में इनको समझ में नहीं आया हो, अभी भी समझ आ जाये, तब भी ज्ञानी! जीवन में आनन्द-ही-आनन्द है।

वे जीव धन्य हैं जो सप्तम प्रतिमा धारी हैं। अहो आश्चर्य! एक वे जीव हैं, जो घर में चारपाई पर पड़े-पड़े भगवान् का नाम ले रहे हैं, हाथ में माला लिये हुये हैं और एक वे अभागे हैं जो मंदिर के द्वार पर बैठे-बैठे सिगरेट पी रहे हैं। बेचारों के लिये क्या कहोगे? पर वे भी भगवान्-आत्मा हैं। अच्छी बात है, कम-से-कम उसकी हिम्मत तो देखो कि मंदिर के द्वार पर बीड़ी पी रहा है। इतना धर्मात्मा न होता तो मंदिर के द्वार पर क्यों आता। वह आदत का लाचार है। पर फिर भी चिन्ता मत करो। उसको तुम गाली मत देना, उसको समझाने भी मत जाना। उसको समझाना नहीं, उसको आने देना। क्योंकि कभी-न-कभी ऐसा भाव उसका बनेगा कि धिक्कार हो मुझे कि लोग तो मंदिर में द्रव्य लेकर आ रहे हैं और मैं बीड़ी-सिगरेट पी रहा हूँ। लेकिन भैया! जो पीते हों, आज से नहीं पीना, लेकिन उस समय जब मंदिर के द्वार पर कल बैठे थे, आज भी बैठना उसी समय पर, पर बीड़ी लेकर मत बैठना, माला लेकर बैठना। ठीक है?

देखो, साधुओं की दृष्टि बहुत बड़ी होती है, बचके रहना। भैया! ध्यान रखना, किसी भी जादू-टोने में उलझके प्रभावित मत होना। वस्तु की वस्तुता को तो स्वीकारना, लेकिन अन्य श्रद्धा में मत बह जाना। बिना अग्नि के खिचड़ी बनाई जा सकती है, दाल-चावल बनाये जा सकते हैं। अज्ञानी कहेगा कि चमत्कार है, पर मेरे से पूछो तो यह रसायन की क्रिया है।

भैया! बिना अग्नि के खिचड़ी पक जाती है, कैसे? भैया! कटनी का चूना लिया, उसको नीचे डाल दिया और जैसे ही पानी डाला, उंगली डालोगे तो जल जायेगी। खौलता है पानी। ज्ञानी! उस कटनी के चूने को नीचे डालकरके बटलोई रखी ऊपर और उसमें डाल दिया चावल, वो तो पकेगा-ही-पकेगा। और जादूगर कह रहा है, कि देखो, मैं चमत्कार दिखा रहा हूँ, बिना अग्नि के चावल पका रहा हूँ। ज्ञानी! ये बिना अग्नि के चावल नहीं पक रहे हैं। चावल को ऊष्मा चाहिये। उसको उतनी ऊष्मा मिल गयी चूने से।

मैं कह रहा हूँ कि तेरे मस्तक पर फोड़ा हो जायेगा बिना अग्नि के। चूना भी नहीं लगाना पड़ेगा। पचास बार घिस लो माथे को। वहीं हो जायेगा। चमत्कार नहीं है, ये वस्तुव्यवस्था है। इसलिये हर वस्तु को व्यर्थ के चमत्कार में डालकरके आश्चर्य मत लाओ।

आज समझ में आपको आया होगा कि लोगों ने भ्रमित करने के लिये किया होगा? भैया! समयसार जैसे ग्रंथों को लोगों ने चमत्कार में डाल दिया। उस समय वस्तुव्यवस्था की व्याख्या करो। जो वस्तु का जैसा परिणमन है, वैसा बोलिये। शीत की खाँसी ठण्डी चल रही है और डॉक्टर बोला- इनको सौंठ में गुड़ मिलाके दे दो, तो इनकी खाँसी ठीक हो जायेगी। अब वो कहता है कि देखो मैंने कैसा चमत्कार दिया? अरे! चमत्कार क्या हुआ? वो तो रसायन का परिणमन हुआ है।

आप उपयोग के कर्त्ता हो, कि वस्तु के कर्त्ता हो? प्रयोग के कर्त्ता हो, अपने उपयोग के कर्त्ता हो, वस्तु के कर्त्ता नहीं हो।

आचार्यभगवान् कह रहे हैं।

वरं नरकवासोऽपि, सम्यक्त्वेन समायुतः।
न तु सम्यक्त्वहीनस्य निवासो दिवि राजते।। 39 ।।

" वरम् नरक वासोऽपि" नरक में वास करना श्रेष्ठ है। " सम्यक्त्वेन समायुतः" सम्यग्दर्शन से युक्त होकरके नारकी भी मोक्षमार्गी है। लेकिन "न तु सम्यत्वेनहीनस्य" सम्यक्त्व से हीन होकरके स्वर्ग में देव बन करके रहना भी अच्छी बात नहीं है। क्योंकि मिथ्यादृष्टि देव भी संसारमार्गी है और सम्यग्दृष्टि नारकी भी मोक्षमार्गी है।

इसलिये, ज्ञानियो! कोटि-कोटि परेशानियाँ झेल लेना, परन्तु पुद्गल के टुकड़ों के राग में सम्यक्त्व-रत्न को खोकर मत बैठ जाना।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

संसारदुःख का नाशक सम्यग्दर्शन

सम्यक्त्वं परमं रत्नं, शंकादिमलवर्जितम्।
संसारदुःखदारिद्र्यं, नाशयेत्सुविनिश्चितम्।। 40।।

शंकादि मलों से रहित सम्यग्दर्शन रूपी परम् रत्न सांसारिक दुःख रूपी दारिद्र का निश्चय से नाश कर देता है।

सम्यग्दृष्टि ही निर्वाण के योग्य

सम्यक्त्वेन हि युक्तस्य, ध्रुवं निर्वाणसङ्गमः।
मिथ्यादृशोऽस्य जीवस्य, संसारे भ्रमणं सदा।। 41 ।।

सम्यग्दृष्टि जीव को ही निश्चय से निर्वाण की प्राप्ति होती है और मिथ्यादृष्टि जीव का निरन्तर संसार में भ्रमण होता है।

।। देशना ।।

अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनिषियो! जगत्कल्याणी है।

यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो, जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति ।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज "सार समुच्चय" जी में मोक्षमार्ग का प्रथम सोपान जो सम्यक्त्व है, उस सम्यक्त्व गुण की व्याख्या कर रहे हैं। जीवन में महत्वशाली कोई वस्तु है, उसका नाम आस्था है।

ज्ञानियो! लोक में कोई तुम्हारे घर में दान माँगने आये, कोटि-कोटि द्रव्य माँगे, वो दे देना, क्योंकि वो तो परवस्तु है, लेकिन आस्था का द्रव्य सभी को नहीं दिया जा सकता। श्रद्धा का नीर सभी को नहीं प्रदान किया जा सकता है। मानवता के नाते, सामाजिकता के नाते, लोकव्यवहार के नाते एक-दूसरे के सम्मान/आदर के भाव तो हो सकते हैं, लेकिन प्रत्येक प्राणी के प्रति, प्रत्येक व्याक्ति के प्रति, प्रत्येक वस्तु के प्रति श्रद्धा के भाव नहीं किये जा सकते हैं।

सम्मान भिन्न विषय है और आस्था भिन्न विषय है। यदि अपनी आस्था सभी जगह सौंप दी, तो ज्ञानियो! विश्वास रखना, कुछ भी आपके पास अवशेष नहीं बचेगा। दुर्बलों की सुरक्षा, देह की रक्षा, ये महात्वपूर्ण नहीं है, जितनी श्रद्धा की रक्षा महत्वपूर्ण है। ये सड़ा श्रीफल

नहीं है। कोई पानी का लोटा नहीं कि जिस किसी पत्थर पर ढार दो। ये उत्तमांग है, मस्तक है। ये परमेष्ठी के पाद्मूल में झुकता है, अन्यत्र इसको टेकने को कोई स्थान नहीं है।

सम्यक्त्व जो परिणति है, समकित जो भाव है, जिसके समकित की रक्षा नहीं, सम्यक्त्वाचरण नहीं, तो स्वरूपाचरण कहाँ ? जब समकित भाव होगा, सम्यक्त्वाचरण होगा, संयमाचरण होगा, इसके उपरान्त स्वरूपा-चरण होगा। ध्यान से सुनो। वृद्ध सुनें अपनी समाधि के लिये, युवा सुनें अपनी सामाजिक के लिये। सामाजिक के लिये कह रहा हूँ। समभाव जो है, वह भैया हाथ में हाथ में हाथ मिलाने से नहीं आता। अपने शरीर का खून निकाल कर दूसरे के शरीर में दे देना, इससे भी समकित भाव साम्यभाव नहीं आता है। ये तो रागदृष्टि है। हिंसादृष्टि है। हे वर्द्धमान! आप होते तो यूँ कहते, मेरी जन्मजयन्ति के अवसर पर, मेरे नाम पर ये खून मत किसी को दो, क्योंकि मैं खून पीप का पक्षधर नहीं हूँ। मैं अहिंसा धर्म को कहने वाला हूँ। इससे मेरे मित्रो, युवाओ! महावीर जयन्ति जैसे पर्व पर ऐसे खोटे काम करने का विचार मत लाना। महावीर को तुम खुश नहीं कर पाओगे और महावीर किसी से नाराज नहीं होते हैं, खुश नहीं होते हैं, क्योंकि भगवान तो वीतरागी होते हैं।

इन हमारे विद्वानों को, बुजुर्ग पंचायत को और समाज के लोगों को चाहिये है कि इन युवाओं को ऐसा दिग्दर्शन दें। ये बेचारे धर्मात्मा हैं, आप विश्वास मानिए, इनके अन्दर ये भाव है कि मैं भी कुछ कर सकूँ महावीर जयन्ति के दिन। पर उनको कुछ नहीं दिखाई देता है, तो वे वो कर लेते हैं जो करने लायक नहीं होता।

आप किसी व्यक्ति के रक्त को सूक्ष्मदर्शी यंत्र से देखना, उसमें आप को चलते जीव दिख जायेंगे। पर्याय की रक्षा के परिणाम कर लेना सरल है, पर परिणति की रक्षा का परिणाम कर पाना बहुत कठिन है। लोगों ने अभी धर्म को समझा नहीं है, इसलिए लोगों को लगता है कि विशुद्धसागर जी जो कह रहे हैं, वह उल्टा-सा कह रहे हैं, जबकि वह उल्टा नहीं है। जिस दिन उल्टे लटकोगे नरकों में, उस दिन आपको मेरे वचन सीधे लगेंगे। इस धर्म की महिमा तो देखो। एक छिपकली जा रही है दीवार पर। कोटि-कोटि जीवों का घात कर रही है। भैया! उन जीवों की रक्षा के लिए क्या करना चाहिए। अज्ञानी कहेगा-उस छिपकली का घात कर दो,तो इतने जीव बच जायेंगे। हे अज्ञानी! ये महावीर की अहिंसा नहीं है कि तुम अनेक की रक्षा के लिए एक की हिंसा कर रहे हो। ऐसा उपक्रम करो कि अनेक की रक्षा हो और एक की भी रक्षा हो। जो लाइट जल रही थी, उस लाइट को बंद करो, जिससे जीव आना बंद हो, छिपकली भी चली जाये और जीव भी बच जायें।

अशोक नगर में प्रवचन चल रहा था। जैसे अपने अलवर में शाम को टेलीविजन पर चलता है नगर चेनल पर। आप आश्चर्य करोगे, भैया! मुस्लिम कन्या की शादी थी। एक अपने ब्राह्मण नायक जी थे। उनके घर कार्ड आया। नेता जी थे। वो कार्ड मेरे पास लेकर आये। उसमें लिखा था कि दिन में ही शादी होगी और भोजन की व्यवस्था भी दिन में ही रहेगी।

प्रश्न किया इन्होंने जाकर वहाँ, कि आपने ऐसा क्यों किया? बोले-नायक जी! ये मत पूछो, गहरा रहस्य है। नहीं-नहीं, आप को बताना पड़ेगा। आपके यहाँ तो सब चलता है। पर आपने ऐसा क्यों किया कि दिन में शादी कर रहे हो? भैया! सत्यता ये है कि यहाँ जो महाराज जी के प्रवचन चल रहे हैं, मेरी बेटी ने टेलीविजन पर सुन लिये और उसने मेरे से कहा—पिता जी! मैंने महाराज के उपदेश सुने हैं। इसलिये कोटि-कोटि जीवों की हिंसा होती है। मैं शादी रात्रि में नहीं कराऊँगी।

जैनसमाज का एक श्रावक वैष्णव समाज में बैठने गया। एक अग्रवाल समाज में। ये भी अशोक नगर की घटना है। एक बूढ़ी दादी माँ कह रही थी कि बेटा! बल्ब बंद कर दो। क्या कल तुमने महाराज के प्रवचन नहीं सुने? तो जैन साहब चौंके, बोले-क्या मतलब हुआ? बोली कल महाराज जी ने कहा था कि छिपकली जीवों को खा रही है। छिपकली को मारोगे तो पाँच-इन्द्रिय का घात होगा और वह नाना जीवों को खा रही है। इसलिये आप लाइट बंद कर दो, ये व्यर्थ की हिंसा मत करो।

ये मत सोचना कि उपदेश यहाँ का यहीं लोगों को समझ में आ रहा है। पता नहीं ये शब्द किस जीव के कान में कैसे फलित हो रहे हैं। बारामती, जो महाराष्ट्र में है, एक बहुत बड़ा गाँव, वहाँ वांचना चल रही थी। कुछ युवा महाराष्ट्रियन पान की गुमठी पर खड़े हुये थे। हम लोग वहाँ से निकले मंदिर के लिये, भगवान् के दर्शन के लिये, वंदना के लिये। तो पता वो युवा क्या बोलते हैं? अरे! भगवान्-आत्मा आ गये हैं। इनको देखो। भो ज्ञानी! ये सब क्या था? वो शाम को सुनते थे तो उनको एक शब्द तो रट गया-'भगवान्-आत्मा'।

ये आश्चर्य नहीं है। हमारे देश में ऐसे-ऐसे विद्वान् हुये हैं जिनके सहयोग से डालियों पर बैठे तोते भी सूत्र रटा करते थे। ऐसा न्याय का माहौल था हमारी देश की भूमि पर। तो हे ज्ञानी! हमारे ये छोटे-छोटे बच्चे "आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं " न रट पाये, तो कैसे तोते? वस्तुस्वभाव समझो।

हे ज्ञानी! मैं नहीं चाहता हूँ लोकरूढ़ि का धर्म। अनेकांत, स्याद्वाद वैज्ञानिक धर्म में प्रवेश होना चाहिये। लोक क्या कर रहा है? लोक की दृष्टि भिन्न है और आत्मा की दृष्टि भिन्न है। एक बिलखते प्राणी को, अज्ञानी रात्रि में रोटी खाने की बात कर सकता है, पर ज्ञानी जैनी तो ये कहेगा कि पर्याय की रक्षा तो तभी होगी, जब आयुकर्म शेष है। यदि आयुकर्म शेष नहीं है, तो तूने रोटी खिलाकरके उसे दुर्गति की ओर डाल दिया। सच्चा ज्ञानी हो तो तो ये कहता कि भाई! तेरे प्राण तो निकलनेवाले हैं, इसलिये बहुत अच्छा होगा कि तुम भगवान् का नाम लो।

साधना तो है नहीं, पर साध्य की सिद्धि चाहते हो। मुमुक्षु अमर्यादित दही नहीं खाता, पर मर्यादित जो हमारे आगम में विधि है, उस विधि से बनाया जाता है तो ले सकता है। दतिया के कॉलेज की लैबोरेट्री में एक दिन हम लोगों का मुकाम हुआ। वहाँ के जितने अध्यापक वर्ग थे, वे बड़े धर्मात्मा थे। बोले-महाराज का कब-कब आना होता है? आप सब देख तो लो। मैंने कहा कि बहुत अच्छी बात है।

उनके बाटलों में दही रखा हुआ था, उनमें बड़े-बड़े जीव घूमते मिले थे और जो उनकी बाटलों में पानी था खन्तियों का, एक बूंद पानी में ऐसे बड़े-बड़े जानवर दौड़ते दिखाई दे रहे थे। जैनदर्शन अद्भुत है। इसलिये जो जामन का दही खाता है, वो तो माँस का ही टुकड़ा खाता है। सच्चे जैनी को दहीबड़ा या दुदल तो खाना ही नहीं चाहिये। जीवन को जीना ही तो है। जीवन जीने के लिये बहुतकुछ नहीं खाना पड़ता है।

पर जीवन में जीने के साथ, स्वाद के लिये और नरक मैं जाने के लिये बहुतकुछ खाना पड़ता है। यथार्थ मानिये, जीवन जीने के लिये बहुतकुछ खाना पड़ता होता, तो साधु लोग तो कभी के ऊपर चले गये होते। जबकि ये होता है कि जो कम खाते हैं, वो ज्यादा जी लेते हैं। आप विश्वास मानो।

दिगम्बर जैन परम्परा में, सम्पूर्ण श्रमण परम्परा में आचारांग का कोई प्रधान ग्रन्थ है, उसका नाम "मूलाचार" है। ज्ञानियो! बहुत बड़ी भूल क्या चल रही है? समकित भाव हो और सम्यक्त्वाचरण न हो, यह होता नहीं है।

जहाँ समकित भाव होगा, वहाँ नियम से सम्यक्त्वाचरण होगा। सप्त व्यसन का त्यागी होगा, अभक्ष्यों का त्यागी होगा, अनुकम्पा आदि गुणों से युक्त होगा और विवेक से युक्त होगा। सम्यग्दृष्टि जीव में दया न हो, यह कैसे सम्भव है? घड़ियाल देखा तूने पानी का? उसके दाँतों में छोटी-छोटी मछलियाँ और छोटे-2 जीव-जन्तु अनेक फँसे रहते हैं। भैया! जिस दिन

तू अचार खा रहा होगा आम का, एक साल का मटके में रखा हुआ था, बड़ा स्वादिष्ट लग रहा था, हे मुमुक्षु! उस समय सूक्ष्मदर्शी यंत्र से दिखवा लेना, उसमें कोटि-कोटि जीव फँसे मिलेंगे।

ये नरक के चार द्वार हैं। पहला नरक का द्वार अचार,दूसरा नरक का द्वार वेश्यावृत्ति, तीसरा नरक का द्वार जुआ खेलना, चौथा नरक का द्वार मदिरापान करना। ये सब नरक के द्वार हैं। भैया! तूने मदिरापान का तो त्याग कर दिया, लेकिन ठण्डी-ठण्डी बोतल? वो मदिरा ही है।

जिस द्रव्य का स्वाद परिवर्तित हो चुका, माताओ! ध्यान दो, वो शराब ही है। चलित रस। समकित भाव है, तो करुणा भाव होगा कि नहीं? जितने द्राक्षासव आदि आसव पी रहे हो, ये सब एल्कोहल है।

धन्य हो। ये वो परम्परा है, जिस परम्परा में उबला पानी 24 घण्टें तक ही पिया जाता है। यदि 24 घण्टे के बाहर चला गया, तो पानी भी अभक्ष्य हो जाता है। उस परम्परा में आजकल तो लोग पैसे वाले हो गये हैं, घर का पानी भी नहीं सुहाता है इनको। एक बाटल खरीदता तुरन्त 15-25 रूपयों की।

भैया! वे दिन कहाँ गये जब कनक, कलेवा, छन्ना ये जैनी के चिह्न थे। छन्ना और कलेवा (नाश्ता) लेकरके चला करते थे। मैं इसलिये व्याख्यान कर रहा हूँ क्योंकि सम्यक्त्व का वर्णन चल रहा है। और ये हमारे ज्ञानी लोग 'सम्यग्दर्शन प्राप्त करो, सम्यग्दर्शन प्राप्त करो', हल्ला तो कर रहे हैं, पर सम्यग्दर्शन प्राप्त करो कैसे? कुछ दिखाई तो देना चाहिये। समकित भाव हो, पर लक्षण न हो, यह कैसे सम्भव है?

गर्भाधान हुआ है, तो माँ के उदर की वृद्धि होगी-ही-होगी। ज्ञानी! सम्यग्दर्शन हुआ है तो चारित्र का पेट तो बड़ा दिखाई देगा। सम्यग्दर्शन हो गया, चारित्र का पेट ही नहीं दिख रहा है, तो सम्यग्दर्शन है कहाँ?

अहिंसा को पालने की बात करते हो, तुम्हारी प्राचीन जो परम्परा है, एक कड़े वाली बाल्टी होती है, उस बाल्टी से कुएँ से पानी खींचा जाता है, फिर बिलछानी करके नीचे भेजी जाती है। मशीन चला रहे हो, हैण्डपम्प या जेटपम्प चला रहे हो, उन जीवों की आते-आते हालत तो वहीं खराब हो चुकी है, अब क्या छन्ना? मुर्दे आये हैं, उनको पी जाओ साथ में। बुरा तो नहीं लग रहा? देख लो, बुरा भी नहीं लग रहा बेचारों को।

समकित भाव जागे और सम्यक्त्वाचरण न पले, तो समकित भाव जगा कहाँ? ऐसे-ऐसे बुजुर्ग त्यागी हमारे देश में हुये, इस राजस्थान की भूमि पर, भैया! अपने दादा, परदादा पर दृष्टि डालो। वो एक लोटा पानी लेकरके स्नान भी हो रहा और उसी पानी से कपड़े भी धुल गये।

आप कहो कि गरीब थे। वो गरीब नहीं थे, वो अहिंसा धर्म से अमीर थे और हिंसा से गरीब थे। आप कहो कि एक लोटा पानी से कपड़े कैसे धो लेते थे? उसी कपड़े के ऊपर बैठ गये और ऊपर से पानी डाल लिया, वो गीला हो गया, तो उसी को निचोड़ कर डाल दिया। इस प्रकार जीवों की रक्षा की है।

विश्व की सम्पूर्ण सरकारें महावीर के सिंद्धातों को समझ लें, तो गली-गली में, बोर्ड-बोर्ड पर, दीवाल-दीवाल पर न लिखना पड़े " बूंद-बूंद की रक्षा करो। " जैनदर्शन ने कोटि-कोटि वर्ष पूर्व कह दिया है कि पानी का प्रयोग "घी और तेल" के समान करो।

जितना पानी अधिक बहाओगे, तो उतनी ही हिंसा होगी। अहिंसा परम ब्रह्म है, और-कोई ब्रह्म नहीं है। वो क्या होता है? भैया! मैं जो भी व्याख्यान करता हूँ, एक समय में जो भी व्याख्यान नय से होता है, आपको उपलक्षण पकड़ना चाहिये। जैसे-कि आगम में लिखा है कि आर्यिकाओं के लिये छः हाथ, आचार्यों से पाँच हाथ, इतनी दूरी से वन्दना करना चाहिये। अब कोई यूँ कहने लग लाये कि ये तो आर्थिकाओं का वर्णन है। अरे ज्ञानी! आर्यिका तो उपलक्षण मात्र है। जगत् में नारी मात्र को ही इस नियम का पालन करना चाहिये। जैसे कि तेरी माँ कह गई थी कि बेटे! मैं कुएँ से पानी लेने जा रही हूँ, ये दही रखा हुआ है, कौआ आये तो इससे रक्षा करना। पर इतना पागल था तू, कि बिल्ली आयी, पूरा दही खा गई और तू देखता रहा बैठा-बैठा। माँ आकर पूछती है—बेटे! दही का क्या हुआ? माँ! आपने यूँ कहा था- " काकं दधि रक्षेत्।" दही की रक्षा काक से करना। आपने ये कहाँ कहा था कि बिल्ली से भी करना? ज्ञानी! तुझे मालूम होना चाहिये था कि कौआ तो उपलक्षण मात्र था जितने बिगाड़ने वाले थे, सबसे रक्षा करना चाहिये थी।

भैया! तू ऐसा मत कर देना कि तेरे घर में घोड़ा, पिताजी ने कहा- 'जाओ, सरोवर में इसको पानी दिखा लाओ।' तू गया, तालाब के सामने खड़ा कर दिया और वापस लेकर आ गया। बेचारा घोड़ा प्यासा-प्यासा, तड़प-तड़प कर मर गया। शाम को पिता जी ने पूछा- बेटे! आपने घोड़े को पानी नहीं पिलाया? बोले- आपने कहा था कि पानी दिखाके लाओ। सो मैं दिखाकर लाया।

भगवान् महावीर स्वामी के भक्त और आदिनाथ जी के भक्त/शिष्य, इनको आगम में पूरा प्रतिक्रमण करने का वर्णन है। अजितनाथ से लेकर पार्श्वनाथ तीर्थंकर की शिष्यपरम्परा होती है, वो मात्र उतना ही प्रतिक्रमण करते थे जितना दोष लगता था। "तस्स मिच्छामि दुक्कडम्" से काम चलता था। लेकिन महावीर के शिष्यों को पूरा प्रतिक्रमण करना पड़ेगा और आदिनाथ के शिष्यों को पूरा प्रतिक्रमण करना पड़ेगा। क्यों? अधिक सरलता में अधिक दोष लगते हैं और अधिक कुटिलता में अधिक दोष लगते हैं। आदिनाथ के शिष्य अत्यन्त सरल थे और महावीर के शिष्य अत्यन्त कुटिल हैं। ये कहने की जरूरत नहीं है, सामने तो दिख रहा है सब। ऐसे भी जीव हैं कि बीड़ी का तो त्याग कर देता है और सिगरेट शुरू कर देता है। ऐसे भी लोग हैं जिनने चायपत्ती पीने का तो त्याग कर दिया, लेकिन कॉफी पी रहे हैं। अब बताओ, मद किसमें ज्यादा है? ऐसे भी लोग मिल जायेंगे आपको बड़े अच्छे से कह रहे हैं 'महाराज! मैं चाय नहीं पीता हूँ।'

समकित भाव है, तो सम्यक्त्वाचरण भी है। समझ में आ रहा है आप सबको? इसलिये हे ज्ञानियो! मैं चाहता हूँ कि यहाँ की महावीर जयन्ति में भले ही बैण्ड कम बज जायें, बेनर कम लगें, पर वे नर चाहिये है। युवाओं! ध्यान दो, नगर में जितने भी युवा हैं, उन सबसे कह देना—भैया! इस वर्ष को महावीर जयन्ति में पानी के पाऊच न बाँट करके, उस स्थान पर पानी के छन्ने बाँटना प्रारम्भ कर दो, तो कितना आनन्द आयेगा।

नाक पोछने के लिये रूमाल रख सकता है, बालों को सम्हालने के लिये कंघी रख सकता है, उनका वजन नहीं पड़ता है और पानी छानने के लिये एक छन्ना रख लेगा तो कौन सा पाप पड़ जायेगा? फिर आप देखो, ये जैनत्व की प्रभावना, कि बेटे! तू जहाँ पानी छानते मिल जायेगा तो अपने-आप लोग कहेंगे ये जैनी है। यही तो प्रभावना है।

कोटि-कोटि बैण्ड बजा डाले, उनमें जीव मार डाले और जो बजाने आये थे, उनको द्रव्य दिया, सो उस द्रव्य से क्या खायेंगे? यह तुम सबको पता है। बराबर है न भैया? अनेक प्रकार की व्यवस्थायें रहेंगी, भैया! आप महावीरजयन्ति को क्या बाँटने वाले हो? कुछ नहीं बाँटने का, आपको तो पूरी जैनसमाज को छन्ना बाँटना है। पक्का। कोई पूछे कि आप ये क्या कर रहे हो? तब कहना 'भो ज्ञानी! मैं जिनशासन की प्रभावना कर रहा हूँ।' जैनी के तीन ही चिह्न हैं। कनक,कलेवा, छन्ना। सो छन्ना दे रहा हूँ, पानी छान कर पीना। और कह देना कि पानी ही छानना, नाक मत पोंछना ज्ञानी! नहीं-तो गर्मी में लोग पसीना पोंछने बैठ जायें उसी से। रूमाल मत देना, छन्ना देना है। खादी का मस्त, मोटा।

लोगों को समझ में आना चाहिये कि अब ऐसे नहीं तो ऐसे ही सही। वो वीतराग धर्म 18500 वर्ष तक चलना है। 18500 वर्ष तक, भारत की भूमि पर, अभी जिनशासन जयवन्त रहना है। ज्ञानी! ऐसे थोड़े ही। आप-जैसे लोग भी आयेंगे। मुमुक्षु! तू क्या करेगा?

जगत् में ये रेवड़ियाँ बाँटना बंद। जिससे जिनशासन की प्रभावना हो, ऐसे काम करना। छन्ना ही बाँटने का। पर सुनो, ये टिफिन के काम के लिये नहीं दे रहे हैं। और सबसे पहले इन्हीं लोगों को देना। आप मेरे समाज के गणमान्य लोग हो, पंच लोग हो। यदि पंच सुधर गये, तो पूरी समाज में माहौल सुधर जायेगा।

ये विद्वानों को बोलना चाहिये। जब से सूखा अध्यात्म फैल गया,तो भैया लोग यह समझ रहे हैं कि मात्र आत्मा पुद्गल की बात कर लूँ। अथवा करुणानुयोग वाले कहते हैं कि कर्मप्रकृतियों की बात कर लूँ। जिसकी निज की प्रकृति ठीक नहीं है, वो कर्मप्रकृतियों की बात करने से क्या कर पायेगा? प्रकृतियों की चर्चा करने से प्रकृति का नाश होगा, कि अपनी प्रकृति को बदलने से प्रकृतियों का नाश होगा? ओ हो! बड़ी गहरी-गहरी चर्चा हो जाती है और मालूम चला कि बेचारे गिद्धभोज में खड़े हुये हैं। पशु वृत्ति।

अरे! खड़े होकर खाने का ही शौक है तो मेरे-जैसे खड़े होकर दोनों हाथों से खाओ, मैं कब मना करता हूँ? लेकिन भैया! जब तक दिगम्बर मुनि बनकर नहीं खा पा रहे हो, तब तक शान्ति से बैठकर भोजन किया करो। ये तिर्यञ्चों-जैसा भोजन मत करो। इधर से भागते हो, उधर से भागते हो। न जूठन का पता, न सकरे का पता चलता । कुछ नहीं मालूम चलता। ये क्या है? व्यवहार दिया जाता है, अब स्नेह-भोजन थोड़े-ही दिया जाता है। बोल दिया- उस होटल में पहुँच जाना, वहाँ आपकी व्यवस्था है।

वे दिन कहाँ चले गये जब कमर झुकाकर लोग परोसा करते थे और हाथ जोड़कर कहते थे कि भैया! प्रारम्भ करो। अब तो ऐसा हो गया है, कि एक बैल चर गया, भाग गया। दूसरा बैल आया, वो भी चरके भाग गया। बुरा तो नहीं लग रहा आप लोगों को? देखो, क्षमा कर देना। अब "जो है,सो है।"

आप अपने बुजुर्गो की तो याद करो। इन जिनालयों को देखकर अनुभव करो। नगर के मंदिरों को तो देखो, फिर वेदन करो। कितनी विशाल समाज रही होगी? और कितने पवित्र परिणामों से युक्त समाज रही होगी? सोलह मंदिर हैं इस नगर में। हे ज्ञानियो! मंदिर बढे, बहुत अच्छी बात है। साथ में श्रावक भी बढ़ें और पुजारी भी बढ़ें तो और-अच्छी बात है।

हे पिता, हे माता! बन्ध्या बनकर मत चले जाना। बांझ स्त्री बनकर मत चले जाना। जो बांझ स्त्री होती है, जीवन भर सुखानुभूति लेती है, विषयों के सुख भोगती है, लेकिन किसी दूसरे को छोड़कर नहीं जाती है।

बांझ स्त्री इन्द्रियसुख भोगकर चली जायेगी, मृत्यु को प्राप्त हो जायेगी, लेकिन किसी को देकर जाती क्या? किसी को देकर नहीं जाती है। हे मुमुक्षुओ! यदि अपनी संतान को धर्म की सन्तति सिखाके नहीं गये, तो बन्ध्या के समान तुम्हारी मृत्यु हो जायेगी। तो मृत्यु कैसे होना चाहिये है? भोगभूमियाँ जीव जैसी होना चाहिये। भोगभूमियाँ जो जीव होता है भैया! नियम से युगलियाँ को छोडकर जाता है। इसलिये हे ज्ञानियों! अपने घर में और संतान में संस्कार धर्म के युगल को छोड़कर जाना। नहीं-तो ये विशाल जिनमंदिर कौन निहारेगा?

सब बदल जायेंगे, अरिहन्त की वेदी पर कौन बैठा दिखाई देगा? इसलिये आप सबसे मेरा कहना है कि माँ बेटे के कण्ठ में जन्मघुट्टी पिलाती है, तो उसके स्थान पर जिनवाणी की घुट्टी पिलाना चाहिये। ये शहद मत खिलाओ। बेटे को तकलीफ हुई, बेटा रो रहा है तो आज की माताओं की लीला देखो। चरणानुयोग चल रहा है, सम्यग्दर्शन का वर्णन है, इसलिये मैं आपसे कह रहा हूँ।

घर में बॉटल रखी मिल जायेगी। उसको एक ढक्कन पिला दो तो रोयेगा नहीं। हे माँ! तुझे मालूम होना चाहिये है कि कौन-सा बेटा कौन-सा महान् योगी बनने वाला होगा? और आपने उसको जन्म से ही भ्रष्ट कर दिया। इतना नियम ले लो, माँ! आठ वर्ष तक बेटा कोई भी अपराध करता है, कोई भी दोष लगाता है, उसके सम्पूर्ण पापों का दोष माता-पिता को लगता है। आठ वर्ष की आयु तक, उसके अष्ट मूलगुण का पालन उसके माता-पिता को कराना चाहिये।

यहाँ की कितनी मातायें हैं जो बिलखते बेटे को कभी मदिरा का पान नहीं करायेगी? रोते बेटे को कभी शहद नहीं पिलाना/शराब पिलाओगी क्या? पिलाते नहीं हैं, पर नियम ले लो। ठण्डियों में, कौन वैद्य ने अभागे से बोल दिया जोकि शहद चटा रहे हो? जो सात गाँव जनाने में दोष होता है, हिंसा होती है, वही हिंसा एक बूंद शहद के चटाने में होती है। ये जितने अशुद्ध द्रव्य है, ऐसे द्रव्यों का प्रयोग नहीं करना। कौन-सी बेटी तुम्हारी आर्यिका बनने वाली हो और कौन-सा बेटा तुम्हारा मुनिराज बनने वाला हो? उसके संस्कारों को आप पवित्र रखो।

सुबह हम लोग शोच को गये थे उधर पहाडी पर। बहुत सारे हिन्दू मंदिर है वहाँ पर। बहुत सारे भक्तगण खड़े हुये थे। जैसे ही महाराजों के साथ इतने युवा दिखे, उनको देखकरके दूर से ही कहते हैं 'आओ, जैन साहब।' वे सम्मान दे रहे थे आपको। अब आप सोचो।

मेनका गाँधी ने आकरके आचार्य विद्यानन्द जी के चरणों में सिर टेक दिया—महाराज! आज सारे विश्व में जैनदर्शन की नाक को ऊँचा किया है। महाराज! हुआ ये, कि मैं होटल में 6 बजे भोजन माँगने गयी। मैंने कहा कि देखो, समय हो रहा है, इसलिये आप जल्दी मुझे भोजन दो। हकीकत क्या थी? वो समय विमान का था। उन्होंने इसलिये बोला था कि उनके पास समय नहीं था। तब वहाँ जो मालिक था वह बोला, 'क्या आप जैन हो?' तो मेनका गाँधी इतनी फूल गयी कि अहो! आज यहाँ जैन नहीं दिख रहे हैं, फिर भी जैनधर्म। भैया! कपूर है, चन्दन है, काला गरू है, धूप है, इसको किसी कोने में जाकर रख देना, वह पूरे महल को महका देता है। ऐसे-ही सुगन्ध जहाँ होती है, पूरे स्थान को महका देती है।

जैनदर्शन भारत में है, लेकिन सारे विश्व में उसकी सुगन्ध महक रही है। आकरके आचार्य श्री विद्यानन्द जी से दिल्ली में बोलतीं हैं 'महाराज! आपकी अहिंसा आज विदेशों में महक रही है, लहरा रही है।' महाराजश्री बोले-क्यों? वह बोलीं - मैं आज वहाँ गयी थी होटल में भोजन के लिये, तो वहाँ का मालिक कहता है कि क्या आप जैन हो? क्यों? क्योंकि जैनी लोग शाम को भोजन करते, रात्रि में भोजन नहीं करते। विदेश की बात कर रहा हूँ भाई।

ज्ञानी! कोई अजैन बन्धु आपको बुला रहा है और वह कह रहा है-कि 5 बजे व्यवस्था है भोजन की। लेकिन कोई जैनबन्धु रात्रि में पहुँचा भोजन को, तो उसने पूरे जैनदर्शन को डुबा दिया। कम-से-कम जितने बुजुर्ग लोग हैं, वे इतना नियम तो कर लो, व्यवहारिकता के नाते कि तुम लोग रात्रि में किसी दूसरे के घर खाना खाने नहीं जाओगे। कितने लोग हैं? ज्ञानी! अपने घर में भी नहीं खाना।

इसलिये भैया! आप चिन्तन करो, विचार करो और इतने दृढ़ हो जाओ। अपने ही तो लोग हैं। ऐसा काम करो जिससे हमारे कुल की आन-बान शान की रक्षा हो। वस्तुस्वरूप समझो। ये भी विषय जानने का है। नहीं तो लोग भूल ही गये हैं कि वस्तुस्वभाव क्या है। समकित भाव है, तो सम्यक्त्वा चरण है। समयक्त्वाचरण दिखता है, तो समकित भाव है। भैया! क्या सोच रहे हो? भैया! जब-तब यहाँ नई कालोनियाँ बनें, तो पहले जैनमंदिर बनवाने की बात करना।

आप विश्वास रखो, मंदिर रहेगा तो समाज की रक्षा रहेगी। जिस कालोनी में जाकर बस गये, आज के लोग तो चाहते ही हैं कि भगवान् ही मेरे घर में आ जायें और मैं हाथ जोड़ लूँ। तो फिर कौन जायेगा दर्शनों के लिये? मंदिर हजारों बनाना, पर सम्पूर्ण समाज की व्यवस्था एकरूप में देखना। चाहे कितने मंदिर हों, कितने अध्यक्ष हों, लेकिन जब सभी एकसाथ बैठते हैं तो कितना अच्छा लगता है? इस अखण्डता को खण्डित नहीं होने देना। क्योंकि पंचमकाल है, नाना प्रकार के लोग आयेंगे। सबकी सुनना, विशेष ध्यान रखना।

जब लाइट चली जाती है तो घर में दीपक जलाते कि नहीं जलाते हो? और जब ग्रीष्म काल में, राजस्थान में तूफान चलते हैं हवा के, उसमें दीपक जलाते कि नहीं? समझो मैं कुछ कह रहा हूँ, रहस्य की बात। क्या अंधेरे में रहोगे? दीपक तो जलाते हो, पर रक्षा कैसे करते हो? शीशा रख देता हूँ। हे ज्ञानियो! तूफान में जलते हुये एक दीपक को सुरक्षित रखने के लिए तुम काँच रख देते हो।

हे तूफान! तू कितना ही चल ले? पर मेरे पास काँच का कवच है। मैं अपने दीपक की रक्षा किये हूँ। ऐसे-ही हे ज्ञानियो! इस समाज में नाना प्रकार के कितने ही तूफान खड़े करनेवाले लोग आ जायें, लेकिन तुम अपना काँच बनाकर रखना, अपनी श्रद्धा और समाज की अखण्डता के दीपक को बुझने नहीं देना।

क्या करें? ऐसे-ऐसे वक्ता हो चुके हैं, वो संतवाद,पंथवाद की दुर्गंध फैलाते हैं। ये कुछ नहीं सुनने का। मुझे तो मात्र वीतरागी जिनमुद्रा देखना है, जिनवाणी देखना है और अर्हन्त भगवान देखना है। इसके अलावा कुछ नहीं देखना है। तुम्हारी परिणति तुम जानो, मेरी समाज की अखण्डता एक है। वो नहीं मिटना चाहिये।

आज इस आँगन में आनंद आ रहा है कि नहीं आ रहा? बेटे! एक माँ चार बेटों को एक कटोरे में, एक आंगन में बिठालकर खीर खिलाती है। पर वो ही माँ जब बूढ़ी हो जाये, तो वो ही बेटे आँगन में चार दीवाल खड़ी करते हैं। उस समय माँ का हृदय टूटता है। बेटो! आँगन में दीवाल नहीं है, माँ की छाती/हृदय पर दीवाल है।

मेरे बेटो! माँ जिनवाणी आपको चार-चार आँचल से प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग की रसभरी खीर खिला रही है। दुग्ध दे रही है तत्त्वों का। हे मेरे बेटो! इसमें तुम टुकड़े मत करना। इस अखण्ड खीर को थाल को तुम एकसाथ बैठकर खाना। समाज के टुकड़े नहीं होना चाहिये, मेरा लक्ष्य इतना ही है। वस्तुस्वभाव की दृष्टि हो तो इस समाज की अखण्डता है।

जब हम निगोदिया में भगवान् देखना जानते हैं, सारे विश्व की एकता-अखण्डता की बात कर रहे हो, तो ज्ञानी! कम-से-कम से मुट्ठी भर जैनसमाज की तो रक्षा करो। भैया! चलती बिरियाँ हैं। कब, कौन जीव, कहाँ चला जाये? इसलिये ऐसा कुछ करके जाना। इस पीढ़ी को समझा कर जाना कि जो तुम्हारे दादा-परदादा ने तुमको सिखाया है, इसलिये आज तुम मुस्कुरा रहे हो। बस, मैं इतना ही कहना चहता हूँ कि आगे आने वाली पीढ़ी भी ऐसे ही मुस्कुराती रहे। चिन्ता नहीं करना भैया। भैया! तू गलती कर रहा है। अकेला आकर बैठ जाता है, युवाओं को और लेकर आना चाहिये है। तुम मित्र किस बात के? पान चबाने वाले मित्र तो कोटि-कोटि मिल जायेंगे, पर जिनवाणी को समझनेवाले पिलानेवाले मित्र ज्ञानी कहीं-कहीं मिलेंगे। कुछ सुना? ये भी तत्त्व है।

चाहे "समयसार" चले, "सारसमुच्चय" या करणानुयोग चले, सबमें आप ऐसे हो जाते हो, जैसे कुछ हो जाता है आपको। भैया! ये तो पुद्गल की वर्णगायें हैं। क्यों आप इसको देख रहे हो? विश्वास रखना, भैया! एक श्रेष्ठ पिता बनकर जीना। चार बेटों को भी तुम एकसाथ देखना पसन्द करते हो, यह अच्छा है।

हमारे समाज को हर बुजुर्ग अपने बेटे के तुल्य देखें और आप एक अच्छे पिता बनकर रहो, जिससे आपके मन में भाव रहे, कि हमारी आगामी पीढी भी नमोऽस्तु शासन को ऐसे ही जीवन्त, जयवन्त करे। ये भी ध्रुव सत्य है। ऐसे-ऐसे ग्रन्थ हमारे सामने आये और जब इन ग्रन्थों की हमने वांचना की भैया! बड़े-बड़े विद्वान् जिनकी 80-80 वर्ष की उम्र हो गई, वो बोले-विशुद्धसागर जी महाराज! नमोऽस्तु। इस ग्रन्थ का तो मैंने नाम ही नहीं सुना था अपने जीवन में। जितने मुमुक्षु भाई बैठे हों, ध्यान दो।

"स्वरूप सम्बोधन" ग्रन्थ की वाचना आज से अपने जिनालय में शुरू करा देना। कारण पूछो, क्यों? दिगम्बर जैन आम्नाय में नहीं, पूरे जैन परम्परा में यह एकमात्र ग्रन्थ है, जिसमें न्याय व अध्यात्म की युगपत् व्याख्या है। इन्दौर में इसकी गोष्ठी हुई, विद्वत् सम्मेलन हुआ। आचार्य विद्यानन्द जी महाराज दिल्ली में थे, इनके समाचार पहुँचे मेरे पास हाँ, यह काम ठीक हैं 'विशुद्धसागर' जी ने जैनन्याय की परम्परा को आज जीवन्त रखा। ज्ञानमती माता जी के समाचार पहुँचे मेरे पास कि 25 श्लोक में इतना मोटा ग्रन्थ हो कैसे गया? मैंने कहा- माता जी! यह फिर भी कम है, एक-एक श्लोक में इतना भरा हुआ है। भैया! इसको पढ़ना। 'स्वरूप सम्बोधन परिशीलन' आपको तो सम्पूर्ण बकीलों को भेंट करना चाहिये। उज्जैन विक्रमादित्य विश्वविद्यालय के डीन ने इस पर एक आलेख भेजा है, वह प्रिन्ट हुआ है। तो

लगता है कि जैनपरम्परा को, जैनविद्या को आज विश्व के हाथों में पहुँचना चाहिये। आप तो शान्ति से यहाँ बैठे हो, आप विश्वास रखो, दिल्ली में विदेशी आकर जैनदर्शन पढ़ते हैं।

जापान का एक प्रोफेसर है, वह 15-15 दिन तक मेरे साथ रहकर जाता है। मात्र वो एक खोज कर रहा है। जैनदर्शन पर डॉक्ट्रेड कर रहा है। आप कल्पना करो, एक 60 वर्ष का आदमी, जापानी, वो डॉक्ट्रेड कर रहा है जैनदर्शन पर। उसने हर विद्या पर बहुत अच्छा लिखा है। अच्छा ये हुआ कि वो ठीक समय पर, ठीक स्थान पर आ गया। पण्डित जी उसको लेकर आये थे। इतना प्रभावित हुआ जैनदर्शन से कि वह जैनदर्शन पर लिख रहा है।

आपको लगता है कि मैं तो इतना ही हूँ, मेरा कुछ नहीं है। खुजराहो का नाम सुना आपने। खजुराहो में मैं वन्दना के लिये गया था। वहाँ पर श्रीलंका की एक पार्टी आयी। भैया! मैं बैठा था, वो सारे-के-सारे कैमरा लेकर आ गये और एक लम्बा सा, मोटा काला, कलूटा आदमी मेरे बगल में आकर बैठ गया, बोला- स्वामी-स्वामी! विकल्प मत करो। मैं बहुत दिन से जैनदर्शन पर कार्य कर रहा हूँ। मुझे प्रतिमाओं की और ग्रन्थ की तो बहुत सामग्री मिल गयी। लेकिन मुझे जैनसाधु नहीं मिल रहे थे। आपकी ये फोटो में पुस्तक में लगाने के लिये खींच रहा हूँ।

आप कल्पना करो, कैसे-कैसे लोग? अब-जब यूँ कहे कि जैन योगी की तस्वीर चाहिये तो फिर जैनयोगी ऐक्टर बनकर न बैठे, जैनयोगी ही बनकर बैठे। दिगम्बर चित्र जायेगा तो जैनदर्शन की प्रभावना होगी। आज जब जिनालयों में राम, लक्ष्मण, राम-सीता को आहार के चित्र देखते हैं, आदिनाथ के आहार के चित्र देखते है, तो रोमांचित हो जाते हैं। यथार्थ बताऊँ, सत्य बताऊँ, हर श्रावक के घर में, रसोई घर में एक दिगम्बर मुनि का चित्र होना चाहिये। बैठक कक्ष में नहीं, शयनागार में नहीं, रसोई घर में होना चाहिये। प्रश्न करो, क्यों? 'मुनि को भोजन दे, फिर निज करे अहारे।' (छहढाला) अरे अभागे! तुम भूल गये हो, जो दिगम्बर मुनि को आहार देने के पहले भोजन कर लेता है, वह तो निशाचर होता है। ऐसा " सोमदेव सूरि " जी महाराज ने लिखा है। आजकल परिणाम तुम्हारे क्यों अच्छे नहीं भैया? उधर टेलीवीजन खोल लिया और इधर खाना खा रहे है। इधर देखो, ये युवा धोती-दुपटटा पहने खड़े है इधर तो ये आज भी लग रहा है कि जैन नमोऽस्तु शासन है कि नहीं। इन्तजार कर रहे हैं।

'भो स्वामी! पधारो, भो स्वामी।' उन माता-पिता से पूछना, जिनके बेटे मुनि का इन्तजार कर रहे हों। धन्य हो उनके माता-पिता को और उन माता-पिता से पूछना जिनके बेटे वेश्यालयों

में जाकरके इन्तजार कर रह हों। धिक्कार हो इन माता-पिता को। तो मालूम, रसोई घर में मुनि के क्यों चित्र होना चाहिये? तुम्हारे परिणाम इसलिये अशुद्ध हो रहे हैं कि उधर बैठक कक्ष में भोजन, पैरों में जूते, कोई खड़े, कोई पैर लटकाये और सामने टेलीवीजन में काटो-मारो के चित्र आ रहे हैं। हे अभागे! तू भोजन कर रहा है। जैसी तरंगें जायेंगी, वैसे ही तो परिणाम रहेंगे 24 घण्टे।

कम-से-कम इतने ही प्रतिज्ञाबद्ध हो जाओ- अपने मन में। मैं नियम नहीं दिला रहा हूँ, अपने ही मन में सोच लेना कि भोजन करते-करते टेलीवीजन नहीं देखेंगे। क्या मालूम क्या, कैसे चित्र सामने आयें? भो ज्ञानी! जब दिगम्बर मुनि का चित्र तुझे दिखाई देगा, तब ये भाव तुम्हारे मन में आयेंगे, कि यह वो परम्परा है कि वीतरागी मुनियों को आहार देकर, फिर स्वयं भोजन करते हैं। मालूम नहीं भी है नगर में साधु हैं, तब भी भाव आयेगा। भारत की भूमि पर नहीं, ढाई द्वीप में जितने निर्ग्रन्थ तपोधन विचरण कर रहे होंगे, सबके निरन्तराय आहार हों, ऐसा भाव बनाकर फिर भोजन करना।

यथार्थ मानो, तत्त्व के नाम पर लोगों ने शुष्कता फैला दी है। आज समरसता लग रही कि नहीं लग रही? आनन्द आ रहा कि नहीं आ रहा? खींचा-तानी, खींचा-तानी करके पूरी समाज के टुकड़े कर दिये। कोई ये बोले। कोई वो बोले। कुछ नहीं। एक बात मैं जानता हूँ, बताऊँ आपको? आपको स्वीकार हो जायेगी, क्योंकि बहुत अच्छी बात है।

इन दादा जी के बच्चे हैं क्या? नहीं। गोद लिये हैं क्या? तू कितना स्वतंत्र था, भाग्यवान था। क्यों टेंशन पाल लिया? कोई बात नहीं, अब तो बेटा ही कहलायेगा न? दादा जी! जो आपका बेटा है, उस बेटे के भी तो बेटे होंगे। माना कि उसके 2 बेटे हो गये और उनके कई बेटे हो गये। अब सुनो ध्यान से।

एक पिता के 2 पुत्र और दोनों पुत्रों की जो संतान हैं, वह अपने पिता को पिता बोलेगी कि चाचा को पिता बोलेगी? वह अपने पिता को ही पिता बोलेगी। पिता, चाचा, ताऊ के चक्कर में झगड़े भी हो जाते हैं। अब इनको एकसाथ बिठालना चाहो तो बैठ नहीं सकते। क्यों? मेरे पिता तो स्वतंत्र हैं और आपके पिता स्वतंत्र है। जब इनके दोनों पोते झगड़ने लग जायें। एक-एक बेटे के 2 लड़के। बताओ, अब आप निर्णय कैसे करोगे? एकता कैसे बिठाओगे? और वकील साहब के पास जाओगे, तो वो भी कहेंगे कानून से। हाँ, वो अपने पिता की बात करेगा, ये अपने पिता की बात करेगा। एक-दूसरे के पिता थोड़े-ही हो सकते।

हे ज्ञानियो! पिता के नाम पर तुम भिन्न-भिन्न हो, पर दादा के नाम पर तो एक ही हो। इस समाज से कह दो कि तुम गुरुओं/साधुओं में मत बटो। साधु अपने-अपने संघ की अपेक्षा अलग-अलग दिखाई दे, लेकिन महावीर स्वामी तो सबके एक हैं। इन दादा से मिलो। आज देश में क्या हो रहा है? कोई कह रहा है कि मैं शांतिसागर परम्परा का, कोई कहता आदिसागर परम्परा का, तो कोई कहता कि मैं विद्यासागर परम्परा का, कोई विरागसागर परम्परा का, तो कोई कहता पुष्पदन्त, भूतवलि किन-किन की परम्परा का? अपनी-अपनी परम्परा का गीत गा रहे हैं। गाओ-गाओ, पर सबके महावीर स्वामी एक हैं। दिगम्बर के भी महावीर, श्वेताम्बर के महावीर, स्थानक के महावीर, समैया के महावीर, सबके महावीर तो एक हैं ना? तो भैया! महावीर के नाम पर ही तुम एक रहो। यही सत्यता है।

सभी के दादा एक नहीं हैं क्या? तो तुम सब एक हो कि नहीं? इसलिए भैया! अखण्डता के लिए नीति का ज्ञान तो करना पड़ेगा। जुड़े को बिखेर देना, यह तो चिड़ियाँ करना जानती हैं। लेकिन हे ज्ञानी! बिखरों को जोड़ लेना, यह योगी का काम है। जोड़ने की आवश्यकता है। खण्ड नहीं चाहिए। अखण्ड चाहिए। भेद से अभेद की ओर तो जाना, पर अभेद से भेद की ओर नहीं जाना। यहीं जैनदर्शन का मूल सिद्धान्त है। व्यवहार संयम यानि भेद संयम। निश्चय संयम यानि, अभेद संयम। व्यवहार रत्नत्रय यानि भेद रत्नत्रय। निश्चय रत्नत्रय यानि अभेद रत्नत्रय। ज्ञानी! हमारे यहाँ भेद से अभेद की ओर जाया जाता है, अभेद से भेद की ओर नहीं जाया जाता है।

भैया! न सौंफ ठण्डाई है, न इलायची ठण्डाई है, न बादाम ठण्डाई है, न मिश्री ठण्डाई है, न पानी ठण्डाई है। पर इनके बिना ठण्डाई होती नहीं है। एक-एक चबायेगा, तो ठण्डारी का स्वाद नहीं मिलेगा। और ज्ञानी! सबको मिलाकर, घोंटकर, पीस देगा तो क्या हो गया? ठण्डाई। फिर कितनी ही गर्मी पड़े, उसको पान करेगा सो ठण्डा हो जायेगा। इसलिये हे ज्ञानियो! जितने भेद हैं, उन सबको मिला देगा, तो यही अनेकांत दृष्टि है। यही ठण्डाई है। यही पानक है।

''सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः।'' जोड़ने का काम करो, तोड़ने का काम मत करो। और यथार्थ मानना, तोड़ने की बात वही बोलता है, जिसका हृदय टूटा हुआ होता है। जो व्यक्ति स्वयं साम्यभाव में होगा, वह सबके साथ साम्यभाव रखेगा। यह वीतरागी शासन, जिनशासन ऐसा है, जहाँ गाय-शेर एक घाट पर पानी पीने हैं। वहाँ तुम जैनियों को भी दूर बिठालना चाहते हो। ज्ञानी! ऐसा काम मत करो।

झाँसी के पास टोड़ी-फतेहपुर एक तीर्थ है। दिगम्बर जैनसमाज के मात्र आठ घर हैं। पर वहाँ जो पंचकल्याणक हुआ, गजरथ महोत्सव हुआ, उपदेश होता था तो ये नहीं लगता था कि आठ घर की जैनसमाज है। आस-पास के जो किसान थे, देहाती लोग थे, वो ट्रेक्टर भर-भर के लाते थे। मात्र प्रवचन सुनने के लिये आते थे। हुआ क्या? वहाँ पर एक बहुत बड़े उनके साधु महात्मा पधारे। तो जब वो आये गजरथ के बाद। जिनके पास भीड़ लगती थी, वहाँ उनके भक्त नहीं पहुँचे। तो उनको थोड़ा आश्चर्य लगा कि हर वर्ष मैं आता था तो भीड़ लगती थी भक्तों की, अब लोग आये क्यों नहीं?

एक भक्त विद्वान मालूम क्या बोलता है? अपने उन महात्मा जी से? स्वामी जी! क्षमा करना, मुझे मालूम था कि आप क्या-क्या कहने वाले हो?पर मैंने एक महीने उस तत्त्व को पी लिया है। अब कुछ समझ में नहीं आती दूसरों की बात ।

एक ब्राह्मण विद्वान अपने महात्मा जी से कहता है-कि महाराज! हमने एक महीना जिनवाणी का पान किया है महाराज श्री से। अब हमें जगत् की कोई बात समझ में नहीं आती है। अब आप मुझे कुछ नया सुनाओ, आत्मा की बात करो, तो सुनने को तैयार हूँ। तब लगता कि जब अजैन बन्धु ऐसा कर सकता है तो भैया! आपको यही कहना है कि हमने एक आँगन में, भगवान के चरणों में सुना है तत्त्व को। आप मुझे समाज की अखण्डता के साथ तत्त्व को पिलाओ। मुझे समाज के टुकड़े नहीं चाहिये, मुझे अखण्डसमाज चाहिये। ये है आनन्द। समकित, सम्यग्क्त्वदृष्टि जीव हो और प्राणीमात्र के प्रति एकीभाव न हो, एकत्व-विभक्त परिणाम न हो, तो बताओ कैसा समकित भाव? बताओ, किसमें भगवान्-आत्मा नहीं है? इसलिये अपने दाँतों को साफ करने के लिये किसी वृक्ष की लकड़ी भी तोड़ने जाओ तो पहले रुक जाना, हड्डी को साफ करने के लिये भगवान्-आत्मा को कष्ट देने मत जाओ। वो भी भावी भगवान् है। जितनी हरी खाते हो थाली में सजा-सजा करके,ये भी हमारे भविष्य के भगवान् हैं और भूत के मेरे कोई सगे-संबंधी होंगे, जो मेरी थाली में सज कर आये हैं। इसलिये भोजन करें विवेक के साथ। कम-से-कम साधारण-वनस्पति का तो सेवन नहीं करना। दुदल का सेवन नहीं करना। अभक्ष्य का सेवन नहीं करना। पंचमकाल जब तक है, तब तक सम्हल जाओ। छटवें काल में तो तुम्हें कोई समझानेवाला नहीं मिलेगा। महावीर भी आनेवाले नहीं हैं। नहीं मिलेंगे तुमको कोई साधु। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को कच्चा खा जायेगा, ऐसा समय आयेगा। अग्नि समाप्त हो जायेगी। इसलिये जब तक सबकुछ दिख रहा है, तब तक भो ज्ञानियो! अपनी आत्मा की रक्षा कर लो और सम्यक् रत्न को सम्हालो।

ठीक भैया! अपन पुनः चर्चा कर लेंगे, यदि पर्याय रही तो। जिनवाणी को सुनते-सुनते आप क्या सोचते सो आप जानो, लेकिन आपको लगता है कि मैं आपको सुना रहा हूँ, यथार्थ में मैं सुनता हूँ और आनन्दित होता हूँ। और मैं श्रेणिक के प्रति थोड़ा ही भाव रखता हूँ, ईर्ष्या जैसा। क्यों? हे श्रेणिक! जब विरागसागर, विद्यासागर जैसे आचार्य बोलें तो गद्गद् भाव से सुनता हूँ मैं, तो तुम ये बताओ कि तू कितना भाग्यवान् होगा? श्रेणिक! तूने साक्षात् महावीर से सुना है। जब एक सामान्य योगी के प्रवचन सुनने में इतना आनन्द आता है, तब तू तो साक्षात् वीर की वाणी सुनता है, तू कितना भाग्यवान् है। भैया! आज कर लो प्रश्न।

आचार्य विमलसागर जी साम्यभावी साधु थे। अहंकार की तो कोई बात ही नहीं थी। ये तो आजकल होने लगा है तेरा-मेरा। पहले नहीं चलता था ये। इनके संघ में मैंने कई साधु को चातुर्मास करते देखा है। अनेक विभिन्न संघों के साधु इनके साथ चातुर्मास कर लेते थे। सागर में सन् 2000 में मेरा चातुर्मास हुआ। वहाँ 5 संघों के साधु एकसाथ चातुर्मास कर रहे थे। पूरी समाज देख रही थी कि क्या होने वाला है। आज झगड़ा होगा कि कल झगड़ा होगा।

जब चातुर्मास हो गया, तब समाज मालूम क्या कहता है? महाराज! चमत्कार नहीं देखा हमने आज तक, पर हमारे सागर का यही चमत्कार है कि 5 संघ के साधुओं का एकसाथ चातुर्मास सफल हुआ है। पानी देखा, पानी? भैया! 5 लोटों में पानी लाना और इन लोगों को दिखा देना, और एक बर्तन बड़ा लाना, 5 लोटों के पानी को उस बर्तन में डालना। एक भी पानी बर्तन को फाड़कर बाहर नहीं निकलेगा। सब पानी 5 लोटों के एक में हो जाते हैं।

जब जड़ पानी मिल सकता है, तब अहो ज्ञानी, जिनवाणी सुनानेवाले! तुम्हारे परिणाम न मिले, तो तुम काहे के साधु हो? जड़-पानी मिलता, कि नहीं मिलता है? जब जड़ पानी मिलता है, तो चेतन परिणाम भी मिलना चाहिये।

"मुनि मन सम उज्जवल नीर, प्रासुक गंध भरा"

जैसा उज्जवल मुनि का मन है, वैसा नीर तुम भगवान् के चरणों में लेकर आते हो। अब तुम कल्पना करो कि मुनि का मन कितना पवित्र होगा?

सत्य है, जहाँ जिनवाणी है, वहाँ मंगल-ही-मंगल है। सब अशांति समाप्त है। इतनी शांति तुम्हारे घर में है क्या? हे अभागे! इतनी शांति छोड़कर घर जायेगा क्या?

बेचारों को अभागा भी बोल दें, तब भी कुछ नहीं बोलते। बैठे रहते, सुनते रहते। पर सुनो भैया! आप मत बोल देना।

सम्यक्त्वं परमं रत्नं, शङ्कादिमल वर्जितम्।
संसारदुःखदारिद्र्यं, नाशयेत्सुविनिश्चितम्।। 40।। सा.स.।।

यहाँ पर आचार्यभगवान् कह रहे हैं- "सम्यक्त्वं परमं रत्नं " परम रत्न कोई है तो वह सम्यक्त्व है। "शङ्कादिमल वर्जितम्" शंकादि मल/दोषों से जो रहित है। "संसार दुःखदारिद्र्यं" संसाररूपी दुःख-दरिद्रता का नाश करने वाला कोई है, तो सम्यक्त्व है। दरिद्री कोई है, तो उसकी दरिद्रता को कौन क्षीण करता है? रत्न, मोती, हीरे, धन दे दो तो दरिद्रता समाप्त।

हे मुमुक्षुओ! संसार में कोई दरिद्री है, तो मिथ्यादृष्टि है। उसको तुम सम्पन्न करना चाहते हो तो उसको अर्हन्त के चरणों की श्रद्धा दे दो, निर्ग्रन्थों के चरणों की श्रद्धा दे दो, माँ जिनवाणी दे दो, ज्ञानी! अपने समान कर लो। वही सम्पद्शाली है, जो सम्यग्दृष्टि है।

इसके बारे में अपन विशेष चर्चा कर लेंगे। आज अपने मन में चिंतन करना कि मैं दरिद्री तो नहीं हूँ? बस, इतनी-सी बात है। मात्र 2 मिनिट की तो बात है। 2 मिनिट नहीं दे सकते अपने आप को? कि मैं दरिद्री तो नहीं हूँ? किससे? अपने आप से।

"**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"सदाचारी सम्यग्दृष्टि ही धर्मज्ञ है"

पण्डितोऽसौ विनीतोऽसौ, धर्मज्ञः प्रियदर्शनः।
यः सदाचारसम्पन्नः, सम्यक्त्व-दृढ-मानसः।। 42।।

जो सम्यक्त्व में दृढ़ मन वाला है और सदाचार-सम्पन्न है, वही पण्डित है, वही विनीत (विनयवान्) है, वही धर्म के मर्म को जानने वाला है और वही प्रियदर्शन अर्थात् प्रेम से देखने योग्य है।

"वास्तविक वैद्य कौन"

जरा - मरण-रोगानां, सम्क्त्वज्ञानभेषजैः।
शमनं कुरुते यस्तु, स च वैद्यो विधीयते।। 43 ।।

जो सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान रूपी औषधि के द्वारा जरा(बुढ़ापा)-मरणादि रोगों का शमन करता है, वही वैद्य कहा जाता है।

।। देशना ।।

अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है।

यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति ।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज "सार समुच्चय" जी में आत्मा के सम्यक् गुण की व्याख्या करते हुये समझा रहे हैं। अहो मुमुक्षु! मुक्ति का संगम कराने वाला कोई है, वह सम्यक्त्व है। संसार में भ्रमण कराने वाला कोई हेतु है, वह मिथ्यात्व है। इससे बड़ा कोई शत्रु नहीं है। अश्रद्धान से बड़ा कोई दु:ख नहीं है। अप्रीति से बड़ा कोई दु:ख नहीं है।

जिसके प्रति आस्था थी, भैया! वो आस्था टूट जाये, तो उस आस्थावान् से पूछना कि तुमको कितनी वेदना हुई है? हे मुमुक्षु! जगत् में किसी की पंचपरमेष्ठी के चरणों में आस्था है। धन धरती तुम छीन लेना, लेकिन उसकी आस्था को नष्ट कराने का प्रयास मत करना। जो पैसा है, वह तो पुण्य का मल है। भैया! सबके दिन एक-से नहीं होते हैं।

मिट्टी खोदने वाला महलों में बैठा होता है। महलों में बैठने वाला मिट्टी खोदते मिलता है। ऐसा भी होता है। हे मिट्टी खोदने वाले! महलों में बैठकर अहम् में मत डूब जाओ, और महलों में बैठने वाले मिट्टी खोद रहे हैं, तुम भी हीन भावना में मत जाना। ये तो संसार का परिणमन ही ऐसा है। इसमें विकल्प करने की आवश्यकता नहीं है।

जिसमें राग किया करते थे, वह राख हो जाता है। जिसमें ज्ञानी! कनस्टर के कनस्टर, टीन के टीन सुगन्धित तेल के लगा चुके थे, वह भस्म के रूप में परिवर्तित दिखाई देता है। हे ज्ञानियो! जिनालय की वन्दना करने आते हो, कभी-कभी समय मिल जाये तो श्मसान पर भी घूमकर आ जाया करो। जब भी मौका मिले, एक बार श्मसान की ओर जाकर देख आया करो।

जो अहम् में डूबे हुये थे, वे अग्नि में झुलस चुके हैं। एक-एक अस्थि-पंजर को उठा करके, लोगों ने बीन-बीन करके, कहीं बिखरा न दिख जाये, उठा-उठा कर डाल दिये हैं। उस ध्रुव भगवान्-आत्मा को निहारो जो देह-पंजर के अंदर जो विराजी है। उससे कह देना, हे भगवान्-आत्मन्! जिससे राग कर रही है, वह तो राख होगा। राख होने वाले में राग क्यों? और जिसके प्रति तेरा ध्यान नहीं है, वो भगवान् है।

सम्यक्त्व के ऊपर लगे शंकादि मल का धोवन करो। सम्यक्त्व में शंकादि मल को तो धोओ, परन्तु तन के मल को धोकरके तुम निर्मल नहीं कर पाओगे। कड़वी तुमड़ी को! कितना ही धो लेना, हे मुमुक्षु! कड़वी तुमड़ी की कड़वाहट को तुम दूर नहीं कर सकोगे। ऐसे ही यह देह-चर्म के पिण्ड को तू शुद्ध करना चाहता है, ये शुद्ध नहीं हो पायेगी। तू चाहे इसका उपयोग कड़वी तुमड़ी को लेकरके सुखा ले, लेकिन खायेगा तो ऊपर चला जायेगा।

कड़वी तुमड़ी (लौकी/घिया) खायेगा तो मृत्यु हो जायेगी, क्योंकि वह जहर होती है। लेकिन उसी कड़वी तुमड़ी को सुखा लेना और जब वह सूख जाये, तो उसे लेकर विशाल सरोवर में या सागर में भी कूद जाना, तो वही कड़वी तुमड़ी तुझे सागर से भी पार कर देगी। वही कड़वी तुमड़ी सूखने के बाद तुझे सागर से पार कराने की सामर्थ्य रखती है। ध्यान दो।

ऐसे ही यह देह है। इसका भोग में भोग करेगा, तो कड़वी तुमड़ी के समान तेरे संयम को मारकर तेरे को दुर्गति में भेज देगा और यदि तू कड़वी तुमड़ी रूपी शरीर से साधना करके, सुखा लेगा, तो वह तुझे भवसागर से पार कर देगा। ये कड़वी तुमड़ी है। किसी वस्तु को एकदम हेय मत समझो। उसका उपयोग करना सीखो। खाने के लिये हेय है, पर समुद्र में तैरने के लिये हेय नहीं ही है। इसलिये उसके प्रति अशुभ भाव भी मत लाओ। जो देह को गाली देते हैं, वे मिथ्यादृष्टि होते हैं। कुछ लोगों ने अपना ध्येय ही बना लिया है शरीर को। " दुर्जन देह स्वभाव बराबर, मूरख प्रीति बढ़ावै"

अरे भाई! इस देह को एकदम मत सुखाओ। शरीर नहीं होगा तो मोक्षमार्ग की साधना किससे करोगे? ज्ञानी! निगोदिया में भी अर्हन्त-शक्ति है। निगोदिया के सिद्धत्व शक्ति है। लेकिन क्या उसी पर्याय से सिद्ध बन पायेगा? पर्याय की प्रत्यासत्ति भी चाहिये है।

ब्रह्मचारियो! बाहर के लोगों की बातों को सुनकरके एक गहरी बात समझना। राग बन्ध का कारण है तो क्या द्वेष मोक्ष का कारण है? जैसे राग बन्ध का कारण है, वैसे ही द्वेष भी बन्ध का कारण है। आपको अपने कुटुम्ब के प्रति राग नहीं होना चाहिये, लेकिन द्वेष भी नहीं होना चाहिये। इस देह को देखकरके आप यह कह रहे हो कि शरीर मुझे दु:खी किये है। विश्वास रखना, शरीर ने आज तक किसी को दु:ख दिया ही नहीं है। असाता के उदय ने दु:ख दिया है और साता के उदय ने सुख दिया है। बराबर? ज्ञानी! तत्त्व की व्याख्या को समझिये। कुछ ऐसे अज्ञानी लोग हैं कि उनके शरीर में रोग होते ही, वृद्धावस्था आते ही उनकी सोच बदलना प्रारम्भ हो जाती है—'अब तो ये शरीर नष्ट हो जाता तो अच्छा था क्योंकि अब ये शरीर दु:ख दे रहा है।' ज्ञानी! शरीर दु:ख देता होता, तो जगत् में जितने देहधारी हैं, सभी रोते ही मिलना चाहिये। अर्हन्त भी शरीर में होते हैं। ज्ञानी! ऊपरी-ऊपरी धर्म की व्याख्या बहुत समझके रखी आपने। जो साधक किसी ग्रहस्थ को यूँ कहता है कि शरीर दु:ख का कारण है, अज्ञानी ग्रहस्थ कहीं शरीर को पीड़ित करने में लग गया तो उसने धर्म से दूर होकर निज के साथ छल कर लिया।

दादा जी! आपकी अभी वृद्धावस्था है। आप अभी मरना पसन्द करते हो कि यहाँ जीकर जिनालय की दर्शन-पूजन करना अच्छा है? दादा जल्दी मर कर ऊपर चले भी गये, कदाचित पुण्य के योग्य से देव भी बन गये, विश्वास मानो, एक सामान्य भी देव होता है उसकी 32 महा देवियाँ होती हैं, सामान्य तो अनेक होती हैं। दादा! कहीं सम्यक्त्व गुण नहीं जगा और स्वर्ग में जाकर बैठ गये और देवियों के साथ अब्रह्म में लीन होकर जीना वो ज्यादा अच्छा है कि मनुष्यपर्याय में यहाँ रहकरके अर्हन्त की भक्ति करना और निर्ग्रन्थ को दान देना, जिनवाणी का पान करना वो ज्यादा अच्छा है, कि वहाँ अव्रती होकर बैठ जाना अच्छा है?

मेरा सोच यह है कि जीने की भी इच्छा मत करना, मरने की भी इच्छा मत करना। ज्ञानियो! जब तक जी रहे हैं अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य,उपाध्याय, साधु पंच परम महापुरुषों की भक्ति करना और मृत्यु का समय जब आ ही जाये, तो फिर ये मत सोचना कि ये छूट रहे हैं मेरे से। नहीं छूट रहे हैं। भीतर भावना लेकर जाना। विश्वास रखना, यहाँ तो यहाँ के भगवान्

की मात्र भक्ति कर रहे थे। जब तुम देव हो जाओगे तो ऐसी भावना से जाना कि सुमेरू पर्वत पर अकृत्रिम जिनबिम्बों की वंदना करना और विदेह जाकरके सीमंधर स्वामी की दिव्यदेशना का पान करना और नंदीश्वर द्वीप में जाकरके अकृत्रिम जिनबिम्बों की आराधना करना अष्टाह्निक पर्व में। और ऐसे भाव बनाना कि वहाँ तीर्थंकर के समवसण में बैठकरके दिव्यध्वनि सुनते-सुनते क्षायिक सम्यक्त्व को प्राप्त करके और ऐसे परिणामों की विशुद्धि के साथ फिर स्वर्ग से च्युत होना कि मनुष्यपर्याय को प्राप्त करके निर्ग्रन्थ मुनि बनकर, अर्हन्त बन जाना। ऐसे भाव बनाकर चलना।

भैया! वैराग्य की बात तो करना, पर वस्तुस्वभाव को लक्ष्य करके। 'मैं देह को सुखा कर रहूँगा।' नहीं, ज्ञानी! देह को सुखाके मत रहना। देह से जो सुख भोग रहा हो, उनको सुखाइये। शरीर नरक में नहीं ले जाता, विश्वास रखना। शरीर स्वर्ग भी नहीं ले जाता, शरीर सिद्ध भी नहीं बनाता, विश्वास रखना। उपादान दृष्टि है। देह नरक ले जायेगी, तो ये मुनिराज भी देहधारी हैं, इनको भी नरक जाना पड़ेगा। देह स्वर्ग ले जायेगी, तो ज्ञानियो! कालिया नाग जीवों को भक्षण कर रहा है, वो भी देहधारी है, तो वो भी स्वर्ग चला जायेगा। देह सिद्ध बनायेगी, तो जगत् में जितने देहधारी हैं, सब सिद्ध बन जायेंगे। देह निगोद ले जायेगी तो जितने देहधारी हैं, क्या सभी निगोद चले जायेंगे?

शरीर नरक नहीं ले जाता, सिद्ध नहीं बनाता, निगोद नहीं ले जाता। हे मुमुक्षु! बिना बोले ही आपसे यह देह बोल रही है कि मैं तेरे सुकृत से तुझे प्राप्त हुई हूँ। तू मेरा उपयोग जैसे करना चाहे, वैसा मैं तद्रूप तेरे लिये आलम्बन रूप हूँ। स्वस्थ शरीर है, तो भोग भी अच्छे से हो जाते हैं। स्वस्थ शरीर वाला ही अच्छे से नरक जा पाता है, क्योंकि अच्छे भोग भोगेगा, तो अच्छे नरक जायेगा।

भैया! ध्यान रखना, स्वस्थ शरीर वाला ही निर्दोष संयम की साधना करेगा, तो अशरीरी सिद्ध भगवान् बनेगा। निगोदिया शरीर में सिद्धत्व शक्ति अवश्य है, लेकिन जब तक मनुष्यायु मनुष्यगति, मनुष्य शरीर की प्रत्यासत्ति नहीं होगी, सुकुल नहीं मिलेगा, उत्तम परिणति नहीं बनेगी, तब तक भगवत्ता को प्राप्त करने की योग्यता नहीं आयेगी।

हे माँ। यदि किंचित् भी शरीर में वेदना सताती है, तो जहर की पुड़िया खाने के भाव मत लाना। क्योंकि वैद्यों और विद्वानों ने कर्म की बात, कहीं-कहीं नोकर्म की बात कही और कहीं-कहीं एक की बात छोड़ गये। कर्म मात्र नहीं है, नोकर्म मात्र नहीं है। द्रव्यकर्म है, नोकर्म है, भावकर्म भी है।

नोकर्म नहीं सम्हल रहा है, तो नहीं सम्हाल पाओगे। भाई! तू शरीर को कितने दिन तक बचा रख पायेगा? भैया! ये बेटे से लड़ रहा है, कि इतना ही दूँगा, आगे अपने लिये बचाकर रखूँगा और मेरे से कह रहा है कि क्या भरोसा? ठीक है, भैया! पुनः पूछता हूँ कि हे ज्ञानी! इस देह को तू कितने दिन बचाके रख पायेगा? भैया! देह तेरे हाथ में नहीं है। द्रव्यकर्म तेरे हाथ में नहीं है। नोकर्म तेरे हाथ में नहीं है। इसको मैं बचाने का प्रयास भी करूँगा, क्योंकि मैं भी तो आपके बीच में हूँ। प्रतिदिन इसे आहार देने के लिये जाता हूँ। प्रतिदिन इस शरीर को भोजन देता हूँ ताकि यह सुरक्षित रहे, क्योंकि इसमें मेरा स्वार्थ निहित है। यह अच्छे से रहता है, तो मेरी सामायिक आदि क्रियायें अच्छे से होती हैं। इस देह को सुरक्षित तो नहीं रख पायेंगे। किंचित् भी समझ में आ रहा हो तो थोड़ी गम्भीरता में प्रवेश कीजिये और समझिये कि मैं क्या कर रहा हूँ? जिसे खिला रहा हूँ, पिला रहा हूँ, सजा रहा हूँ, यथार्थ में शरीर न खा रहा है, न पी रहा है। शरीर के माध्यम से खा-पी रही है आत्मा। अनुभूति ले रही है आत्मा। आनन्द कौन लूट रहा है?

ज्ञानियो! निज देह का भी भोग कर रही है आत्मा और पर देह का भोग कर रही है आत्मा। यदि इसको अच्छे से स्नान भी करा रहे हो, साबुन, तेल आदि का प्रयोग करा रहे हो, यथार्थ मानिये, ये आत्मा के द्वारा शरीर का भोग चल रहा है, स्वयं के शरीर का। और दर्पण के सामने खड़े घण्टों-घण्टों तुम बाल सजा रहे थे, क्या कर रहे थे तुम? क्या बालें निकलेंगी इसमें अब? बालों में बालें निकलने वाली हैं क्या? पर हे रागी! आँखों से नहीं देख पा रहा, सो दर्पण में अपने चेहरे को देखकरके अपने शरीर का भोग कर रहा था। कितने आयुकर्म के निषेक आपने नष्ट किये हैं? पर सम्हालते-सम्हालते हुये भी क्या हम देह को बचा पायेंगे? माताओ! आप लोग बचा पाओगी? नहीं बचा पायेंगे न? तो फिर ध्यान दो।

हम इस नोकर्म को तो नहीं बचा पायेंगे। कितना ही दूध पिलाओ, फल खिलाओ। कुछ भी खिला देना, संतुष्टि है मात्र निज की। इसको मैं निश्चित समय पर खिलाता रहूँगा, फिर भी आयुकर्म जब क्षीण हो जायेगा, उसदिन तीर्थंकर भगवन्त चक्री, नारायण, बलभद्र, कामदेव, इन्द्र आदि भी खड़े हो जायेंगे तेरे द्वार पर पहरा देने, तब भी -

तत्थ भवे किं सरणं, जत्थ सुरिंदाण दीसदे विलओ।

हरि-हर-बंभादीया, कालेण य कवलिया जत्थ।। 23।। का.अ.।।

"तत्थ भवे किं सरणं ", अरे भाई! तेरा शरण कौन होगा? मृत्युंजय जाप करा रहा है, विधान करा रहा है, क्यों? बोले-मृत्यु से बच जायेंगे। अरे भाई! मृत्युजंय विधान में जिसकी

आराधना कर रहा है, वे तीर्थंकर भी क्यों न हों, इन्द्र-धरन्द्र भी क्यों न हों, जब वे भी विलीन हो गये, तो विधान कैसे तेरी रक्षा करेगा? सुरेन्द्र का भी विलय देखा गया है। हरि, हर, ब्रह्म आदि भी "कालेण कवलिया" काल के द्वारा कबलित हो गये हैं। तो मेरी शरण कौन होगा?

मणि मंत्र-तंत्र बहु होई, मरते न बचावै कोई।

जब याद ही है, तो भैया! क्यों दुनियाँ के गोना-गुरिया के चक्कर में पड़े हो?

मणिमंतो सहरक्खा, हयगयरहओ य सयलविज्जाओ।
जीवाणं ण हि सरणं, तिसुलोए मरणसमयम्हि।। ४।। वा.अ.।।

कुन्दकुन्द देव ने 'वारसाणुपेक्खा' ग्रन्थ में लिखा है। जो बारह भावनायें हैं, इन बारह भावनाओं का सबसे प्राचीन कोई ग्रन्थ है, स्वतंत्र ग्रन्थ, वह है, " वारसाणुपेक्खा "। हिन्दी की जो नई-नई बारह भावनायें छप रही हैं भिन्न-भिन्न लोगों के द्वारा, उसका मूल जो साधन है, वह "वारसाणुपेक्खा" ग्रन्थ है। दूसरा कोई ग्रन्थ है तो "कार्तिकेयानुपेक्षा"। कुंदकुंद स्वामी 'वारसाणुपेक्खा' ग्रन्थ में कह रहे हैं कि मणि-मंत्रादि हाथी, घोड़े आदि सम्पूर्ण विद्या, यहाँ तक कि जो विद्याओं का स्वामी था वो भी विलीन हो जाता है।

हे जीव! तेरा कोई शरण नहीं है तीनों लोकों में। मरण के समय में कोई भी शरण नहीं है। माँ की गोदी में बैठा बालक भी चला जाता है। पिता की अंगुली पकड़ने वाला पुत्र भी चला जाता है। माँ! कितना ही छिपाओ पुत्र को गोदी में, हंस के जाने का समय होता है तो परमहंस भी नहीं रोक पाते हैं। कितनी माँ बिलख चुकी मेरे वियोग में, कितने पिता नयन सुजा चुके मेरे वियोग में।

पर मैं क्या करूँ? मैं कितना अभागा हूँ? किसी माता-पिता के आँखों के आँसू को रोक नहीं सका। किंचित भी दया हो, करुणा हो, तो ऐसा उपक्रम करो कि मेरे वियोग में किसी को रोना न पड़े। मित्रो! ऐसा कार्य करो कि जगत् की किसी माँ को अब रोना न पड़े मेरे वियोग। माँ के रुदन को मैंने देखा, आपने देखा, कैसे बिलखती-बिलखती रोती है? इष्ट के वियोग में किसी को कुछ भी समझ में नहीं आता।

हे मुमुक्षुओ! जब संयोग का वियोग नियत है, तो बिलखना किसलिये? सैंतालीस-शक्तियों में सम्प्रदान शक्ति का प्रयोग कीजिये। समयसार में सैंतालीस शक्तियों का वर्णन है। सम्प्रदान शक्ति का प्रयोग क्यों नहीं करता है? भाई! तू ईंट पर ईंट चूने पर चूने लगा कर भवन बना रहा है। पर आज कुछ अन्य नहीं, भैया! इतना कर लेना, कि उस भवन में जाकरके एक-एक दीवाल, एक-एक ईंट को निहारना और अंतरंग से पूछ लेना 'भैया! ये किसके लिये?'

बेटे को जन्म भी दिया है ब्रह्म का नाश करके, किसके लिये? जीने के लिये। जिसमें जन्म हुआ था, झोपड़िया थी, लेकिन मरने के लिये भवन बना लिये हैं बेचारे ने। किसके लिये? गरीब माता-पिता के घर में जन्मा, झोपड़िया में जन्मा, मरने के लिये महल बना लिया। हाँ, दादा जी! इस सत्य को कौन टाल सकता है? क्योंकि मैं उन लोगों में से नहीं हूँ कि मैं अध्यक्षों की झूठी प्रशंसा करके उनको फुलाते रहें। इनको सत्य का बोध कराना चाहिये। ये भी नहीं बचेगा।

सुबह यहाँ के युवा मुझे शुद्धि को ले जाते हैं और ऐसे स्थान से गुजरते हैं जहाँ बड़े-बड़े अट्टालिका, महल, भवन बने हुये हैं जिनमें राजा-महाराजा रहते थे। आज लोग उनमें सण्डाश के लिये जाते हैं। क्या हुआ भइया? हे ज्ञानी! जिसने बनवाया था, उसने कभी नहीं सोचा था। लेकिन आपको मालूम होना चाहिये कि सबके दिन एक-से नहीं होते हैं। जब कोई रहने को नहीं मिलता, तो कबूतर तो आकर विराजमान हो ही जाते हैं। और जिसके घर में कबूतर विराजमान हो गये, उल्लू आकर बैठ गये, अब समझ लो कि तुमको तो यहाँ से उड़ना ही पड़ेगा। यह शकुनशास्त्र का नियम है।

सैंतालीस शक्तियों में सम्प्रदान शक्ति कह रही है 'किसके लिये?' माँ! कैसे तुम स्वार्थी लोग हो? जिससे पैसा मिलता, उसको तो तुम राखी बांधते हो। इसकी जितनी राखी थी, सब झूठ थी। ये राखी सत्य है। अब कोटि-कोटि जीवों की रक्षा होगी छन्ना से।

जिससे जीवों की रक्षा हो, वही तो राखी है। ठीक है, आज अपने बेटे की, माँ के हाथ में राखी बांधना और कहना, हे ज्ञानी! मेरे संयम को राख कर रखना और जब मेरी अन्तिम श्वास निकले तो रोकर आँख में आँसू मत गिराना, मुझे णमोकार मंत्र सुनाना, यदि तू मेरी धर्मपत्नी है तो। आज राखी बांध ही देना। पक्का? दादा जी! तुम टेंशन मत करो। मैं तो बैठा हूँ, तुम तो राखी बांध ही देना। और भरी-सभा में बांधना, तो ये लोग देखें। प्रश्न करें, आजतक तो इसने दुनियाँ को राखी बेची है, आज अपनी पत्नी को राखी बांध रहा है और दिखाके बांध रहा है। कैमरे वाले को बुलाकर फोटो भी खिंचवा लेना, ताकि दुनियाँ के लोग देखें और कहें कि राखी बाँध रहा है पत्नी को और पत्नी से राखी स्वयं बंधवा रहा है और फिर कहना कि बहन तो पर घर चली जायेगी, सच्ची बहन तो यही है। ये अंतिम समय में मुझे "णमोकार" सुनायेगी और मेरे शील को राख कर रखेगी। इसलिये ये आज से मेरी बहन है। समझ में आ रहा है न।

आओ ज्ञानी! मूल विषय से हटना नहीं। जो नोकर्म है, यानि शरीर, इसे मैं कितना ही सुरक्षित रखूँ, पर ये बचने वाला नहीं है। आज ये चमक रहा है, कल इसका भरोसा नहीं है कि इसमें क्या हो जाये? कौन-सा रोग आ जाये?

इसलिये एक निर्णय कर लो कि मैं नोकर्म को सुरक्षित रख नहीं सकता हूँ, पर भाव-कर्म को सुरक्षित रखना मेरे अधिकार में है। देह को सुरक्षित नहीं कर पाओगे, पर परिणामों को सुरक्षित कर सकते हो। समझ में आ रहा है, मैं क्या कह रहा हूँ? देह तुम्हारे वश में नहीं है, ये नियत काल तक है, पर भावकर्म तेरे वश में है। जितने निर्वाण को प्राप्त हुये हैं, होंगे, हो रहे हैं, वे द्रव्यकर्म को सम्हालने से, नोकर्म को सम्हालने से नहीं हुये हैं, भाव-कर्म को सम्हालने से हुये हैं। भाव-कर्म मेरे वश में है। अपने भावों को जो सम्हाल लेगा, वही भगवान् बन जायेगा।

भावकर्म के अनुसार नोकर्म में परिणमन होता है, भैया! इस बात को आपको स्वीकार करना ही होगा। ज्ञानी! भाव-कर्म के अनुसार नोकर्म में परिणमन होता है, ये तो मैं अभी दिखा सकता हूँ प्रेक्टीकल में। देखो, वो बच्चा कैसे बैठा है? जैसे सौधर्म इन्द्र हो। बेटा! खड़ा हो जा। तू मुस्कुराया क्यों बेटा? और आगे आ जा, तेरी फोटो खिंच जायेगी, टी.वी. में चली जायेगी। देखो, कैसे हाथ जोड़े खड़ा है। जैसे कोई भगवान् हो, कैमरे में।

आप लोग समझ नहीं रहे हो, मैं क्या कह रहा हूँ? समझ रहे क्या? ऐ बालक! इनसे बोलो-कि आपको तो 50-60 साल में महाराज मिले हैं, हमको तो अभी मिल गये। आप भाग्यवान हैं न? किसी महाराज ने खड़ा नहीं किया होगा, इन बेचारों को भरी-सभा में।

भाव-कर्म जो होता है, नोकर्म को बदल देता है। और जैसे ही तुम्हारे क्रोध परिणाम होते हैं, तो तुम्हारा नोकर्म/चेहरा लाल हो जाता है। और ज्ञानी! कुछ मिल जाये तो, पेट भले ही खाली हो, पर चेहरा चमकता है। और कुछ चला जाये तो फिर खूब ठूंस-ठूंस कर पेट में भर देना, तब भी बेचारे का चेहरा मुरझाया हुआ होता है।

द्रव्यकर्म, नोकर्म को बदलने में कोई आलम्बन होता है तो भावकर्म है। दुनियाँ को क्या सुधारना? दुनियाँ को क्या सम्हालना? जिससे मेरा भावकर्म बिगड़े, ऐसा कर्म नहीं करना। विश्वास रखना, द्रव्यकर्म को भावकर्म ही बदलता है। और नोकर्म को भी भावकर्म ही बदलता है। जो हृदय से शुष्क है, क्रोध से भरी है, उस माँ के आँचल का दूध भी सूख जाता है और जो माँ गद्गद् भाव से युक्त है, बेटे के प्रति प्रीति रखती है, उस माँ के आँचल में दुग्ध की धारा बह पड़ती है। शंका मत करना इस विषय पर।

शरीर के रक्त भी उनके ही शुद्ध रहते हैं जिनके भाव विशुद्ध होते हैं। ये बात लिख लेना अपने हृदय की डॉयरियों पर। उनके शरीर के रक्त भी दूषित हो जाते हैं, जिनके भाव दूषित होते हैं। जैनदर्शन की विद्या को सीखिये आप। तीर्थंकर भगवान् के सर्वांग में जो रक्त होता है, वह सफेद क्यों होता है? एक बेटे को जन्म देने वाली माता के आँचल में दुग्ध आता है, कब? जब उदर में बेटा आता है, जन्म लेता है तब। बेटे के दुलार के कारण आया है। हार्मोन्स बदलते हैं। जिस जीव को जगत् के प्राणीमात्र के प्रति दुलार हो, उसके सर्वांग में रक्त सफेद होता है। प्राणीमात्र के प्रति करुणा जिनके बैठी हुई हो, ऐसे भगवान् की रक्त में स्वेत कणिकाओं की वृद्धि उनके शरीर में होती है। जिनके भाव विशुद्ध नहीं होते हैं और जिनके चित्त प्रसन्न होते हैं। श्वेत कणिकाओं की वृद्धि उनके होती है और श्वेत कणिकाओं की वृद्धि होती है, तो उनमें रोग प्रतिकार की क्षमता में वृद्धि होती है। यदि रक्त कणिकायें बढ़ जाती हैं, तो प्रतिकार की क्षमता घट जाती है। इसलिये बेटा! कितने ही तेरे दादा नाराज हों, तो तू कहना-ज्ञानी! गुस्सा मत हो, अपने भाव विशुद्ध करो। ऐसा मत समझना कि ये बच्चों को समझ में नहीं आता। सब समझ में आता है। बेटा! जब दादा नाराज हों तो कहना 'दादा जी! तुम भी प्रवचन सुन रहे थे, मैं भी सुन रहा था, महाराज जी ने क्या कहा था?'

गुस्सा करने से शरीर में जहर फैल जाता है। माँ! जब घर में तेरे को गुस्सा आ रही हो, और बेटा भोजन करने आये, तो धीरे-से कह देना, बेटा! वो रखा हुआ है, तू उठाके खा ले। उसमें हाथ मत लगा देना। देखो, आप को पता नहीं, हम लोग बहुत समझदार हैं। आपके हाथ से ग्रास तभी लेते हैं, जब मुँह से बुलवा लेते हैं—मन शुद्धि, वचन शुद्धि, काय शुद्धि। सबसे पहले किसकी शुद्धि? मनशुद्धि। जब तुम्हारा मन ही शुद्ध नहीं, तो काहे की शुद्धि? कोई शुद्धि नहीं है।

परिणामों की विशुद्धि हो। किसी के पैर भी छूना हो, पैर भी दबाना हो, यदि परिणाम कलुषित हैं, तो दूसरे के पैर मत छू लेना। अशुद्ध वर्गणायें तुम्हारी उसको प्रभावित करेंगी। एक साधक पर करुणा करना! तुम तो भरे ही हो कषायों से। जो बल्ब में करंट रहता है, जरा-सा वायर ही तो टच करना पड़ता है, तब पूरे में विद्युतप्रवाहमान हो जाता है। ऐसे ही ये हमारी ऊँगलियाँ हैं। ये ग्रहण करती हैं, पैर के अँगूठे छोड़ते हैं। यही कारण है कि अपनी परम्परा में पैर का अँगूठा छू कर हाथ मस्तक पर लगा लेते हैं। ये तरंगें हैं। आप तो छूने की बात कर रहे हो, जितनी निर्मल साधना करोगे, दूर से महसूस होना प्रारम्भ हो जाता है कि इसके परिणाम कैसे हैं? वर्गणायें कैसी हैं? उसके सामने आते ही अनुभव होने लगता

है। इसके आने से प्रभावित हो रहा है, परिणमन हो रहा है, इसे दूर रखो यहाँ से। ये आभामण्डल है। और परमात्मा का जो भामण्डल है, वही तो आभामण्डल है। इतना विशाल होता है कि योजन-योजन के लोग अपने आप बैर-वृत्ति छोड़ देते हैं। इसलिये आप शक्ति बढ़ाइये। साधना बढ़ाइये।

उत्कष्ट साधना यदि कोई है, तो वह है मौन। कभी मुनि बनने के परिणाम आप लोगों के आ रहे हों, तो मौन आज से ही शुरू कर देना। जो घर में मौन नहीं रख पाते और घर के लोगों से क्लेश नहीं सह पाते, वे मुनि बनने मत जाना। जो बेटे की पत्नी की डाँट खाना सहन कर लेगा, वो साधु भी बन सकता है। कैसे आप जी रहे हो, मुझे मालूम है। आप अपनी मत कहलवाओ। वो तो भाग्य है कि यहाँ आकर मुस्कुरा लेते हो। घर में मुझे मालूम है कैसे रहते हो।

तू स्वयं सोचता है कि दुनियाँ तो मुझे राखी वाले के नाम से जानती है। लेकिन घर में कैसे बच्चू बनकर रहना पड़ता है? आप एक को ही मत पकड़ो, उसमें आप सब भी हो। पर मुझे आश्चर्य तो ये लगता है, कि एक तोता किसी के हाथ में फंस जाये, तो वो मौका देखता है कि कब इसका हाथ ढीला हो और मैं कब उड़ जाऊँ। और तुम लोग ऐसे कबूतर हो कि कितना ही छोड़कर रखा जाये, वहीं पहुँच जाता है। तोतों को कितनी ही खीर, मलाई, दूध रखो, सोने के पिंजड़े में रखो, तब भी मौका मिलते ही कब उड़ जाऊँ? पर कबूतर ऐसा होता है कि वहीं गंदगी करता रहता है और घूम-फिर करके वहीं बैठता है, गंदगी पर ही।

धन्य हो! आप समझो क्या हो? मैं नहीं कह रहा, भैया! मैं तो आपको ज्ञानी बोलता हूँ। हे कबूतर! यदि परिणति पवित्र हो जाये, तो कबूतर क्या, नारकी भी तर जाता है। भैया! यहाँ के लोगों ने पीछे की रोटी खाई है। जब जाये की बिरियाँ हो रही, सो आन लगे। इसलिये किसी को मत सम्हालो आज से। अब समय में कटौती करना प्रारम्भ कर दो।

आयुकर्म के निषेकों को भोगों की गंदगी में क्यों नष्ट कर रहे हो? अब तुम परमात्मा के चरणों में ज्यादा प्रयोग करो, गुरुओं के पास ज्यादा प्रयोग करो, जिनवाणी के पास ज्यादा प्रयोग करो। इनसे तुमको कर्मों की असंख्यात-गुणश्रेणी निर्जरा का लाभ होने वाला है।

अब तो 60-60, 70-70 साल के हो गये हो, कनेक्शन काट दो विषय-कषायों के। जिनवाणी में लगाओ। स्वाध्याय बढ़ाओ। और मेरा विश्वास है कि स्वाध्याय करेगा तो अपने आप मुड़ेगा। स्वरूप-सम्बोधन मिल गया आपको। जितने युवा वर्ग हैं। सब

'पुरुषार्थ-सिद्धि-उपाय' पढ़ो। जैनपरम्परा में ही नहीं, पूरे विश्व में अहिंसा का इतना विशद् वर्णन करने वाला कोई ग्रन्थ है, उसका नाम 'पुरुषार्थ-सिद्धि-उपाय' है। प्रत्येक जैनश्रावक-श्राविका को उस ग्रन्थ का अध्ययन करना चाहिये।

कभी-कभी क्या होता है कि मणियाँ तो अपने पास हैं, लेकिन उसका उपयोग करना नहीं जानते हैं। ग्रन्थ तो अपने पास हैं, पर उसको समझते नहीं हैं कि ग्रन्थ कौन-सा खोलूँ।

भैया! अमेरिका में गई हैं पुस्तकें। वहाँ लोग ले जाकर स्वाध्याय कर रहे हैं। आप कल्पना करो। आज विदेशी जैनतत्त्व को समझने के लिये तरस रहे हैं। 'जीव को मत मारो।' इस बात को तो दुनियाँ कहना जानती है। वध करना तो पाप है ही, पर "बदनाम" करना भी पाप है। द्रव्यहिंसा का त्याग तो दुनियाँ ने कराया है, पर भावहिंसा का त्याग कराने वाला जैनदर्शन है। ये ध्रुव सत्य है।

जितने मंच पर मनीषी मुनिगण बैठे हुये हैं। मेरा तो वही भाव करता रहता है कि इनके श्रीमुख से भगवान् महावीर की शुद्ध वाणी निकले और सारे देश में प्रचारित हो। जितना 100 विद्वान् काम कर पायेंगे, उतना एक योगी प्रभावना कर देगा। विद्वान् को कोई कार्यक्रम करने पर लोग मिलते हैं, पर निर्ग्रन्थ योगी जहाँ पहुँच जाते हैं, उस दिन, उस नगर में पर्युषण पर्व प्रारम्भ हो जाते हैं। अभागों के घर में तो साल भर में एक बार होली, दीवाली आती है, पर भाग्यवान् के घर में प्रतिदिन ही होली/दीवाली होती है जिस दिन साधु के चरण पड़ जाते हैं।

आचार्य भगवान् क्या कह रहे हैं? भावकर्म सम्हाल आज से। माँ! सत्य बताना, बेटे से दूध का भरा हुआ गिलास गिर गया, क्या करेगी तू? हे अभागी माँ! तूने खींचकर गाल पर चाँटा मार दिया। माँ! क्या दूध गिलास में भर गया? हे माँ! दूध तो गिर ही गया था धोके से, पर पूत को तूने जानकर मारा है। दूध भी गया, पूत भी गया।

बेटा यदि ज्ञानी होता तो क्या बोलता? माँ! दूध में तुझे राग था, तो दूध तो कहीं भी नहीं गया। गिलासाकाश से जमीनाकाश में पड़ा है। दूध कहीं नहीं गया। दूध तो फिर भी दिखाई दे रहा है, पर हे माँ! जो तेरे परिणामों की विशुद्धि थी, वह मेरे गाल पर चाँटा मारने से समाप्त हो गई। कितना ही तू दुलार दे दे, मुझे मालूम है कि तू तभी तक दुलार देगी, जब तक तेरा काम नहीं बिगड़ा और काम बिगड़ जायेगा तो वहीं गाल पर तड़ातड़।

इतना संतोष ला पाओगे? नहीं ला पाओगे? तो जैनकुल में जन्म लेने का सार क्या निकला? जिनवाणी सुनने का सार क्या निकला? हे मुमुक्षुओ! आज से चिन्तन को बदल दो। जो काम बिगड़े थे अबुद्धिपूर्वक, पर तुमने जो उपद्रव किये हैं बुद्धिपूर्वक। देश भी आज

इतना हीनता में जा रहा है, उसका प्रमुख कारण क्या है? एक छोटा-सा काम करवाने के लिये हड़ताल करवा देते हैं। और उसमें कितने भवन टूटते सरकारी, पर आपको मालूम होना चाहिये कि उसकी पूर्ति आखिर में तुम्हारे द्वारा ही होती है। महावीर के सिद्धांत यदि लोगों के अंदर प्रवेश कर जायें तो, विश्व के सम्पूर्ण संविधान सब हटा दिये जायेंगे। पाँच अणुव्रत ही संविधान बनायेंगे। ये ही संविधान है।

किसी पर अनुशासन चलाने की आवश्यकता नहीं है। आत्मानुशासन में जीव जीने लग जाये तो क्यों पड़े अनुशासन की आवश्यकता? जेल वाकई में दण्ड नहीं है। वो आपको समय देने के लिये स्थान है कि आप यहाँ सोच सको। भैया! ऐसा ही है, आप गहरी बात समझिये।

जो आचार्यत्व होता है, वो एक बहुत बड़े सम्राट का संविधान होता है। वो विषय अलग है कि संविधान को पढ़े नहीं और गद्दी पर बैठ गये, तो आपको क्या मालूम क्या होता है? आज तक भारत की भूमि पर सभी ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं और लोगों के हाथों में हैं, लेकिन प्रायश्चित ग्रन्थ, वो मात्र एक ही ग्रन्थ शेष बचा है, जो मात्र आचार्यों के ही हाथ में रहता है। दूसरे मुनियों के हाथ में भी नहीं जाते। आचार्यों के ग्रन्थ अलग होते हैं।

यदि आत्मानुशासन में जीव जीने लग जाये, तो किसी की क्या ताकत कि लोग उसको दण्डित कर दें? गुनाहगार को जो जेल में पश्चाताप होता है, वो यदि जेल में जाने के पहले हो गया होता, तो जेल में जाने का अवसर ही क्यों आता? गलती करने के बाद जो दु:ख होता है, वह गलती करने के पहले हो गया होता तो गलती क्यों करता? इन बेचारों के चेहरे देखो कैसे देखने लायक हैं। कभी क्या होता है कि आपने गलती नहीं की और दूसरों की गलती से चले गये हो। ये वर्तमान की पर्याय में तुमने नहीं किया, ये बिल्कुल सत्य है, पर भूत में कर चुके थे, इसलिये फँस गये हो।

जेल में चला जाये तो कह रहा है कि महाराज! दूसरों की गलती से गया हूँ। पर हे ज्ञानी! तू अपने बेटे की माँ को लेने गया था, दूसरों की गलती से गया था कि अपनी गलती से गया था? इसकी कभी बात नहीं करता बेचारा। भैया! मेरे पास एक सज्जन आये, बोले-महाराज! आर्शीवाद दे दो, बहुत दु:खी हूँ। मैंने कहा-क्या हो गया? न बेटा बात मानता, न पत्नी बात मानती। मैंने कहा-आज पूछने आया है। उस दिन पूछने क्यों नहीं आया था, जब तू घोड़े पर बैठकर जा रहा था?

अरे! मुझे तो पहले से ही मालूम था, सो अपन ने पहले से ही छोड़ दिया। ऐसा ही तू कर लेता। वे पूर्व के तपस्वी लोग हैं, जिनके घर में पत्नी भी धर्मात्मा हो। पुत्र भी धर्मात्मा हो, पिता भी धर्मात्मा हो, पूरा परिवार भी धर्मात्मा हो। ये विश्वास रखना, ये पूर्वभव के

तपस्त्रियों का संयोग होता है। पूर्व के पुण्यात्मा जीव इकट्ठे हुये हैं। वो दादा जी हैं न चश्मा वाले, इनका पोता आता है, इतनी जम-जम के वैश्यावृति करता है कि पूरे लोग थक जायें, पर वो नहीं थकता है। आप कल्पना करो, ये सब पूर्व के संस्कार हैं।

जैसे-जैसे लोग मिलते हैं, अनुमान-ज्ञान लगा लिया करो। चंदन की लकड़ी में भी धुंआ निकलता है, बबूल की लकड़ी में भी धुंआ निकलता है और बेशरम की लकड़ी में भी धुंआ निकलता है। जलाने पर शेष लकड़ियाँ शेष धुँआ-ही-धुँआ देती हैं, पर चंदन की लकड़ी खुशबू के साथ धुँआ निकालती है। ऐसे-ही धर्मात्मा पुरुष के घर से आवाज भी निकलती है, तो धर्म की खुशबू की निकलती है और पापियों के घर से आवाज निकलती है, तो नरक के नारकियों के जैसे लड़ने की निकलती है।

इधर से निकलो, तो आस-पास मंदिर हैं,मंदिर की घंटियों से पता चल जाता है कि ये जैनमंदिर की घंटियों की आवाज आ रही है। ऐसे-ही किसी घर से निकलो, यदि काटो-मारो की आवाज आ रही है, तो नारकियों के घर से आवाज आ रही है। इसलिये सुबह से भैया! अच्छी आवाजें निकाला करो। वे घर धन्य हों, जिनके द्वार से निकलें, तो 'भो स्वामी! नमोऽस्तु, नमोऽस्तु' शब्द गूंज रहे हैं। और एक अभागे का घर है, बोले-'भगाओ, भगाओ।' किसको भगा रहा था? बोले, पिताजी को भगा रहा था। भैया-ठीक है, इतना नियम तो ले लो कि अपने बूढे माँ-बाप को घर से बाहर नहीं निकालेंगे, अपने घर के किसी सदस्य को भगायेंगे नहीं। ले लो नियम, आज महावीर जयन्ति का उत्तम दिन है।

भैया! घर में णमोकार जपते-जपते अपनी समाधि कर लेना, पर वृद्धाश्रम में रोटी के टुकड़ों को रोने मत जाना। क्योंकि वृद्धाश्रम बूढ़े हो गये हैं और उदासिन आश्रम उदास ही हैं। वहाँ के त्यागी लोगों को ऐसे देखता हूँ, बेचारे रोटी के लिये लड़ते हैं। एक-एक रोटी के लिये। हे भगवान्! या तो मुनि बनने की सामर्थ्य हो तो ब्रह्मचारी बनो, नहीं-तो भैया! ब्रह्मचारी बनने का शौक है, तो अपने घर की व्यवस्था लेकर कहीं भी शान्ति से रहो। वो ज्यादा अच्छा है, पर समाज पर भार बनकर रहना बिल्कुल अच्छा नहीं।

कारण क्या है? मुनिसंघ में रहोगे तो सभी सम्मान से देखते हैं। तुम अकेले विचरण करोगे, तो ज्ञानी! आपको मालूम होना चाहिये कि महानगरों में शादीशुदा को ही किराये पर मकान मिलता है, अकेले लड़के को तो कोई मकान भी नहीं देता। भैया! ऐसा क्यों होता है? अरे! क्या पूछना? भैया! पत्नी साथ में है, तो उपद्रवी तो नहीं होगा। ऐसे ही जो एकलविहारी साधु हैं, लोग उन्हें भी ऐसा ही देखते हैं। अकेला त्यागी घूमे, उनको ऐसा ही देखते हैं।

त्यागी यदि संघ में रहते हैं, तो लोग कहते हैं—इनका कुल कितना बढ़िया है। ये कौन से संघ के महाराज हैं? ऐसे भाव आते कि नहीं आते? यही कारण है कि अकेले ब्रह्मचारी को नहीं घूमने का। किसी-न-किसी का नाम तो बताना ही पड़ेगा। हमसे ही कोई पूछे- महाराज! कहाँ से आये हो? तो मैं भी यही कहता हूँ कि आचार्य श्री विरागसागर जी के संघ से आया हूँ। कोई स्थान का नाम तो लेना पड़ेगा आपको। तो लोगों के विश्वास होता है। यदि विश्वास नहीं होगा तो?

भैया! आपको मालूम होना चाहिये कि बेटियों की शादी भी करता तो तीन-चार पीढ़ियाँ देखता है इधर-उधर की। फिर राग के संबंध के लिये इतना ऊपर-नीचे देखना पड़ता है, तब श्रद्धा का संबंध होता है। वहाँ कुल क्यों नहीं देखा जाता है? उसकी व्याख्या आगम में है। 10 भेद किये वैयावृत्ति के। उसमें 'कुल' शब्द का भी प्रयोग है।

पण्डितोऽसौ विनीतोऽसौ, धर्मज्ञः प्रियदर्शनः।
यः सदाचारसम्पन्नः, सम्यक्त्व-दृढमानसः।। 42।। सा.स.।।

देखो, भैया! क्या लिखा इसमें? "पण्डितोऽसौ विनीतोऽसौ, धर्मज्ञः प्रियदर्शनः" अरे ज्ञानी! सम्यक्त्व दृढ़ मानसः" जिसका मन सम्यक्त्व में सुदृढ़ है। व्यवहार से सच्चे देव-शास्त्र-गुरु पर श्रद्धा है और निश्चय से आत्मतत्त्व के श्रद्धान से युक्त है। "पण्डितोऽसौ " वही पण्डित है। जो सम्यग्दृष्टि है, वही पण्डित है। जो मुनियों को देखे, तो दुत्कार दे, वह नाम का पण्डित है। भैया! तेरी आँखें काँच की हैं। भैया! हिरणों के नेत्रों में तो देखो, कितना उनके नेत्रों में दुलार टपकता है? ये लोग भी सोचते हैं जब सामने दिखते हैं। ऐसे वात्सल्य की आँख से देखते हैं, तब लगता है कि इन तिर्यंचों को भी भगवान् की पहचान है। इसलिये यदि नरों को भगवान् की पहचान न हो, तो वे तिर्यंच भी नहीं हैं। कितना निरीह प्राणी है? तब लगता है कि हे जीव! तूने कौन-सी मायाचारी की होगी, जो इस पर्याय में आया है। लेकिन अभी परिणाम सुधर गये, तो ज्ञानी! तू परमात्मा बन सकता है। इसलिये भैया! बहुत अच्छी बात कह रहे हैं। वही पण्डित है, "विनीतोऽसौ" वही विनीत है, वही धर्मज्ञ है, जो सम्यक् से युक्त है। "प्रियदर्शनः" भैया! मैं कुछ नहीं कह रहा आपसे। एक बहुत सुन्दर शब्द का प्रयोग किया है। इस शब्द को अपने-आप में लागू करने की सामर्थ्य हो, तो तुम मुस्कुरा कर रहना।

हे प्रियदर्शियो! वही सबको प्रिय देखनेयोग्य है जो सम्यग्दर्शन से युक्त है। जिसके पास सम्यक्त्व नहीं है, वो प्रिय देखनेलायक भी नहीं है। अब क्या? भैया! तू धीरे-से कह देना- प्रियदर्शी है क्या? "यः सदाचार सम्पन्नः" जो सम्यग्दृष्टि होगा, वह सदाचार से सम्पन्न तो होगा।

मेरा एक बहुत अच्छा विकल्प है, सोच है, आपको भी अच्छा ही लगेगा। साधु बाद में बनना, व्रती बाद में बनना, पहले सज्जन बनना। जो सज्जन बने बिना साधु बन जाते हैं, ये साधु नहीं रह पाते हैं।

मुनि बनने का तात्पर्य ये तो नहीं है कि आप सबकी इज्जत ही नाश करो। (अच्छे शब्दों का प्रयोग करो) और हम लोगों को तो समितियाँ नहीं हैं; आप तो समिति वाले हो।

"जिनके वचन मुखचन्द्र से अमृत झरै।"

आपके श्रीमुख से तो वे शब्द निकलना चाहिये जिनके सामने अमृत भी फीका पड़ जाये, पर निर्ग्रन्थ गुरु के वचन फीके न पड़ें। बीन की आवाज सुनकरके कालिया नाग भी वामी से बाहर निकल आता है और नाचने लगता है, तो हे योगीश्वर। तुम्हारी मधुर वाणी को सुनकरके मिथ्यात्व के कालिया नाग भी नाच उठें और सम्यक्त्व को प्राप्त कर ले।

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

क्या करना योग्य है?

जन्मान्तरार्जितं कर्म, सम्यक्त्व-ज्ञान-संयमैः।
निराकर्त्तुं सदा युक्तमपूर्वं च निरोधनम् ।। 44।।

जन्मान्तर (भवान्तरों) में उपार्जित किये हुये कर्मों को सम्यग्दर्शन,सम्यग्ज्ञान और संयम (सम्यक्चारित्र) के द्वारा दूर करना और आगामी काल में आने वाले कर्मों का निरोध करना ही सदा योग्य है।

।। देशना ।।

वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है।

यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति ।

दिगम्बर जैन परम्परा में, भगवान् वर्द्धमान स्वामी के निर्वाण के उपरान्त, अनेकानेक महान् आचार्य हुए, जिन्होंने हमारे ऊपर असीम कृपा की। अर्हन्त की देशना को निज में भावित करके और फिर ग्रन्थों का लेखन करके वर्तमान में निर्ग्रन्थों को और श्रावकों को प्रदान किया। दर्शन की रक्षा कहीं सम्भव है तो उसके लिये श्रुत आवश्यक है। जिस दर्शन में साहित्य नहीं है, जिस दर्शन में पुरातत्त्व नहीं है, उस दर्शन की रक्षा सम्भव नहीं है। चारों अनुयोगों पर आचार्यों ने लेखन किया और चारों अनुयोगों पर लेखन करके आगम की जो विद्यायें थी उन विद्याओं को प्रकट किया। जिनवाणी के रहस्य अन्तस् में प्रविष्ट हो जायें। सारे जगत् में सिर पर हाथ रखने वाले मित्र, हाथ से हाथ मिलाने मित्र कोटि-कोटि मिल जायेंगे। पैर में कांटा चुभ जाये, उसे निकालने वाले मित्र मिल जायेंगे। लेकिन परिणामों की विशद्धि में चुभन हो जाये, उसको मिटाने वाला एकमात्र अमित्रों का मित्र जिनवाणी है। जगत् में मेरा मित्र दृष्टिगोचर नहीं है। मित्र से मिलने जाओगे तो उसे आना पड़ेगा या आपको जाना पड़ेगा। दूसरे के द्वारा अपने परिणाम कब तक सम्हाले जा सकते हैं? जो भी आपके द्वारे आता है, वह होता नहीं है, होकर आता है। जो भी तुम्हें समझाने आता है, वह होता नहीं है। जो होता है, जो समझाने आता है, वह बनकर आता है, वैसा होता नहीं है। जितने समझनेवाले समझदार होते हैं, तभी तक समझदार होते हैं, जब तक स्वयं समझ नहीं आती। हर व्यक्ति समझदार है। लंकेश को भी लोग समझाने गये थे कि रावण! तुमने अच्छा नहीं किया जानकी का हरण करके। परन्तु हे मुमुक्षु! पण्डित मानिकचन्द्र जी जैसा जीव भी तुम्हें समझाने पहुँच सकता है कि ऐसा मत कहो। परन्तु वह तभी तक समझा रहा है, जब तक स्वयं का मन रावण नहीं बना है। एक

रावण ने एक सीता का हरण किया, अपने मन से पूछो कि कितनी सीताओं का हरण किया है? जब से तुमको समझ में आया है, उसी दिन से आज तक विचार कर लीजिए कि आपने अपने जीवन में कितनी सीताओं का चिन्तवन किया है? इसलिए जितने समझदार हैं, वे तभी तक समझदार हैं जब तक स्वयं पर दृष्टि नहीं है। जिस प्रज्ञा से पर को समझाते हो, उस प्रज्ञा से स्वयं को समझाना प्रारम्भ कर दो। ज्ञानी! समझाने को समय नहीं आयेगा। तू संकटों के समय में, विपत्तियों के काल में हे ज्ञानी! पर के निकट मत जाना, जिनदेव के चरणों में चले जाना, निर्ग्रन्थों के पादमूल में पहुँच जाना और भगवती जिनवाणी के पास बैठ जाना। विपत्ति के काल में "चत्तारि सरणं पव्वज्जामि" चार की शरण में चले जाना, व्यवहारदृष्टि से और परमार्थदृष्टि से निज-आत्मा की शरण में प्रवेश कर जाना। जगत् में कोई शरण नहीं है।

यह आचार्यभगवन्तों की अनुकम्पा है, जिन्होंने श्रुत को सुरक्षित रखा है। कुन्दकुन्द स्वामी के उपरान्त बहुत से ऐसे महान् आचार्य हुए जिन्होंने अध्यात्म-विद्या पर अपनी लेखनी चलायी। मेरे मन में विचार आया कि माणिकचन्द्र जी जैसे विद्वान् ने मुनिपरम्परा पर ऊंगली उठाई इस बात पर कि आज वर्तमान में मुनिराज आगमग्रन्थों पर उपदेश नहीं कर रहे हैं। यह चुटकुले और सहज साधना हास्यकषाय के साधन तो हैं, परन्तु आत्मा की परिणति को विशुद्ध करने के साधन नहीं हैं। हास्यकषाय तो है और कषाय चाहे नोकषायभूत हो, चाहे कषायभूत हो, चारित्रमोहनीय कर्म का बंध तो होगा। बड़े विवेक के साथ सुनना, चाहे नोकषाय हो, चाहे कषाय हो, चारित्रमोहनीय कर्म का आस्रव तो होगा। और आज परम्परा प्रारम्भ हो गई है, हँसो, हँसाओ।

हे ज्ञानी! सारे जगत् में कर्मबंध ही के साधन हैं। श्री जिनालय में जाकर हँसो-हँसाओ, जिनवाणी की गद्दी पर हँसो-हँसाओ। इन्हें कम-से-कम नोकर्म और कर्मबंध के साधन तो मत बनाइए। जिससे आत्मा में आत्म-आह्लाद उत्पन्न हो, वही तत्त्व-चिन्तवन है। वही तत्त्व-उपदेश है।

आचार्य कुलभद्र स्वामी 'सार समुच्चय' जी में यह कह रहे हैं, हे मुमुक्षु! नरक में निवास कर लेना श्रेष्ठ है स्वर्ग में जाने की अपेक्षा। सम्यक् के साथ नरक में रहना श्रेष्ठ है, परन्तु मिथ्यात्व के साथ स्वर्ग में रहना श्रेष्ठ नहीं है। सम्यग्दृष्टि नारकी मोक्षमार्गी है, मिथ्यादृष्टि देव संसारमार्गी है। जिसकी दृष्टि वैभव पर है, वहाँ बे-भव कहाँ? और जिसकी दृष्टि निज वैभव पर है, वहाँ बे-भव कहाँ? क्या चाहिये, वैभव या बेभव? भव से रहित होना चाहते

हो कि भवों में भ्रमण करना चाहते हो? भवातीत होना है तो वर्तमान के वैभव पर दृष्टि डालना बंद करो। तेरे पास जितना धन है, वह तुझे तेरी आकांक्षा से मिला है या पुण्य से मिला है? इच्छा से मिला है क्या? ज्ञानी! इच्छा से तो ग्रास भी नहीं मिलता, इच्छा से गाय को घास नहीं मिलती। यदि तू गाय को घास भी डालता है, तो इस अहंकार में मत डूब जाना कि मैंनें गाय का पेट भर दिया। उसके पुण्य में था, इसलिये तेरे देने के परिणाम हो गये। उसके पुण्य में नहीं होता, तो घास जल जाती और तू खिलाने के परिणाम नहीं करता। इस कर्तृत्व बुद्धि को छोड़ दो कि मैं सबका संचालन कर रहा हूँ। तू क्या किसी का संचालन करेगा? विश्व में किसी का कोई संचालक होता ही नहीं। पुण्य-पाप का परिणमन ही जीव के साथ होता है। सम्यग्दृष्टि जीव का चिन्तवन, सम्यग्दृष्टि की क्रिया और सम्यग्दृष्टि जीव की चर्या, तीन बातों पर ध्यान रखना। क्रिया पवित्र है, चर्या पवित्र है, परन्तु चिन्तवन पवित्र नहीं है, तो क्रिया और चर्या दोनों ही निष्फल हैं। चिन्तवन कोरा निर्मल है और क्रिया 'चर्या' नहीं है, तो चिन्तवन भी तेरा कोई काम का नहीं है। सम्यग्दृष्टि जीव का चिन्तवन, सम्यग्दृष्टि की क्रिया, सम्यग्दृष्टि की चर्या, यह तीनों हर अवस्था में सम्यक् ज्ञान-वैराग्य शक्ति से युक्त हैं। ज्ञान-वैराग्य शक्ति से शून्य जो भी क्रिया और चर्या करेगा, वह विपरीत ही होगी। ज्ञानियों! आप परिवार के साथ तो रहना, परन्तु परिवार के साथ संयोग मान कर रहना, स्वभाव मान कर मत रहना। जो-जो संयोग है, इनका वियोग होगा कि नहीं? होगा। यह सत्य है। इनका वियोग नियत है। यदि वियोग नियत है, तो बिलखना क्यों? जिसका वियोग हुआ है, उसका कहीं-न-कहीं संयोग होगा कि नहीं? जब संयोग भी नियत है, वियोग भी नियत है, तो बिलखना क्यों?

अज्ञानी मुस्कुराता है, अज्ञानी रोता है। ज्ञानी न मुस्कुराता है, न बिलखता है। वह तो यह कहता है "जो है, सो है"। यदि किसी की मृत्यु भी हो रही है, तो कोई अनहोनी घटना हो रही है क्या? और किसी के यहाँ जन्म हो गया, तो अनहोनी घटना है क्या? कैसे अज्ञानी लोग हैं, जो जन्म पर हर्षित हो रहे हैं, मरण पर रो रहे हैं? यह तो संसार का राग रोग है। इस पर क्या हर्षित होना, क्या रोना? हँसना चाहिए तो सिद्धों को, जो हँसते नहीं हैं। जहाँ हास्यकषाय नहीं होती है। जहाँ पर कोई प्राप्त नहीं हुआ था, उस अपूर्व दशा की प्राप्ति हुई है। शुद्ध पर्याय की प्राप्ति हुई है। शुद्ध द्रव्यत्व शक्ति प्रकट हो चुकी है। उस जीव को हर्षित होना चाहिये। जहाँ राग है, वहीं हर्ष है। जहाँ राग है, वहीं विषाद है। बिना राग के न हर्ष है, न विषाद है। वस्तुस्वरूप को समझना पड़ेगा। कोई मुमुक्षु जहाँ रहने लग जाता है, वहीं का कहने लग जाता है। जैसे इन्दौर, उज्जैन को। अरे ज्ञानी! तू इस एक पर्याय में एक ही

जगह का नहीं हो पाया, तो अनन्त पर्यायों में कितने जगह का हुआ होगा? इस भव में ही तू अनेक भव का हो गया, तो नानाभव में कहाँ का होगा? क्यों माताओ! आप सब एक ही जगह के हो क्या? हे माँ! तू किसमें राग रचाती है? वर्तमान की पर्याय में भी तूने द्वैत को देख लिया है। जिस घर में तू जन्मीं है, उस घर को तू घर नहीं कह रही है और जिस घर में मरण होगा, उस घर को अपना घर कह रही है। जिस घर में तेरा जन्म होता है, उस घर में मरने को मिलता है क्या? हे माँ! जिस घर में तेरा मरण होता है, उस घर में जन्म नहीं होता है। इस भव में ही आपके लिए एक घर नहीं बचा, तो नाना भवों की बात क्या करें? इसलिए "आज से रहना तो, परन्तु रहना मत"। निवास करते रहना, पर विश्वास मत करना। सम्यग्दृष्टि जीव का जो चिन्तवन है, वह लोगों ने क्या समझ लिया है? सम्यक्त्वाचरण जो चारित्र है सम्यग्दृष्टि जीव का, उस सम्यक्त्वाचरण चारित्र में बरि क्रिया को ही सम्यक् समझ लिया है। सम्यक्त्वाचरण की बरि क्रिया है, वह तो पवित्र होगी ही सम्यग्दृष्टि जीव की।

"**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

मानव-भव की निरर्थकता

सम्यक्त्वं भावयेत्क्षिप्रं, सज्ज्ञानं चरणं तथा।
कृच्छात्सुचरितं प्राप्तं, नृत्वं याति निरर्थकम्॥ 45॥

शीघ्र ही सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की भावना (आराधना) करनी चाहिए, अन्यथा बड़ी कठिनता से व उत्तम आचरण करने से प्राप्त यह मानव-जन्म व्यर्थ में नष्ट होता जा रहा है।

॥ देशना ॥

क्रिया दिखती है, अनुभूति होती है। जिस क्रिया में अनुभूति नहीं है, वह क्रियावान कैसा? छोटे-से बालक से पूछो, कभी तूने चॉकलेट चूसी है? चुसती हुई चॉकलेट क्या पर-पुरुष को दिखाई दे रही है? मुख चलता हुआ भी दिखाई दे रहा है, जीभ हिलते हुए भी दिख रही है, दिखने के लिए खा रहा है, यह सब वाच्यभूत है। यह सब क्रियाएँ दिखाई दे रही हैं। इसके बीच मैं जो हो रहा है, वह क्या है? स्वाद आ रहा है। जो स्वाद आ रहा है, वह किस-किस ने देखा है? ऐसे-ही मुमुक्षुओ! सम्यग्दृष्टि जीव अर्हन्त की पूजा करता है, ऐसे ही निर्ग्रन्थ को दान देता है, सम्यग्दृष्टि जीव जिनवाणी का वाचन करता है, यह सब परवस्तु में दिखाई देता है। इसके बीच में जो हो रहा है, वह सम्यग्दृष्टि का आत्मआह्लाद चलता है। आनन्द है। जो आप देख रहे हो, वह सब सुन रहे हो और सुनने के साथ जो हो रहा है, वह बताओ। सम्यग्दृष्टि जीव, यदि आनन्द को प्राप्त न हो, तो सम्यग्दृष्टि नहीं है। मिथ्यादृष्टि जीव, जो विषयों में लीन हो, तो मिथ्यादृष्टि कैसा? आनन्द है। "जब आनन्द में होता है, तब अन्य में नहीं होता है और जब अन्य में होता है, तब आनन्द में नहीं होता है।" जैसे कि चींटी मिश्री के कारण को पकड़कर और लाल चींटी किसी पुरुष के शरीर पर चिपक जाये तो उसे छुड़ाने का प्रयास करो तो टूट जायेगी, परन्तु छूटती नहीं है। मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि नष्ट कर लेता है, लेकिन परिणति नहीं छोड़ पाता है। ऐसे ही सम्यग्दृष्टि जीव पंचपरमेष्ठी के पास बैठा रहेगा। मिश्री को मुख में रखने से मीठा तो लगता है। परमेष्ठी के पास बैठने से आनन्द नहीं आता, परमेष्ठी की श्रद्धा में आनन्द आता है।यथार्थ में परमेष्ठी में आनन्द नहीं है, आनन्द मेरी श्रद्धा में ही हैं, परमेष्ठी का आनन्द परमेष्ठी में है। पर तुझे जो आनन्द आ रहा है, वह परमेष्ठी की भक्ति का आनन्द आ रहा है। ध्यान रखना, जीवन में कितनी ही विपत्ति आ जाये, संकट आ जाये परन्तु तेरे चिन्तवन में, चित्त में ऐसा भाव न आये कि मैं अपने धर्म से दूर हो जाऊँ। न विपत्ति शाश्वत है, न सम्पत्ति शाश्वत है, निज

की सत्ता शाश्वत है। जिसने सुगति को समझ लिया है, वह जीवन में कभी अनिष्ट को प्राप्त नहीं हो सकता, जीवन में संकट को प्राप्त नहीं हो सकता। अहो आश्चर्य! परद्रव्य के राग में स्वद्रव्य को भूल चुका है। स्वयं के द्वारा अर्जित धन पर जितना राग होता है, उतना पर के द्वारा संचित धन पर राग नहीं होता। स्वसम्पत्ति पर जितना राग रहता है, परसम्पत्ति पर उतना राग नहीं रहता। जिसे तू संतान कह रहा है, सत्पत्ति कह रहा है, वह सब 'पर' ही है। 'स्व' एकमात्र ध्रुव-आत्मा है। लोक में आप एक भोगी से लेकर योगी तक को निहार लेना(पुण्य के द्रव्य पर जितना लक्ष्य है, पुण्य-पाप से रहित होने पर किंचित भी लक्ष्य नहीं है। पुण्य के उदय में मुस्करा रहा है।) पुण्य के फल पर मुस्करा रहा है और यह कह रहा है, कि मेरा है। ओ मुमुक्षु! पुण्य ही तेरा नहीं है, तो पुण्य का फल कहाँ से तेरा हो गया? परद्रव्य का निर्णय करने में बहुत शक्ति चाहिए। यह अध्यात्मविद्या आपको रागी-द्वेषी नहीं बना रही है, आपको राग-द्वेष से रहित जीवन जीना सिखा रही है। सम्यक्त्व मुखानन्दी मात्र नहीं है। स्वमुख-वृत्ति जिसकी है, वह सम्यक्त्वी है।

ध्यान रखना, जिसने शक्कर को देख लिया है, कितनी ही रंगमिश्रित मिठाइयाँ बनाओ, उसका निर्णय भीतर है कि मुख पर रख लूँगा, परन्तु वास्तव में शक्कर की मिठाई है। जितने लोग भ्रमित हो रहे, वह बूरे में, शक्कर की चाशनी में रंग मिलाये गये हैं। बाजार में अनेक रंगों की मिठाइयाँ दिखाई दे रही हैं, यह मिठाइयों के वर्ण हैं या रंग का वर्ण है? रंग किसका है? क्या मिठाई का? रंग तो रंग का है। जो दिखाई दे रहा है, वह राग का रंग है। भगवानात्मा का कोई रंग नहीं है, वह तो "जो है, सो है।" और जितने रंगों में वह रंग गया, आज से पचास वर्ष पूर्व किसी के रंग को देखकर भी रंग गया। इन आँखों ने रंग नहीं देखा होता तो हे रागी! आज यहाँ रंगा न होता। वर्ण को देखकर ही प्राणी के परिणाम बिगड़े हैं। वर्ण ना देखता, रूप ना देखता, उसके स्थान पर स्वरूप को देख लेता, तो आज तू भगवान् बना दिखाई देता। किसे देखा? रूप को ही तो देखा। इन आँखों से देख पायेगा तो मात्र रूप को ही देख पायेगा। भगवान् को देखकर कहते हैं, 'दो गोरे, दो सांवरे।' हे ज्ञानी! तू भगवान् के रूप को देखेगा तो चौबीस तीर्थंकर तुझे भिन्न-भिन्न दिखाई देते हैं और स्वरूप को देखेगा तो भगवत्स्वरूप एक है। स्वरूप को देखेगा तो अनन्तानन्त सिद्ध परमेश्वर साक्षात् सिद्ध एक हैं। रूप पर दृष्टि चली गई, तो स्वरूप को भूल गया। इसलिए सम्यग्दृष्टि जीव रूपों को नहीं निहारता, स्वरूप को निहारता है। अन्दर में झांक कर देखो कि सम्यक्त्व है या नहीं? हृदय में झांक कर देखो कि सम्यक्त्व है या नहीं? पर के में नहीं, स्वयं के अन्तर में झांक कर देखो। जितना रोमांच पर को देखने में होता है, उतना रोमांच निज के स्वरूप को देखने

में होना चाहिए। अर्हन्त भगवान् की भक्ति में आया एक मुमुक्षु कह रहा है कि हमारे मन्दिर के भगवान् को तो देखो, कितने बढ़िया हैं। हे ज्ञानी! जो सुन्दर है, वह बिम्ब नहीं है। वह बिम्ब है, जो सुन्दर नहीं है। जिनका बिम्ब है, वह पाषाण धातुमयी है। जो जिनबिम्ब है, वह कोई बिम्ब नहीं है, निर्बिम्ब है।

पुनः आइए। इस जीव ने भगवान् की प्रतिमा को भी देखा, 'कितनी सुन्दर प्रतिमा है।' यह तो आपने शिल्पकारों की शिल्पकला को देखा है, भगवान् को कहाँ देखा है? 'कितने सुन्दर भगवान् हैं?' क्या भगवान् सुन्दर हैं? तूने परमात्मा को भी देखा तो परमात्मा की प्रतिमा तक ही देखा, परमात्मा के परमात्म-तत्त्व को नहीं देखा। इनके रूप को सुन्दर मत देख, इनके स्वरूप को सुन्दर देख, तो तेरा स्वरूप दिखाई दे जायेगा। निज में देख। जिसका स्वरूप सुन्दर होगा, उसका रूप सुन्दर होगा। यदि आपको विश्वास न हो तो, यदि कोई मुमुक्षु गुस्सा में हो, तब उसका चेहरा देखना और जब प्रमुदित होगा, तब उसका चेहरा देखना। जिसका भाव अशुद्ध होता है, उसकी पर्याय भी अशुद्ध दिखना प्रारम्भ हो जाती है। बुन्देलखण्डी हो तो वहाँ बुन्देलखण्ड में मिट्टी का घड़ा होता है, उसमें देखना। हाथ की जगह दूर से निहारना, अपने-आप समझ में आता है कि पानी से भरा घट है, पानी भीतर है, परन्तु मिट्टी के घट से रिसकर उसके ऊपर आ रहा है। वही पानी से रहित घट हो तो आप दूर से ही देख लेना कि घट कैसा है? यदि पानी निकल चुका है और खाली घड़ा रखा हुआ है, तो आप बोलेंगे कि रूखा-सूखा घट है। उसी प्रकार जिनके हृदय से भावों की विशुद्धि निकल चुकी है, उसका चेहरा भी सूख जाता है। संवेग भाव, परिणति का भाव पर्याय में झलकता है। पर्याय में परिणति न झलके, ऐसा होता नहीं है। चेहरे पर सब होता है। इसलिए पर्याय को ही मत देखता। आज से परमात्मा की प्रतिमा को मत देखना, परमात्मा की प्रतिमा में देखना। यह सुन्दर प्रभु जिसका बनाया गया है, यथार्थ में शिल्पकार रूप प्रदान नहीं करता है, शिल्पकार स्वरूप प्रदान करता है, तो रूप नियम से निकलता है।

प्रयोग में आज ही देख लेना, श्मशान में जाकर सामायिक करने बैठ जाना, किसी कैमरे वाले को बुला लेना और कहना कि जैसे-ही मैं सामायिक को बैठूँ तब मेरी विडियो बना लेना। और थोड़ी देर बाद बेटे की माँ से झगड़ना, उसकी भी विडियो बनवा लेना। दोनों को देखना और कहना कि यह भी मैं हूँ, यह भी मैं हूँ। दोनों में अन्तर है। यह भी मैं नहीं हूँ, वह भी मैं नहीं हूँ। मैं तो इन सब से भिन्न हूँ। ध्रुव सत्य है। यदि आपको कैमरे वाला नहीं मिले तो विकल्प नहीं करना, घर-घर में दर्पण तो होंगे। ज्ञानी! दर्पण में ही अपना चेहरा देख लेना। जब-जब पत्नी को गुस्सा आये तो उससे कुछ नहीं बोलना, आप दर्पण उठाकर उसके सामने

कर देना। पति को गुस्सा आये तो उससे कुछ नहीं बोलना, आप दर्पण उठाकर उसके सामने कर देना। पति का गुस्सा आये तब आप दूर से ही दर्पण दिखा देना। (नहीं तो दर्पण ही तोड़ देगा)। जब वह दर्पण में अपना चेहरा देखेगा तो कहेगा मैं कैसा हूँ। लाल मुँह का बंदर दिखाई दे रहा हूँ। जब वह शांत होता है, तब दर्पण देखेगा, तो आपको स्वयं समझ में आ जायेगा।

जिस कषाय से वर्तमान की पर्याय ही विकृत हो रही है, उस कषाय से भविष्य की पर्याय निर्मल कैसे हो सकती है? प्रमाण मानिये, जिस काषायिक भाव से मेरा वर्तमान का चेहरा ही विकृत हो रहा है, तो भविष्य की पर्याय नियत ही विकृत होगी। मूल विषय को समझो। भीतर का तेरा जैसा भाव होगा, भविष्य की तेरी पर्याय वैसी ही होगी। गति बन्ध का कारण नहीं है। गति भविष्य की गति को देने वाली नहीं है। वर्तमान की गति में जो परिणति चल रही है, वह भविष्य की गति के बंध का कारण है। वर्तमान में सबकुछ तेरे हाथ में है। जैसा तू चाहे, वैसा भविष्य बना सकता है। और परिवार के राग में भी अपनी आत्मा को मत रुलाना। "कर्त्तव्य का निर्वाह करना, परन्तु कर्तृत्व बुद्धि मत लगाना।" यह जितने भी मुनि बैठे हैं, इन सबको मैं अपना नहीं मानता हूँ। यह सब मुनिराज भावी भगवान् हैं। उनके भाव मुनि बनने के हुए हैं, हमने मंत्र के संस्कार मंत्र दिये हैं। उनकी परिणति उनके साथ है, मेरी परिणति मेरे साथ है। यदि मैं इनका कर्त्ता बन जाऊँगा, जब चौबीस घण्टे एक बालक को सम्भालने में आपको कितना कठिन महसूस होता है तो मैं इतनों को सम्भालूँगा तो मेरी तो दिनभर की साधना ही समाप्त हो जायेगी। कर्त्तव्य का निर्वाह करना। जिनशासन वृद्धिमान हो, श्रमणसंस्कृति आगे हो, इसलिए दीक्षा तो देना, लेकिन निज की दीक्षा को छोड़कर पर को दीक्षा मत देना।

ज्ञान का फल क्या है? 'अज्ञाननिवृत्ति-र्हानोपादानोपेक्षाश्चतत्फलम्।'

अज्ञान की निवृत्ति, हेय उपादेय और उपेक्षा ये ज्ञान के फल है। (परीक्षामुख सूत्र) हेय, उपादान, उपेक्षा। ग्राह्यी को गृहण कर लेना, अग्राह्यी को छोड़ देना। जो ग्राह्यी नहीं है, अग्राह्यी नहीं है, उसकी उपेक्षा। जगत में जितने द्रव्य/पदार्थ हैं, जितने पुरुष हैं, उन सबकी व्यवस्थाओं को देखकर उसमें लग जाओगे तो विश्वास रखना, आपकी आँखें कभी सूख नहीं पायेगी। (आँख मं आँसू कभी बंद नहीं होंगे) घर से यहाँ प्रवचनसभा तक आने में कितने ही जीव दिखाई दिये, उन सबके दु:ख-सुख में देखना आप प्रारम्भ कर दोगे तो विश्वास रखना, कि अपनी सत्ता का कभी भान ही नहीं कर पाओगे। एक क्षण ऐसा आता है, तब दु:खी के दु:ख को देखना भी बन्द हो जाये, सुखी के सुख को देखना भी बन्द हो जाये, यहाँ तक

कि स्वयं का सुख और स्वयं का दु:ख भी दिखाई देना बन्द हो जाये, वही परमसुख है। सुखी पर्याय ही दु:खी करती है, दु:खी पर्याय तो दु:ख ही करती है।

इन ज्ञानी को अपने घर ले जाकर सोने की चैन पहनाकर तिलक कर देना और अच्छे वस्त्र पहना देना और कहना कि आपका सम्मान किया है आज हमने, जाओ। तो विश्वास रखना, वह कहेगा कि यदि तुम्हें मेरा सम्मान ही करना था, तो आज सुबह महाराजजी के उपदेश हो रहे थे, उस सभा में ही कर देते। ज्ञानी! चैन तेरे गले में है, तिलक लगा है, वस्त्र नये पहने हैं, तो तुझे सभा से क्या प्रयोजन? तुमको मालूम नहीं है कि हजारों के बीच में सम्मान में आनन्द नहीं है। हजारों के बीच में जो नौ सौ निन्यानवे लोगों का अपमान होता है, उसमें आनन्द है। यदि सम्मान में आनन्द होता, तो कमरे में आनन्द हो रहा था, तो क्यों चेहरा लटका लिया था? आज भेंट देने आये हो, उस दिन देते जब सबके सामने था।

विषयवस्तु समझो। भाषा को व्यवहार तक सीमित करके अब भीतर जाइये। यह तुम्हारे सम्मान का आनन्द नहीं था। यह तुम्हारे सम्मान में निहित था, पर का मान था, उसमें आ गया। पण्डित जी! 'समयसार' की व्याख्या से काम नहीं चलेगा, 'समयसार' की व्याख्या के बाद भी तेरा अभिनन्दनग्रन्थ छप रहा है, यहाँ तुझे तेरी पर्याय में ही तो राग है, तो अभी तेरी परिणति निर्मल है कहाँ? भवाभिनंदी! क्या भव के विनाश के लिए तू 'समयसार' पढ़ रहा है? भव के विनाश के लिए मैं निर्ग्रन्थ मुनि बना हूँ। उसी भव का महोत्सव मन रहा है तो भव में ही तो राग है। भव का विनाश कहाँ गया? पकड़ो, भैया! यदि तेरा अभिनन्दनग्रन्थ छप रहा है और तू यह कहे 'महाराज! आशीर्वाद दे दो कि मेरे कर्म का क्षय हो जाये।' यदि तू कर्म का क्षय चाहता है, तो तेरा अभिनन्दन कहाँ से आ गया?

कर्मवर्गणाओं का राग जब तक सता रहा है, तब तक द्रव्यकर्म का आना बन्द नहीं होगा, तो भावकर्म में निर्मलता होगी नहीं। जीवतत्त्व का विषय है, इसे ही ज्ञेय बनाइये। आपने पर को ज्ञेय बनाया है, अपने परिणामों को ज्ञेय नहीं बनाया। अभी तक आपने परमात्मा की पर्याय को ज्ञेय बनाया, निर्ग्रन्थ गुरुओं को ज्ञेय बनाया, जिनवाणी के शब्दों को ज्ञेय बनाया, लेकिन ज्ञानी! यदि अपनी परिणति को ज्ञेय बना लेता, तो किसी के पास जाने की आवश्यकता ही नहीं थी। परिणति को ज्ञेय नहीं बनाया। बाहर के दृश्यों को देखते-देखते कभी भीतर मुस्कुराता रहता हूँ। कभी भीतर अफसोस भी करता रहता हूँ, कि कितने सुन्दर विराट स्वरूप को प्राप्त करके कहाँ चिपका है? पर्याय के सम्बन्धों में परिणमों पर ध्यान ही नहीं दिया। हे ज्ञानी! इस कैमरे के देखते ही तू सम्भल गया। तुझे मालूम होना चाहिए कि सीमंधर भगवान् का कैमरा चौबीस घण्टे चालू है। मेरे कर्मों के बंध की धारा प्रतिक्षण जा रही है। जैसे कैमरे

में उल्टा चित्र ना आ जाये, इसलिए तू सम्भलकर बैठ जाता है, ऐसे ही हे ज्ञानी! तीर्थंकर सीमंधर, अनन्तानंत सिद्धों, अरहन्तों के ज्ञानगुण में मेरी अशुभ पर्याय न आये, ऐसा विचार कर ले, तो तू जगत् में पाप ही न करे। हे भगवान्! ऐसे कैमरे घर-घर के कोने-कोने में लग जायें। तू जो भी करेगा, सब देख लेंगे। पाप नहीं कर पायेगा। जड़ कैमरों के चित्रों को देखकर घबराता है तू। यहाँ के अशुभ वहाँ झलक जायेंगे। कैमरे का अशुभ, जो बैठा है उसे, दिखाई दे जायेंगे। यहाँ की वर्तमान की पर्याय का अशुभ नरक की पर्याय में दिखाई देगा, तुझे मालूम होना चाहिए। इतना सम्भलकर रहना चाहिए। आचार्य कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं कि जिसे संसार के बंध का अभाव करना है, तो योग की चंचलता को बन्द कर दो। संसार की पर्यायों का विच्छेद करना है, आज से बंध को बंद करना है, तो त्रियोग की चंचलता को बन्द कर दो। यदि योग की चंचलता बंद नहीं कर पा रहे हो, तो 'भव का बंध बन्द हो जाये' यह चिल्लाते रहोगे, परन्तु बंध बन्द नहीं होगा।

महाराज! मुझे एक भजन सभा में करना है। ज्ञानी! यदि भजन ही गाना था, तो कमरे में बैठकर भी गा सकता था। और आज ही क्यों? तू तो प्रतिक्षण भजन कर। नहीं, तू भजन नहीं कर रहा है, भजन को भंग कर रहा है। जिस समय तू लिख रहा था भक्तिपूर्वक, वहाँ ज्ञान में ज्ञेय अर्हन्त बन रहे थे, उस समय भजन चल रहा था। जैसे-ही तेरे ज्ञान में ज्ञेय आया कि सभा में सुनाऊँगा, लोगों ने ताली बजाई तेरे भजन पर, उन-उन ने तेरा मान बढ़ाया है और मान बढ़ाकर तुझे नीचे गिराया है। लगता है सिर्फ ताली बज रही है। ध्रुव सत्य है, कि लोक धर्म भिन्न है, आत्मधर्म भिन्न है। यह व्यवहार है, यह कहते हैं। अरे मुमुक्षु! व्यवहार में नहीं आये, व्यवहार के दरवाजे पर भी नहीं है। घर-गृहस्थी को चला रहा है, माता-पिता के चरण छू रहा है, मान-सम्मान कर रहा है और कह रहा है कि व्यवहारधर्म निभा रहा हूँ। अरे अज्ञानी-ज्ञानियो! यदि यह व्यवहारधर्म हो गया, तो भेद रत्नत्रय क्या होगा? जो भेद रत्नत्रय है, वह व्यवहारधर्म है और जो अभेद रत्नत्रय है, वह निश्चयधर्म है। तुम्हारा यह न व्यवहारधर्म है, न निश्चयधर्म है। तुम्हारा तो लोकधर्म है। किसी दिन कोई कार्यक्रम हो, उसके आखिरी दिन देखो, तिलक पर तिलक लगवा रहे हैं, माला पर माला पहन रहें हैं। धन्य हो। रत्नत्रय धर्म को तो भूल ही बैठे हो और अपने तिलक पर लगे हुए हैं। अब पूछो, यह धर्म हो रहा था क्या? अपने सम्मान की मानकषाय बढ़ रही थी, पाप हो रहा था। आपने पाँच पाप पढ़े हैं।

अब और गहरे में जाओ। धर्म कितने हैं? दस धर्म हैं। मान अधर्म हुआ कि नहीं? समझना तो पड़ेगा। ठीक है, लोकव्यवहार चलाने के लिए सम्मान तो रखना पड़ता है, लेकिन इतना

दृष्टि में रखना कि आत्मा का अपमान हो चुका है। आत्मा का अपमान शुरू हो चुका है। जितने अंश में कषाय बढ़ रही है, उतने अंश में आत्मा का अपमान पूरा है। विषादरूप नहीं, हर्षरूप सही। जिसका नाम नहीं लिया, उसको विषाद कषाय ने पकड़ लिया, जिसका नाम लिया, उसको हर्षकषाय ने पकड़ लिया। दोनों ने पकड़ा है।

भूतार्थ दृष्टि को समझने के लिए बहुत शांतचित्त होकर बैठना पड़ेगा। भो ज्ञानी! अभी तक अभूतार्थ के आनन्द में लवलीन है। आज तक भूतार्थ पर दृष्टि ही नहीं गई। जिनशासन की प्रभावना के लिए कितना धन बहाया और निज की चमड़ी पर तिलक लगवाने के लिए कितना धन बहाया? कापोत/नील लेश्या में ही भरे बैठे हैं। तेरा निज आत्मकल्याण पर लक्ष्य ही नहीं है। 'गोम्मटसार जीवकाण्ड' में नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती ने लिखा है कि लोभी को पसन्द करते हैं (कि कापोत लेश्या वाला जीव अपनी हानि-वृद्धि को कुछ नहीं समझता।) रण में मरने को तैयार है। स्तुति करने वाले को खूब धन दे सकता हूँ, परन्तु मेरा नाम चलना चाहिए। परन्तु तुझे मालूम नहीं है कि जिसका नाम है, वह तू नहीं है। जो नाम है, वह भी तू नहीं है। मुमुक्षु! जिस दिन तेरा जन्म हुआ था, उस दिन तेरा क्या नाम था? जिस दिन तेरा जन्म हुआ वर्तमान की पर्याय में, उस दिन सत्य था और जिस दिन पर्याय को छोड़ेगा, उस दिन भी सत्य होगा। बीच में जो कुछ हो रहा है, सब अहंकार है। जब जन्म हुआ था, सब लोग कह रहे थे कि कोई अच्छा जीव आया है। तब नाम नहीं था, सुन्दर शरीर था। जब से नाम रखा गया, तब से संज्ञा की कषाय में चिपका हुआ है। जब इस शरीर को छोड़ेगा, जब चला जायेगा, तो समाज के लोग आयेंगे और कहेंगे कि अच्छा जीव था। जब आया तब अच्छा था, अब गया तब अच्छा जीव है। बीच में क्या हो गया? इसलिए जितने नाम रखे हैं, सब लोकव्यवहार चलाने के लिए हैं। वास्तव में तुम्हारा कोई नाम नहीं है। कवि का चेहरा देखो। आज से तुम्हारी कविता बदल जानी चाहिए। लोगों को खुश करने के लिए अनेक कविता लिखी हैं, अब निज को खुश करने के लिए कविता लिखना।

सम्यक्त्वं भावयेत्क्षिप्रं सज्ज्ञानं चरणं तथा।
कुच्छात्सुचरितं प्राप्तं नृत्वं याति निरर्थकम्॥45॥ सा. स ॥

कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं, आदेश कर रहे हैं, हे ज्ञानी! तुम सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र को धारण करो, भावना करो। सद्दर्शन, सद्ज्ञान, सद्चारित्र इनको धारण करने की भावना प्रतिक्षण भाओ, जिससे तुझे यह बहुत कठिनाई से प्राप्त होने वाली मनुष्यपर्याय मिली है, यदि तुमने सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्र की भावना नहीं भायी, तो तेरी मनुष्यपर्याय निरर्थक है। यदि आप को समय ना मिले चिन्तवन करने के लिए, तो मैं बता देता हूँ। जब जिनालय

से घर जाओगे, इसके बीच में बाहर के लोग मिलेंगे। उनसे बातें नहीं करना। जो अभी सुना है, उस पर चिन्तवन करना और यह चिन्तवन करना कि यथार्थ में जन्म लिया है, जब से समझ आई है, तब से मैंने किया क्या है? या तो पर्याय के राग में लिप्त रहा या पच्चीस कषायों के परिणामों के राग में लिप्त रहा। कभी-कभी पर्याय का राग तो छूट भी जाता है, परन्तु पच्चीस कषायों के परिणामों का जो राग है, जीवन उसी में छूटता है। जितने अवशेष निषेक आयुकर्म के हैं, उन निषेकों को बढ़ाओ। शेष अन्य भाव है।

"**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

प्रयत्नपूर्वक चारित्र धारण करो

अतीतेनापि कालेन, यन्न प्राप्तं कदाचन।
तदिदानीं त्वया प्राप्तं, सम्यग्दर्शनमुत्तमम्॥ 46॥

उत्तमे जन्मनि प्राप्ते, चारित्रं कुरु यत्नतः।
सद्धर्मे च परां भक्तिं, शमे च परमां रतिम्॥ 47॥

हे आत्मन्! भूतकाल में जिसे तूने कभी प्राप्त नहीं किया था, ऐसा यह उत्तम सम्यग्दर्शन तूने इस समय प्राप्त किया है और उत्तम मानव-जन्म भी तुझे प्राप्त हुआ है, अतः इस जन्म को सार्थक करने के लिये तू यत्नपूर्वक चारित्र को धारण कर। सद्धर्म में परमभक्ति और समताभाव में परम प्रीति कर।

॥ देशना ॥

भव्य बन्धुओ! अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सार-समुच्चय' में सम्यक्त्व की प्ररूपणा करते हुए समझा रहे हैं। संसार में दुर्लभ इन्द्रियविषय नहीं है और इन्द्रियों में विषय का संयोग नहीं। यदि दोनों में कोई दुर्लभ है, तो परमात्मा के चरणों में आने के परिणाम हैं। भगवान के पादमूल में आने के जो परिणाम है, यह अत्यन्त दुर्लभ हैं। मंदिर के द्वार पर बैठा-बैठा ताश खेलकर चला जाता है। मन्दिर के चबूतरे पर बैठकर यहाँ-वहाँ की अनर्गल चर्चा करके चला जायेगा, लेकिन मन्दिर के चबूतरे पर बैठने के उपरान्त भी तेरे मन में परमात्मा के पादमूल में बैठने के परिणाम नहीं होते हैं। जब तू अपने भवन का द्वार खोलता है, उसी समय जिनालय का दरवाजा खुलता है, परन्तु एक वह अभागा जीव है जो प्रातः उठते ही संडाश का दरवाजा खोलता है और दूसरा वह पुण्यात्मा जीव है जो जागते ही जिनालय का दरवाजा खोलता है। वस्तु में धर्म नहीं है, वस्तु में अधर्म नहीं है। हे जीव! तेरी दृष्टि में धर्म है, तेरी दृष्टि में अधर्म है। दोनों की दृष्टियों में भेद है। पिताजी ने छोटे और ज्येष्ठ पुत्रों को पाँच का नोट दिया। एक ज्ञानी पाँच का नोट लेकर जिनालय की ओर दौड़ रहा है कि श्रीफल खरीद कर अर्हन्त के चरणों में चढ़ाऊँगा और दूसरा अभागा पाँच के नोट को लेकर चाट के ठेले की ओर दौड़ रहा है। नोट तो नोट है। पाँच का नोट दोनों के हाथ में है। ज्ञानियो! मनुष्यपर्याय तो इन युवाओं (मुनि, ब्रह्मचारियों) को भी मिली है, मनुष्यपर्याय आपको भी मिली है। आप अपनी

मनुष्यपर्याय को विषयों के चाट के ठेले पर पूरी कर रहे हो। इन युवाओं को देखो, जो मनुष्यपर्याय को तीनलोक के नाथ के जिनभेष को धारण करके, रत्नत्रय की आराधना करके, अर्हन्त बनने के पुरुषार्थ में लगे हैं। द्रव्य का मिल जाना महा उत्तम नहीं है। द्रव्य मिलने पर द्रव्य का उपयोग करने की दशा कैसी है? सम्यक्त्व की प्राप्ति परमात्मा के चरणों में माथा टेकने मात्र से होगी। जब सम्यक्त्व की प्राप्ति होगी, तो क्रिया/चर्या/वृत्ति परिणति सब बदल जाएगी। आज से घर की भाषा बदल जाना चाहिए।

जिनको तू-तू करके बुलाता है, उन्हें भावी भगवान् समझना चाहिए। विद्वानो! सम्बन्ध पर्याय के हैं, सम्बन्ध किसी की परिणति का नहीं है। सम्बन्ध किसी की वृत्ति का नहीं है। माँ! बेटे से गलती हो जाये तो समझाना, डाँटना मत। वर्तमान की पर्याय के सम्बन्ध से तू पुत्र है मेरा, लेकिन जीवद्रव्य त्रैकालिक है। जब वही बेटे का जीव सिद्धालय चला जाएगा, फिर सोचना कि मैंने किसे डाँटा था? कण-कण स्वतन्त्र है। अणु-अणु स्वतन्त्र है। प्रत्येक द्रव्य स्वतन्त्र है, प्रत्येक जीव स्वतन्त्र है। जब तक स्वतन्त्र सत्ता का बोध नहीं है, तब तक तुम पर में अपने को और अपने में पर को स्वीकारते रहोगे। दाल है, आटा है, साग है, लेकिन स्वाद नहीं है। क्यों नहीं है? है, फिर भी नहीं है। अग्नि पर रख दो तो दाल का स्वाद बदल गया, आटा रोटी बन गया, साग, साग हो गया। ज्ञानी! वही कच्ची सामग्री थी, अब आपको रुचिकर लग रही थी। जैसे अग्नि के संयोग से दाल,आटा, साग का स्वाद बदल गया , ऐसे-ही ज्ञानियो! अर्हन्त की देशना के प्रभाव से, अर्हन्त की कुशलता से आपके भावों का स्वाद बदलना चाहिए, यदि तत्त्व पर दृष्टि है तो। भाषा पूरी ही बदल जाये, तो भाव बदलेगा। जैसा भाव होगा, वैसी भाषा होगी। भाषा भावों का प्रतीक है। माँ! जब तू बेटे को दुलार से पुकारती है, तब तेरी आवाज कैसी होती है? उसी बेटे को गुस्से में बुलाती है, तो तेरी आवाज कैसी होती है? पर आपको यह लगता है कि यदि मैं ऐसा नहीं करूँगा तो घर की व्यवस्था कैसे बनेगी? भैया! तेरे घर की व्यवस्था बने या न बने, परन्तु तेरे कर्म की व्यवस्था निश्चित बनेगी। कर्म की व्यवस्था को कोई भिन्न करने वाला नहीं है। करणानुयोग कहता है, हे ज्ञानियो! जिन निज के सम्बन्धियों को तुम निज मानकर उनमें हर्ष-विषाद कर रहे हो, तो कर्म यही कहता है कि निज वस्तु से भिन्न पर-वस्तु निज होती ही नहीं। ज्ञानी! पानी पर शैवाल उत्पन्न होती है, परन्तु शैवाल कभी पानी होती नहीं है, पानी कभी शैवाल होता नहीं है। सन्तान उसका शरीर तेरे रक्त, वीर्य, मल से उत्पन्न होती है, लेकिन विश्वास रखना, संतान का शरीर भी तेरा शरीर नहीं होता। संतान तेरा जीवद्रव्य नहीं होता।

यह मानकर अपना पुण्य-उदय मानना कि इस खोटे काल में भी अर्हन्त की देशना सुनने को मिल रही है। निर्ग्रन्थों की वाणी निर्ग्रन्थों के मुख से सुनने को मिल रही है। अहो ज्ञानियो! निर्ग्रन्थों के समयसार को सग्रन्थों से अनन्त बार सुना है, परन्तु निर्ग्रन्थ की वाणी निर्ग्रन्थ के मुख से सुनने को मिल जाये, यही परम पुण्य का उदय है। यह काल का महान् दोष है कि निर्ग्रन्थ सग्रन्थ की भाषा में बोल रहे हैं। सग्रन्थ निर्ग्रन्थ की भाषा में बोलें, यह पंचमकाल का महान् दोष है।

रेल की यात्रा आपने की होगी। लोहपथगामिनी पर सवार होते हो, तो झोले वाले भी चढ़ जाते हैं। कोई मूँगफली बेचता है, कोई चाय बेचता है। अनेक प्रकार के लोग चढ़ जाते हैं। वहाँ आवाज भी आती है। वह आवाज यहाँ जिनालय, राज्यसभा, संसद भवन में सुनाई पड़ती है क्या? हे ज्ञानी! मूँगफली या चाय बेचने वालों की आवाज ट्रेन में ही शोभा देती है, जिनालयों में शोभा नहीं देती है। ऐसे-ही जो संसार के रागरंग की निश्चित भाषाएँ हैं, यह रंग-मंचों पर ही शोभा देती हैं, वीतराग धर्ममंच पर शोभा नहीं देता।

किसी दिगम्बर मुनि का चित्र भी छपवाना पड़े तो उनकी पूरी तस्वीर लेना चाहिए। पिच्छिका-कमण्डलु सहित, शांत मुद्रा में होना चाहिए। यह कोई एक्टर नहीं हैं। क्योंकि हम इनकी वंदना करके बंध का नाश करेंगे। वीतरागी दिगम्बर श्रमण का जो चित्र है, वह तो शांत वीतरागी सौम्य दिखाई देना चाहिए। यह चेतन जिनबिम्ब है। दिगम्बर मुनि चेतन जिनबिम्ब हैं। इन चेतन जिनबिम्बों को भी शांत मुद्रा में दिखाई देना चाहिए।

सम्यक्त्व का कारण है। धन्य है वह जीव, दिगम्बर वीतरागी तपोधन को देखकर जिनके हृदय का भगवान जाग उठा हो। अहो! जयपुर के मुमुक्षु! लाखों-लाखों मुनिराज बैठे हैं, एक-एक मुनि की वन्दना करना, क्योंकि क्या मालूम कौन-से योगी को देखकर तेरा योग जाग जाये, तेरे भाव बदल जायें। परन्तु इतना ध्यान रखना, इनसे बात मत करना, उनको परिचय मत देना, उनका परिचय मत लेना। उनसे परिचय लेने की क्या आवश्यकता है? दिगम्बर मुनि ही इनका परिचय है। उनसे जो परिचय माँगोगे वह असत्य होगा। जो परिचय दिखाई दे रहा है, वह ही सत्य है। तू गृहस्थी के राग का परिचय पूछेगा। दिगम्बर मुनि के परिचय की क्या आवश्यकता है? जो इनका रूप है, यही इनका परिचय है। जहाँ बैठते हैं, वही इनका स्थान है। स्वचतुष्टय में विराजते हैं। यही दिगम्बर वीतरागी तपोधन का परिचय है। आपने यह पूछ लिया कि आपका जन्मदिन, जन्मस्थान कौन-सा है? अहो ज्ञानी! जिस श्रावक ने ऐसा प्रश्न किया किसी मुनि से, तो उस श्रावक ने यति-हत्या का पाप किया। क्यों? यति किसे कहते हैं? जो मोक्षमार्ग का यत्न कर रहे हैं, उनका नाम यति है। जो श्रेणी का आरोहण

कर रहे हैं, उनका नाम यति है। जो रत्नत्रय धर्म का श्रम कर रहे हैं, वह श्रमण हैं। ऐसे श्रमण जो निज स्वभाव में लवलीन हैं। अज्ञानी होने के लिए साधु बनना पड़ता है। ज्ञानी बनने के लिए जो साधु बनता है वह अज्ञानी होता है। अज्ञानी होने के लिए साधु बनना चाहिए। ज्ञानी होने के लिए साधु बनना चाहिए। जिन पाँच इन्द्रियों के विषय को अनादिकाल से जाना है, उन विषयों से अज्ञानी बनने के लिए साधु बनना पड़ता है। जिस कुटुम्ब-परिवार को तूने जाना अनन्तकाल से, उनसे अज्ञानी बनने के लिए साधु बनना पड़ता है। स्वात्म द्रव्य को नहीं पहचान रहा था, उसको जानने के लिए साधु बनना पड़ता है। पूर्व योगी अपूर्वाश्रम में लवलीन था। मुमुक्षु! तू कहता है, मैं जानना चाहता हूँ कि महाराज के माता-पिता का नाम क्या है? हे अज्ञानी ज्ञानी! निज स्वभाव में लवलीन योगी को तूने च्युत कर दिया है। राग के माता-पिता के पास भेज दिया, उनके ज्ञेय को तूने निज-ज्ञेय से हटाकर पर-ज्ञेय में लगा दिया है। इससे तूने यति-हत्या को प्राप्त किया है। निर्ग्रन्थों के पास जाकर यह कहते हैं कि महाराज! तिलक लगा दें, माला पहना दें, श्रीफल भेंट कर दें और तुम साधु के हाथ से जो सामग्री लेकर घात कर रहे हो, तो तुमसे अभागा कौन होगा और उस साधु से अभागा कौन होगा जो माला फेरकर बाँट रहा है? तुझे इतना समय मिल कहाँ से गया?

निर्ग्रन्थों को इन निर्माण के कामों में नहीं लगाना। निर्ग्रन्थ के श्रीमुख से तो सिर्फ जिनवाणी सुनना। उनके हाथ का आशीष लेकर लोक के शीर्ष पर विराजमान होने का पुरुषार्थ करना। परन्तु जगत् के प्रपंच में योगियों को मत लगाना। जगत् की लीला सुनो, यही वृत्ति चलती रही तो छठवें गुणस्थान की चर्या मानना। पण्डितजी! अर्हन्त को नमोऽस्तु निवेदन करना, निर्ग्रन्थों को नमोऽस्तु निवेदन करना। अट्ठाईस मूलगुणों का पालन करना, समिति, गुप्तियों की भावना रखना और उनका पालन करना, जीवों की रक्षा के परिणाम रखना, यह छठवाँ गुणस्थान है। यह छठवें गुणस्थान की चर्चा नहीं है किसी श्रावक के गले में माला डालना। यह पंचम और चतुर्थ, पहले गुणस्थान की चर्या है। जो माला उतारके फेंक चुके हैं, जो माला तोड़के फेंक चुके हैं, जब वे स्वयं के गले में माला नहीं डाल रहे हैं, तो पर के गले में माला डालकर राग के मल को क्यों?

यह निर्ग्रन्थ चर्या प्रारम्भ हो गई है, यह लोकाचार प्रारम्भ बन चुका है, लोगों को खुश करने का विचार बन चुका है। ध्रुव सत्य है कि यह छठवें गुणस्थान की चर्या नहीं है। छठवें गुणस्थान की चर्या में चौवीस घण्टे समय नहीं मिलता, इतना काम मेरे पास है। अट्ठाईस प्रतिक्रमण करना, अट्ठाईस मूलगुणों का पालन करना। ज्ञानियो! इनका पालन करना, यह छठवें

गुणस्थान की वृत्ति है। जो स्वात्मस्वरूप में लीन हो जाना है, यह सातवें गुणस्थान की वृत्ति है। हे सम्यग्दृष्टि श्रावक! अभी तूने व्यवहारधर्म को ही नहीं पहचाना। लोकाचार को व्यवहार धर्म मान लिया है, यह तुम श्रावकों की बहुत बड़ी महान् भूल है। संतान को जन्म दे दिया और उनसे कहो कि महाराज बन जाओ, सो कहता है, कि अब पहले धर्म निभा दूँ। ज्ञानी! यह कोई धर्म है क्या? सीधा बोल कि रागियों को जोड़ लूँ। राग में डूबने को धर्म कह रहा है, जबकि धर्म तो रत्नत्रय है। राग कोई धर्म होता नहीं, राग में धर्म होता नहीं। धर्म में राग होता नहीं। वस्तुव्यवस्था भिन्न है, लोकव्यवस्था भिन्न है। इतना सुन्दर दर्शन दे दिया आचार्य महाराज ने। हे ज्ञानी!

सम्यक्त्वं भावयेत्क्षिप्रं, सज्ज्ञानं चरणं तथा।
कृच्छात्सुचरितं प्राप्तं, नृत्वं यति निरर्थकम्॥ 45॥

उस जीव का नरजन्म निरर्थक है जिसने सम्यक्त्व की आराधना नहीं की। कम-से-कम द्रव्य-मिथ्यात्व का तो त्याग करो। कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र से तो दूर हो जाओ। सुगुरु, सुदेव, सुशास्त्र के नजदीक आओ। तत्त्व की गवेषणा का विचार करो। प्रशम, अनुकम्पा, संवेग, आस्तिक्य इन भावों का विचार करो। विश्वास रखना विद्वानो! चर्या के ही श्रावक नहीं दिखोगे तो परिणति के श्रावक कहाँ होंगे? यह श्रावक नल की टोंटी में छन्ना लगा देते हैं, उस थैली की बिलछानी कब होगी? महाराजश्री! दूसरे दिन दूसरी लगा देंगे। अहो! यही सम्यग्दर्शन की चर्या है, यही सम्यग्दृष्टि की क्रिया है? एक माँ ने एक बूँद बिलछानी जमीन पर गिरा दी तो सात भव सूकरी, सात भव कूकरी, सात भव श्यालनी बनी, तो आप कल्पना करो आपने कितना पानी ढोला है बिना छना? वे दिन कहाँ चले गये? क्या म्यूजियम में देखने जाओगे कि पानी कैसे छनता है? धन्य हो श्रावको! कुएँ से पानी भरकर ला रहा है और कुएँ की बिलछानी कुएँ में कर रहा है। यह दया धर्म है। सत्यार्थ मार्ग को असत्यार्थ बोलने लग जाओ, असत्यार्थ को सत्यार्थ बोलने लग जाओ। जब-जब पर्युषण पर्व आते थे, गृहस्थ भी पर्व के दिनों में चन्दीवा लगा लेते थे, कुएँ से पानी लेकर आते थे। एक सुधी श्रावक भी व्रतों के दिन में दूसरे पानी का उपयोग नहीं करता, कुएँ से पानी लेकर आता है। दयाधर्म का पालन कर रहा था। जैनदर्शन स्वच्छता की बात नहीं करता, अहिंसा की बात करता है। स्वच्छता ने अहिंसा को गौण कर दिया है। मैं तो जानकर कहता हूँ।

बुन्देलखण्डी कहावत है कि जी के राज में रहिओ, ऊकी वैसी कहियो। ऊँट बिलैया ले गई हाँजू कहियो।

जिसके राज में रहना, उसकी-जैसी कहना और राजस्थान के ऊँट को बुन्देलखण्ड की बिल्ली पकड़ कर ले गई। ठीक है न? इतने बड़े ऊँट को बिल्ली पकड़कर ले जा सकती है क्या? लेकिन यह पंचमकाल की विलैया ऐसी है कि जिसका राज होता, वैसा कहे, वैसी कहना। यह सम्यग्दर्शन की भाषा नहीं है। ऊँट को बिल्ली नहीं ले जा सकती है। सम्यग्दृष्टि सत्यार्थ मार्ग को सत्यार्थ मार्ग ही कहेगा और जो असत्यार्थ मार्ग है, वह असत्यार्थ ही कहेगा। भैया! चरणानुयोग को भी सम्भालना, करणानुयोग को भी सम्भालना और अपनी परिणति को भी सम्भालना। धर्म के नाम पर भयभीत होकर अधर्म का धर्म मत स्वीकार लेना। धाय का दूध भी दूध होता है, गाय का दूध भी दूध होता है, लेकिन 'दूध' संज्ञा को सुनकर अकौआ का दूध लाकर रख देगा, तो आँखें ठीक हो जायेंगी क्या? अरे! ऐसी ठीक हो जायेंगी कि कभी ठीक ही न करना पड़ेगी। ऐसे-ही ध्यान रखना जीवन में, धर्म के नाम पर चले मत जाना। दूध, दूध संज्ञा एक है, परन्तु स्वभाव एक नहीं है। शब्द समान तो हो सकता है, लेकिन अर्थ समान नहीं होता है। धाय को भी माँ कहा जाता है और जन्म देने वाली माँ को भी माँ कहा जाता है; परन्तु सत्य बताना, दोनों माँ में अन्तर नहीं है क्या? अन्तर है। यह श्रमणसंस्कृति, यह नमोऽस्तु शासन धाय-माँ नहीं है, यह जन्म देने वाली माँ है। इसलिए मुमुक्षु! जिनशासन में जहाँ बैठे हो, अपने धर्म को कर्त्तव्य मानकर मत मानना, अपना धर्म मानना। एक अध्यापक का इतना समय निकल गया सेवा करते-करते। जब आप पढ़ाने जाते हो, तो प्रतिदिन आनंदित होकर जाते हो, कि चलो, पढ़ाने जा रहे हैं। कभी-न-कभी तो थक जाते हैं कि जाना ही पड़ेगा। क्योंकि वेतन के पीछे तन लगाना पड़ता है। तब भी ज्ञानी! धीरे-से कहना पड़ता है 'क्या करूँ? कर्त्तव्य का पालन तो करना ही पड़ता है।' इसलिए जैनदर्शन कहता है, कि कर्त्तव्य जो है, उसको सफलता नहीं। कर्त्तव्य बुद्धि है तो कर्त्तव्य परधीन है। जिनशासन में धर्म की जो व्याख्या है, वह स्वाधीन है, उसका नाम धर्म है। इसलिए जब भी जिनालय में आना तो कर्त्तव्य निभाने के लिए मत आना, धर्म के लिए ही आना। मुनिमार्ग चलता रहे, इसलिए मुनि नहीं बना हूँ। मुनिमार्ग का कोई ठेका नहीं लिया है। मेरी आत्मा का उद्धार हो, इसलिए मुनि बना हूँ। स्वात्म दृष्टि है, स्वकल्याण पर दृष्टि है तो पर-कल्याण सम्भव है। यदि निज-कल्याण पर भी दृष्टि नहीं है, तो पर-कल्याण क्या कर पायेगा?

एक अस्सी/नब्बे वर्ष का वृद्ध है। उसकी छड़ी कांप रही है, शरीर कांप रहा है। बेचारा जमीन पर टेक-टेक कर चल रहा है। गिर-पड़ रहा है। जो स्वयं पतित हो रहा है, वह किसी मोटे आदमी को उठा ले, क्या यह सम्भव है? बालक जो स्वयं गिरता हो, वह दूसरे को क्या उठा पायेगा? जो स्वयं ही चारित्र से शून्य हो चुका हो, जो स्वयं ही श्रद्धा से शून्य हो चुका

हो, जो स्वयं ही ज्ञान से शून्य हो चुका हो, वह जीव दूसरे को क्या उठा पायेगा? इसलिए सबसे पहले स्वयं के दर्शन-ज्ञान-चारित्र को दृढ़ करना। आज से कर्त्तव्य करना बन्द करो। जैसे विधान में एक बार जो चढ़ाता है, वह स्वाहा बोलता है, बाकी सब द्रव्य चढ़ाते रहते हैं। बिल्कुल समझ में आता है कि यह कंडक्टर है, इन्द्र है, या ड्यूटी कर रहा है? अरे! अहोभाग्य से तुम विद्वान् हो। धन्य हो। कितनी तपस्या की होगी कि तेरे श्रीमुख से जिनवाणी निकल रही है। यदि किसी की गाड़ी का क्लीनर बना होता तो तिजारा-जयपुर ही बोलता रहता, पूरा जीवन इसी में निकल जाता। किसी अभागे कुल में जन्म लिया होता तो सब्जीमण्डी में बैठा होता और चिल्लाता टमाटर, केला आदि। धन्य हो। अहोभाग्य समझता हूँ कि तुम बेचारे श्रावक घर में बेटा-बेटी को बुलाते हो, मुख से अर्हन्त के सूत्र निकल रहे हैं। इससे बड़ा सौभाग्य क्या होगा? ज्ञानियों, विद्वानों, त्यागियों, व्रतियों से कहना कि इतनी साधना पूर्व में की होगी, जो श्रुत मिला है। अब अपनी शैली बदलना कि आज से मैं मंत्र भी बोलूँगा और विधान भी करूँगा। जहाँ तक बने, जितना द्रव्य चढ़ाओ, उतना द्रव्य डालकर आना। भेंट का द्रव्य तो ले लूँगा, क्योंकि गृहस्थ हूँ, परिवार चलाना है; लेकिन अर्हन्त की पूजा करने में अपनी जेब का चढ़ाना। मन्दिर में पुजारी मत लगाना, पुजारी बनकर रहना।

कार्तिकेय स्वामी ने 'कार्तिकेयानुप्रेक्षा' ग्रन्थ में लिखा है और शुभचन्द्र स्वामी ने संस्कृत टीका में लिखा है। जितने विद्वान् हैं, वह इस बात को अपने व्याख्यान में जरूर बोलना। आज नगर में मुनिराज पधार जायें, बड़े नगरों में बाहर के नौकरों को बुलाकर चौके लगवा दिये जाते हैं। पेटी रख देते हैं फलों की, नौकरों से आहार बनवाते हैं। विशाल-विशाल शिखर-बद्ध मन्दिर बन गये, प्रतिमा विराजमान करवा दिये, कहीं से पुजारी बुलाकर पूजा करवा दी। ज्ञानी! अर्हन्त की पूजा, निर्ग्रन्थ को दान तू नौकरों से करवा रहा है, सन्तान का जन्म भी तू नौकरों से ही करायेगा क्या? यह तेरी सन्तान कहलायेगी या नौकर की सन्तान कहलायेगी? जैसे सन्तान का जन्म नौकर से नहीं कराया जा सकता है, वैसे-ही अर्हन्त की पूजा, निर्ग्रन्थों को दान हाथ से किया जाता है। स्वयं ही करना। गप्पें नहीं करना आज से, तत्त्वचर्चा करना। विश्वास रखना, घर की देहरी देखने से ही उसके वंश का पता चल जाता है, मन्दिर की देहरी देखते ही समाज का पता चल जाता है। देहरी शोभायमान हो रही है तो लोग भी अच्छे होंगे घर में। मन्दिर की देहरी शोभायमान हो रही है तो समाज भी अच्छी होगी इस नगर में। अपने सगे-सम्बन्धियों से यही बात करना कि सन्तान का जन्म नौकरों से नहीं कराया जाता है, ऐसे-ही अर्हन्त की पूजा और निर्ग्रन्थ को दान नौकरों से नहीं कराया जाता है। बराबर है? पर के द्वारा कराया गया दान/पूजा तेरे पुण्य का साधन नहीं है। कर्मक्षय करना है तो

परिणामों की विशुद्धि के लिए करना है या क्रिया करने के लिए करना है? परिणामों की विशुद्धि स्वयं के द्वारा होगी या पर के द्वारा होगी? विद्वानों ने बाहर की परम्पराओं को पकड़ कर जैनदर्शन में प्रवेश करा दिया। घण्टी कोई बजाये, जल कोई चढ़ाये, तुम तो सवा रुपया दे जाओ, तुम्हारे दिन अच्छे हो जायेंगे। यह परम्परा जैनदर्शन में प्रवेश क्यों कर गई? आप तो फोन पर बोल दो, आपके नाम की पूजा होती रहेगी। परिणामों की विशुद्धि के लिए शुभोपयोग के लिए तूने पूजा की थी या मात्र क्रिया कराने के लिए तूने पूजा कराई थी? शुभोपयोग के लिए पूजा कर रहे हो, अशुभोपयोग से बचने के लिए पूजा कर रहे हो तो उपयोग की धारा तो स्वयं की स्वयं में ही लगाना। हो सकता है कि आपके नाम की सम्मेदशिखर में पूजा हो रही हो, क्योंकि तुम दान दे चुके हो। यह अच्छा काम था, व्यवस्था तो बन रही है, लेकिन हे ज्ञानी! आज तेरे नाम की सम्मेदशिखर में पूजा हो रही थी, आज ही तेरे घर में तेरी बहु फांसी लगाये बैठी थी। दाताओ! तुम्हें फल कौन-सा मिलेगा? यदि आज तू मन्दिर में पूजा करने चला जाता, तो घर में झगड़ा न होता, तो बहू फांसी पर न चढ़ती।

मित्रो! इतनी बात मेरी मान लेना, मन्दिर में मन न भी लग रहा हो, तब भी घर से भागकर मन्दिर में बैठ जाना। क्योंकि काय, वचन योग तो तुम्हारा अशुभ से बच गया। जब-जब अशुभ भाव आये, देव-शास्त्र-गुरु के पास आकर बैठ जाओ। प्रवचन की भाषा बदलनी चाहिए। कविता पढ़कर बहुत सारे लोगों को हँसाया-रुलाया है। अब अपनी कविता बदलनी पड़ेगी। बहुत सारे चेहरे शून्य हो जायें, गद्‌गद् भाव आ जाये, ऐसी कविता हो। इतना समझ में आना चाहिए कि एक वीतरागी दिगम्बर तपोधन किसी भी जगह आकर बैठ जायें तो क्रूर-परिणामी जीव भी शांत होकर बैठ जाते हैं। यह आश्चर्य नहीं है, अनहोनी नहीं है। जब प्रवचन-सभा में हजारों लोग शांत बैठ सकते हैं, तो जंगल में बंदर, भालू भी शांत होकर बैठ सकते हैं। यह सम्भव है। इसलिए आचार्यमहाराज कह रहे हैं अगली कारिका में, हे ज्ञानी! सुर-दुर्लभ नरदेह के प्राप्त करके नारकी बनने का उपक्रम मत कर। सुरदुर्लभ नरदेह को प्राप्त करके देहातीत होने का उपक्रम कर। जैसा संयोग हो है, जैसी भाषाशैली होती है, जीव के भाव वैसे होना प्रारम्भ हो जाते हैं। "पानी की बूँद जमीन पर गिरे, और मिट्टी गीली न हो, ऐसा होता नहीं है। जिनेन्द्र की जिनवाणी कर्णरन्ध्रो पर गिरे और हृदय गीला न हो, ऐसा होता नहीं है। कुछ-न-कुछ परिणमन होता ही है। और कदाचित् तुमने नरकगति का बंध कर भी लिया हो, तो यह नरक में भी काम आयेगी। इसलिए तो यह सब काम छोड़कर अर्हन्त की देशना को सुनो। हे ज्ञानी! जितना भोला चेहरा लिये यहाँ बैठे हो, उतने चौबीस घण्टे भोले हो जाओ, तो देखना, मोक्ष तेरी मुट्ठी में है, कहीं बाहर नहीं है।

अतीतेनापि कालेन, यन्न प्राप्तं कदाचन।
तदिदानीं त्वया प्राप्तं सम्यग्दर्शनमुत्तमम्॥ 46॥

उत्तमे जन्मनि प्राप्ते, चारित्रं कुरु यत्नतः।
सद्धर्मे च परां भक्तिं, शमे च परमां रतिम्॥ 47॥

कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं, कि अतीतकाल में सम्यक्त्व को तूने प्राप्त नहीं किया। यदि अतीतकाल में सम्यक्त्व प्राप्त कर लिया होता, तो कलिकाल में काले दिनों में अपना काला चेहरा यहाँ दिखाने को नहीं मिला। काले काल में लोगों के परिणाम भी काले हैं। कोई ऐसा पुण्य का द्रव्य रखा था जो आज अपने काम में आ रहा है। ऐसे खोटे काल में जिनालय के द्वार पर बैठे हैं, जिनवाणी सुन रहे हैं, पूर्व का पुण्य काम कर रहा है। कितने दिन नष्ट कर दिये हमने? एक जीव है जो प्रातः से छुरी उठा रहा है, एक वह जीव है जो प्रातः से पिच्छिका उठा रहे हैं। क्रूरता और दया यह दोनों चरम सीमा है। एक पिच्छिका उठाकर जीवों की रक्षा कर रहा है, एक छुरी उठाकर जीवों का घात कर रहा है। अब ज्ञेय बनाइये। आज घर जाकर पत्नी भी तुझ पर बरस जाये तो यही कहना कि यह तेरा दोष नहीं, मेरा पूर्व का कर्म है। तू तो भगवानात्मा है। कह पाओगे ऐसा?

परन्तु ध्यान रखना, पर्याय की प्रत्यासत्ति। सम्बंधियों में भगवान को तो देखना, परन्तु सम्बन्धियों को भगवान मानकर मत बैठ जाना, नहीं तो मन्दिर की जगह पत्नी की पूजा प्रारम्भ कर देगा। यह पंचमकाल है, सब स्पष्ट करना पड़ता है। पण्डितजी ने भगवानात्मा तो कहा, लेकिन पर्याय की प्रत्यासत्ति नहीं कह पाये, इसलिए परेशान हैं। "जो है, सो है।" यह समझ में आ गया, तो न कभी आँख लाल होगी, न कभी आँख में से पानी आयेगा। कभी पत्नी से खाने में मिर्च पड़ गई, खीर अधिक गर्म हो गई, अब तू क्या करेगा? उसकी आदत है कि जब-जब परोसती है, तब-तब पूछती है—क्यों? कैसी बनी है? वापस बनायेगी भी नहीं, क्योंकि समय नहीं है, तो तू क्या करेगा? कहना, 'देवी! जो है, सो है। तू शांति से रहेगा। अगर तू थाली फेंकेगा, तो खीर भी गई, पत्नी का दुलार भी गया और परस्पर का सम्बन्ध भी टूटा। लोग कहते हैं कि समयसार में चरणानुयोग नहीं है, जबकि समयसार में इतना गम्भीर चरणानुयोग है, आप समझते नहीं हो। काश! तू ऐसा करता, कि खीर गर्म थी तो तू माला फेर लेता। माला भी फिर जायेगी, खीर भी ठण्डी हो जायेगी और तेरा चेहरा भी लाल नहीं होगा। करोगे ऐसा?

जिसे अतीतकाल में तूने कभी प्राप्त नहीं किया, ऐसा उत्तम सम्यग्दर्शन प्राप्त हुआ है। यह योग पूर्व में नहीं मिला, यह अल्पकाल में पुरुषार्थ का फल है। आज कलिकाल में सद्गुरु का संयोग प्राप्त हुआ है। उसको प्राप्त करके, ज्ञानी! उत्तम जन्म को प्राप्त करके, श्रेष्ठ गति को प्राप्त करके, "चारित्रं कुरु यत्नतः" अब संयम में रमण (यत्न) करो। जिसने नरक आयु, मनुष्य आयु, तिर्यंच आयु का बन्ध कर लिया, उसके संयम धारण करने के परिणाम हो ही नहीं सकते। जिस जीव ने देव आयु का बन्ध किया होगा, और-किसी आयु का बन्ध नहीं किया होगा, वही संयम धारण करने के परिणाम कर सकता है। चार आयु का बन्धक जीव कभी भी संयम धारण नहीं कर सकता। अपना-अपना निर्णय करना भीतर बैठकर। उत्तम कुल में जन्म ले सद्धर्म में उत्तम भक्ति करो, साम्य भाव से समता/सामायिक में प्रेम करो तो जगत् के सभी प्राणियों से प्रेम स्वयमेव ही हो जाता है, क्योंकि समता ही सामायिक है।

जहाँ प्राणीमात्र से समता है, वही सामायिक है। जहाँ प्राणीमात्र के प्रति साम्यभाव है, आर्त्तध्यान कर त्याग है, ऐसे साम्य-परिणाम का नाम ही सामायिक है। आँख बन्द कर बैठ जाना मात्र सामायिक नहीं है। आर्त्त-रौद्र ध्यान का त्याग करना सामायिक है।

आचार्यप्रवर गुणभद्र स्वामी विरचित 'आत्मानुशासन' ग्रन्थ जैनपरम्परा में एक अभूतपूर्व ग्रन्थ है। जिस ग्रन्थ में आचार्य गुणभद्र स्वामी कह रहे हैं, अहो! एक वह जीव है जो विषयों के लिए तपस्वी पद का विसर्जन कर रहे हैं और एक वह जीव हैं जो तपस्या के लिए चतुर्विधसंघ का विसर्जन कर रहे हैं। इस जगत् में निन्दा की कोई सीमा है तो, वह यही है कि विषयों के लिए जो तपस्वी पद का विसर्जन कर रहा है उससे बड़ा निन्दनीय जगत् में कौन होगा? और जो तपस्या के लिए चतुर्विध संघ का विसर्जन कर रहा है, उससे बड़ा प्रशंसनीय तपस्वी कौन होगा? सम्पूर्ण जैनवाङ्मय रहस्यों से भरा पड़ा है।

एक-एक द्रव्य का एक-एक द्रव्य पर जो प्रभाव पड़ रहा है, वह आपको सहज रूप में समझने की आवश्यकता है। जड़द्रव्य आकर्षित कर रहा है। चेतन द्रव्य भी आकर्षित कर रहा है। जिसके शक्त्यांश अधिक होते हैं, वह अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। प्रतिक्षण अपने आपको सम्भालकर, अपने आपको समझाकर, अपने आपका वेदन करके, गमन करने की आवश्यकता है। यह आवश्यक नहीं है कि आप आसन लगा कर वस्तुस्वभाव को समझ पायेंगे। आप मार्ग में चलते-चलते भी तो वस्तुस्वभाव को समझ सकते हो। चेहरे पर आपकी आँख जा रही है और आँख जाने के बाद पुनः आँख आ रही है, इसका तात्पर्य क्या है? उसी समय आयुबंध का काल आ गया तो, हे ज्ञानी! उसी ठेले के आम के फल को खा सके या न खा सके, परन्तु मृत्यु होने पर उसी आम के फल में कीड़ा बन गया और जब

उस पुरुष का तीसरा दिन आया, तो बेटे गये, उसी आम के मालिक से पूरी टोकरी खरीद कर लाये, मालूम चला कि आम में वह कीड़ा बैठा था, आम के फल के साथ बेटे ने उस पिताजी के जीव को भी खाने में परोस दिया। इसलिए ध्यान दो, मार्ग में चलते-चलते खाते तो नहीं हो, परन्तु खाने के परिणाम नहीं छोड़ पाते। बहुत बड़ी तपस्या नहीं कर पा रहे हो तो कोई विकल्प नहीं है, इतनी तो साधना करना प्रारम्भ कर दो। मुख से भोगने के लिए कब-कब मिलता है? आँखों से देखनेवाला रूप कब मिलता है? मुख में आम का फल रख पाओ या न रख पाओ, लेकिन आँखों से तुमने भोग डाला है, तो कर्म कहता है कि आपके मुख में आया या नहीं आया हो, लेकिन मेरे मुख में तू तो आ चुका है। बंध होगा कि नहीं?

आपने पैसों से कितने द्रव्य का भोग किया है और बिना पैसों के कितने द्रव्य का भोग किया है? दस/पचास रुपये के फल को खरीदने जाता है, तो भी कितने फलों को टटोल कर देखता है, कितनी दुकानों पर झांक-झांक कर देखता है, और यह कहता है कि मैं बहुत बड़ा ज्ञानी हूँ, ठगकर नहीं आऊँगा। परन्तु यथार्थ मानिये, प्रतिक्षण ठगा जा रहा है। जब फल खरीद रहा था, तब खड़ा कहाँ था? जिनालय में, जिनवाणी के पास, निर्ग्रन्थ गुरु के पास या कोने की दुकान के पास? अहो! बननेवाला अशरीरी भगवान् और थैले को हाथ में लिए फल वाले की दुकान के सामने घूम रहा है। अरे! अपनी भविष्य की भगवानात्मा की पर्याय को तो देखा। और सोच रहा था कि मैं ठग कर नहीं जाऊँगा। पचास पैसे के पीछे फल वाले की दुकान पर किच-किच कर रहा था, कि इतने नहीं। पचास का सिक्का महत्त्वपूर्ण था कि आयुकर्म के निषेक महत्त्वपूर्ण थे? पचास पैसे के पीछे तूने पन्द्रह मिनट खत्म किये, अन्तिम श्वास का समय आया तो यही ज्ञानी डॉक्टर से बोल रहा है, कि पचास लाख ले लो, मेरा बेटा अमेरिका से आ जाये, इतने पल और जीलूँ। पैसे की रक्षा के लिए, पैसे को कमाने के लिए आयुकर्म का नाश किया, और अल्प आयु को बचाने के लिए पैसे का नाश हो रहा है, बताइये कहाँ तू ठगा गया?

पुनः कहता हूँ। एक व्यक्ति व्यापार कर रहा था। व्यापार करते समय उसने निर्ग्रन्थ गुरु के चरणों में रात्रिभोजन का त्याग किया था। बेटे की माँ ने समाचार भेजा, स्वामी! आप घर आ जाओ, रात्रि हो रही है, आप भोजन नहीं कर पाओगे, आप काम छोड़ दो। तो मालूम क्या सोचता है? भोजन तो रोज करता हूँ, आज ही तो ग्राहकी का समय है, आज पैसे कमा लेने चाहिए। उस जीव ने आज भोजन नहीं किया। रात्रिभोजन का त्याग था उसका ,एकासन हो गया। किया नहीं एकासन, वो तो हो गया। एक बार का भोजन नहीं करके यह व्यक्ति

भूखा सो गया। जब भूखा सोया है तो शरीर में कमजोरी आयेगी कि नहीं? पैसे के राग में शरीर को नहीं देखा, एक दिन ऐसा हुआ कि रोग अधिक बढ़ गया। वैद्य जी के पास जाता है, बोलता है कि जितना चाहिए उतना ले लो। मेरे छोटे-छोटे बच्चे है। बस, प्राण बच जायें। पैसे के राग में शरीर का नाश किया और आज शरीर के राग में पैसे का नाश किया। तेरा विवेक कहाँ गया? पहले से विवेक से काम करता, अपनी सीमा में काम करता, तो तू परमात्मा के चरणों में सिर टेकता रहता। न पैसा जाता, न शरीर जाता और धर्म तेरे साथ रहता। आप लोग ऐसा नहीं करते होंगे न? मेरी ओर न झांको। मैंने तो निर्णय कर लिया था। "जो है, सो है।" कोटि-कोटि द्रव्य को देकर भवन खड़े किये जा सकते हैं, अनेकानेक प्रकार से शरीर को कष्ट देकर पैसा अर्जित किया जा सकता है, हे मुमुक्षु! कोटि-कोटि द्रव्य को देकर श्री जिनालय की स्थापना की जा सकती है, परन्तु कोटि-कोटि द्रव्य को देकर समता परिणाम खरीदे नहीं जा सकते। इसलिए मैं यह कह रहा हूँ, कि जितना बने, एक मिनट के भी खण्ड कर दो, काल के खण्ड कर दो, उतना समय भी आपको मिलता है तो सामायिक करने बैठ जाओ। अड़तालिस मिनट नहीं मिल रहे, सवा दो घण्टे नहीं मिल रहे आपको, वारह वर्ष, बारह महीने नहीं मिल रहे आपको, तो कोई विकल्प नहीं करना, एक समय प्रमाण भी सम्यक्त्व की झलक आ गई, तो अर्द्धपुद्गल परावर्तन के अन्दर-अन्दर नियम से निर्वाण होगा। श्वास का अन्दर जाना या निःश्वास का बाहर आना, इसमें तो बहुत समय हो गया। पलक का ऊपर से नीचे आना एक निमेष है। उस निमेष काल में तो असंख्यात समय हो गये। एक समय-प्रमाण काल भी जीव को सम्यक्त्व प्रगट हो गया, तो सत्य है, कि वह नियम से निर्ग्रन्थ मुनि बनेगा और नियम से निर्वाण को प्राप्त करेगा। संस्कार काम आते हैं। एक क्षण भी यहाँ आकर बैठे हो, धोखे से भी बैठे होंगे। पण्डितजी! कबूतर निकल रहा था। वह जानकर पंखे के पास नहीं गया, धोखे से गया था। उसको कष्ट होगा कि नहीं? हे ज्ञानी! तू अज्ञानता में विषयकषाय के पास जायेगा, तो पीड़ित तो होगा। किसी बगीचे में बिना इच्छा के भी गुजर गये, वहाँ के पुष्पों की सुगंध आपके पास पहुँचेगी कि नहीं? ठण्डी श्वास आयेगी। हे ज्ञानी! मिथ्यादृष्टि जीव भी तीर्थंकर के समवसरण से निकलता है, उस जीव को भी संस्कार पड़ गये। किसी-न-किसी पर्याय में वह सम्यक्त्व को प्राप्त करता-ही-करता है। उदास भाव से भी जिनवाणी सुन रहा है, तो वह भी अपने हर्षभाव को प्रगट कर लेता है। जीवन में आज से धन की रक्षा के भाव मत करना। आप गृहस्थ हो, गृहिस्थी चलाना है, तो सहज रूप से चलाना। विद्वानों ने आपको बताया नहीं है, जबकि इनको यह बताना चाहिए था कि आकांक्षा से न धन मिलता है, न धरती मिलती है, न कुटुम्ब मिलता है। आज जिस

कुल में जन्मे हो, ऐसे धर्मात्मा कुल, उच्च कुल में जन्मे हो, तो आप अपनी इच्छा से ऐसे उत्तम कुल में जन्मे हो क्या? अपनी इच्छा से सब काम हो रहे होते, तो आज यहाँ नगर-नगर में झाड़ू लगाने वाला नहीं मिलता, ज्ञानी! आज गली-गली में ऑटोचालक नहीं मिलते। ऐसा कौन-सा व्यक्ति है जो यह चाहता है कि दूसरे की गटर को साफ करूँ? मनुष्य-जैसा अहंकारी सारे ब्रह्माण्ड में नहीं है। इस अहं में मत डूबना कि मेरे पास सबकुछ है। इस शब्द से तुम्हारे पास कुछ नहीं है। आप श्रीपति हो, इसलिए श्रीपति नहीं हो। श्रीजी के पास गये होंगे पूर्व में, इसका फल है जो तुम श्रीपति हो। इतने सारे लोग नगर में भ्रमण कर रहे हैं। कोई दु:खी है, कोई सुखी है। एक वे लोग हैं जो रोटी के टुकड़ों के लिए तड़प रहे हैं। एक वह लोग हैं जिनको खिलाने के लिए रोटी वाला तड़प रहा है। सत्य यही है कि "सबके दिन एकसे नहीं होते हैं।"

जिनके द्वार पर कभी हाथी बैठा करते थे, उनके द्वार पर कौआ भी नहीं बैठते हैं। कौआ भी पुण्यात्मा के द्वार पर ही आते हैं। भैया! जिसके घर में खाने-पीने के लिए होगा, छोटे-छोटे बच्चे होंगे, झूठन बिगड़ेगा, वहीं तो कौवे आयेंगे। जिसके घर में बच्चा नहीं, खाने के लिए एक दाना नहीं, उस अभागे के घर में क्या कौआ बैठेगा? कौआ भी पुण्यात्मा के द्वार पर ही आते हैं। फलवान वृक्ष को ही पत्थर खाने को मिलते हैं। जिसके ऊपर फल ही नहीं हैं, उसके ऊपर कौन पत्थर मारेगा? पत्तेदार वृक्ष की छाया में पथिक बैठते हैं। जिस वृक्ष की छाया ही नहीं है, तो कौन पथिक बैठेगा? इसलिए मित्रो! इतना ध्यान रखना, हमारे घर में यदि भीड़ आ जाये, तो उसको भगाने का प्रयास मत करना। पण्डित जी! आपके घर में मुनिराजजी को आहार हुआ और बाहर से बहुत सारे श्रावक आ गये, भैया! उनको भगाने की चेष्टा मत करना, यह तेरा अहोभाग्य है कि तीनलोक के नाथ की मुद्राधारी निर्ग्रन्थ विराजे हैं, हे श्रावको! तुम्हारे द्वारे मुनिराज पधारे हैं। मुनिराज को मत देखना, भावी सिद्ध परमात्मा को देखना। आज हम तुम्हारे हाथ पर ग्रास रख पायेंगे और जब तुम सिद्ध बन जाओगे, तो हाथ ही जोड़ पायेंगे, हाथ पर ग्रास नहीं रख पायेंगे। भावी भगवान् ही निर्ग्रन्थ मुनि के हाथ पर ग्रास रख सकता है। जिसने नरक आयु का बंध कर लिया है, वह दिगम्बर मुनि के हाथ पर ग्रास नहीं रख सकता। यह 'षट्खण्डागम' से बोल रहा हूँ। दिगम्बर आम्नाय में कोई सबसे बड़ा ग्रन्थ है, उसका नाम 'षट्खण्डागम' है। सिद्धांतशास्त्र है। श्रुतपंचमी के दिन वह षट्खण्डागम ग्रन्थ जिसमें आचार्य पुष्पदंत, भूतबलि स्वामी ने सूत्र लिखे और आचार्य वीरसेन ने संस्कृत व प्राकृत मिश्रित टीका लिखी है। जिस जीव के नरक आयु का बंध कर लिया है, वह निर्ग्रन्थ मुनि के हाथ पर ग्रास नहीं रख सकता है। जंगल में सीता व राम ने आहार

दिये। एक जीव देखता रहा, नहीं दे सका। अपने जीवन में ध्यान रखना, हमारी भाषा श्रद्धा को भी जन्म नहीं देती है। हमारी भाषा श्रद्धा को तुड़वा नहीं सकती है। ज्ञानियो! अर्हन्त को पूज रहे हो, परन्तु मालूम होना चाहिए, कि अर्हन्त से अर्हन्त नहीं बनते, निर्ग्रन्थ से अर्हन्त बनते हैं। न्याय की दृष्टि में कथन करो तो असिद्ध को सिद्ध करना पड़ता है। सिद्ध तो स्वयंसिद्ध है, उसे सिद्ध करने की क्या आवश्यकता है? जो असिद्ध है, उसको सिद्ध करना पड़ता है। ध्यान दो।

निर्ग्रन्थ तपोधन तुम्हारे घर में पधारे और श्रावकों की भीड़ आ गई। समझना, तेरा अहो-भाग्य है। बेटे तड़पते हैं कि मेरे घर में कोई मेहमान आ जाये, परन्तु ये धरती के देवता, निर्ग्रन्थ तपोधन तुम्हारे घर पर पधारे, पुण्यात्मा जीव के नियोग से अनेकानेक जीव अपने आप मिल जाते हैं। इच्छा से आप धनपति नहीं बने हो, इच्छा से आप श्रीपति नहीं बने हो। इच्छाओं का निरोध किया था, पूर्व में तपस्या की होगी, पूर्व में साधना की होगी, उसका फल आपको मिला है। इसलिए ध्यान रखना, जिस पुण्य से द्रव्य मिलता है, उस पुण्य की ही आराधना करना चाहिए, द्रव्य की आराधना नहीं करना चाहिए। आप सब पाप के उदय से यहाँ बैठे हो या कि पुण्य के उदय से यहाँ बैठे हो? यदि पुण्य के उदय से यहाँ बैठे हो, तो आपको इन लोगों का सत्कार करने की आवश्यकता नहीं है। आपको उसी का सत्कार करना चाहिए, जिसके नियोग से यह सबकुछ मिला है। भूल चल रही है। कारण क्या है? हे माँ! कभी सुई के छेद में धागा डाला क्या? जब सुई के छेद में सूत पिरोते हैं आप, तो कहाँ-कहाँ देखना पड़ता है? एक सुई के छेद में सूत के पिरोने पर इधर-उधर देखते रहना, चित्त को चंचल करते रहना, दुनियाँ से बात करते रहना, तो धागा पिरो देना क्या सम्भव है? हे जननी! सुई के छेद में धागा पिरोने में एक आँख को बन्द करना पड़ता है। एक आँख को खोलकर, बिल्कुल स्थिर होकर, धागा पिरोते हैं। जब सुई के छेद में चंचल-चित्त से धागा नहीं पिरोया जा सकता है, तो हे मुमुक्षु! चंचल-चित्त में जिनवाणी का प्रवेश नहीं होता है। जो भी वस्तु का ज्ञान होगा, जो भी विवेक ज्ञान होगा, वह शांतचित्त से होगा। भैया! विश्वास रखना, अपने जीवन का भी जीव को निर्णय नहीं है। एक ट्रकचालक के लिये ग्रीष्मकाल में ऐसा समय आता है कि वह कुछ समय के लिए ट्रक को बंद करके खड़ा कर देता है क्योंकि मशीन गर्म हो गई है। रोड़ पर काम करने वाले मजदूरों के लिए कुछ देर के लिए छुट्टी मिल जाती है, आराम करने के लिए। हे ज्ञानी! तुम अपने चंचल चित्त को चलायमान होने पर उसको थोड़ा तो समय दिया करो, कि विश्राम कर लो, अब चिन्तवन करना बन्द करो। चिन्तवन करे, तब भी अच्छा है। लेकिन चिन्तवन करने के लिए समय नहीं है और चिन्ता करते हैं।

कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं–

"सद्धर्मे च परां भक्तिं" हे ज्ञानी! सर्व धर्म में उत्कृष्ट भक्ति से युक्त होकर "शमे च परमां रतिम्" सामायिक करो, समता परिणाम रखो। सारे जगत् की विषमताओं को देखो। क्या आप किसी के ऊपर से संकट दूर कर सकते हो? ज्ञानी! बेटे के सिर में दर्द हो रहा है, तू दर्द मिटा सकता है क्या? मुमुक्षु! तू दवा दे सकता है, सिर दबा सकता है, परन्तु उसकी पीड़ा को हर नहीं सकता। दुआएँ दे सकता है, लेकिन उसकी पीड़ा को बांट नहीं सकता है। सम्यग्दृष्टि विवेकी जीव कष्ट में पड़े व्यक्ति का कष्ट दूर करने का प्रयास तो करता है, लेकिन उसके कष्ट से अपने को कष्ट में नहीं डालता है। हमारी बात आपको उल्टी लग रही होगी; लेकिन यह उल्टी नहीं, सीधी है।

मुनिराज के आपके यहाँ आहार हुए। उनके अशुभ कर्म से अन्तराय आ गया, तो आप रोने लग गये, उससे उनका पेट भर जायेगा क्या? आप कहो कि महाराज! आज मैं भोजन नहीं करूँगा, तो उससे उनका पेट भर जायेगा क्या? अच्छा यह होगा कि तू अच्छे से भोजन करता, फिर महाराज की वैय्यावृत्ति करता। महाराज तो अन्तराय के कारण भूखे रह गये, वह कमजोर हो गये हैं और तू बेचारा दु:ख में आकर भूखा रह गया, तो तू वैसे ही कमजोर हो गया। अब बताओ कौन किसकी सेवा करेगा? विवेकी पुरुष विवेक से काम करता है। आपका कर्त्तव्य था कि अच्छे से भोजन करना चाहिए था। जो साधक अन्तराय को प्राप्त हुआ है, क्षुधा से पीड़ित है, आप उसकी सेवा करते तो अच्छा होता या नहीं?

बेटे के सिर में दर्द हो रहा था, वह तो सो रहा था, तू रात भर जाग रहा था, तो कौन किसके आँसू पोंछे? वह असाता के उदय में पीड़ित है, तू असाता की सोच कर दु:खी होगा, तो असाता का आस्रव होगा कि नहीं? पर की पीड़ा को देखकर पर की पीड़ा में दु:खी होना, यह ज्ञानियो! जैनदर्शन का सिद्धांत नहीं है। पर की पीड़ा में दु:खी न होना, पर की पीड़ा को देखकर उसके दु:ख को दूर करना, यह जैनदर्शन का सिद्धांत है। यदि पर की पीड़ा को देखकर दु:खी होगा, तो यह बताओ ज्ञानी! तू अपने सुख का वेदन कब करेगा? जितने ज्ञानीपुरुष हुए मध्यकाल में, इन सबने जिनवाणी का वाचन/पाठन तो किया, परन्तु जो लोक में चला आ रहा है, उसी को कहते गये, परन्तु जिनागम के रहस्यों में प्रवेश नहीं किया। यदि डॉक्टर ही रोगी को देखकर रोने लग जाये, तो उपचार कौन करेगा? अज्ञानी! यह कहेगा कि कैसा निष्ठुर पुरुष है, इसकी आँखों में आँसू भी नहीं आ रहा है। अरे! तू ही निष्ठुर है, क्योंकि रो-रो कर उसे दु:खी कर रहा है। जो ज्ञानी होगा, वह आँखों से नहीं रोयेगा, करुणा से भरकर उसके कष्ट को दूर करेगा। मार्ग में किसी को कांटा लग जाये, तो उसके कांटे

को निकालोगे या आँखों से आँसू टपकाओगे? ज्ञानी! कांटा निकालो। धैर्य को धारण करके उसके कांटे को निकालना चाहिए। यह है वीतराग जिशासन की परम्परा। अन्यथा निर्ग्रन्थों का मार्ग ही बन्द हो जायेगा। एक सज्जन कह रहे, महाराज! उनके मुख से रक्त निकलने लग गया और तुम यही कहोगे कि बहुत पीड़ा है महाराज को। अरे ज्ञानी-अज्ञानी! तू देह के धर्म को देखकर रो रहा है, तुझे कष्ट होते दिखाई दे रहा है। लेकिन जहाँ कष्ट निकाला जाता है, इसका नाम साधु है। कष्ट देकर कष्ट निकाला जाता है, उसका नाम वैद्य है। किसी के फोड़ा हो गया उसकी शल्यक्रिया करेगा वहीं पर, उसको कष्ट होगा कि नहीं ? सामने वाला कहेगा कि कैसा निर्दयी है? जो छुरी घौंप रहा है, अस्त्र चला रहा है?

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

दुःख का कारण

अनादिकालाज्जीवेन, प्राप्तं दुःखं पुनः पुनः।
मिथ्यामोहपरीतेन, कषायवशवर्तिना॥ 48॥

अनादिकाल से मिथ्यादर्शन एवं मोह के संयोग से कषाय के वशीभूत हुए जीव ने बार-बार दुःख प्राप्त किये हैं।

॥ देशना ॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज "सारसमुच्चय" जी में आत्मा के उस अनुपम गुण की व्याख्या कर रहे हैं, जिसके अभाव में मोक्षमार्ग प्रारम्भ ही नहीं होता। सम्यक्त्व है, तो मोक्षमार्ग है। सम्यक्त्व नहीं है, तो कितना ही ज्ञान हो, कितना ही चारित्र हो, परन्तु यह ज्ञान सम्यक्त्वपने को प्राप्त नहीं होता तो, सम्यक्चारित्र नहीं है। उस बात को पुनः-पुनः समझो। सबको आपने सन्तुष्ट किया है, परन्तु दृष्टि को भीतर नहीं किया, तो जगत् में किसी को भी संतुष्ट नहीं किया। देह की विकल्पता मोक्षमार्ग में कारक नहीं है, जितनी दृष्टि की विकल्पता कारण है। हुण्डक संस्थान वाला पुरुष भी निर्वाण को प्राप्त कर सकता है, लेकिन दृष्टिविहीन निर्वाण को प्राप्त नहीं कर सकता। जिसके तिरछे परिणाम हैं, वह मोक्षमार्गी नहीं है। देह विकृत हो जाये तो तनाव नहीं लाना, परन्तु ज्ञान विकृत हो जाये तो जरूर विचार करना। मुमुक्षु! इसमें शंका मत करना, देह के विपरीतपने से कौन विकृत नहीं हुआ है? मन के विपरीतपने से देह विकृत हुआ है। यह नामकर्म की प्रकृति है। शुभ-अशुभ, यश-अपयश, सुन्दर-असुन्दर जो शरीर प्राप्त हो रहे हैं, यह नामकर्म की प्रकृति है। नामकर्म में जो परिणमन चलता है, वह भावकर्म के भाव से हो रहा है। यदि दूसरे को हीन दिखाने के परिणाम आपके मन में आ रहे हैं बार-बार , तो सुन्दर शरीर भी असुन्दर हो जाते हैं। जो बिल्कुल कामदेव-जैसे हुआ करते थे, मालूम नहीं चला, एक मुहूर्त के अन्दर गलित कुष्ठ हो गया। देह के विकारों ने देह में विकार उत्पन्न नहीं किया है, देही के विकारों ने देह को विकृत किया है। जिसको सुन्दर शरीर भी चाहिए, वे ध्यान रखें, देह के सजाने से सुन्दर शरीर नहीं मिलेंगे, परिणामों को सुन्दर रखने से शरीर भी सुन्दर हो जाते हैं। किसी भी रूप में वर्तमान की पर्याय में सुन्दर लोग भी असुन्दर देखे जाते हैं और असुन्दर लोग भी सुन्दर देखे जाते हैं। जितने आप व्यर्थ के शौक कर रहे हैं, यह यथार्थ में सुन्दरता की प्राप्ति के साधन नहीं हैं। जितने सुन्दर परिणाम होंगे, पंचपरमेष्ठी की भक्ति के परिणाम होंगे, विश्वास रखना, आपका शरीर, आपका रूप स्वयमेव ही सुन्दर होता चला जायेगा। पुरुषार्थ तो आज से ही प्रारम्भ करो कि कितने विषयों

में शांत रहे सकते हो। और स्वयं ही जानने की आवश्यकता है। कषाय भाव जैसे-ही प्रगट होने लग जाये, ज्ञानी! तुरन्त जानना प्रारम्भ कर दो। कितना सजग होने की आवश्यकता है। जैसे आप विशेष हैं, विशिष्ट धनपति हैं, विशेष सामग्री घर में है, कैमरे लगे हुए हैं,अलग से आपने घर के बाहर पुरुष बिठाकर रखा है, वह मात्र देखता है कि कौन-कैसा पुरुष आ रहा है और कौन जा रहा है।

मात्र आप उससे कह गये थे, लेकिन कैमरे में क्या-क्या झलक रहा है? बस, तटस्थ होकर सुनना, जैसे कैमरे में नाना प्रकार के चित्र आ रहे हैं। एक पुरुष को स्वतन्त्र बिठाया है, उसको दूसरा कार्य नहीं दे रहे हो, मात्र आप देखते रहना। ऐसे-ही अपने ही अन्तस् में परिणामों की चंचलता (तीनों योग मन, वचन, काय योग से चलायमान) कितने प्रकार के भाव/कुभाव तेरे अंतरंग में आ रहे हैं, उन सबको जानने के लिए निज को ही ज्ञाता बनाकर बिठा लीजिए। विश्वास रखो, मात्र यही करना, कि कैसे-कैसे परिणाम आ रहे हैं? जिन भावों को अन्य पुरुष ने किया है, यह भाव मुझे आपको मालूम चल जाये, तो चेहरा उदास हो जाता है। शिष्ट पुरुष को, पूज्य पुरुष को, सम्मानीय पुरुष को उस पुरुष के द्वारा कोई बात आपको मालूम पड़ जाये, भले आप उन बातों से युक्त न हो, वहीं आपका चेहरा उदास हो जाता है कि इनके द्वारा ऐसा हो गया जिसकी कल्पना भी नहीं कर सकते थे। मेरे मित्रो! जिसके प्रति तुम्हारी आस्था है, यदि आस्थावान् से कोई अशुभ कर्म हो जाये, तो बहुत पीड़ा होती है, बहुत कष्ट होता है।

अब मेरा आपसे प्रश्न है कि आपको मुझ पर आस्था है, भिन्न पुरुष पर आस्था है, उसके द्वारा अशुभ बोलने पर तुम्हारे भाव बिगड़ते हैं तो तुम्हारे प्रति दूसरे की आस्था है क्या? आपके प्रति आस्था है तो, अशुभ हो गया तो आपके द्वारा कितने लोगों की आस्था का नाश हो जायेगा। पर की सत्ता में भी आप निमित्त हो, पर की असत्ता में भी आप निमित्त हो। जंगल में मुनिराज का आहार बंदर, नेवला, सर्प, सूकर इन चार वनचर प्राणियों ने देखा कि नहीं देखा? आहार देखते-देखते बोध हुआ, सम्यक्त्व को प्रगट किया। बिल्कुल शांत होकर सुनो। लगता यह है कि यह जड़ की क्रिया चल रही है। जो कर्ण का विषय अंत:पटल में प्रवेश नहीं करता है, चक्षु का विषय अन्त:पटल में प्रवेश कर जाता है। ज्ञान का विषय है। जैनदर्शन में सवा महिने के बच्चे को सबसे पहले मन्दिर ले जाया जाता है। माँ! इस परम्परा को समाप्त मत कर देना।

आहारदंसणेण य तस्सुवजोगेण ओमकोठाए।
सादिदरुदीरणाए हवदि हु आहारसण्णा हु॥135॥

चार संज्ञाओं की व्याख्या 'गोम्मटसार जीवकाण्ड' जी में आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती ने की है। उसमें लिखा हुआ है। यदि व्यक्ति को भूख भी लगती है तो आहार के देखने पर, उसमें उपयोग जाने पर, असाता की उदीरणा होने पर, पेट के खाली होने पर क्षुधावेदनीय कर्म सताता है। ज्ञानियो! जो विषय तुझे सताते नहीं थे, जिन विषयों ने तुझे कभी परेशान नहीं किया था, मार्ग में चलते-चलते कोई ऐसा दृश्य दिखाई दे गया जो अंतस् में प्रवेश कर गया, उसका परिणाम यह हुआ कि चारित्रवान् भी चारित्रविहीन हो गया। धिक्कार हो। धन कमाने के बाद धन का उपयोग करने में महापाप है। घर-घर में टेलीविजन रखे हैं। उन चित्रों को ही तो देखते हो, चित्र देखकर चारित्र को नष्ट करते हो। इतिहास साक्षी है, नारायण कृष्ण ने चित्र ही तो देखा था तो शिशुपाल का घात हो गया। रावण ने सीता के रूप को ही तो देखा था, चित्र को ही देखा था। इसलिए चित्र भी देखो तो ऐसे देखो जिससे चारित्र वृद्धिमान हो। ऐसे चित्र मत देखो जिससे चारित्र का नाश हो जाये। हर घर में आज ही अश्लील चित्रों को हटा देना। जो नेता/अभिनेता के चित्र लगे हुए हैं, उन्हें आज ही उठाकर फेंक देना। जो चक्षु के साथ दृष्टिपटल में रहा है, वह अन्तस् में जा रहा है। टेलीविजन देखते-देखते कितनी बार परिणाम ऊपर-नीचे होते हैं। और वीतराग अर्हन्त की प्रतिमा को देखकर ही वीतरागमय परिणाम होते हैं। यदि आपको चित्र भी लगाना है तो दिगम्बर योगियों के अर्हन्त परमात्मा के लगाओ, लेकिन यह नेता-अभिनेता के चित्र घर में लगाकर क्या ध्वनित कर रहे हो?

साधनात् साध्यविज्ञानमनुमानम्॥

अर्थात्—साधन से जो साध्य का ज्ञान होता है, वह अनुमान है।

धूम दिखाई दे रहा है तो कहीं-न-कहीं अग्नि होना चाहिए। धुआँ अग्नि से होता है या अग्नि के बिना होता है? बहुत अच्छे से कह रहा हूँ पण्डितजी! अगर आपके घर में अश्लील/अशुभ चित्र लगे हों और यह कितना ही कह लो कि मैं विद्वान् हूँ महाराज!, लेकिन पण्डित जी! मैं भी ज्ञानी हूँ।

साधनात् साध्यविज्ञानमनुमानम्॥

साधना से साध्य का ज्ञान होता है। तुम्हारे घर पर पहुँचते ही नेता/अभिनेता का चित्र लगा था, जिस नेता का चित्र लगा होता है, उसी से राग होता है, इसलिए उसी का चित्र लगा होता है। चित्र लगा हुआ है, तो चित्त कितना लगा होगा? जब चित्र ही बाहर लगा हुआ है, तो जेब में क्या रखते हो? पॉकेट में रखते हो। सभी चित्र हैं, श्रद्धा दिखाई दे रही है। व्याख्या समझो। श्रद्धा दिखाई देती है। तेरी पॉकेट में जो फोटो होगा, वह बता देगा कि तेरी प्रीति कहाँ है। जिसका चित्त जहाँ है, उसकी जेब में उसी का चित्र होता है। जिस चित्त में जिसका चित्र होता है, उसी का चित्र भवन में होता है। जिसका चित्त जिनदेव पर होता है, उसकी

जेब में अर्हन्त का चित्र होता है। जिसका चित्त नारी में होता है, उसकी जेब में नारी का चित्र होता है। चाहे ताली बजाओ, चाहे आँखों में आँसू बहाओ, "जो है, सो है।"

घर की दीवारों पर टंगे चित्र आपके सम्यक् और मिथ्यात्व की घोषणा कर रहे हैं। वैद्य/डॉक्टर के घर में प्रवेश करो, पूरा घर स्वच्छ नजर आता है। वहीं बैठे हुए हैं, खाने की प्लेट पड़ी हैं, कपड़े गन्दे पड़े हैं, बोतल पड़ी है, वहीं सुइयों की शीशी पड़ी है। यह गन्दे गुणों की पहचान है। इनके भविष्य की पर्याय कबूतर की है।

कबूतर को देख लेना। वह वहीं खायेगा, वहीं बीट करेगा, वहीं रहेगा। सबसे गंदी पर्याय है तो कबूतर की ही है। जिन जीवों की कापोत लेश्या चल रही है, ऐसे प्रमादी लोग जिनके हृदय स्वस्थ नहीं हैं, उनके रहने का स्थान भी स्वच्छ नहीं है। जिनालय में मात्र श्रीजी की प्रतिमा दिखाई देना चाहिए। प्रमार्जन के वस्त्र, लोटे आदि का अलग से कक्ष होना चाहिए। कुछ ऐसे लोग होते है जो घर में प्रमादी होते हैं, वह मन्दिर को भी वैसा ही बना देते हैं। वही काले-कलूटे कपड़े टांग देते हैं। ज्ञानी! तू दर्शन करने आया है, इन लोटे, वस्त्र आदि की वन्दना करने नहीं आया है। अधिक सजाने की भी आवश्यकता नहीं है। यह वीतरागी का भवन है इसलिये मात्र वीतरागी जिनबिम्ब झलकना चाहिए। और देखते ही 'अहो' निकले कि यह है जिनमुद्रा। अर्हन्तों के भवन, निर्ग्रन्थों के निवासस्थान ऐसे ही होने चाहिए। खजुराहो में मन्दिर के बाहर, शिखरों पर अनेक प्रकार के चित्र मिलेंगे। अनेक प्रकार की कलाकृति मिलेगी, लेकिन गर्भगृह में एक जिनप्रतिमा मात्र मिलेगी। कोई चित्रकारी नहीं। अर्हन्त का जो मन्दिर होता है, वह समवसरण की तरह होता है, जिसमें नाट्यशाला नहीं होती, नृत्यशालाएँ नहीं होती। समवसरण में अनेक प्रकार की राग की व्यवस्था होती है तो यह सब बाहर-बाहर होती है। परन्तु श्री मण्डप भूमि में मात्र तीनलोक के नाथ अर्हन्त की मुद्रा होती है। यह जीव का परीक्षण है। रागी जायेगा तो नृत्यभूमि को देखेगा, नाट्यभूमि को देखेगा, बावड़ियों को देखेगा और वीतरागियों पर लक्ष्य लेकर जो जायेगा, वह सीधा श्री मण्डप भूमि में तीनलोक के नाथ अर्हन्त को ही देखेगा।

"जिनप्रतिमा भावों को बदल देती है।"

जब कागज और टेलीविजन के चित्र तुम्हारे चारित्र को उल्टा-सीधा कर सकते हैं, तो तीन लोक के नाथ के जिनबिम्ब भी तुम्हारे विशुद्धि के साधन हो सकते हैं। इसलिए प्रातः से तुम विशेष तपस्या नहीं कर पाओ तो कोई विकल्प मत करना, परन्तु इतना कर लेना कि भगवान की प्रतिमा के दर्शन करते रहना। यदि दर्शन करते रहोगे, तो कभी-न-कभी निज के दर्शन के भाव बन जायेंगे। इसलिए यहाँ ऐसी कोई कॉलोनी नहीं हो जहाँ जिनमन्दिर न हो। ऐसे अभागे जीव भी हैं जो यह कहते हैं कि इतने मन्दिरों का क्या होगा? इतनी प्रतिमाओं

का क्या होगा? अरे अभागे! इतने गली-वली में पोस्टर लगे होते हैं, मिथ्यात्व के। गली-गली में क्या-क्या नहीं देख रहे हो? जो शुभोपयोग के साधन हैं, उनका तो विरोध कर रहे हो, और जो अशुभोपयोग के साधन हैं, उनका कभी विरोध नहीं करोगे। भैया! यदि इस नगर में कोई पचास मन्दिर बनाने वाला भी आये, तो उसे मना मत करना। यह कहना कि बहुत अच्छी बात है। लेकिन यह कहना कि अचेतन प्रतिमाओं को विराजमान करने के साथ-साथ पुजारियों को तैयार करना। जितने मन्दिर बनेंगे, बन जायेंगे। आज जो प्रतिमाएँ जमीन में से निकलती हैं, क्या कहते हो उन्हें? चाँदनपुर के महावीर, तिजारा के चन्द्रप्रभु स्वामी, पद्मपुरा के पद्मप्रभुस्वामी। यदि किसी सुधी श्रावक ने विराजमान न की होती, तो आज तुम्हें मुस्कराहट करने के लिए कहाँ से मिलती? माँ! तू अपनी संतान के साथ कुछ न भी कर पाये, तो कम-से-कम इतना करना कि जैसे तू बच्चे को स्कूल के लिए तैयार करती है, ऐसे-ही पन्द्रह मिनट पहले तैयार कर दिया करो, उनको मन्दिर ले जाया करो। हर जगह मन्दिर होने चाहिए। नहीं-तो लोग भूल जायेंगे कि तुम जैन हो। दृष्टि, दर्शन। जैसा बिम्ब तुम्हारे सामने होगा, अन्तरंग का भाव वैसा होगा। उपयोग की धारा जैसी है, ज्ञेय के निमित्त से ज्ञान में भी परिणमन हो जाता है, स्यात्। जैनदर्शन अनेकांतमयी है। यदि निश्चय की व्याख्या है, तो व्यवहार की भी व्याख्या है।

पर की पीड़ा को दूर करने के परिणाम रखना, लेकिन पर की पीड़ा को दूर करने के राग में अपने परिणामों को पीड़ा मत देना। मेरा विश्वास है कि जीव के परिणाम स्वयं पीड़ित नहीं होते हैं, उस जीव के सामने पीड़ित लोग भी नहीं होते हैं। एक सज्जन मेरे पास आये। वह पूछने लगे कि अनेक-अनेक महापुरुष (कृष्ण, बुद्ध, अमुक-अमुक) हुए, उन सबने दुनियां के कष्टों को दूर किया है, लेकिन आप जिन महावीर स्वामी की आराधना करते हो, उन महावीर स्वामी का तो कहीं उल्लेख नहीं मिलता कि उन्होंने दुनियाँ के किसी जीव के कष्टों को दूर किया हो? फिर भी वे अहिंसा के नाम पर प्रसिद्ध हुए। कितना बढ़िया प्रश्न किया। जिनके नाम पर अहिंसा प्रसिद्ध हुई और आप बोलते हो, 'अहिंसा परम् धर्म की जय हो।' "धम्मो दयाविसुद्धो" का नाम करने वाले तीर्थंकर महावीर हैं। बताओ? आपको मालूम होना चाहिए कि जो क्षीण-पुण्यात्मा जीव हैं, कष्ट दूर करने जिन्हें जाना पड़ा है, वे परम् पुण्यात्मा वर्द्धमान हैं जिनके जन्म लेते ही नरक के नारकियों का कष्ट स्वयमेव दूर हो जाता है। जिन्हें कष्ट दूर करने की आवश्यकता ही नहीं होती। विशिष्ट पुण्यात्मा जीव के योग से सहजरूप से लोग दुःखी होना बन्द हो जाते हैं। ध्रुव सत्य है कि सौधर्म इन्द्र के कण्ठ का अमृत भी फीका है अर्हन्त की देशना के सामने। सौधर्म इन्द्र का अमृत भी फीका है जिनवाणी के सामने। यह जिनेन्द्र के वचन हैं। क्यों आनन्द आता है? क्योंकि यह अर्हन्त की वाणी है। जगत के

प्रपंच की चर्चा नहीं है, इसलिए आनन्द आता है। माँ! कितनी ही विषमता घर में आज ही क्यों न खड़ी हो जाये, तो "देखो, जानो, जाने दो।" कर क्या सकते हो? देख ही पाओगे, जान ही पाओगे। इसलिये जाने दो। अभी कोई मरणासन पुरुष यहाँ बैठा हो तो क्या कर पाओगे? देख पाऊँगा, जान पाऊँगा। अब इससे ज्यादा कर क्या सकता हूँ? इसलिये जाने दो। अच्छा यह है कि ज्यादा करुणा आ रही है तो उसे णमोकार सुना देना, उसकी सल्लेखना करा देना। यदि तुम यह चाहो कि बचा लो, तो ज्ञानी! बड़े-बड़े वैद्य हो गये, जो बचाने के राग में हैं, वे भी नहीं बच पायेंगे। इसलिए आज डायरी पर लिख लेना, जितने श्रावक हों, उनके द्वार पर लिखकर टंगवा देना, ज्ञानी! "देखो, जानो, जाने दो।" "ज्ञातादृष्टा स्वरूपोऽहम्" जाननहार हूँ, देखनहार हूँ, किसी को बचानेवाला नहीं हूँ। यह तो लिखने से भरने वाले नहीं हैं। सत्य लिखना सीखो आज से। यदि आँखों से रोना बन्द करना है, तो यही लिखना पड़ेगा, ध्यान रखना, आज से रोना नहीं। ज्ञानी! तेरे पिताजी चले गये, तू रोक पाया क्या? तू इतना धर्मात्मा है, तो तू पिताजी को नहीं रोक पाया। देख ही पाये, जान ही पाये, रोक नहीं पाये। ज्ञानी! ध्यान दो। रो ही पाओगे, रोक नहीं पाओगे। जाने वाला चला गया है, तो वह किसी दूसरी माँ की गोद में मुस्कुरा रहा होगा और तू बेचारा पागल बनके रो रहा है। इसलिए आने वाले के आने पर हँसना नहीं और जाने वाले के जाने पर रोना नहीं। यह तो जगत् का स्वभाव ऐसा है। ध्रुव सत्य है, जिनवाणी के थपेड़ों में आनन्द लेते हो। आपको मालूम नहीं है क्या? जब माँ गोद में मारने के लिए थपथपा रही है या दुलारने के लिए थपथपा रही है? यह पीट नहीं रही है, बेटे! तुझे जगत् की माता सुलाती है, लेकिन जिनवाणी माँ जगाती है।

अनादि कालजीवेन, प्राप्तं दुःखं पुनः-पुनः।
मिथ्या-मोह-परीतेन कषायवशवर्तिना॥48॥ सा. स.॥

यहाँ आचार्यमहाराज कह रहे हैं, कि इस जीव ने अनादिकाल से बार-बार दुःख प्राप्त किया है, इस कारण से मिथ्यात्व, मोह के संयोग से कषाय के वशीभूत हुआ है। यह व्यर्थ की बात छोड़ देना, कि भैया ने यह किया, माँ ने यह किया। पिता ने किया, पड़ोसी ने दिया, कोई किसी को कुछ देता नहीं है। सब निमित्त बनकर आते हैं, उपादान तो तेरे कर्म का स्वयं होता है। पुण्य की तीव्रता होती है, तो सड़कों पर खड़े-खड़े भी फूलमालाएँ पड़ती हैं।

"**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।**" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"दु:ख-नाश का कारण"

सम्यक्त्वादित्यसंभिन्नं कर्मध्वान्तं विनश्यति।
आसन्नभव्यसत्त्वानां, काललब्ध्यादिसन्निधौ।।49।।

काल आदि लब्धियों का सन्निधान होने पर आसन्न भव्य जीवों का कर्मरूपी अन्धकार सम्यक्त्वरूपी सूर्य से छिन्न-भिन्न होकर नष्ट हो जाता है।

।। देशना।।

विद्वानो! जब सारे लोगों की लेखनियाँ बन्द हो गई, तब कुन्दकुन्द स्वामी की लेखनी प्रारम्भ हुई। यह लेखनी पाँच पापों में से कौन-सा पाप है? कोई पाप नहीं है। पुद्गल द्रव्य है। द्रव्य पाप नहीं होता है। ज्ञातापन पाप नहीं है, दृष्टापन पाप नहीं है। देखना पाप नहीं है, दिखना पाप नहीं है। दिखने के बाद जो देख रहा है, वही पाप है। दृष्टि का जाना पाप नहीं है, दृष्टि के बाद पुन: दृष्टि ले जाना पाप है। छह द्रव्यों में जीव व पुद्गल भी द्रव्य हैं। इन छह द्रव्यों में एक भी पाप नहीं है। एक भी बंध के कारण नहीं है। अब तो मुमुक्षु खुश हो गए होंगे कि अब तो किसी द्रव्य को नहीं छोड़ूँगा, क्योंकि महाराज जी ने कह दिया है, कि छह द्रव्यों में पाप नहीं है। स्त्री, पुरुष, नपुंसक में पाप नहीं है, क्योंकि यह तो द्रव्य हैं और द्रव्य को जानना-देखना पाप नहीं है। तो पाप किसमें है? लेखनी कोई पाप नहीं है, वह तो पुद्गल द्रव्य है। प्रत्येक द्रव्य स्वतन्त्र है। फिर छोड़ने की बात क्यों कही जा रही है, इनको त्यागने की बात क्यों की जा रही है? जीवद्रव्य का लक्ष्य आत्मा है। राग क्यों छोड़ दिया? यह तो वस्तुव्यवस्था है कि जो द्रव्य है वह पाप नहीं है। पाँच पाप की जो व्याख्या है, वह किसी द्रव्य के लिए है।

योगी बनने के लिए कितना पुरुषार्थ चाहिए? वस्त्र उतार देना तो साँप की कांचली के समान है। कालिया नाग की कांचली हर वर्ष उतरती है। यदि कांचुली उतार देने से विषधर निर्विष हो जाता है, तो वस्त्र उतार देने से हर व्यक्ति निर्ग्रन्थ मुनि हो जाता। जितने निर्वस्त्र हैं, वो सब मुनि कहलाते। वस्त्रधारियों की संख्या अत्यन्त न्यून है। कितने-से लोग वस्त्र पहनते हैं। प्रकृति में सर्वाधिक कोई है, तो निर्वस्त्र ही हैं। वस्त्र पहनने वाले तो मात्र मनुष्य हैं। निर्वस्त्र होने से निर्ग्रन्थ नहीं हुआ जाता है। ज्ञानी! जब तक कालिया नाग की जहर की थैली नहीं निकलती, तब तक वह निर्विष नहीं होता है। जब तक निर्वस्त्र होने वाले की मोह की थैली नहीं निकलती, तब तक निर्ग्रन्थ नहीं होता। यह निर्ग्रन्थ जो मार्ग है, वह ममत्वरहित मार्ग है। आपने कभी 'वृहद् प्रतिक्रमण' सुना? उसमें छह-छह बार कहा गया है—

''ममत्तिं परिवज्जामि, णिममत्तिं उवसंपज्जामि''।

हे प्रभु! मैं ममत्व का त्याग करता हूँ और निर्ममत्व को स्वीकार करता हूँ। 'मैं निमर्मत्व का त्याग कहता हूँ' इस निर्ममत्व शब्द का भी जब तक राग है, तो अभी निर्ग्रन्थ नहीं है। 'समयसार' ग्रन्थ का राग भी समयसार नहीं है। शब्दब्रह्म पर लवलीनता, आत्मब्रह्म नहीं है। जब तक शब्दब्रह्म में राग है, तब तक आत्मब्रह्म की प्राप्ति नहीं है। फिर वस्त्रों का त्याग क्यों? पदार्थों का त्याग क्यों? पदार्थ पाप नहीं है, परवस्तु पाप नहीं है। अमृतचन्द्र स्वामी समयसार की आत्मख्याति टीका में लिख रहे हैं कि, पाप नहीं है, परन्तु हे ज्ञानी! ममत्व का साधन तो हैं। नहीं-तो किसी ज्ञानी को वैराग्य हो गया और वह आचार्यपरमेष्ठी के चरणों में जाकर कहता है, 'स्वामी! क्या करूँ? मेरे घर में पत्नी है। ये ऊपर चली जाती तो मैं मुनि बन जाता।' ओह! अभागे तू पंचेंद्रिय की हिंसा करके मुनि बनने की बात कर रहा है, मुनि बनेगा किसके लिए? यदि तुम्हें वैराग्य हो रहा है, तो तुम मुनि बन जाना, उसे अपने भाग्य पर छोड़ देना, लेकिन पंचेन्द्रिय की हिंसा के भाव मन में मत लाना।

ऐसे अज्ञानी भी होते हैं, जो कहते कि माता-पिता हैं, यह जितनी जल्दी ऊपर चले जायेंगे तो उतनी जल्दी मैं महाराज बन जाऊँगा। ओह! महाराज बनने के लिए वृद्ध माता-पिता के ऊपर जाने का विचार कर रहा है। नहीं, ज्ञानी! तेरे लिए वैराग्य हो चुका है तो राग किस बात का? यदि तुम्हें वृद्ध माता-पिता दिखाई दे रहे हैं और मन में मुनि बनने के भाव आ रहे हैं, तो पहले उनकी सेवा करो, बाद में विचार करना। और वैराग्य हो ही गया है, तो प्रत्येक वस्तु स्वतन्त्र है। कण-कण स्वतन्त्र है। उनको उनके ऊपर छोड़कर चले जाइये।

वीतरागी को व्यवस्था की आवश्यकता है क्या? जो गृहस्थी को व्यवस्थित करके साध ु बनते हैं, वे भी उत्कृष्ट वैरागी नहीं होते। उन सबको तो सबकुछ दे ही दिया है, अर्थात् तूने उन सबको अपना स्वीकार किया है, इसलिए तूने दिया है। वस्तु मेरी है ही नहीं, तो मैं किसको क्या दूँ? यह उत्कृष्ट वृत्ति है। बहुतकुछ दिया है, बहुत लोगों को दिया है, बहुतकुछ छोड़ दिया है। पण्डित जी! तुमने आलू छोड़ दिया, अचार पापड़ मुरब्बा छोड़ दिया है, लेकिन ज्ञानी! अभी तूने कुछ भी नहीं छोड़ा है। जो तेरा था ही नहीं, उसी को कह रहा है कि मैंने छोड़ दिया है। जो तेरे भीतर ममत्व बैठा है, काषायिक भाव बैठे हैं, उसको छोड़ने का पुरुषार्थ कर। जो तेरा नहीं है, उसे तो दुनियाँ छोड़ सकती है।

कैसे अज्ञानी जीव हैं? जो मेरा नहीं है, उसे छोड़ने में अहंकार कर रहे हैं, कि मैंने एक करोड़ रुपये का दान दिया है। करोड़ में तू था, करोड़ में तू है? तू चैतन्य द्रव्य है, करोड़ अचैतन्य द्रव्य है। ज्ञानी! असमान जाति गुण-पर्याय में तू अपना धर्म कैसे मान रहा है? यदि

ममत्व छोड़ देगा, तो द्रव्य स्वयमेव छूट जायेंगे। यह ढोंगी, मायाचारी, अज्ञानी लोग हैं जो यह कह रहे हैं कि मेरा ममत्व नहीं है। परवस्तु तेरे पास रहेगी कैसे?

'मूर्च्छा परिग्रहः' सूत्र का दुरुपयोग उन लोगों ने किया है जो कपड़े पहनकर मुनिराज बन गये। वीतरागी दिगम्बर आम्नाय कपड़े पहननेवाले को मुनि नहीं बनाती और मुनि बनने वाले को कपड़े नहीं पहनाती है। कपड़े उतारना मुनि नहीं, कपड़े पहनना मुनि नहीं। निज में लीन रहना, उसका नाम मुनि है। यदि निज में लीन हो ही जायेगा, तो उतारने और पहनने के भाव समाप्त हो जायेंगे।

बहुत कठिन है? भैया! बहुत सरल है। नरक में जाने के लिए बहुत पुरुषार्थ करना पड़ता है, भगवान बनने के लिए तो कुछ भी नहीं करना पड़ता। बस, हाथ पर हाथ रखना पड़ता है। नरक जाने के लिए पाँच पाप करने पड़ते हैं। भगवान बनने के लिए तो जो कुछ किया था, सबकुछ छोड़ना पड़ता है। हाथ पर हाथ रख कर बैठ जाओ तो भगवान बन जाओगे। कर्तृत्वभाव का अभाव ही भगवत्ता की सिद्धि का साधन है। इसलिये जब तक कर्तृत्वभाव अन्दर विराजा है, जब तक भगवत्ता बहुत दूर है।

द्रव्य क्यों छोड़ना? कारण का कारण है। बन्ध का कारण राग है, राग का कारण परद्रव्य है। परद्रव्य पाँच पाप का साधन है। पाप तो तेरी परिणति ही है। पाँच पाप का साधन परद्रव्य नहीं हैं। जो द्रव्य को जिस दृष्टि से देखता है, वह द्रव्य उसके लिए वही साधन बनता है। द्रव्य तटस्थ है। नारायण कृष्ण को बाँस की लाठी बाँसुरी बन जाती है और मुमुक्षु! तेरे लिए वही लाठी बन जाती है। जो जिस दृष्टि से देखेगा, उसके लिए वही है। वह लाठी एक को सहारा बन रही है, तो किसी की कमर तोड़ रही है। लाठी का इसमें क्या दोष? इसलिए लाठी को मत सम्भालो, वस्तु को मत सम्भालो, क्योंकि वस्तु में न राग है, न द्वेष है। सम्भाल सकते हो तो अपनी दृष्टि को सम्भालो। राग-द्वेष तेरी दृष्टि में है। दृष्टि सम्भल गई, तो वस्तु तो वस्तु है।

बेटे की माँ घर में है या नहीं? हे ज्ञानी! बेटे की माँ कह रहा हूँ, उसे तू अपनी माँ कह दे, तो तेरा क्या जाता है? विश्वास रखिये, बेटे की माँ को तू जिस दिन माँ कह देगा, तो जो तेरा चला गया है वह बेटा आ जायेगा। नहीं समझ में आया? जो तेरा ब्रह्मधर्म चला गया, वह वापस आ जायेगा। पुनः सुनो। जिसको तू बेटे की माँ कह रहा है, वह बेटा भी वहीं खड़ा है। कितने लोग हो गये? आप भी हो, उस माँ को जन्म देने वाला भी है और माँ कहने वाला भी वहाँ है। जिसको कह रहा है, वो भी है। और तू भी है। चार लोग हैं।

जिससे सम्पर्क स्थापित किया, वे कितने लोग हैं? एक है। वस्तु एक है, दृष्टि अनेक हैं। एक वस्तु में अनेक दृष्टि हैं। जैसी दृष्टि है, वैसा बंध है।

एक उसे बेटी कह रहा है। यदि उसको पुत्री कह रहा है, तो विकारी भाव आयेंगे क्या? एक कह रहा है माँ, उसके आँचल में दुग्ध बह रहा है। बेटे उसको माँ कह रहे हैं, हे अभागे! तू उसे पत्नी कह रहा है। नारी में दोष है या उसे देखने वाले में दोष है? नारी में विकार था या देखने वाले में विकार था? जिसे तू बेटे की माँ कह रहा है, वह दिन कब आये जब तू उसे अपनी माँ कहने लग जाये। जो बेटी कह रहा था, तो तू भी बेटी कहने लग जाता। जो बहन कर रहा था, तो तू भी बहन कहने लग जाता।

विश्वास रखना, जब रावण ने जानकी का हरण किया, जब सीता ने लंकेश की बात को किसी प्रकार से स्वीकार नहीं किया, तो कुछ विद्वान् पहुँचे रावण के पास, लंकेश! आप तो विद्याधर हो। जितनी विद्याएँ आपने सिद्ध की हैं, भारत की भूमि पर ऐसा कोई दूसरा हुआ नहीं है। स्वामी! सीता की दृष्टि राम पर है, तो आप तो विद्याधर हो, राम का रूप क्यों नहीं बना लेते? रावण कहता है, हे ज्ञानी! जितनी समझ तुझे है, उससे कई गुणा समझ मुझे है। जिस उपाय की तू बात कर रहा है, वह उपाय मैं कर चुका हूँ। जब मैंने राम का रूप बनाया, तब मेरा सीता के प्रति अशुभ भाव आया ही नहीं। भेष का प्रभाव, देश का प्रभाव, काल का प्रभाव, क्षेत्र का प्रभाव। यह क्षेत्र की प्रत्यासत्ति है। जहाँ पर जितने चेहरे दिखाई दे रहे हैं, सब भ्रमित दिखाई दे रहे हैं, क्योंकि यह क्षेत्र का प्रभाव है। इसलिए तीर्थभूमियों की वन्दना करने जाना चाहिए। सिद्धभूमियों की वन्दना करने जाना चाहिए।

जब-जब तुम्हारे मन में अशुभ भाव आयें, क्लेस और विपत्ति के भाव आयें, तो पड़ोसी के घर मत जाना, सगे भैया के घर भी मत जाना, क्योंकि विपत्ति के दिन में कोई भैया होता नहीं है। राजस्थान का कोई श्रावक सम्मेंदशिखर की वन्दना करने जा रहा है और यहाँ की एक माँ कुएँ से पानी भरने जा रही है। यदि कलश भरे आते हैं, तो अमुक व्यक्ति उसमें पैसा डाल देता है। यदि सामने खाली मटके दिखाई दे जायें, तो हृदय से बोलना, मन-ही-मन में गाली देता है। दुनियाँ की रीति है, कि भरे को दुनियाँ पूछती है, खाली को कोई नहीं पूछता है। सबके दिन एकसे नहीं होते। जो पानी से लबालब भरा था, उसमें तो सिक्का छोड़ता है और जो खाली था, उसे खाली दिखाई दे रहा है। इसलिए कभी दु:खी मत होना। पुण्य का घट भरा है, तो दुनियाँ पूछेगी और पुण्य का घड़ा खाली हो गया है तो दुनियाँ वाले भी भाग जायेंगे। इसलिए आँखों में आँसू नहीं लाना।

जो उपदेश सुन रहे हो, वह रोने-हँसने के लिए नहीं सुन रहे हो। शांत बैठकर निर्णय करना है। ज्ञाता-दृष्टा बन कर देखो। जीव का यही स्वभाव है। अपने में रहना सीखो, अपनों को अपना मानना छोड़ दो। मुख से मत बोलना, मन में निर्णय कर लेना। नहीं-तो रोटी भी खाने को नहीं मिलेगी। हल्ला मत करना, परन्तु निर्णय कर लेना। देखो, कितना बड़ा भवन खड़ा हुआ है, यह सीमेंट से बना है या बालू से बना है? अब 'तत्त्वार्थ सूत्र' के रहस्य को खोलिये, जो एक रसायनशास्त्र है। यह इतना बड़ा भवन खड़ा है, यह किसके बल पर खड़ा है? स्निग्ध के बल पर या रूक्ष के बल पर? यदि उपदेश की भावना भी आपकी सैद्धान्तिक/आध्यात्मिक हो, तो कितना जिनवाणी का प्रचार हो। आप दुनियाँ की लेकर बैठ जाते हो। कहाँ क्या हो रहा है, इससे जैनतत्त्व की क्या व्याख्या हो रही है? कोटि-कोटि का द्रव्य व्यर्थ कर रहे हो, इससे जैनतत्त्व की क्या व्याख्या हो रही है? पण्डित जी! आपने अपने व्याख्यान में अमुक-अमुक के नाम डाले हैं। क्या हमारी जिनवाणी में द्रष्टांतों की कमी है, सिद्धांतों की कमी है? जिसका दृष्टांत आपने दिया सभा में, हजारों लोगों के मस्तिष्क में आपने प्रवेश करा दिया। यदि आप तीर्थंकर महावीर का नाम लेते, तो कोटि-कोटि भक्तों के मन में भी महावीर विराजमान हो जाते।

'स्निग्ध-रूक्षत्वाद बन्धः।' अगुरुलघुत्व के परिणमन को कौन मिटा पायेगा? यह भवन तभी तक खड़ा है, जब तक स्निग्ध की स्निग्धता नियत है। जिस दिन सीमेंट की स्निग्धता समाप्त हो जायेगी, उसी दिन बालू अपने आप झड़ जायेगी। ज्ञानियो! तुम तनाव मत करो, शांत होकर बैठ जाओ। राग की स्निग्धता समाप्त कर दो, तो कर्मों की रूक्षता अपने-आप झर जायेगी, यह आत्मा कर्ममुक्त होकर भगवान बन जायेगी। कुछ नहीं करना। बस, खाली छोड़ दो, तो अपने-आप स्निग्धता समाप्त हो जायेगी और बालू झरना प्रारम्भ हो जायेगी। बन्ध अधिकार सुन रहे हैं आप? यदि आप योगी बन नहीं पाये, तो कोई विकल्प नहीं करना। घर में बैठकर जिस चाव से भोजन करते थे, जिस रुचि से भोजन करते थे, अब आज से पेट भरना प्रारम्भ कर देना, रुचि का प्रयोग बन्द कर देना। साधु भोजन नहीं करते क्या? करते हैं। अहो! एक आहार लेते-लेते निर्जरा को प्राप्त हो रहा है। एक आप भोजन करने जाते है और दिगम्बर मुनि पाँच समितियों का पालन करते जाते हैं। धन्य हो वीतरागी तपोधन को, जो मल का विसर्जन करते-करते कर्म की निर्जरा करते हैं। ध्यान दीजिए।

मात्र दृष्टि बदलना है। जिसको पत्नी कहते थे, उसको भगिनी कहना प्रारम्भ कर दो। कुछ नहीं करना। कहने मात्र से काम नहीं चलेगा। पण्डित जी! तू भगवनात्मा है कि नहीं? तेरे बेटे की माँ भगवानात्मा है या नहीं? द्रव्यदृष्टि सुनना है तो 'समयसार' का उपयोग घर

में करना आज से। ज्ञानी! भगवानात्मा का भगवनात्मा से सम्बन्ध कैसा? हे अभागे! जिसे तू पत्नी कह रहा है, वह अशरीरी सिद्ध बन जायेगा। तू कैसा अज्ञानी है, सिद्ध को अपनी पत्नी बोल रहा है? जो सिद्धालय में विराजमान हो जायेगा, उसे आज से ही भगवान देख, चरण छू ले, क्या जाता है? और कहना, हे जीवद्रव्य! मुझे क्षमा करना। आज तक मैंने चैतन्य धातु को अपनी पत्नी के रूप में देखा है, आज से चैतन्य धातु को अशरीरी सिद्ध भगवान देख रहा हूँ। कायोत्सर्ग कर लेना। मैं भी भगवान, तू भी भगवान। अब मैं ब्रह्म का पालन करूँगा, अब्रह्म का त्याग करता हूँ। तब तो द्रव्यदृष्टि समझ में आ रही है, 'समयसार' समझ में आ रहा है। अन्यथा विश्वास रखना, स्वभाव की चर्चा मात्र है, स्वभावदृष्टि नहीं है। एक बार के अब्रह्म सेवन करने में कोटि - कोटि जीवों की हिंसा की है। इससे बड़ी सामायिक क्या होगी? यही सामायिक है। हे प्रभु! वह दिन कब आये जब मेरे अन्तस् से कारण के कार्यकारी बाहर हो जाये। मुमुक्षु! वर्षों के उपवास सरल है, अर्हन्त की कोटि-कोटि वन्दना सरल है, लेकिन एक समय के बन्ध के भाव को बन्द करना कठिन है। यथार्थ बताऊँ? मैं तो बैठा-बैठा यही करता रहता हूँ कि क्षण-क्षण के परिणामों को नाप लेता हूँ। ऊपर-नीचे के परिणामों को नापकर तुरन्त प्रायश्चित्त कर लो।

मुमुक्षु। कभी तेरे घर खीर बनी? उस चावल से पूछना कि खीर कैसी है? जब दुग्ध अग्नि पर होता है, चावल का दाना दुग्ध के भीतर होता है, उस चावल से पूछना कि कितनी बार ऊपर गये, कितनी बार नीचे आये। कई बार ऊपर गये और कई बार नीचे आये। जब बटलोई में चावल ऊपर-नीचे हो जाते हैं, तब कहीं पक पाते हैं। ऐसे-ही दिगम्बर मुनि होने के बाद भी परिणामों के दाने कितनी बार ऊपर, कितनी बार नीचे होते हैं। इसी का नाम गुणस्थान है। एक समय ऐसा आता जब ऐसी ताप लगती है, कि ज्ञान की खीर बन ही जाती है, सिद्ध बन ही जाता है। खीर बनाओ। आप ही पकाओ, आप ही खाओ। ऐसा अशन बनाओ। एक योगी अशन बनाता है। कैसा अशन बनाते? 'अनशन-स्वभावी अशन बनावे। आप ही पकावे, आप ही खावे।' देखो, बेचारों के मुँह में पानी आ रहा है। ऐसा अशन वह ही बना सकता है जो अनशन-स्वभावी है।

यह ध्रुव सत्य है कि सर्वार्थसिद्धि का देव तैंतीस सागर पर्यन्त तत्त्व की चर्चा करता है और दोहराता नहीं है। कैसे तैंतीस सागर निकलते होंगे? ऐसा महसूस करो, घण्टों-घण्टों कैसे निकल जाते हैं। जो आनन्द ज्ञानधारा में है, वह विषयधारा में नहीं है। इसलिए कुलभद्र स्वामी 'सारसमुच्चय' जी ग्रन्थ में कह रहे हैं—

सम्यक्त्व भावशुद्धेन विषयासङ्गविवर्जितः।
कषायविरतेनैव, भव-दुःखं विहन्यते।।50।।

''सम्यक्त्वभाव शुद्धेन।'' परनिरपेक्ष हुए बिना भावविशुद्धि असम्भव है। ''कर्त्तव्य का निर्वाह तो करना संसार में रहकर, परन्तु कर्त्तव्य में कर्त्ता बनकर मत रहना। जो कर्त्ता बन कर रह रहे हैं, उनकी भाव-विशुद्धि असम्भव है। उपेक्षा भाव करना सीखो। वस्तु के परिणमन को क्या रोक पाओगे? आम के फल को टोकनी में रख देना, कुछ नहीं करना, बस, रख देना। हरा होगा तो पीला हो जायेगा, पीला होगा तो सड़ जायेगा। ऐसा नहीं होगा क्या? अरे ज्ञानियो! हम सभी हरे थे , पीले हो रहे हैं, ऊपर जाने वाले हैं। यह वस्तु का परिणमन त्रैकालिक है। इसमें न हर्षित होना न बिलखना। यह तो ''जो है, सो है। अन्त में यही कहना पड़ेगा। इसे स्वीकार करो इसलिए विशुद्धि चाहिए है तो निरपेक्ष हो जाओ। सम्यक्त्वभाव शुद्धेन विषयासङ्ग विवर्जितः इन्द्रियों के विषय में जो संगति है, और परिग्रह है, इन विषयों की आसक्ति से रहित जो जीव है, कषाय से विरक्त है, ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव भव-दुःखों से मुक्त होगा।

उपेक्षा उनकी होती है, जो जगत् से अपेक्षा रखते हैं। जितना तटस्थ होकर जीओगे, उतना सम्भाल तुम्हारा होगा। वृद्धों के प्रति मेरी बहुत करुणा है। जिनते वृद्ध बैठे है, बड़े विवेक से सुनना। अब कमाते तो हो नहीं। कमाते बनता भी नहीं है। कमाने की चेष्टा भी करोगे तो क्या कमा पाओगे? दो रोटी पचना बन्द हो चुकी है, शरीर ने भी आपको उत्तर दे दिया है। बहुत अच्छा है। मैं नहीं चाहता कि आप लोग अशुभ भाव करके मरण को प्राप्त होओ, कलुषित परिणामों से मृत्यु को प्राप्त होओ। आपको अनादर क्यों सहना पड़ रहा है? जब आदमी की करने की सामर्थ्य नष्ट हो जाती है, तो कहने की सामर्थ्य बढ़ जाती है।

माताओ! बहुओं से सम्मान चाहिए, तो मौन रहना शुरू कर दो आज से। जब करना बनता नहीं, कर पाओगे नहीं, तो जो कर रहा है, उसके ऊपर छोड़ दो। बड़े प्रेम से दो रोटी खाओ और माला लेकर भगवान की जाप दो। स्वाध्याय करो, इसमें सार है। विश्वास रखना, बहू भी यही कहेगी कि माँ! क्या चाहिए? सम्मान का भी ध्यान रखेगी। तुम बार-बार चिल्लाओगी, तो वह कहेगी 'बुढ़िया! चिल्ला मत।' आज से नियम है आप सबका।

मैंने तो बहुत सारे निर्णय कर लिये। यह सिंहासन भी छोड़ना पड़ेगा। पक्का है। आचार्य ज्ञानसागर जी ने सिंहासन से उतरकर अपने शिष्य विद्यासागर जी को यहाँ विराजमान कर दिया और उनके चरणों में नमोऽस्तु कहने लगे। इस सिंहासन का छूटना अहंकार का छूटना था।

यह सरल नहीं है अपने सिंहासन पर अपने शिष्य को विराजमान करके नमोऽस्तु कर पाना। इसलिए ज्ञानियो! यह उल्टी परम्परा चली है कि पिता जी ऊपर चले जाते हैं, तब समाज पगड़ी बांधती है। सत्यता यह है कि जैसे राजा अपने बेटे का युवराज बनाता है और राज्यगद्दी सौंप कर संन्यास मार्ग को प्राप्त होता है, यही मार्ग है। अपने हाथ से पगड़ी बांध कर जाओगे तो समाज में हँसी नहीं होगी। ऐसे-ही आचार्य अपने शिष्य को आचार्य बनाता है और कहता है कि अब तुम संघ का संचालन करो, अब मैं ''अहमिक्को।'' इस प्रकार योगी अपने आपको अपने में लगा लेते हैं।

ऐसे भोले बनकर चौबीस घण्टे रहने लग जाओ तो आपकी भवावलि अत्यन्त न्यून हो जायेगी। ऐसा क्यों नहीं कहते हो कि मैं ही चलता हूँ महाराज! आपके साथ? मुझे मत रोको। इनके साथ जाओ। देखो, नदी को रोक लोगे तो नदी सड़ जायेगी। बहती रहेगी तो उसमें तुम भी चले जाओगे, तो सागर बन जाओगे।

जाओ, आपका समय हो गया। पर्याय रही तो तब फिर आ जाना।

"**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।**" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

भवदु:ख का नाशक

सम्यक्त्वभावशुद्धेन विषयासङ्गविवर्जितः।
कषायविरतेनैव, भव-दु:खं विहन्यते।।50।।

इन्द्रिय-विषयों की आसक्ति से रहित प्राणी सम्यग्दर्शन की शुद्धता और कषायों की विरक्तता से संसार के दु:खों का नाश कर देता है।

।।देशना।।

साक्षातता को जिसने समझ लिया है, उस पुरुष को जगत् में सम्पूर्ण विभाव-भाव नहीं दृष्टिगोचर होते हैं।

ऋद्धियों सिद्धियों की प्राप्ति के लिए वीतरागी तपोधन साधना नहीं करते। अंजनसिद्ध, खड्गसिद्ध, गुटकासिद्ध, अनेक प्रकार की लोक में सिद्धियाँ हैं। यह जितनी सिद्धियाँ हैं ,सब लौकिक हैं। वीतरागी तपोधन जो मोक्षमार्ग की साधना कर रहे हैं, स्वात्मोपलब्धि की सिद्धि के लिए कर रहे हैं, जगत की कोई अन्य सिद्धि के लिए नहीं कर रहे हैं। एक वह लोग हैं जो भूतों के पीछे भाग रहे हैं, एक वह जीव है जिनके पीछे भूत भाग रहे हैं। जादू-टोने के राग में पड़ा है जीव। देवों की सिद्धियाँ कर रहा है। जीव! यह निर्ग्रन्थ-दशा देव की सिद्धि के लिए नहीं है, यह देवाधिदेव पद की प्राप्ति के लिए है। चौसठ ऋद्धियाँ जो हैं, कोई मुनिराज इन ऋद्धियों की सिद्धि के लिए नहीं बैठते। साधना के प्रभाव से ऋद्धियाँ स्वयमेव प्रगट हो जाती हैं। एक-एक ऋद्धि उन योगियों को ऐसे प्रगट हुई हैं। सम्पूर्ण चौसठ ऋद्धियों का धारी जो है, वह केवली भगवान हैं। सिद्धि और प्रसिद्धि। जो लौकिक सिद्धि और प्रसिद्धि के लिए मोक्षमार्ग पर आता है, उसको न सिद्धि मिलती है, न प्रसिद्धि मिलती है। जो आत्मसिद्धि के लिए साधना करता है, उसको सिद्धियाँ भी प्रगट हो जाती है। प्रसिद्धि स्वयमेव प्राप्त हो जाती है। स्वात्मा पद में स्थित मुनिराज को ही नहीं मालुम है कि मुझे ऋद्धियाँ प्राप्त हो गई हैं। ऐसा भी होता है। विष्णुकुमार मुनिराज को कहाँ मालूम था कि मुझे विक्रिया ऋद्धि प्रगट हो चुकी है? जब कोई क्षुल्लक पहुँचते हैं, स्वामी! सात सौ योगियों पर उपसर्ग है, उसे आप ही दूर कर सकते हो। 'मैं कैसे कर सकता हूँ?' हे नाथ! आप को विक्रिया ऋद्धि प्रगट है। धन्य हो वह, जिस जीव को विक्रिया ऋद्धि हो, लेकिन स्वयं मालूम नहीं हो कि मुझे विक्रिया ऋद्धि प्रगट हो चुकी है। परीक्षा करने के लिये हाथ फैलाया तो मानुषोत्तर पर्वत पर जाकर लग गया। देखना योगी की दशा। जो आत्मसाधना में लगा है, उसकी बाह्य ऋद्धि-सिद्धि पर दृष्टि जाती ही नहीं है। इसका नाम है निष्पृह वृत्ति। यह है निस्पृह योगी की चर्या। यह है निस्पृह योगी

की साधना। विश्वास रखना, यदि आपकी साधना निस्पृह होगी, तो जगत की सम्पूर्ण विपत्तियाँ अपने आप समाप्त हो जायेंगी।

कालिया नाग ने भी किसी को डंस लिया हो, यदि आँख उठाकर देख लेते हैं तो उसका सारा जहर उतर जाता है। शरीर का मल भी औषधी का काम करता है, शरीर का पसीना भी औषधी का काम करता है, ऐसी ऋद्धि प्रगट हो जाती है। यह सब साधना का प्रभाव है। यथार्थ मानकर चलना, ऋद्धियों के प्रगट करने के लिए साधना करेंगे तो ऋद्धियाँ कभी प्रगट होने वाली नहीं हैं। मात्र समयसार में लीन होते हैं तो ऋद्धियाँ अपने आप प्रगट हो जाती हैं।

भैया! बहुत विवेक के साथ समझना। एकसूत्री कार्यक्रम। अपने संगीतकार से पूछना, जिस समय तू संगीत सीख रहा था, तो तेरी आँख कहाँ-कहाँ थी? स्वरों में था। स्वरों में नहीं होता, तो आज स्वर नहीं निकल पाता। जब संगीत सीखते समय माँ-पिता नहीं थे, क्या दूसरे संबंधी नहीं थे? विद्यार्थी बनकर जब विद्या का अध्ययन करता है, तब तपस्या में लीन हो जाता है। जगत् की सम्पूर्ण विषमताओं से दूर हो जाता है, तब विद्या सीख पाता है। इसने अपना उपयोग संगीत में लगाया, तो सुर निकालना सीख गया। यही उपयोग यदि निज में लगा लेता, तो भगवान भी बन जाता। आपने विद्या का अध्ययन किया, तो विद्वान् बन गये। मुमुक्षु! तू पैसा कमाना जानता है तो बुद्धिपूर्वक कमाता है। पैसा कमाने की विद्या न सीखी होती, तो कैसे कमाता? जो जीव जिस विषय को चाहता है, उस पर लक्ष्य तो लगाना पड़ेगा। यदि आप एक व्यापार की जगह चार व्यापार पर लक्ष्य करते हो, तो विश्वास रखना, वह व्यापारी कहलाने लग जायेगा। सन्तुष्ट होना पड़ता है। जिस कार्य को मैं कर रहा हूँ, उस कार्य को यदि मैं सन्तुष्ट होकर कर रहा हूँ, तो सफल हो जाऊँगा। यदि जीव अपने कार्य को देखकर दूसरे के कार्य पर लक्ष्य करता है, तो नियम से असफल होता है। एक विद्वान्, एक व्यापारी, एक संगीतकार अपने कार्य में निष्णात होना चाहते हैं, तो एकांत में अभ्यास करना पड़ेगा। तो हे मुमुक्षु! जिसको भगवान बनाना है, ऐसे निर्ग्रन्थ योगी को अपने रत्नत्रय पर भी एकाग्र होना पड़ता है, कोई दूसरे काम में नहीं जाना पड़ता। ऋद्धियों का विधान करवाओ तो ऋद्धियाँ प्रगट हो रही हैं। मुनिराज की कैसी-कैसी ऋद्धियाँ हैं। आपको तो सीखना पड़ रहा है, तब सीख पायेंगे। यदि माइक नहीं चलता, तो इस जगह से आवाज सुनाई नहीं देती।

चक्रवर्ती की कटक की आवाज चल रही हो, बहुत बड़ा मेला लगा हो, कोटि-कोटि जीव चर्चाएँ कर रहे हों, तो भी वे मुनिराज एक-एक पुरुष की बात बता सकते हैं, कि कौन व्यक्ति क्या बोल रहा है। वे कोई शास्त्र या ग्रन्थ नहीं पढ़ते हैं जिनको ऋद्धि प्रगट हो चुकी

है। ऐसे मुनिराज एक अक्षर के जानने मात्र से द्वादशांग का पाठ कर लेते हैं। तुमको 'तत्त्वार्थ सूत्र' को पढ़ने में घंटों लग जाते हैं, उनको तो सम्पूर्ण द्वादशांग को पढ़ने में अड़तालिस मिनट का समय लगता है। धन्य हो ऐसे निर्ग्रन्थ तपोधन। फिर भी उनके मन में यह भाव नहीं आता है कि मुझे ऋद्धियाँ प्रगट हो चुकी हैं। जिसने बन्धभाव को बन्द करने का पुरुषार्थ प्रारम्भ कर दिया है, वह जगत की किसी भी ऋद्धि-सिद्धि पर लक्ष्य लेकर नहीं आता। यह तो मोक्ष का मार्ग है जो आत्मसिद्धि है।

विवेकियो! ज्ञानियो! ध्यान देना, केवलज्ञान से मोक्षमार्ग नहीं प्रशस्त होता, अवधिज्ञान से मोक्षमार्ग नहीं प्रशस्त होता, मन:पर्ययज्ञान से मोक्षमार्ग प्रशस्त नहीं होता है। श्रुतज्ञान से निर्वाण मिलता है। कैवल्य की प्राप्ति भी श्रुतज्ञान से होती है। यदि आप विधान कर रहे हो या जिनवाणी सुन रहे हो, तो जीवन में कभी भी श्रुत की अविनय नहीं करना। तीर्थंकर प्रकृति का बंध भी श्रुतज्ञान से होता है। सोलहकारण भावना भी भायेगा जीव, तो श्रुतज्ञान से भायेगा। हेय-उपादेय का विवेक भी श्रुतज्ञान से जागता है। संयम का पालन भी श्रुतज्ञान से होता है। इसलिए जिनवाणी कहीं भी मिल जाये, शांतचित्त होकर सुनना।

इस बात का ध्यान रखना, कि जो भूलें आज तक की हैं, उनको अब से मत करना। कभी जीवन में भूल मत कर लेना। पूर्व में पुण्य किया होगा जो आज यह पुण्य का फल मिल रहा है। कहीं तू दूसरी जगह संगीत करने जाता तो पता नहीं कितनी मिथ्यात्व की बातें सुनाता। ऐसे खोटे गाने सुनाता जिसके माध्यम से अनेक जीव अपने चारित्र से भ्रष्ट होते। तेरे संगीत को सुनकर अनेक लोग संयम से पतित होते। यह अपना अहोभाग्य मानना। आज से कहीं भी संगीत करने जाना तो इस लक्ष्य को लेकर मत जाना कि मैं पैसा कमाने के लिए जा रहा हूँ। लक्ष्य यह बनाकर चलना कि अहोभाग्य मेरा है कि मैं तीर्थंकरों के गुणगान करने जा रहा हूँ। ऐसी भावना भाकर चलना। और लक्ष्य बना कर चलना।

नियोग था अपना, आज केवली नहीं हैं, अवधिज्ञानी नहीं हैं। यदि अवधिज्ञानी या केवली भगवान होते तो आज यह पण्डित जी बता देते कि यह सब मुमुक्षु कैसे बैठे हुए हैं। यह सब पूर्वभव के सम्बंधी हैं। एक-एक जीव की पर्याय को यह बता देते कि यह सब नियोग क्यों बना। हर जीव के साथ सम्बन्ध है। राग में मत डूब जाना। सम्बन्ध स्थापित करने के लिए मत सुनना, सम्बन्ध के क्षय के लिए सुनना। कुन्दकुन्द स्वामी कुछ कह रहे हैं 'समयसार' जी में। सीमंधर स्वामी के समवसरण में पहुँच कर जिस योगी ने श्रुत का पान किया हो, भगवान सीमंधर स्वामी के पादमूल में पहुँच कर जो जिनवाणी लेकर आये हैं।

ऐसा आचार्य जयसेन स्वामी ने स्वीकार किया है। श्रुतसागर सूरि ने स्वीकार किया है, कि पूर्व विदेह में भगवान सीमंधर स्वामी के पादमूल में जाकर कुन्दकुन्द देव ने श्रुत का पान किया है। यहाँ तक उल्लेख मिलता है कि कुछ ग्रन्थ भी लेकर आये थे, लेकिन मार्ग में ग्रन्थ हाथ से छूट गया। इतना गम्भीर कथन करने वाला योगी, इतना रहस्य प्रगट करने वाले योगी, इतनी विद्या को प्राप्त हो कैसे गये? आत्मविद्या। इसका मतलब यह भी मत समझ लेना कि उनको सिद्धांत का ज्ञान नहीं था। 'षट्खण्डागम' पर भी इन्होंने टीका की है। यह अपना दुर्भाग्य कहना चाहिए कि कुन्दकुन्द स्वामी द्वारा की गई षट्खण्डागम की टीका उपलब्ध नहीं है।

श्रावको! पुनः सुनना। जो जिनवाणी मन्दिर में विराजमान है, उसको तो सुरक्षित रखना ही है, हर श्रावक के घर में निजवाणी होना चाहिए। जो अत्यन्त शुद्ध स्थान है, वहाँ विराजमान करो। होना क्यों चाहिए? क्योंकि मन्दिर व ग्रन्थालय निश्चित स्थान पर हैं, कहीं किसी जीव के मन में अशुभ परिणाम आ गये, हमारी संस्कृति पर उपसर्ग करने कोई खड़ा हो गया, तो निश्चित स्थानों की जिनवाणी नष्ट हो जायेगी, लेकिन घर-घर में सुरक्षित जिनवाणी रहेगी। रहस्य पकड़िये। हे श्रावको! जैसे आप अपनी सम्पत्ति की रक्षा कर रहे हैं, ऐसे ही आपको सनातन धर्म की रक्षा के भाव भी आना चाहिए।

ज्ञानी! लड़कों को जन्म मत देना। जो लड़-लड़ कर पिता को बाहर भगादे, उसका नाम लड़का है। जो सनातन धर्म की परम्परा को लेकर चले, उसका नाम सन्तान है। खोटे काल में भी तीर्थंकर के जिनबिम्ब की आराधना कर रहे हैं, यह सन्तान है, सनातन धर्म को आगे ले जा रहे हैं। इसलिए आज घर जाकर अपने बेटों को समझाना, बेटे! हमने मात्र अपने सुख के लिए तुझे जन्म नहीं दिया है। हमने वीतराग धर्म की रक्षा के लिए तुम्हें जन्म दिया है। इतना जरूर बोल देना, क्योंकि यह 'समयसार' हम पढ़ रहे हैं, तो आपकी सन्तान भी होगी तो इधर मुनिराज कौन बनेंगे। जो मुनिराज बनेंगे, तो 'समयसार' को आगे लेकर चलेंगे।

धन्य हो इनके माता पिता को, जो उन्होंने मुस्कुरा कर हाथ-पैर जोड़कर कहा—'लो, महाराज! एक बेटा तुम ले जाओ, जो वीतराग धर्म को आगे बढ़ायेगा।' उन माता-पिता का पुरुषार्थ भी कितना महान है, जिन्होंने कामपुरुषार्थ भी करते हुए णमोकार की आराधना की है। उनका काम पुरुषार्थ, धर्म पुरुषार्थ में परिवर्तित होता है। आज घर जाकर अपने बेटों से कहना कि मुनिराज वास्तव में तन से मुनिराज हैं, भावों के भगवान हैं, ये तो भविष्य के सिद्ध परमेश्वर हैं। ओह! जब नगर में मुनिराज आते हैं, तब आपका मन गद्गद् होता है। दूसरों के बेटे मुनिराज बनते हैं तो जब आपको कितना अच्छा लगता है तो तुम्हारे बेटे मुनिराज बनेंगे, तो कितना अच्छा लगेगा? हर माता-पिता को चाहिए कि एक बेटा घर में रहे तो दूसरे बेटे को मुनिराज बना देना। परन्तु यह अभागे लोग हैं जो पाप करना छोड़ते नहीं हैं और सन्तान को जन्म देते नहीं हैं।

पण्डित जी! आपको बोलना चाहिए। क्या आपने ठेका ले रखा है कि देश की जनता कम होनी चाहिए? अच्छे लोग जन्म लेंगे तो धर्म चलेगा और आप लोग सन्तान को जन्म क्यों नहीं दे रहे हो? बहुत अच्छा हो कि ब्रह्मचर्य व्रत ले लेना। यदि ब्रह्मचर्य व्रत नहीं लेना हो तो सन्तान को जन्म देना और उसे उसके भाग्य पर छोड़ देना चाहिए। इस बात को भूल जाना चाहिए कि सन्तान बढ़ेगी तो भूखे मर जायेंगे। भोजन पुरुष नहीं देता, भोजन भगवान नहीं देता है, भोजन देने वाला तेरा भाग्य होता है।

'तेरी कृपा से सब काम हो रहे हैं।' किसी की कृपा से काम नहीं होता है। भोजन भगवान नहीं देते हैं। और जो भगवान भोजन देने आये, तो वह भगवान नहीं बचेंगे। पूछो पण्डित जी से। घर में भरा रखा है, सो जिनवाणी सुन रहे हो। कुछ कमा कर भी ले जाओगे, क्योंकि घर की भोजन की व्यवस्था बिठानी पड़ेगी।

जब बेटे ने जन्म ले लिया हो, उसके पिता से पूछना, कितना सोचना पड़ता है, कितना तनाव होता है, फिर सारा विश्व जिस परमात्मा के लिए बेटा हो, तो उस परमात्मा को कितना तनाव होता होगा? अमुक को यह खिलाना है, अमुक को यह पिलाना है। जब भगवान ही चिन्ता में डूब जायेगा, तो वह भगवान किस बात का बचेगा? ज्ञानी! विश्वास रखना, यदि परमात्मा काम करने लग गया, भैया! तू हाथ पर हाथ रखना, संगीत करना भी तेरे लिए जरूरी नहीं है, क्योंकि उनकी कृपा से मिल रहा है। यदि तुम यह कहो कि यह व्यवहार से कहना पड़ता है, तो यह व्यवहार नहीं है, मिथ्यात्व है। ज्ञानी! समझो। भगवान करने आने लग गये, भगवान देने लग गये तो स्वयं का किया गया कर्म कहाँ चला जायेगा? भगवान लेते नहीं हैं, भगवान देते नहीं हैं। भगवान की भक्ति करने वाले को स्वयमेव मिल जाता है। इसलिए भगवान की भक्ति करो। भक्ति करोगे तो पुण्यास्रव होगा और पुण्यास्रव होगा तो फल भी मिलेगा। लोग यह समझते हैं कि भक्ति भी छुड़वा देंगे। भक्ति नहीं छुड़वा रहा हूँ, वास्तव में भक्ति बता रहा हूँ। क्योंकि समयसार कहीं दिखाई नहीं दे रहा है। समझो ध्यान से।

भक्ति की विधि समझो। ''पूज्येषु गुणानुरागो भक्तिः'' पूज्य के गुणों में अनुराग करने का नाम भक्ति है। भगवान को पिता बना लेना, भगवान को माँ, पिता, सखा, मित्र बना लेना यह भक्ति नहीं है। भगवान को भगवान मान कर पूजना, इसका नाम भक्ति है। यह रागियों का मार्ग नहीं है, वीतरागियों का मार्ग है। माताओ! आप भगवान के पास भक्त बनकर कितना आते हो और भिखारी बनकर कितना आते हो? जो यह कहेगा कि सुख-समृद्धि मिल जाये, तो एक भी भक्त नहीं है। चौंसठ ऋद्धि विधान इसलिए नहीं किया कि आपके घर भर जायेंगे। यह तो मुनियों की आराधना चल रही है। आप गरीब नहीं हो रहे हो, नहीं-तो चिन्ता में भाग

जाओगे। विधान इसलिए कर रहे हो ताकि मेरे अशुभ कर्मों का क्षय हो जाये। अशुभ कर्मों का क्षय होगा तो घर अपने आप भरना प्रारम्भ हो जायेगा। इसलिए माँगने की आवश्यकता नहीं है। आज सब तिजारा, पद्मपुरा या कोई भी तीर्थ जाते हैं तो मांगने जाते हैं। भक्त तो दो चार ही जाते हैं, अधिकांशतः भिखारी ही जाते हैं, जो यह कहते हैं कि हमारा यह काम हो जाये। ज्ञानी! काम के लिए मत जाओ। भगवान जिनेन्द्र की जो भक्ति है, वह काम को तो दाहती है, कामधेनु गाय के समान फलित होती है। इसलिए माँगने की आवश्यकता नहीं है। आपको स्वयमेव प्राप्त होगा। भिखारी बनकर नहीं, भक्त बन कर आना। तीर्थंकर की देशना, आराधना जो शिवत्व का साधन है, तो आपको सामान्य संसार की सिद्धि कौन-सी बड़ी बात है? भक्ति नहीं छोड़ना, लेकिन भगवान से माँगना मत। कुछ लोग इसलिए मन्दिर आते हैं कि भगवान नाराज न हो जायें। ज्ञानी! हम उन भगवान को नहीं मानते जो नाराज होते हैं। जो-जो महाराज होते हैं, वे नाराज नहीं होते और जो नाराज होते हैं, वे महाराज नहीं होते।

न पूजयाऽर्थस्त्वयि वीतरागे, न निन्दया नाथ! विवान्तवैरे।
तथापि ते पुण्यगुणस्मृतिर्नः, पुनातु चित्तं दुरिताञ्जनेभ्यः।।57।।

हे वीतरागी जिनदेव! आप पूजा करने वाले से प्रसन्न नहीं होते हो, निंदा करने वाले पर नाराज नहीं होते हैं, इसलिए आपकी वंदना है। जो श्राप देते हैं, जो वरदान देते हैं, वह भगवान कैसे? कुछ लोग तो कुलदेवी, घर के देवी-देवताओं को पूज रहे हैं। तीनलोक के नाथ के चरणों में बैठे हो, निजके पादमूल में सौ-सौ इन्द्र सिर टेकते हैं, उन तीनलोक के नाथ के चरणों को छोड़कर अन्य के चरणों में जा रहे हो, तो तुमसे बड़ा अज्ञानी जगत में दूसरा कोई होगा नहीं। चौंसठ ऋद्धि विधान और 'समयसार' के प्रवचन का यही मूल है।

जिस लोटे से शांतिधारा चल रही थी, उस लोटे को नीचे हाथ कर सुबह कैसे लेकर जायेगा? जिस लोटे को तीनलोक के नाथ के मस्तक पर ढारा हो, उस कलश को जंगल तो दूर है, आप पानी भी नहीं पियेंगे। मंगलकलश कह कर उसे उच्च स्थान पर विराजमान करोगे कि नहीं? क्यों भैया! धातु का लोटा प्रभु के मस्तक पर पानी डालने से पवित्र हो गया। जिन हाथों ने, जिन मस्तक ने तीर्थंकर के पादमूल में नमस्कार किया हो, उस मस्तक को मिथ्यात्व में टेकने कैसे जायेगा? यदि आपको समझ में नहीं आ रहा है, तो मेरा नाम ले लेना कि आचार्य श्री ने मना किया है। आज से नियम ले लो कि तीर्थंकर के बाद किसी को नमस्कार नहीं करेंगे। ज्ञानी! प्राण चले जायें, धरती छिन जाये, धन नष्ट हो जाये, लेकिन मैं तीर्थंकर के अलावा, पंचपरमेष्ठी के अलावा किसी के चरणों में माथा नहीं टेकूँगा।

एसो पंचणमोयारो सव्वपावप्पणासणो।
मंगलेसु य सव्वेसु पढमं हवदि मंगलं ।। मूलाचार।।

मुझे तो आश्चर्य होता है जब पिछीधारी/व्रती यह गाने लग जाये- 'हो पालनहारे।' यह दिगम्बर आम्नाय है, यह वीतरागी आम्नाय है, इसमें सरागता को कोई स्थान नहीं है। आज से आप पर कोई विपत्ति/संकट आये तो—

''चत्तारि सरणं पव्वज्जामि'' अरहंत सरणं पव्वज्जामि,
सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि
केवलि पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

व्यवहारदृष्टि से पंचपरमेष्ठी शरणभूत हैं, निश्चय से निज आत्मा ही शरणभूत है। ''अप्पा सरणं पव्वज्जामि।''

कुन्दकुन्द देव की दृष्टि में द्वैत भक्ति, अद्वैत भक्ति। ध्यान दो, इनको आप वेदों के शब्द समझ रहे हो, जबकि ये जैनदर्शन के शब्द हैं। सारे भारत में तीन सौ तिरेसठ मत चल रहे हैं, उन मतों में द्वैत भी है, अद्वैत भी है। क्रियावादी, अक्रियावादी। बहुत सारे मत चल रहे हैं। लेकिन अहो ज्ञानियो, जैनियो! अद्वैतवादी हो तो मिथ्यादृष्टि हो और द्वैतवादी हो तो भी मिथ्यादृष्टि हो। मैं तो स्यात् द्वैतवादी, स्यात् अद्वैतवादी हूँ। पंचपरमेष्ठी की आराधना में या परमात्मा की आराधना में भक्त-भगवान का जो सम्बन्ध चल रहा है, वह द्वैतभाव है, इसलिए द्वैतवादी हैं। योगी जब शुद्धोपयोग में लीन होता है ''अहमिक्को खलु शुद्धो'' एक मात्र ध्रुव आत्मा का आलम्बन होता है, वह अद्वैत है। इसलिए मुनियों की जो वीतराग भक्ति है, वह अद्वैतभक्ति है और जो सराग भक्ति है, वह द्वैतभक्ति है। आप लोग कौन हो? द्वैतवादी या अद्वैतवादी? स्यात् द्वैतवादी स्यात् अद्वैतवादी। ऐसा मत कर देना कि मुनि तो अद्वैतवादी हैं और मैं तो द्वैतवादी हूँ। ज्ञानी! यदि निर्ग्रन्थों का धर्म अद्वैत है, श्रावकों का धर्म द्वैत है, तो अपने-अपने अनुष्ठान की अपेक्षा से ऐसा है। पर क्या तुम मुनियों के धर्म को नहीं स्वीकारते हो? क्या श्रावकधर्म को नहीं स्वीकारते? आप द्वैत-अद्वैत नहीं होंगे, तो आप दिगम्बर कैसे होंगे?

पण्डितजी! आप दिगम्बर हो या श्वेताम्बर? आप कपड़े पहने हो, तो श्वेताम्बर हो क्या? दिगम्बर को नहीं मानते हो क्या? सुनो! अपने आपको दिगम्बर कैसे कह रहे हैं? सारी समाज को हर्ष मनाना चाहिए कि आप तो कपड़ों के मध्य रहते हो, धन्य हो धरती के देवता दिगम्बर को। ''महासाहु, महासाहु, महासाहु दिगम्बरा:''(कल्याण आलोचना)। इस ब्रह्मांड में महासाधु कोई है तो दिगम्बर है। आप कल्पना करो कि दिगम्बर तपोधन शीत, उष्ण आदि बाईस परीषह को सहन करते हैं, अट्ठाईस मूलगुणों का पालन करते हैं और धन्य हो तुम्हारा भाग्य, परिपूर्ण वस्त्रों के साथ रहते हैं, परन्तु सद्गुरु के नियोग से आप कपड़े पहने भी दिगम्बर कहलाते हो। जो जीव इन दिगम्बरों को नहीं स्वीकारता, तो दिगम्बर किस बात का? दिगम्बर हम इसलिए हैं, क्योंकि हमारा देव दिगम्बर है, गुरु हमारा दिगम्बर है और दिगम्बर गुरु व दिगम्बर

देव को मैं मानता हूँ, इसलिए मैं दिगम्बर हूँ। जैसे तुम दिगम्बर हो, वैसे तुम द्वैतवादी भी हो और अद्वैतवादी भी हो। परन्तु आप अपनी दृष्टि में मुद्रा में आओगे तो। अभी तुम्हारी भक्ति द्वैतभक्ति है। अद्वैतभक्ति तुम्हारे पास नहीं है। निश्चय आत्म-आराधना अद्वैत है और व्यवहार आराधना द्वैत है। हम एकांतवादी नहीं, अनेकांतवादी हैं।

अपने जीवन में द्रव्य मिथ्यात्व के प्रति मस्तक टेकना बन्द कर देना। विश्वास रखना, यही सबसे बड़ी तपस्या है। एक लाख वेश्याओं के साथ वेश्यावृत्ति करने पर जो पाप का बंध होता है, एक बार के मिथ्यात्व को मस्तक टेकने से वह पाप का बंध होता है। इसलिए यदि कोई देव कहे कि आप मुझे नमस्कार करो अन्यथा मैं आपका घात करता हूँ, तो आप कहना कि तू देर क्यों करता है? जिसका तू घात करना चाहता है, उसका घात होता नहीं है और जिसका घात होगा, वह घात के योग्य ही है। उसका नाश होगा। आत्मा का नाश होता नहीं है। लेकिन मिथ्यात्व को मैं स्वीकार नहीं करूँगा। जिसको मृत्यु का डर नहीं है, वह ही सम्यक्त्व का पालन कर पायेगा। जिसको मृत्यु का डर है, वह सम्यक्त्व का पालन कर नहीं सकता। जिसको जीने में राग होगा, वह सम्यक्त्व का पालन नहीं कर पायेगा। जिसको यह निर्णय हो चुका है कि मृत्यु के आगे कुछ नहीं है उसे डर किस बात का? जीवन जाये तो कुछ गया, लेकिन सम्यक्त्व गया तो सबकुछ गया। आज से मिथ्यात्व का त्याग। मिथ्यात्व के आगे हाथ जोड़ना बन्द कर दो। कोई नहीं घबराना। कुछ नहीं होने वाला है। इतना निर्णय हो गया तो जो देव होगा, वह भी आपके चरणों में सिर टेक देगा। बज्रकर्ण से पूछो, जिसने नियम लिया था, कि मैं पंचपरमेष्ठी के अलावा किसी को नमस्कार नहीं करूँगा।

मच्छर देखे हैं आप लोगों ने? वे बहुत अच्छे प्राणी हैं। वे किसी को धोखा नहीं देते। वह काटने से पहले आवाज करता है। परन्तु वे बहुत खोटे लोग हैं, जो बिना आवाज करे चुगली करते हैं, निंदा करते हैं। उन मच्छरों से बड़ा कोई मच्छर नहीं है। मच्छर कम-से-कम आवाज करके तो आते हैं। लेकिन जो एक दूसरे के कान में सुनाते हैं, वह बड़े खोटे लोग हैं। दस-दस उपवास कर लेना सरल है, परन्तु अपने कानों से दूसरे की प्रशंसा सुन लेना, यह बहुत बड़ी साधना है, नहीं-तो दूसरे के निन्दा-पुराण में कितना आनन्द आता है? घण्टों-घण्टों बिता देता है। सबसे बड़ी साधना है कि दूसरों की निन्दा को नहीं सुनना और प्रशंसा को सुन लेना।

वज्रकर्ण की प्रतिज्ञा थी कि मैं दिगम्बर वीतरागी पंचपरमेष्ठी के अलावा किसी अन्य को नमस्कार नहीं करूँगा। तो वज्रकर्ण के लिए सभा में एक ईष्यालु व्यक्ति ने बोल दिया कि महाराज! यह वज्रकर्ण सभा में आता है, लेकिन आपको नमस्कार नहीं करता है। 'तो किस को करता है?' उसने अँगूठी में तीर्थंकर मुनिसुव्रत नाथ स्वामी का नग लगा रखा है, तो जब

हाथ जोड़ता है, तो मुनिसुव्रतनाथ को नमस्कार करता है। 'ऐसा क्या?' वज्रकर्ण को बुलाया सिंहबल ने, कहा, आप मुझे नमन कीजिए अन्यथा आपकी राज्यसम्पत्ति हरण की जायेगी। धन्य हो उस जीव के लिए। अपने पण्डित जी होते तो कह देते कि ले लेंगे महाराज से प्रायश्चित्त, अब जो घर बसाया है, कैसे मिटायें? हे ज्ञानी! क्या तुझे भरोसा है कि प्रायश्चित्त लेने के लिए बच पायेगा? इसलिए ज्ञानी! तप नहीं छोड़ना चाहिए, व्रत नहीं तोड़ना चाहिए। कोई नियत नहीं है कि प्रायश्चित्त लेने के लिए तू बचेगा कि नहीं। प्रायश्चित्त उसका होता है, जो धोखे से पाप हो गया हो। जान-जान कर पाप कर रहे हो और कह रहे हो ले लूँगा प्रायश्चित्त। जब वज्रकर्ण ने देखा कि अब छिपाने की कोई आवश्यकता नहीं है, तो सिंहबल से कहता है, स्वामी! सम्पत्ति दे सकता हूँ, राज्य छोड़ सकता हूँ, लेकिन यह मस्तक जिनदेव के अलावा किसी दूसरे के सामने झुकनेवाला नहीं है। वज्रकर्ण के राज्य को छीन लिया, सम्पत्ति छीन ली, आग लगा दी सिंहबल ने, लेकिन तब भी चला गया। विश्वास रखना, ''चत्तारि शरणं पव्वज्जामि।'' जब वज्रकर्ण का सबकुछ छीन लिया, तो वह जंगल की ओर चला गया। इसी बीच राम, लक्ष्मण, सीता जंगल में विचरण कर रहे थे। सीता ने कहा, भोजन चाहिए। राम ने कहा, लक्ष्मण! देखो कोई व्यवस्था हो। वृक्ष पर चढ़कर लक्ष्मण देखते हैं, 'भैया! श्री जिनमन्दिर के शिखर नजर आ रहे हैं।' दिगम्बर जैन आम्नाय में मन्दिर के शिखर मुख्यतः सफेद ही होने चाहिए। 'शुभ्र धवल सुधा' सुधा का अर्थ होता है चूना। सुधामय शुभ्र शिखर को देखकर लक्ष्मण कहते हैं कि सामने मन्दिर के शिखर दिखाई दे रहे हैं, कोई नगर होना चाहिए। सामने से कोई पुरुष भी आ रहा है। वृक्ष से नीचे उतरते हैं। इसी बीच में वज्रकर्ण पधार गया। वज्रकर्ण ने देखा कि यह कोई दिव्य पुरुष है, तो वह घबरा गया। जब लक्ष्मण ने धैर्य बंधाया कि मेरे भाई-भाभी यहाँ पर भूखे हैं, उनकी भोजन की व्यवस्था करो, फिर मैं तुम्हारी सुनता हूँ। वज्रकर्ण ने तीनों की भोजन-पानी की व्यवस्था की और जब श्री राम कहते हैं लक्ष्मण से कि यह इतना दुःखी प्राणी क्यों है? उसने पूरी कथा सुनाई। तो राम ने कहा—जिनदेव का भक्त, जिसको इतना बड़ा कष्ट? जाओ, इसका कष्ट दूर करो। लक्ष्मण पहुँचे और जाकर ऐसा भरपूर भोजन-पानी लिया और फिर सिंहबल से कहते हैं। वज्रकर्ण को नमस्कार करो।

इस दूत को वह समझ रहे थे कि सामान्य पुरुष है। लक्ष्मण ने वृक्ष उखाड़ा और पूरी सभा को तहस-नहस कर दिया और सिंहबल को पकड़ कर श्रीराम के चरणों में रख दिया। सिंहबल की पत्नी कहती है, सिंहबल कहता है, स्वामी! मेरे प्राणनाथ की रक्षा करो। तब राम कहते हैं कि मैं नहीं करूँगा। इनकी रक्षा वज्रकर्ण करेगा। रक्षा तो क्या, वज्रकर्ण को राज्य दीजिए। इसकी सेवा को स्वीकार कीजिए। महन्त की वन्दना का फल क्या मिला? कि खोया राज्य वापस मिला। पहले अनुचर बनकर रहता था, अब स्वामी बनकर रह रहा है।

विश्वास रखना, दृढ़ आस्था होगी, जो महन्त का भक्त होगा, तो भीख मांगते नहीं मिलेगा। आपको मालूम होना चाहिए कि विश्व में कोई विरला जैनी होगा जो भीख मांगता होगा। जैनी भीख मांगते नहीं मिलेगा। यह जिनदेव की भक्ति की महिमा है। व्यवहार से जिनदेव की महिमा है, निश्चय से जो आपने भक्ति की है उससे असाता का नाश हुआ है, साता का उदय हुआ है, तेरी भक्ति के परिणामों की महिमा है। जब उपचार-भक्ति का कथन करेंगे, तो यह जिनदेव की महिमा है। वस्तुस्वभाव यही है कि जिनदेव की भक्ति के प्रभाव से हमारी असाता का साता में संक्रमण हुआ है। आप आज अपने घर में बैठकर चिन्तन करना- ''चत्तारि शरणं पव्वज्जामि।''

मायावृत्ति मत करना, नहीं-तो जो मन्दिर में कबूतर घूम रहे हैं, वह क्यों हैं? उन लोगों ने अच्छे क्षेत्र में मायाचारी की थी, इसलिए मन्दिर में हैं। दुनियाँ में ऊँच-नीच हो सकती है, परन्तु कर्मसिद्धांत में कोई ऊँच-नीच नहीं होती।

इसलिए आज से ध्यान रखना, ''जो है, सो है।'' तब कहना, जब आज शाम को भोजन-पानी न मिले। कहीं पण्डित जी ने ज्यादा समय लगा दिया और भोजन पानी चूक गया, तो फिर बेटे की पत्नी पूछे, फिर कहना, ज्ञानी! 'जो है, सो है।'' एक दिन भक्ति की है, तो इतना फल मिल गया कि भोजन की भी चिन्ता नहीं है। जो परमात्मा की भक्ति करता है, वह निधत्ति व निकाचित कर्मों का अभाव कर लेता है। जो निज शुद्धात्मा की भक्ति करता है, वह एक सौ अड़तालिस कर्म-प्रकृतियों का क्षय कर लेता है। परमात्मा की भक्ति करेगा तो स्वर्ग में देव बनेगा, निजआत्मा की भक्ति करेगा तो भगवान ही बनेगा। पर जब तक निजशुद्धता की भक्ति नहीं कर पा रहे हो, तब तक परमात्मा की भक्ति करते रहना, क्योंकि वादीभसिंह सूरि ने लिखा है, कि यदि आपको संसार की कन्या का कर पकड़ने जाना है, तो भक्ति का कर देना पड़ता है। इसलिए जाओ, भक्ति का कर आज से ही प्रारम्भ कर देना।

भारत की परम्परा के अनुसार तीन बार 'हाँ' करो कि मैं मिथ्यात्व का त्याग करता हूँ। कम-से-कम द्रव्यमिथ्यात्व से दूर हो गये, भाव मिथ्यात्व तो सीमंधर स्वामी देख रहे होंगे। द्रव्यमिथ्यात्व से दूर हो गये तो भावमिथ्यात्व से भी दूर होंगे।

"**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।**" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

अखिल भारतीय श्रमण संस्कृति सेवा समिति ट्रस्टीगण एवं सदस्य

शिरोमणि संरक्षक

श्री सुन्दरलालजी जैन (बीड़ीवाले), इंदौर, **श्री महावीरजी पाटनी**, भिलाई
श्री आजादकुमारजी जैन (बीड़ीवाले), इंदौर

परम संरक्षक

श्री नेमीचंदजी बड़कुल, इंदौर
श्री राजेशजी जैन (लॉरेल्स), इंदौर
श्री कमलकुमारजी अग्रवाल, इंदौर
श्री संतोषकुमारजी जैन (पठनावाले), सागर
श्री माँगीलालजी रमेशकुमारजी पहाड़िया, हैदराबाद
श्री टी.के.वेद, इंदौर
श्री विजयकुमारजी रामनारयणजी, नागपुर

संरक्षक

श्री सचिनकुमारजी जैन (उद्योगरत्न), इंदौर
श्री अनिलकुमारजी जैन (जैनको, समाजसेवी), इंदौर
श्री चक्रेशकुमारजी जैन (बड़कुल), इंदौर
श्री शैलेन्द्रकुमारजी सोनी, इंदौर
डॉ. श्री जैनेन्द्रकुमार जैन, छत्रपति नगर, इंदौर
श्री मानिकचंदजी नायक, (परिवार) छत्रपति नगर, इंदौर
श्री पी.सी. जैन सा., बैंकवाले, इंदौर
श्री प्रमोदकुमारजी जैन (बारदाना),सागर
श्री संतोषकुमारजी सोनू जैन (सिहोरा), सागर
श्री जैन राजेशजी कानूगो, इंदौर
श्री पं. कमलकुमारजी कमलाकर, भोपाल
श्रीमती कुसुमजी प्रकाशचंदजी, सुखलिया, इंदौर
श्री कमलेशकुमारजी पहाड़िया, इंदौर
इंजी. श्री पंकजकुमारजी जैन, भोपाल
श्रीमती राजलताजी धरणेन्द्रजी जैन, भोपाल
श्री राकेशकुमारजी पाटनी, नागपुर
श्री निर्मलकुमारजी जैन, गोंदिया

ग्रंथ प्रकाशन विशेष सहयोगी

श्री वीरेन्द्रकुमारजी चंदादेवी रावत, इंदौर
श्रीमती राजलताजी धरणेन्द्रजी जैन, भोपाल
श्री नरेन्द्रकुमारजी जैन (बीडीवाले), इंदौर
श्री अशोकजी कन्हैयालालजी खासगीवाला, इंदौर
श्री देवेन्द्रकुमारजी जैन (हीरू), इंदौर
श्री स्वतंत्रकुमारजी बाबूलालजी जैन, बालसमुद
श्री विजयकुमारजी जैन, छतरपुर
श्री कैलाशचंदजी जैन (नेताजी), इंदौर
श्री पुष्पाजी निर्मलजी काला, रायपुर
श्री रतनचंदजी अशोककुमारजी, दुर्ग
श्री वीरेन्द्र कुमारजी जैन (सुपारी वाले), सागर

अखिल भारतीय श्रमण संस्कृति सेवा समिति सदस्य

इंदौर...
श्री सुनीलकुमारजी गोधा
प्रो. श्री शांतिलालजी बड़जात्या
श्री महेशकुमारजी जैन (फूफा)
श्री जयकुमारजी जैन (रिंकू)
श्री विपुलजी बांझल (बंटी)
श्री संतोष गरूजी (परवार ग्रुप)
श्री कोमलचंदजी जैन (दद्दा)
श्री राकेशकुमारजी रसिया
श्री अरूणकुमारजी (मऊरानीपुर)
श्री विजयकुमारजी जैन (हवलदार)
श्री एन.के. जैन (रोडवेज)
श्री प्रकाशकुमारजी तरूणकुमारजी (आरोन वाले)
श्री जयकुमारजी निलेशकुमारजी जैन
श्री नवीनकुमारजी सुनीलकुमारजी जैन
श्री राकेशकुमार राजकुमारजी जैन
श्री संतोषकुमारजी जैन
श्री महावीरप्रसादजी चाँदमलजी गोधा
श्री संजयजी मोदी (अनंतपुरा)
श्री भागचंदजी पाटनी (सेन्ट परसेन्ट)

उज्जैन...
श्री जीवनलालजी जैन
श्री विजेन्द्रकुमारजी मनसुखलालजी जैन
श्री सुनीलकुमारजी हीरालालजी सोगानी
श्री मोतीलालजी जैन छाबड़ा
श्री कमलकुमारजी सुरेशचंदजी जैन
श्री देवेन्द्रकुमारजी मनसुखलालजी जैन (तलाटी)
श्री रुपेन्द्रकुमारजी विजेन्द्रकुमारजी जैन

ललितपुर...
श्री रामप्रकाशजी जैन,
श्री शीलचंदजी नन्हेलालजी जैन
श्री शिखरचंदजी जैन सर्राफ
श्री अखिलेशजी राजमलजी जैन
श्री सिंघई धन्यकुमारजी जैन
श्री सुंदरलालजी मथुराप्रसादजी जैन
श्री नरेन्द्रकुमारजी राजीवकुमारजी जैन
श्री जयकुमारजी मोतीलालजी जैन
श्री कमलकुमारजी खेमचंदजी जैन

सागर...
श्री सुरेशकुमार हुकुमचंदजी जैन
श्रीमती पुष्पादेवी संतोषकुमारजी जैन
डॉ. सुनीलकुमार राजेशकुमारजी जैन
श्री नेमीचंदजी जैन (सुरखी वाले)
श्री भरतकुमारजी ताराचंदजी पाटोदी
श्री ऋषभकुमारजी लखमीचंदजी गोयल
श्री वेदप्रकाशजी ताराचंदजी भाईजी
श्री कन्छेदीलालजी जैन (दाऊ)
श्री कोमलचंदजी ऋषभकुमार जैन (लालू साड़ी)
श्री ज्ञानचंदजी सुरेन्द्रकुमार जैन
श्री वैभवजी बाबुलालजी जैन
श्री ऋषभकुमारजी स्वरुपचंदजी सिंघई
श्री राजेन्द्रकुमारजी गुलाबचंदजी जैन
श्री सिंघई ऋषभकुमारजी मंडावरा वाले
श्री सेठ इंदरचंदजी दीपककुमारजी जैन (सन्मति)
श्री मुकेशकुमारजी भागचंदजी जैन
श्री राजेशकुमारजी जैन (जैन रोड़ लाईनस)
श्रीमती सुगंधीजी जैन (निहारिका)
श्री नितिनकुमारजी कोमलचंदजी सर्राफ
श्री सुनीलकुमारजी के.सी. जैन
श्री हेमचंदजी जिनेन्द्रकुमारजी निलेशकुमारजी जैन

छतरपुर...
चौधरी श्री ज्ञानचंदजी जैन (दादा)
श्री ओलियाजी कोमलचंदजी, छतरपुर
श्री राजेन्द्रकुमारजी जैन सेठ
श्री राजकुमारजी जैन
श्री आनंदकुमारजी जैन (लोहेवाले)
श्रीमती श्रीबहनजी
श्री चक्रेशकुमारजी जैन (बडकुल)
श्री मुकेशजी जैन (ग्रेनाईट इंडिया)
आचार्य श्री तारणतरण लोकन्यास
डॉ. सुरेशचंदजी बजाज
श्री श्रीपालजी बडकुल
श्री प्रमोदजी बिजावर

अन्य शहर :
श्री संजयकुमारजी निर्मलकुमारजी जैन
(नवापारा राजिम), रायपुर
श्री पन्नालालजी धन्नालालजी जैन, कलकत्ता
श्रीमती अलका अशोककुमारजी जैन, दिल्ली
श्रीमती उर्मिलाजी शीलकुमारजी जैन, हिसार (हरि.)
श्री निर्मल कुमारजी जैन, दिल्ली
श्री अनुरागजी मोदी (मोदी ट्रेडर्स), तेंदूखेड़ा
श्री प्रमोदजी चौधरी (जैन नगर), भोपाल
श्री पीयूषजी जैन, सोनीपत (हरियाणा)
डॉ. त्रिशलादेवी जैन, कानपुर
श्रीमती सुमनजी जैन (अरोरा), बरेली